

1988-89

श्रावणी-अंक

वेदप्रकाश का नववर्ष का प्रथम अंक आपके हाथ में है। आर्यसमाज के तीसरे नियम के अनुसार वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है। इस अंक में डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा महर्षि दयानन्द तथा वेद सम्बन्धी लेख हैं। आशा है पाठक इस अवसर पर इन लेखों का आनन्द लेंगे।

वैदिक सिद्धान्तों पर "दो सखियों की बातें" विशेषांक वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ श्री सुरेशचन्द वेदालंकार ने तैयार किया है। यह अंक हम अक्टूबर में विशेषांक के रूप में देंगे।

इसी प्रकार स्वामी वेदानन्द जी की एक पुस्तक "वैदिक धर्म" के लगभग आठ पृष्ठ हर अंक में इस वर्ष में देंगे। यह अद्भुत पुस्तक है। वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि के प्रमाणस्वरूप स्वामी वेदानन्द जी ने वेद-मन्त्रों को उद्धृत किया है। हर अंक में विशेष सामग्री देते ही रहते हैं, इस वर्ष विद्वानों से विशेष अनुरोध करके आपके लिए अधिक-से-अधिक ज्ञानवर्धक व सुरुचिपूर्ण लेख प्रकाशित करेंगे।

हम तो फिर निवेदन करते हैं कि जिन पाठकों ने वेदप्रकाश का वार्षिक शुल्क १५ रु० अभी तक नहीं भेजा है वे तुरन्त भेज दें, बल्कि यह भी चाहेंगे कम-से-कम एक वर्ष के लिए वेदप्रकाश अपने इष्ट मित्रों, बहन-बेटियों को भिजवायें। हम लोग शिकायत ही करते हैं कि हम आर्यों की नई पीढ़ी को हमारे सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं। इसके लिए प्रयत्न तो हमें ही करना होगा। इसलिए अपना वार्षिक शुल्क भेजते हुए अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को वेदप्रकाश भेजने के लिए उनका शुल्क भी भेजें और अन्यों को भी प्रेरित करें।

मैं बीच में कुछ दिन अस्वस्थ हो गया था। चौदह-पन्द्रह दिन हस्पताल में रहकर घर पहुँच गया हूँ। पूरा स्वास्थ्य लाभ करने में अभी ढाई-तीन महीने लग जायेंगे। मेरे जिन प्रेमी बन्धुओं ने मेरे लिए शीघ्र स्वस्थ होने की कामना की, मुझे पत्र लिखे, उनका मैं आभारी हूँ।

—विजय कुमार

एक अति आवश्यक और महत्वपूर्ण सूचना

शतपथ ब्राह्मण

अनुवादक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रकाशन प्रारम्भ

शतपथ ब्राह्मण वेदार्थ और कर्मकाण्ड का अत्यन्त प्रसिद्ध और अति प्राचीन ग्रन्थ है। इसकी रचना महर्षि याज्ञवल्क्य और शाण्डिल्य मुनि ने की है। मूल ग्रन्थ में १४ काण्ड हैं, १०० अध्याय और ७६२५ कण्डिकायें हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम काण्ड बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से विख्यात है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे लिए गौरव की बात है। इसके स्वाध्याय और संग्रह करने वाले भी अपने को गौरवान्वित समझेंगे।

इसके चार खण्ड होंगे। पहले खण्ड में शतपथ ब्राह्मण का सांस्कृतिक तथा समीक्षात्मक अध्ययन होगा। इसे श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने अंग्रेजी में लिखा है—A Critical and "Cultural Study of Sathpath Brahman".

बड़े आकार के ७५० पृष्ठ होंगे।

दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड में बायें पृष्ठ पर मूल पाठ होगा। इसे हम एल्बर्ट बेवर द्वारा सम्पादित, १८४९ में जर्मनी से प्रकाशित फोटो प्रोसेस द्वारा स्वर सहित प्रकाशित करेंगे। दायें पृष्ठ पर हिन्दी अनुवाद होगा श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत।

चारों खण्डों की पृष्ठ संख्या लगभग बड़े आकार में २७५० होगी। चारों खण्डों का मूल्य २५००.०० होगा।

प्रथम खण्ड (अंग्रेजी का) जो ग्राहक न लेना चाहेंगे उन्हें मूल तथा हिन्दी अनुवाद वाले तीन खण्ड १८००.०० के अग्रिम ग्राहक बनने पर रु० १०००.०० में प्राप्त हो जायेंगे। चारों खण्ड के अग्रिम ग्राहक बनने पर १५००.०० देने होंगे।

केवल एक सौ रुपये देकर आप इसके ग्राहक बन सकते हैं। शेष राशि पुस्तक प्रकाशित होने से पहले मँगा ली जायेगी।

बहुत थोड़ी प्रतियाँ ही छपेंगी। पीछे निराश होने से बचने के लिए आज ही, अभी ग्राहक बनकर अपनी प्रति आरक्षित करा लें।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक १] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [अगस्त १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ऋषि दयानन्द और अन्य भारतीय धर्माचार्य

लेखक—डॉ० भवानीलाल भारतीय

"It is perfectly certain that India never saw a more learned Sanskrit scholar, a deeper metaphysician, a more wonderful orator and a more fearless denunciator of any evil, than Dayanand, since the time of Shankaracharya."

थियोसोफी मत की प्रवर्त्तिका मैडम ब्लैवेट्स्की का यह कथन हमें उचित जान पड़ता है कि शंकर स्वामी के पश्चात् भारतवर्ष में दयानन्द के समान संस्कृत का विद्वान्, आत्मज्ञानी, व्याख्याता और बुराइयों का निर्भीक आलोचक कोई अन्य उत्पन्न नहीं हुआ। इतना ही नहीं, हम स्वामी दयानन्द में अन्य कई ऐसी विशेषताएँ पाते हैं जिनसे पता चलता है कि उनके जैसा महापुरुष संसार में विरला ही आता है। यदि हम स्वामी दयानन्द का महत्त्व नहीं समझें तो इसमें हमारी ही भूल है। स्वामीजी वैदिक युग के ऋषियों की श्रेणी में आते हैं, परन्तु उनकी महानता और उनके औदार्य को देखिए कि वे अपने को उन प्राचीन महर्षियों की चरणरज के तुल्य भी नहीं समझते। सार्वभौम वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के लिए स्वामीजी ने अपना जीवन बलिदान कर दिया। भारत-भूमि में अनेक धार्मिक आचार्य उत्पन्न हुए हैं, परन्तु सबने नवीन मत-स्थापन करना ही अपना उद्देश्य समझा। ऋषि दयानन्द ही ऐसे एक महापुरुष हैं जिन्होंने उसी धर्म को महत्त्व दिया जिसे "ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त" ऋषि-मुनि मानते आए हैं। अपने ग्रन्थों में उन्होंने स्थान-स्थान पर यह स्पष्ट कर दिया है कि उनका उद्देश्य किसी नवीन सम्प्रदाय की स्थापना करना नहीं है अपितु वे उसी सनातन धर्म का उद्धार करना चाहते हैं, जो कि महाभारत-काल के पश्चात् अत्यन्त गिरी हुई दशा को प्राप्त हो गया है।

"यदा यदा हि धर्मस्य" का सिद्धान्त इसी रूप में माननीय है कि जब जब सनातन धर्म में बुराइयों का प्रवेश होता है तो उनका संस्कार करने के लिए किसी-न-किसी महान् आत्मा का जन्म होता है। महाभारत-युद्ध के पश्चात् भारतीय धर्म में वाममार्ग की प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगीं; जन्म से वर्ण-व्यवस्था मानी जाने लगी और यज्ञ में पशु-हिंसा का विधान हो गया, और इन सब बुराइयों का मूल वेदों में खोजा जाने लगा। उव्वट, महीधर, आदि भाष्यकारों ने वेदों के अश्लील और हिंसापरक अर्थ लगाए। चार्वाक ने यह दशा देखकर कहा "त्रयो वेदस्य कर्त्तारो धूर्त-भाण्ड-निशाचराः" और बुद्ध ने श्रुति-प्रामाण्य को अस्वीकार कर दिया। यह वाममार्ग की प्रतिक्रिया थी। उस समय के विकृत वैदिक धर्म में सुधार की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। बुद्ध ने इस काम का बीड़ा उठाया। उन्होंने यद्यपि वेदों का स्वल्प अध्ययन किया था परन्तु फिर भी वेदों के वास्तविक ज्ञान से वे अपरिचित थे। यदि उन्होंने वेदों और उपनिषदों की ईश्वर-सम्बन्धी मार्मिक शिक्षा का विचार किया होता तो शायद बुद्ध ईश्वर के प्रति उदासीन (agnostic), नहीं रहते। वेद-प्रमाण की दृष्टि से बुद्ध और चार्वाक के विचारों में हम अधिक अन्तर नहीं देखते। इसी प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि वैदिक सदाचार को बुद्ध ने जहाँ धर्म का मूल ठहराया वहाँ यज्ञ, वर्ण-व्यवस्था और ईश्वरोपासना के प्रति वे तटस्थ रहे।

स्वामी दयानन्द की स्थिति इसके विपरीत थी। उन्नीसवीं शताब्दी में जबकि वे उत्पन्न हुए थे, हिन्दू धर्म का अत्यधिक पतन हो चुका था। यदि वे चाहते तो किसी नवीन सम्प्रदाय की नींव रख सकते थे; परन्तु उन्होंने अपनी दृष्टि वेदों पर रक्खी। "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" का आप्तवाक्य लेकर वे धार्मिक संग्राम में उतर पड़े और वेद-बाह्य सब प्रकार के आचरण को छोड़ने की प्रेरणा की। बुद्ध और दयानन्द का अन्तर स्पष्ट है। दोनों के मार्ग यद्यपि भिन्न हैं, तथापि लक्ष्य एक ही है। बुद्ध और दयानन्द दोनों सनातनधर्म का उद्धार करना चाहते थे। एक का मार्ग वेद पर आधारित था और दूसरा वेद से उदासीन था। इसका फल यह हुआ कि आज बौद्ध धर्म भारत से निर्वासित हो चुका है, परन्तु आर्य धर्म की सर्वत्र जयजयकार हो रही है। महापंडित राहुल ने बुद्ध और दयानन्द पर अपनी सम्मति देते हुए कहा था कि कहाँ तो आत्मा, ईश्वर और वेद के बन्धन में बँधा हुआ दयानन्द और कहाँ इन बन्धनों से मुक्त अनात्मवादी बुद्ध! उपर्युक्त कथन में कितनी सचाई है, हम नहीं कह सकते, परन्तु इतना अवश्य है कि जो ईश्वर और आत्मा से डरता है, वही सबसे अधिक निर्भीक है। बौद्ध धर्म को चाहे जितना डेमॉक्रेटिक कहा जाय परन्तु उसमें धर्म और संघ की शरण जाने के साथ-साथ बुद्ध की शरण में जाना भी आवश्यक बताया गया है, परन्तु दयानन्द ने किसी स्थान पर अपने अनुयायियों को "बुद्धं शरणं गच्छामि" की तरह "दयानन्दं शरणं गच्छामि" का उपदेश नहीं दिया।

बुद्ध की शिक्षा कोई नई शिक्षा नहीं है। उनके धर्म और आचार-सम्बन्धी उपदेश वेदों की आचरण-सम्बन्धी शिक्षा पर आश्रित हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि बुद्ध ईश्वर की सत्ता और वेदों का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते। काश! भगवान् बुद्ध वेद के

सार्वकालिक और मानव-प्रेम के सिद्धान्तों का समर्थन करते। परन्तु ऐसा होना कठिन था। वाममार्गियों ने वैदिक धर्म को इतना बदनाम कर रक्खा था कि उसके सत्य स्वरूप से सब कोई अपरिचित था। परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि जनसाधारण की मनोवृत्ति सुधारमूलक न बनकर विद्रोहमूलक बन रही थी। इतना होने पर भी बुद्ध ने कभी श्रुति का विरोध नहीं किया। इस ओर से वे सदैव उदासीन ही रहे। स्वामी दयानन्द की महत्ता इसी बात से प्रकट होती है कि उन्होंने बिना विचार किये ही वेदों का तिरस्कार नहीं किया, अपितु उन्होंने वेदों के सत्यार्थ को जानकर ज्ञान की कुंजी प्राप्त कर ली और इसी वेद-ज्ञानरूपी कुंजी के कारण वे सनातन वैदिक धर्म का उद्धार करने में समर्थ हो सके।

महात्मा बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् बौद्ध धर्म के अनुयायियों का ब्राह्मणों के साथ विरोध बढ़ने लगा। विरोध के कारण वही थे जो स्वयं बुद्ध के समय में थे। जन्मानुसार वर्णव्यवस्था, यज्ञ में पशु-हिंसा आदि बातों को लेकर विरोध की वृद्धि होने लगी। इसी बीच राजाओं के संरक्षण में बौद्ध धर्म ने खूब प्रचार पा लिया और वैदिक धर्म के सर्वथा लुप्त होने के दिन आ गए। आचार्य चन्द्रकीर्ति ने जिस कड़े लहजे में वैदिक धर्म की आलोचना की, उसका उत्तर कोई ब्राह्मण पंडित नहीं दे सका। ऐसे ही संक्रान्तिकाल में शंकराचार्य ने एक बार फिर से वैदिक धर्म के अभ्युदय का झण्डा उठाया। स्वामी दयानन्द ने शंकर स्वामी के काम को बड़े आदर की दृष्टि से देखा है। यद्यपि दोनों के दार्शनिक सिद्धान्तों में आकाश पाताल का अन्तर है, फिर भी वैदिक धर्म की रक्षा के लिए जो प्रयत्न शंकराचार्य ने किये, स्वामी दयानन्द उनका महत्त्व भली प्रकार समझते थे। शांकर अद्वैतवाद की समीक्षा के आरम्भ में महर्षि लिखते हैं, "बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़-देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेदमत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है। इनको किसी प्रकार हटाना चाहिए। शंकराचार्य शास्त्र तो पढ़े ही थे, परन्तु जैनमत के भी पुस्तक पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें? निश्चय हुआ कि युक्ति, उपदेश और शास्त्रार्थ से ये लोक हटेंगे।" (सत्यार्थप्रकाश:, एकादश समुल्लास)

हम यहाँ अद्वैतमत की निस्सारता के विषय में अधिक नहीं लिखना चाहते। इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह सिद्धान्त वैदिक नहीं है। वेद ने तो "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" आदि मंत्रों में स्पष्ट रूप से तीन अनादि सत्ताओं की ओर संकेत किया है। ईश्वर, जीव और प्रकृति यही तीन वस्तुएँ अनादि और सृष्टि-रचना की कारण हैं। वेदों की कोई ऋचा शांकर सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करती। तब भला यह कैसे हो सकता है कि "जगन्मिथ्या"[४] के उपदेश को सच माना जाय?

नवीन वेदान्त के प्रचार से दो हानियाँ हुईं। लोगों ने जीव और ब्रह्म की एकता को समझकर ईश्वरोपासना से मुख मोड़ लिया। आज भी अद्वैत वेदान्त के समर्थक तुच्छ मनुष्य भी अपने-आपको ईश्वर कहने का दावा करते हैं और ईश्वर-प्राप्ति के लिए उपासना, तप, स्वाध्याय, सत्संग आदि की कोई आवश्यकता नहीं समझते। दूसरी हानि जो

अद्वैत सिद्धान्त को मानने से हुई वह है—"जगन्मिथ्या की भावना।" कहाँ तो वेद की यह शिक्षा—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"—सौ वर्ष पर्यन्त कर्त्तव्यपालन के लिए कर्म करना चाहिए, और कहाँ इसके विपरीत सत्य जगत् को मिथ्या बताकर पलायन-मनोवृत्ति(escapist mentality) को प्रोत्साहन देना ! जिसने दृष्टिमान संसार को ही मिथ्या समझ लिया और उससे तटस्थ रहकर अपने को ब्रह्म अनुभव करने का गर्व करता है वह अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि कर किस प्रकार धर्म संचय कर सकता है ? मनुष्य को तो चाहिए कि संसार को कर्मभूमि समझे और यहाँ कुशलता से कर्मों का सम्पादन करे क्योंकि गीता के अनुसार "योगः कर्म्मसु कौशलम्" कर्म में कुशलता दिखाना ही योग है।

ऋषि दयानन्द ने इन बातों को समझा था और 'वेदान्तिध्वान्त-निवारण' नामक पुस्तिका लिखकर शांकर वेदान्त का खण्डन किया। उन्होंने विशुद्ध वैदिक त्रैतवाद की स्थापना की। स्वामी दयानन्द शंकराचार्य से दो कदम आगे बढ़ जाते हैं जब वे वैदिक धर्म की उत्कृष्टता बताने के साथ-साथ उसे किसी भी प्रकार की अकर्मण्यता में न बाँधकर शुद्ध कर्मवाद की भित्ति पर खड़ा करते हैं। वस्तुतः ज्ञान और कर्म का समन्वय ही तो वह आधार है जिस पर वैदिक धर्म टिका हुआ है।

शंकराचार्य का अल्पायु में ही स्वर्गवास हो गया। उनके शिष्यों ने भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित कर लिये। दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोशी और पश्चिम में शारदा मठ की स्थापना की और ऐश्वर्य के स्वामी होकर विलास में रत हो गए। इसके बाद देश मुसलमानों के हाथों परतन्त्र हुआ। भारतीय समाज पर गहन आलस्य और अकर्मण्यता की काली रात्रि ने अपना मोहक पर्दा डाल दिया। लोग कर्मठ जीवन को भुलाकर आलस्य और प्रमाद का जीवन व्यतीत करने लगे। सम्पूर्ण देश में निराशा की लहर चल पड़ी। ऐसे समय में वेदान्त एक रसशून्य और अलौकिक सिद्धान्त समझा जाने लगा। वेदान्त की प्रतिक्रिया भक्तिमार्ग के रूप में हुई। रामानुजाचार्य ने वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की और भक्ति-मार्ग का प्रचार किया। माध्व, बल्लभ, निम्बार्क आदि विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायाचार्यों ने भी रामानुज का अनुकरण किया। वेदान्त सूत्रों के श्रीभाष्य, अणुभाष्य आदि विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के समर्थक भाष्यों की रचना की गई। निराकार ईश्वर के स्थान पर साकार ईश्वर की उपासना आरम्भ हुई और अवतारों की कल्पना की गई। जैन और बौद्धों की मूर्तिपूजा का विधान तो पहले ही हो चुका था, अब अनेक अन्य साम्प्रदायिक तत्त्वों का समावेश भी धर्म के नाम पर हुआ। प्रमाण के लिए नवीन पुराणों की रचना महर्षि व्यास के नाम पर पहले ही हो चुकी थी, अब उन्हें वेदों से भी अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। संक्षेप में, शुद्ध सनातनधर्म का यह रूप अत्यन्त विकृत और घृणास्पद हो गया। बहुदेवतावाद के कारण वैदिक एकेश्वरवाद के सिद्धान्त की उपेक्षा की गई। यह वैदिक धर्म के चरम पतन का काल था।

स्वामी दयानन्द ने मुख्यतया इसी पौराणिक धर्म का खण्डन किया। पोपलीला और गुरुडम के जनक पौराणिक मत का जो पर्दाफाश ऋषि ने किया, उसे देखकर

समस्त संसार दंग रह गया। मूर्तिपूजा, अवतार, तीर्थ, श्राद्ध, तिलक, छाप आदि विविध साम्प्रदायिक बुराइयों के प्रवर्त्तक इन धर्माचार्यों की तुलना महर्षि से किस प्रकार की जा सकती है ? कहाँ तो महर्षि द्वारा प्रतिपादित सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द, परब्रह्म और कहाँ सम्प्रदायवादियों के राम और कृष्ण आदि अवतार, जो स्वयं अपने कर्म के चक्र में फँसकर दुःखी हुए और जिन्होंने प्रारब्ध को अपने दुःखों के लिए जिम्मेदार बताकर अवतारवाद की नींव हिला दी ! देखो वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड—

पूर्वं मया नूनमभिप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तेषां मयाद्यापतितो विपाको दुःखेन दुःखं यदहं विशामि॥

इसके बाद एक बार फिर निर्गुण उपासना का युग आता है। नानक, दादू, कबीर, सुन्दरदास आदि ईश्वरभक्त संतों ने साकार उपासना की बुराइयों को समझकर निर्गुण ईश्वर की उपासना आरम्भ की। ये निर्गुण सन्त शास्त्रवेत्ता तो नहीं थे, परन्तु दिल से ईश्वर-भक्त अवश्य थे। नानक, दादू, कबीर आदि संतों ने मूर्तिपूजा और अवतारों का खण्डन अवश्य किया है, परन्तु साथ-साथ उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध भी किया। ये लोग अक्सर संसार की उन्नति से उदासीन वैरागी लोग हुआ करते थे। इसलिए इन्होंने जीवन के प्रसार की अपेक्षा संकोच पर ही अधिक ध्यान दिया है। लोगों में वैराग्य की भावना तो अवश्य जागृत हुई परन्तु यह सच्चा वैराग्य नहीं था, अपितु संसारिक बाधाओं से छुटकारा पाने की मनोवृत्ति मात्र थी। स्वामी दयानन्द ने इस मसानिया वैराग्य का विरोध किया। वे समन्वयवादी थे। उनका पक्का विश्वास था कि यदि मोक्ष प्राप्त करना है तो वह दुनिया के परे जाकर नहीं किया जा सकता। मनुष्य-जीवन की सफलता कर्म करने में है, न कि कर्म से उदासीन होकर गोमुखी में हाथ डालकर बैठ जाने में। जैसाकि कविवर रवीन्द्रनाथ कहते हैं—"हे साधक, ईश्वर इस गोमुखी में नहीं है, वरन् ईश्वर तो वहाँ है जहाँ पर किसान तपती हुई धूप में हल चला रहा है।"

—गीताञ्जलि का एक गीत

समय के साथ-साथ भारतीय धर्म और राजनीति में परिवर्तन होने लगे। अंग्रेजों ने देश पर अपना राज्य जमा लिया और उनकी शिक्षा-सम्बन्धी नीति लॉर्ड मैकाले के शब्दों में इस प्रकार निर्धारित हुई—

"We must do our best to form a class of persons, Indian in blood and colour but English in taste and opinion, words and Intellects."

अंग्रेजों का हमेशा से ही यह उद्देश्य रहा था कि हम लोगों की राजनैतिक स्वतन्त्रता तो छीनें ही, साथ-ही-साथ हमें हमारे स्वदेशी धर्म और संस्कृति से भी वंचित रक्खा जाए। ऐसे समय में राजा राममोहन राय ने बंगाल में ब्राह्मसमाज की स्थापना की और उसके द्वारा धार्मिक सुधारों की नींव डाली। सती-प्रथा, मूर्तिपूजा आदि बुराइयों के विरोधी राजा राममोहन राय भी थे, परन्तु धर्म में उनकी गति उपनिषदों तक ही थी जैसाकि सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द घोष ने लिखा है—

"Ram Mohan Roy stopped short at the Upnishads. Dayanand looked beyond and percieved that our true original seed was the Veda." (Dayanand : The man and his work)

राजा राममोहन राय यद्यपि शुद्ध रूप में आर्य धर्म का उद्धार करना चाहते थे परन्तु पाश्चात्य सभ्यता का रंग उन पर बहुत-कुछ चढ़ चुका था और उस रंग से भारत-वासियों को रँगना बहुत-कुछ आवश्यक समझते थे, जैसाकि वर्तमान युग के सुप्रसिद्ध विचारक रोमां रोला ने लिखा है—

"Raja Ram Mohan Roy went so far as to wish his people to adopt English as their universal language, to make India Western socially and then to achieve independence and enlighten the rest of Asia." (Life of Ram Krishna Paramhansa)

महर्षि दयानन्द ब्राह्मसमाज की इस प्रवृत्ति के कट्टर विरोधी थे। वे इसे देश और समाज के लिए अत्यन्त घातक समझते थे। श्री केशवचन्द्र सेन ने तो इस प्रवृत्ति को बहुत ही बढ़ा दिया। उन्होंने केवल पाश्चात्य सभ्यता को ही नहीं अपनाया बल्कि उनका झुकाव ईसाइयत की ओर भी बहुत अधिक था। सन् १८७२ में दिये गए एक व्याख्यान में श्री केशवचन्द्र की यह मनोवृत्ति स्पष्ट झलकती है। उस व्याख्यान का एक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"My Christ, my sweet Christ, the brightest jewel of my heart, the necklace of my soul, for twenty years have I cherished Him in this, my miserable heart."

श्री रोमां रोला ने इस पर लिखा है—

"Christ had touched him and it was to be his mission to introduce him in the Brahmo Samaj. Keshava not only accepted and adopted Christian trinity, but extolled it with gladness and was enlightened with it. He called it the loftiest expression of the world's religious consciousness."

केशव बाबू के इन विचारों का उल्लेख करते हुए श्री रोमां रोला ने लिखा है—

"Did any thing still separate him from Christianity ?"

महर्षि दयानन्द ने ब्राह्मसमाज की इस घातक प्रवृत्ति के विरुद्ध बड़े जोर से आवाज उठाई। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में ब्राह्मसमाज की समालोचना करते हुए वे लिखते हैं—"जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ-कुछ पाषाणादि मूर्तिपूजा को हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दों से भी कुछ बचाये, इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगों में स्वदेश-भक्ति बहुत न्यून है, ईसाइयों के आचरण बहुत-से लिये हैं।···अपने पूर्वजों की बड़ाई करनी तो बहुत दूर रही, उसके बदले पेट-भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंगरेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते···।" इन महत्त्वपूर्ण वाक्यों से जहाँ ऋषि दयानन्द की उज्ज्वल देशभक्ति का

परिचय मिलता है, वहाँ ब्राह्मसमाज के नेताओं से उनका भेद भी स्पष्ट प्रतीत हो जाता है। आर्य-संस्कृति और भारतीय सभ्यता का महत्त्व समझते हुए ऋषि दयानन्द पाश्चात्य सभ्यता की अन्धी नकल को अत्यन्त हानिकारक समझते थे। महर्षि दयानन्द के इस विषयक अद्भुत कार्य पर प्रकाश डालते हुए श्री रोमां रोला ने ठीक ही लिखा है—

"Dayanand alone hurled the defidence of India against her invaders. He declared war on Christianity and his heavy massive sword cleft it assunder."

भारतीयता का पोषक दयानन्द प्रत्येक क्षेत्र में स्वदेशी विचारों और भावनाओं को देखना पसन्द करता था। ब्राह्मसमाजवालों की पश्चिम-पूजा उसे नहीं रुची। उसने उसका खुलकर विरोध किया और यह सिद्ध कर दिया कि "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" (सत्यार्थप्रकाश) यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि ब्राह्मसमाज के प्राण केशव बाबू यज्ञोपवीत धारण नहीं करते थे और ऋषि दयानन्द द्वारा निमंत्रित दिल्ली दरबार के अवसर पर किये गए 'सर्व धर्म-सम्मेलन' में उन्होंने वेदों की स्वप्रामाण्यता से इन्कार कर दिया था।

ब्राह्मसमाज के बाद ही ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। ऋषि की प्रतिभा और योग्यता ने समस्त संसार को चमत्कृत कर दिया और उससे आकर्षित होकर अमेरिका में थियोसोफी मत के प्रवर्तक कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लैवेट्स्की ने ऋषि की शिष्यता स्वीकार कर ली। उन्होंने थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा घोषित कर दिया और वैदिक धर्म की सर्वोपरि महत्ता को स्वीकार किया। परंतु थियोसोफी के प्रवर्तकों का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था। वे स्वार्थ की भावना को लेकर आर्यसमाज में आए थे। वास्तव में वे ईश्वर में अविश्वास करनेवाले प्रच्छन्न नास्तिक थे। उनका एकमात्र यही उद्देश्य था कि आर्यसमाज की आड़ में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करें। परन्तु यह धोखा अधिक दिनों तक नहीं चला। स्वामीजी ने कर्नल और मैडम दोनों को आर्यसमाज से अलग कर दिया और आर्यसमाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी का सम्बन्ध समाप्त कर दिया। खैर, ये सब बातें तो इतिहास की हैं। हमें यहाँ थियोसोफी के सिद्धान्तों की समालोचना करनी है। थियोसोफी मत का नारा है—"There is good in all religions." दिखने में तो यह वाक्य अत्यन्त आकर्षक लगता है, परन्तु वास्तव में वह उतना ही लचर भी है। जहाँ तक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रश्न है वहाँ यह कहा जा सकता है कि अहिंसा, सत्य, अक्रोध, क्षमा, दया, शान्ति, प्रेम आदि गुण मनुष्यमात्र के लिए समान हैं। यदि थियोसोफी का संकेत इन्हीं मूलभूत सिद्धान्तों की एकता के लिए है तो तब तो ठीक ही है, वर्ना यदि उसका तात्पर्य धर्म के बाह्याडम्बरों में सचाई को खोजना है, तो वह व्यर्थ है। धर्मों के बाह्य रूपों का जो झूठा समन्वय थियोसोफी में किया गया है वह सर्वथा भ्रमपूर्ण और निराधार है। मत-मतान्तरों की अन्धविश्वासपूर्ण रूढ़ियों को सच मानना सचाई पर पर्दा डालना है।

होमरूल आन्दोलन की जन्मदात्री ऐनी बेसेण्ट नामक आइरिश महिला ने थियोसोफी मत का बहुत प्रचार किया। वे बाहरी प्लानों (Planes) तथा भीतरी अदृश्य

ज्ञानों (Inner Planes) की थिअरी बनाकर अदृश्य साधुओं से योग द्वारा अपना सम्बन्ध बतलाने लगीं और भूत-प्रेत आदि का ढकोसला भी जारी कर दिया। उन्होंने कई प्रकार के यन्त्र बनवाये जिनके द्वारा वे भूत-प्रेत और मृत आत्माओं के दर्शन कराने लगीं। मेस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म द्वारा योग की क्रियाएँ बतलाकर लोगों को भ्रम में डालने लगीं। एक मद्रासी युवक कृष्णमूर्ति को ईश्वर का अवतार सिद्ध करने के लिए उसने जो पाखण्ड रचा और उसका जिस प्रकार भण्डा फूटा, उसकी कथा ही भिन्न है। तब वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने के हेतु देश की राजनीति में घुस गई। थियोसोफी के प्रवर्तकों की देशविरोधी नीति का पर्दाफाश करते हुए पण्डित रघुनन्दन शर्मा ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैदिक सम्पत्ति' में लिखा है—"पढ़े-लिखे हिन्दुओं का जितना जीवन थियोसोफी ने नष्ट किया, उतना और किसी ने नहीं। पढ़े-लिखे हिन्दू, मुसलमान, पारसी सभी इसके फेर में हैं। सभी को Oxygen, Hydrogen, Electricity, Ether की थिअरी बताकर और Spiritualism, योग और वेदान्त की बातें बताकर भूत, प्रेत और आत्मा के Inner planes की बातें सिखाकर ये लोग भोले मनुष्यों को चक्कर में डालते हैं। पढ़े-लिखे भोले लोग ही इनके चक्कर में पड़ते हैं और हर प्रकार से अपना पतन कर लेते हैं।"

पाठकों को अब भली-भाँति मालूम हो गया होगा कि थियोसोफी मत की आड़ उसके प्रवर्तकों का उद्देश्य ईसाई मत का प्रचार करना था। परन्तु स्वामी दयानन्द ने नके गुप्त कारनामों का भण्डाफोड़ किया। आर्यसमाज ने एक बार समस्त हिन्दू जाति को इनके काले कारनामों से सचेत कर दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में बंगाल के प्रसिद्ध सन्त रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ा। रामकृष्ण परमहंस कलकत्ते के किसी शक्ति-मन्दिर के पुजारी थे। उन्होंने अपनी साधना शाक्तमत के तरीके से आरम्भ की। कहते हैं कि दुर्गा देवी ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये और इनके दर्शनों से श्री रामकृष्ण मूर्च्छित भी हो गए। इसी प्रकार उन्होंने विविध धर्मों की विविध उपासनायें की थीं। वे एक-बार वैष्णव सम्प्रदाय की साधना के लिए वृन्दावन में गोपी का वेश बनाकर रहे थे। इसी प्रकार मुस्लिम और ईसाई मत की उपासना-प्रणाली का भी उन्होंने अनुसरण किया था। हम यहाँ यह समझने में असमर्थ हैं कि ईश्वर-प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों की उपासना-पद्धति को अपनाना क्या आवश्यक है? क्या योगशास्त्र में बतलाई गई रीति आत्म-साक्षात्कार के लिए काफी नहीं है जो उसको पूरा करने के लिए साम्प्रदायिक उपासना-प्रणालियों का सहारा लिया जाय? इसी प्रकार वाम मार्ग और तंत्रोक्त शिक्षाओं का जो घृणित रूप हमारे सामने आता है, उससे यह स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों में जिन अस्वाभाविक, बुद्धि-विरुद्ध और सदाचार-विरुद्ध प्रयोगों और प्रणालियों का निर्देश किया है, वे सभ्य समाज में हेय दृष्टि से देखे जाते हैं।

रामकृष्ण परमहंस के सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त शिष्य स्वामी विवेकानन्द थे। आप अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त थे और ईश्वर पर आपको विश्वास नहीं था, परन्तु परमहंसजी ने आपको सच्चा आस्तिक बनाया। परमहंसजी का दार्शनिक सिद्धान्त शांकर अद्वैत-वेदांत

था। स्वामी विवेकानन्द ने भी इसी मत को अपनाया और अमेरिका में होनेवाले विश्व-धर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। वहाँ जाकर उन्होंने अमेरिकावासियों के बीच अपनी विद्वत्ता का सिक्का जमा लिया और अनेक अमेरिकावासी स्त्री-पुरुष आपके शिष्य बन गये। स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में अपने व्याख्यानों की धूम मचा दी और समस्त संसार का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। परन्तु यह बात ध्यान रखने की है कि जिस समय गौरांग लोगों के बीच स्वामी विवेकानन्द व्याख्यान देकर हिन्दू धर्म की महत्ता का दिग्दर्शन करा रहे थे, ठीक उसी समय ट्रिनिडाड आदि पश्चिमी द्वीपसमूहों में हजारों हिन्दू अपना धर्म छोड़कर ईसाई बन रहे थे। स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्याख्यानों में भारतीय संस्कृति को वरीयता दी, परन्तु उससे आम जनता का लाभ बहुत थोड़ा हुआ। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार देश की आम जनता के बीच किया। ऋषि दयानन्द का कार्यक्रम केवल व्याख्यान देना ही नहीं था, अपितु जनता की दशा में सुधार करना भी वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। राष्ट्रभाषा-प्रेम के तो स्वामीजी एक मूर्त उदाहरण हैं। आज आप रामकृष्ण मिशन के साहित्य को देखिए। भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थों और स्वामी रामकृष्ण तथा विवेकानन्द के जीवनचरित आपको प्रचुर मात्रा में मिलेंगे, परन्तु ये सब ग्रन्थ अंग्रेजी में हैं। केवल अंग्रेजी पढ़े-लिखे ही इनका लाभ उठा सकते हैं। जब मनुष्य अपनी मातृभाषा में न सोचकर किसी विदेशी भाषा में सोचता है या अपने विचार व्यक्त करता है तो वह राष्ट्रीयता से बहुत दूर चला जाता है। आज रामकृष्ण मिशन में ऐसे अनेक साधु मिलेंगे जो अंग्रेजी में खूब वक्तृता दे सकते हैं, परन्तु इससे जनता-जनार्दन की कितनी सेवा हो सकती है, यह प्रकट है। अमेरिका में वेदान्त सोसाइटी या रामकृष्ण-मठ की स्थापना कर वहाँ के निवासियों को वेदान्त की मस्ती में छका देना एक बात है और देशवासियों में उनके जैसा बनकर काम करना दूसरी बात है।

स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द में साम्य तो केवल इतना ही है कि दोनों सनातन धर्म के उपदेष्टा हैं, परन्तु जहाँ स्वामी दयानन्द भारतीय वातावरण में पलने के कारण शुद्ध भारतीयता के उपासक हैं वहाँ स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी में होने के कारण उनके विचारों पर अंग्रेजियत का असर है। परन्तु जहाँ तक राष्ट्र और धर्म की सेवा का प्रश्न है, वहाँ हम निर्विवाद कह सकते हैं कि चाहे स्वामी दयानन्द ने अमेरिका में जाकर व्याख्यान भले ही न दिये हों, परन्तु उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज ने भारतीय जनता की जो सेवा की है, वह अकथनीय है।

स्वामी रामतीर्थ की जलसमाधि की तुलना स्वामी दयानन्द के महापरिनिर्वाण से कीजिए। एक ने अपना समस्त जीवन सोऽहं का जाप करते हुए और वेदान्त की मस्ती में हिमालय-प्रवास में व्यतीत किया और दीपावली के दिन प्रभु-प्रेम की मस्ती में भागीरथी के जल में अपने को प्रवाहित कर दिया। दूसरे ने अपने देशवासियों की दशा पर दुःखित होकर आँसू बहाये, उनकी बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया; जिनका भला किया, उन्हीं से ईंट और पत्थर खाये और अन्त में उन्हीं के हाथों विष पीकर प्रभु-स्मरण करते हुए अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की। जिस तरह स्वामी रामतीर्थ ओ३म्

का जप करते हुए गंगा की लहरों में समा गए, उसी प्रकार स्वामी दयानन्द ने भी अपने देशवासियों और सहधर्मियों का हित-चिन्तन करते हुए प्राण दे दिये। "प्रभो! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो! अहा, तूने अच्छी लीला की!" ये उस महात्मा के अन्तिम उद्गार थे, जिसने अपना समस्त जीवन आर्यजाति के उपकार के लिए अर्पित कर दिया। जिस महापुरुष ने लोक-कल्याण की भावना के लिए और लोकोपकार के लिए अपने ब्रह्मानन्द और समाधि के आनन्द को ठुकरा दिया, क्या उसकी मुक्ति के विषय में शंका की जा सकती है? ऐसे आत्म-बलिदान के उदाहरण संसार के इतिहास में कहाँ मिलते हैं?

उसी दयानन्द के लिए युगपुरुष महात्मा गांधी ने कहा कि मैं स्वामी दयानन्द के चरित्र से ईर्ष्या करता हूँ। लोगों का कहना है कि महात्मा गांधी ने राजनीति में धर्म का प्रवेश कराया, परन्तु राजनीति और धर्म का सम्बन्ध कोई नयी बात नहीं है। प्राचीन आर्यधर्म में राजनीति भी धर्म का एक अंग ही समझी जाती थी। १९वीं शताब्दी के महान् व्यक्ति ऋषि दयानन्द ने सबसे पहले देश की स्वतन्त्रता के लिए आवाज उठाई।

लोगों का विश्वास है कि महात्मा गांधी ने सब धर्मों का समन्वय प्रथम बार ही किया है, परन्तु सच तो यह है कि धर्म एक ही है, न कि भिन्न-भिन्न। जिन मत-मतान्तरों में बाह्याडम्बर को महत्त्व दिया जाता है वह शाश्वत धर्म का अंग नहीं हो सकता। यही कारण है कि सब मतों के मूलतत्त्व और शिक्षायें एक ही हैं, परन्तु उनकी बाहरी बातें भिन्न-भिन्न हैं। स्वामी दयानन्द ने इन मत-मतान्तरों के बाह्य चिह्नों का खण्डन किया तो पक्षपाती लोग बहुत चिल्लाये। स्वयं स्वामीजी महाराज दृढ़ रहे क्योंकि वे जानते थे कि जिन बातों का मैं खण्डन कर रहा हूँ वे धर्म के मूलभूत सिद्धान्त नहीं, बल्कि उसका अनावश्यक भाग (Separable accident) है।

महात्मा गांधी इतने उदार थे कि वे मत-मतान्तरों की बाहरी प्रवृत्तियों को भी उतना ही महत्त्व देते थे जितना कि आन्तरिक प्रवृत्ति को। यही कारण है कि वे अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब धर्मों का अनुयायी कहते थे। परन्तु हम यह समझने में असमर्थ हैं कि जब उन्हें मालूम था कि सब धर्मों में वास्तविक सचाई एक ही है, तब भी उन्होंने हिन्दू, मुसलमान और ईसाई के भेद को कैसे स्वीकार किया? स्वामी दयानन्द इन मनुष्यकृत भेदों से मुक्त थे और अपने को ईश्वर का अमृतपुत्र आर्य कहने में गर्व अनुभव करते थे। परन्तु उन्होंने ईसा की तरह ईश्वरपुत्रत्व पर एकाधिकार (Monopoly) नहीं कर रक्खा था।

सर्वधर्म-समन्वय का अर्थ तो यही है कि अहिंसा, प्रेम, सत्य, न्याय, करुणा आदि मानव-धर्म के सिद्धान्तों को मानना और उनका प्रचार करना। परन्तु यदि नमाज, रोजा, ईद और कुर्बानी को भी हम मानव-धर्म का आवश्यक अंग समझने लगें और उनको उतना ही महत्त्व देने लगें, तो यह पक्षपात के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। स्वामी दयानन्द ऐसी कमजोरियों से बरी थे। वे जैसा समझते थे उसे वैसा ही कहते थे, और जैसा कहते थे वैसा ही करते थे।

—१९४९ ई० में सर्वप्रथम लघु पुस्तक के रूप में प्रकाशित

स्वराज्य का प्रथम मन्त्रद्रष्टा : ऋषि दयानन्द

ऋषि दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'भारत भारतीयों के लिए' की घोषणा की। होमरूल आन्दोलन की प्रसिद्ध नेत्री श्रीमती ऐनी बेसेण्ट के इस कथन में हमें अद्भुत सत्य के दर्शन होते हैं।

ऋषि दयानन्द ने १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब स्वराज्य की कल्पना की, उस समय राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था। १९०६ में सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया, १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' इस मन्त्र की घोषणा की और १९२९ में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वतन्त्रता-प्राप्ति हमारा ध्येय बना। परन्तु ऋषि ने तो बहुत पहले ही स्वराज्य की आवश्यकता को अपनी इन अमर पंक्तियों द्वारा बतलाया था—'कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह से रहित, अपने और पराये के पक्षपात से शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय एवं दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।" (स० प्र० षष्ठ समु०)

इसी महापुरुष ने सर्वप्रथम वेदमंत्रों में स्वराज्य और राष्ट्रीय भावनाओं के दर्शन किये। यजुर्वेद अध्याय ३६ के १४वें मन्त्र की व्याख्या में ऋषि ने लिखा—"अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों।" ऋषि के ये विचार उस समय थे जब कि अंग्रेजी शासन के गुण गाना लोगों ने अपना कर्त्तव्य समझ रखा था। ऋषि की इन्हीं भावनाओं को एक व्याख्यान में सुनकर एक अंग्रेज अधिकारी ने कहा था कि यदि भारतवासी इस पर चलने लग जाएँ तो हमें अपना बोरिया-बिस्तर बाँधना पड़ेगा। १९४२ के 'भारत छोड़ो' नारे का भी यही अर्थ था, किन्तु ऋषि तो ने यह आवाज १९४२ से साठ वर्ष पूर्व लगाई थी।

स्वराज्य-भावना पश्चिम की देन नहीं

यह नहीं भूल जाना चाहिए कि ऋषि के ये स्वराज्य-सम्बन्धी विचार उनके अपने ही थे। उन्होंने पश्चिम से ये विचार नहीं लिये। अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि राष्ट्रीय जागृति का हमारे देश में सूत्रपात अंग्रेजी शिक्षा के कारण हुआ। परन्तु ऋषि दयानन्द की भावनाओं के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। उनके ये विचार शत-प्रतिशत मौलिक हैं जो उन्होने प्राचीन धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त किये थे। भारतीय सभ्यता के अन्यतम पुजारी स्वयं महात्मा गांधी ने इंग्लैंड के प्रसिद्ध विचारक रस्किन और रूस के लेखक टॉल्स्टॉय का प्रभाव अपने ऊपर स्वीकार किया है, फिर अन्य नेताओं का तो कहना ही क्या, जिनकी शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य पद्धति पर ही हुई है! राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, योगी अरविन्द आदि धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के नेता भी पश्चिम के प्रभाव से अछूते नहीं बचे। केवल ऋषि दयानन्द ही वह महा-

प्राण व्यक्ति था जिसने अपने सभी विचारों और क्रान्तिकारी भावनाओं के लिए प्राचीन शास्त्रों से प्रेरणा ली। उनकी प्रेरणा का स्रोत वे वैदिक ऋचायें हैं जिनमें स्वराज्यार्चन-विषयक कई सूक्त भरे पड़े हैं।

मातृभूमि से प्रेम

स्वर्णभूमि भारत के प्राचीन गौरव के लिए ऋषि की लेखनी से ये अमर शब्द निकले, "यह आर्यावर्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है।...जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

इसी मातृभूमि की वर्तमान अधोगति को देखकर ऋषि दयानन्द का हृदय रो उठा और उनके उत्पीड़ित हृदय से शोकोद्गार निकले—"अब अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध व अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य नहीं है।"

पराधीनता के कारणों की चर्चा करते हुए ऋषि ने लिखा है, "जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तो तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। आपस की फूट से कौरव-पाण्डवों का सत्यानाश हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या सागर में डुबो मारेगा। उसी दुष्ट गोत्र-हत्यारे स्वदेश-विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक चल रहे हैं। परमात्मा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।" यह है दयानन्द के दुःखी हृदय का उच्छ्वास !

सत्य का आग्रह

महात्मा गांधी ने देश के स्वाधीनता-संग्राम के लिए सत्याग्रह, सत्यनिष्ठा, अहिंसा आदि शस्त्रों का उपयोग किया। ऋषि दयानन्द ने भी सत्य-प्रचार में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। उन्हें शाहपुरा से जोधपुर जाने के लिए जब रोका गया तो उनकी निम्न उक्ति सत्याग्रह की भावना को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है—**"यदि लोग मेरी अँगुलियों की बत्तियाँ बनाकर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। वहाँ जाकर मैं अवश्य सत्योपदेश करूँगा।"** यह थी सत्याग्रह की भावना जिसके कारण वे सभी मतमतान्तरों का निर्भयतापूर्वक खण्डन कर सके। संन्यासी के लिए अहिंसा धर्म की तो चर्चा ही अनावश्यक है। ऋषि ने अपने विष देनेवालों और हत्यारों तक को क्षमा किया। इसलिये सत्याग्रह, सत्यनिष्ठा और अहिंसा का क्रियाशील उपासक ऋषि दयानन्द ही स्वराज्य और स्वाधीनता की भावनाओं का मन्त्रद्रष्टा कहा जा सकता है।

स्वदेशी प्रेमी

स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार की ओर भी स्वामीजी का पूर्ण ध्यान था। 'सत्यार्थ-प्रकाश' की वे पंक्तियाँ जहाँ स्वामीजी ने स्वदेशी और विदेशी वेशभूषा की चर्चा चलाई है, इस सम्बन्ध में विशेष रूप से द्रष्टव्य है। स्वामीजी स्वयं शुद्ध स्वदेशी वस्त्र पहनते थे और अपने सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों को भी यही प्रेरणा देते रहते थे। जोधपुर के महाराज प्रतापसिंह आदि राजपुरुषों ने स्वामीजी की शिक्षा से ही स्वदेशी खादी के वस्त्रों का प्रयोग अपनी सेना में आरम्भ कर दिया था। ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज से स्वामीजी का मतभेद इसी बात पर था कि ये लोग विदेशियों की नकल करने में तथा उनकी वेशभूषा, भाषा तथा रहन-सहन को अपनाने में ही अपना कल्याण समझ बैठे थे। विचारों से भी विदेशी होने के कारण स्वामीजी को ब्राह्मसमाज का वातावरण पसन्द नहीं आया। इस विषय में वे किसी से समझौता नहीं करना चाहते थे। इसीलिये ब्राह्मसमाजियों की पश्चिम-पूजा का उन्होंने तीव्र खण्डन किया है।

स्वभाषा-प्रेम

ऋषि ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि हिन्दी ही देश की राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता रखती है, इसलिए उन्होंने स्वयं अपने विचारों को प्रकट करने के लिए हिन्दी को ही माध्यम बनाया। कलकत्ता-यात्रा में ऋषि दयानन्द बंगाल के प्रसिद्ध ब्राह्मनेता केशवचन्द्र सेन से मिले। केशव बाबू ने ऋषि की विद्वत्ता से प्रभावित होकर कहा, "काश! संस्कृत का विद्वान् दयानन्द यदि अंग्रेजी भी जानता तो मैं उसे अपने साथ इंग्लैण्ड ले जाता और वहाँ वह भारत के धर्म का सत्य स्वरूप पाश्चात्य लोगों के सम्मुख रखता।" इस पर ऋषि ने जो कुछ कहा वह अत्यन्त मार्मिक है, "अत्यन्त खेद की बात है कि ब्राह्मनेता अपने देश की भाषा से अपरिचित है!" इस घटना से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि स्वभाषा के प्रति ऋषि दयानन्द की कितनी निष्ठा थी।

ऋषि दयानन्द धार्मिक चेतना का उत्पादक, समाज का संस्कारक और स्वराज्य-भावना का जनक तो था ही, साथ ही वह देश की आर्थिक दशा से भी अपरिचित नहीं था। इन्होंने जर्मनी आदि यूरोपीय देशों में कला-कौशल सीखने के लिए भारतीय युवकों को भेजने की योजना बनाई थी। वास्तव में उन्होंने भारतवासियों को अपने देश के प्रति कर्त्तव्यपालन के लिए सर्वप्रथम जागरूक किया। स्वराज्य, स्वसंस्कृति, सत्याग्रह, स्वदेशी, स्वभाषा आदि पर गर्व करना सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने ही सिखलाया। भारत में स्वाधीन गणराज्य की स्थापना के साथ-साथ दयानन्द का एक महान् स्वप्न पूरा हो गया है।

ऋषि दयानन्द का शास्त्र-प्रमाणवाद

किसी दार्शनिक विचारधारा का अध्ययन करते समय या किसी धार्मिक नेता के

मन्तव्यों की आलोचना करने से पूर्व यह जानना आवश्यक होता है कि तत्-तत् विचार-धारा या व्यक्ति ने ज्ञान-प्राप्ति के किन-किन साधनों को स्वीकारा है, और उन साधनों का स्वरूप क्या है ? भारतीय दर्शन-परम्परा में ज्ञान-प्राप्ति के साधनों का बड़े विस्तार से विचार हुआ है। विशेषत: न्याय-दर्शन की रचना का तो ध्येय ही प्रमाण-विवेचन रहा है। सामान्यत: भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों ने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—ये तीन ही प्रमाण स्वीकार किये हैं, यद्यपि न्याय के मतानुसार उपमान भी एक पृथक् प्रमाण है।

प्रस्तुत लेख में हमें स्वामी दयानन्द के शास्त्र-विषयक विचारों की आलोचना करनी है और यह देखना है कि शब्द-प्रमाण या शास्त्र-प्रमाण के प्रति उनकी धारणा कहाँ तक एक-दूसरे दार्शनिक के अनुकूल या प्रतिकूल है। 'शब्द' को आप्तों का उपदेश कहा गया है (आप्तोपदेश: शब्द:, न्यायसूत्र १-१-७)। परमात्मा द्वारा उक्त वेद आप्त-परम्परा में परम प्रमाण माना गया है और अन्यान्य ऋषि-महर्षियों द्वारा लिखित ग्रन्थ वेद के अनुकूल होने के कारण परत: प्रमाण ठहराए गए हैं। ग्रन्थों के प्रमाण्या-प्रमाण्य का यह विचार अत्यन्त गूढ़ है जिसका दार्शनिक आधार पर विस्तारपूर्वक विवेचन न्याय, मीमांसा आदि वैदिक दर्शनों में हुआ है।

शब्दभूत शास्त्र को धर्म के विषय में सर्वोच्च प्रमाण मानने की हमारे देश की परम्परा अपने-आप में एक निराली मान्यता है। व्याकरण-महाभाष्य के रचयिता महर्षि पतंजलि ने अत्यन्त गर्वपूर्वक अपने-आपको शब्द-प्रमाणवादी कहकर शास्त्र की प्रामाणिकता घोषित की है—"शब्दप्रमाणका वयम्। यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्" (महाभाष्य पस्पशान्हिक)। आज के बुद्धिवादी और विज्ञानप्रधान युग में यह मान्यता चाहे उपहासास्पद ही क्यों न समझी जाय, यह कहने में तो कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिये कि नैयायिकों और मीमांसकों ने शास्त्रप्रमाण-विषयक अपनी मान्यताओं को अत्यन्त सबल युक्तियों और तर्क का आधार प्रदान करने की चेष्टा की थी। हम यहाँ उन युक्तियों के विस्तार में नहीं जाएँगे जिसके बल पर शास्त्र की महत्ता को सर्वोपरि घोषित करने की चेष्टा हमारे पुरातन आचार्यों ने की है। हमारा विवेचनीय विषय तो दयानन्द की तद्विषयक धारणाओं का विश्लेषण और उसके औचित्य पर विचार करना ही है।

यह किसी से अप्रकट नहीं है कि दयानन्द ने अपनी विचारधारा को वेद-प्रमाण के सुदृढ़ आधार पर स्थापित करने की चेष्टा की, यद्यपि उनका यह प्रयत्न कोई नया नहीं था। शताब्दियों से भारतीय दार्शनिक "निजशक्त्यभिव्यक्ते: स्वत:प्रामाण्यम् (सांख्य), स एष पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात् (योग १.१.२६), मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् (न्याय २।१।६९), तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् (वैशेषिक १।१।३) तथा, शास्त्रयोनित्वात् (वेदान्त १।१।३) आदि प्रमाणों के आधार पर एक स्वर से वेद को सर्वोच्च प्रमाण मानते रहे हैं, और धर्माधर्म एवं कर्त्तव्य के निर्णय के लिए वेद के आदेश और निषेध का मुँह जोहते रहे हैं—तस्माच्छास्त्रप्रमाणं ते कार्याकार्य-व्यवस्थितौ, ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि (श्रीमद्भगवद्गीता अ० १६।२४), परन्तु यह भी मानना ही पड़ेगा कि मध्यकालीन भारतीय तत्त्व-चिन्तक वेद

के स्वतःप्रमाणत्व की किसी भी प्रकार की शाब्दिक अवमानना या अवहेलना न करते हुए भी क्रियात्मक दृष्टि से उसके प्रति उपेक्षा-भाव ही प्रदर्शित करते रहे। इस काल में वेदोत्तर पुराणादि ग्रन्थों को प्रतिष्ठा मिली। नाना ऋषियों के नाम पर विभिन्न स्मृतियों की रचना हुई, जनसाधारण के लिए पुराणों के रूप में सुगम और आयासरहित धर्म का रूप प्रस्तुत किया गया, निबन्धकारों ने धर्माधर्म और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार श्रौत आधार को छोड़कर स्मार्त आधार पर किया। फलतः धर्म का पुराना विशुद्ध, सीधा और सरल रूप लुप्त हो गया और उसके स्थान पर जटिल कर्मकाण्डयुक्त, रूढ़ि और मूढ़तापूर्ण विश्वासों से युक्त सदाचाररहित कर्मों को ही धर्म की संज्ञा मिली।

दयानन्द ने इसी रूढ़ि और कदाचारपूर्ण दूषित वर्ष के विरुद्ध आवाज उठाई और वेदेतर ग्रन्थों की प्रामाणिकता को सापेक्ष बतलाते हुए वेदज्ञान को निरपेक्ष घोषित किया। वेदों की प्रामाणिकता के विषय में जो सिद्धान्त अत्यन्त पुरातन काल से भारत में प्रचलित रहा, दयानन्द ने उसे ही ज्यों का त्यों स्वीकार किया। कुल्लूक भट्ट ने अपनी मनुस्मृति की टीका में यह स्पष्ट कर दिया है कि जहाँ तक हो सके श्रुति-वचन का ही आदर करना चाहिए, स्मृति का नहीं (मन्वर्थ मुक्तावली—मनुस्मृति की टीका)। इसी व्यवस्था के आधार पर स्वामी दयानन्द ने भी वेद से विरुद्ध प्रतीत होनेवाले कथित स्मृति, पुराण और तन्त्रादि ग्रन्थों के वचनों का अनादर करते हुए विशुद्ध वैदिक आधार पर ही अपनी विचारधारा की प्रतिष्ठा की।

स्वामी दयानन्द के शास्त्रप्रमाण-विषयक सिद्धान्त की दो प्रमुख विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम तो यह है कि उन्होंने इस सिद्धान्त को केवल सिद्धान्तरूप में ही सीमित नहीं कर दिया, अपितु उसे अपने धर्मान्दोलन का आधार बनाकर व्यावहारिक रूप भी प्रदान किया। एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। स्वामी दयानन्द ने अपने जीवनकाल में प्रतिपक्षियों से अनेक शास्त्रार्थ किये। जब-जब मूर्तिपूजा, अवतार, मृतक-श्राद्ध आदि अवैदिक कृत्यों के औचित्यानौचित्य पर उनके विपक्षियों से शास्त्रार्थ होते, तब-तब वे अपने विरोधी पण्डितों से इन कृत्यों की प्रामाणिकता वेद के आधार पर सिद्ध करने का आग्रह करते। उस समय विरोधियों की हैरानी और परेशानी दर्शनीय हो जाती। सुप्रसिद्ध काशी-शास्त्रार्थ में भी यही हुआ। जब प्रथम बार काशी जाकर पण्डित-मण्डली को दयानन्द ने मूर्तिपूजा के समर्थन में वेद का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए आहूत किया, तो विद्वत्-वर्ग बड़े असमंजस में पड़ गया। अब तक मूर्तिपूजा आदि कृत्यों पर उन्होंने इस दृष्टिकोण से विचार ही नहीं किया था। काशी-नरेश ने शास्त्रार्थ के द्वारा विवश किये जाने पर एक बार तो इन शब्दों द्वारा अपनी यथार्थ स्थिति प्रकट कर दी—"(संन्यासी) दयानन्द मूर्तिपूजा की सिद्धि के लिए वेद का प्रमाण माँगता है और इसके लिए वेदों से प्रमाण देना तो दूर रहा, हमने तो उनके दर्शन भी नहीं किये।"

कहने का तात्पर्य यह है कि दयानन्द ने केवल भावुकतावश या जनसाधारण में प्रचलित शास्त्र-विषयक विश्वासों को उभारने की दृष्टि से ही वेद-प्रामाण्य का आश्रय नहीं लिया था जैसा कि कई लोग समझते हैं। उनके लिए शास्त्र-प्रमाण का सिद्धान्त

धर्म-अधर्म-निर्णय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन था जिसका बुद्धि और युक्तिवाद से भी उन्होंने पूर्णतया सामंजस्य स्थापित कर दिया था।

स्वामी दयानन्द के वेदप्रमाण-विषयक सिद्धान्त की एक अन्य विशेषता है उनका मन्त्र-संहिता-भाग को ईश्वरकृत, अपौरुषेय मानकर ब्राह्मण-भाग को उससे पृथक् और परतः-प्रमाण सिद्ध करना। कुछ शताब्दियों से यह विचार चल पड़ा था कि वेद के अन्तर्गत मन्त्र-भाग और ब्राह्मण-भाग दोनों आते हैं। इस भ्रान्ति के मूल में कात्यायन के नाम से प्रसिद्ध एक सूत्र है जो मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को 'वेद' संज्ञा देता है—'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्। आपस्तम्ब-यज्ञ-परिभाषा-सूत्रों में पठित होने के कारण यह सूत्र कुछ महत्त्व प्राप्त कर गया है, यद्यपि इसका सीधा-सा समाधान यही हो सकता है कि ऋषि आपस्तम्ब तब अपनी यज्ञपद्धति में वेद को मन्त्र-ब्राह्मणात्मक कहते हैं तो उनकी यह अपनी परिभाषा है जो उनके द्वारा निरूपित कर्मकाण्ड की सीमा के अन्तर्गत ही लागू हो सकती है। उसे सर्वतन्त्र सिद्धान्त की तरह स्वीकार किया नहीं जा सकता।

स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मण-भाग को वेद के रूप में मान्यता न दिये जाने के पक्ष में युक्तियाँ और प्रमाण अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में दिये हैं। उनके अनुसार ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना ऐतरेय महीदास, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने की है जबकि मन्त्र-भाग ईश्वररचित अपौरुषेय है। ब्राह्मणों में अनेक उपाख्यान, इतिहास आदि हैं जबकि मंत्रों में लौकिक, अनित्य, मानुषी इतिहास का लेशमात्र भी उपलब्ध नहीं होता। स्वामी जी द्वारा निरूपित यह आर्षसाहित्य-प्रमाणवाद का सिद्धान्त कुछ लोगों को अटपटा-सा लगता है, यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल हैं और वह पूर्णतया तर्कसंगत तथा शास्त्रानुमोदित है।

स्वामी दयानन्द की संस्कृत-सेवा

आर्यसमाज के संस्थापक के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जब हम गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि उन्हें अपने महत् अनुष्ठान की पूर्ति के लिए संस्कृत भाषा और उसके महान् साहित्य से अपार सहायता और अदम्य प्रेरणा प्राप्त हुई। प्रस्तुत लेख में हमें यही विचार करना है कि स्वामीजी के द्वारा प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में संस्कृत भाषा और संस्कृत वाङ्मय की जो सेवा हुई है वह कितनी महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम जब हम स्वामी जी के बाल्यकाल पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें उनके लालन-पालन, उनके शैशवकाल तथा तत्कालीन वातावरण में कई विशिष्टताएँ दृष्टिगोचर होती हैं जो समकालीन अन्य महापुरुषों से भिन्न दिखाई देती हैं। राममोहन राय यद्यपि ब्राह्मण-कुलोत्पन्न थे परन्तु उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अरबी-फारसी के माध्यम से मुसलमानी परिपाटी का अनुसरण करते हुए हुई। देवेन्द्रनाथ ठाकुर जिस आभिजात्य कुल का गौरव और वैभव लेकर जन्मे, उसे देखते हुए यह आश्चर्यजनक ही लगता है कि

वे अपने जीवन में योगियों की-सी वीतरागता तथा स्थितप्रज्ञ दृष्टि का समावेश करा सके। केशवचन्द्र सेन की शिक्षा-दीक्षा तो पाश्चात्य शैली पर ही हुई थी, अतः यदि उन्होंने ब्राह्मसमाज में से पौरस्त्य भावों का निष्कासन कर उसे पश्चिमी ईसाई-पद्धति पर ढालने का प्रयास किया तो आश्चर्य ही क्या ?

स्वामी दयानन्द एक ऐसे ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे, जिसमें वेदों के अध्ययन की परम्परागत परिपाटी प्रचलित थी। यद्यपि उनके पिता सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे परन्तु शैव होने के कारण यजुर्वेद के पठन-पाठन की रीति उनके कुल में चली आई थी। बाल्यावस्था में ही उन्हें यजुर्वेद-संहितान्तर्गत रुद्राध्याय की शिक्षा दी जाने लगी। १८९४ वि० में जब वे १४ वर्ष के थे, उनको यजुर्वेद-संहिता कण्ठस्थ हो गई थी, तथा कुछ-कुछ अन्य वेदों का भी उन्होंने अभ्यास कर लिया था। बाल्यावस्था में वेदपाठ के ये संस्कार आगे चलकर उनमें विशेषरूप से उद्बुद्ध हुए जबकि वेद के प्रचार को ही उन्होंने अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनाया और संसार ने उन्हें वेद के एक अप्रतिम प्रचारक के रूप में स्वीकार किया। व्याकरण के शब्द-रूपावली आदि ग्रन्थों को भी बालक मूलशंकर ने अपने पिता से इसी अवस्था में पढ़ लिया था।

बाल्यावस्था से ही मूलशंकर विद्या की अदम्य प्यास लेकर उत्पन्न हुए थे। संवत् १९०० वि० में जब उनकी आयु का बीसवाँ वर्ष समाप्त हो रहा था तथा उनके माता-पिता उन्हें विवाह-बन्धन में बाँधकर निश्चिन्त हो जाना चाहते थे, उस समय युवा मूलशंकर का व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक पढ़ने काशी जाने की इच्छा व्यक्त करना यह सूचित करता है कि वे उत्कृष्ट विद्या-विलासी और शास्त्र-जिज्ञासु थे। वैराग्य ग्रहण करने के अनन्तर तो उनकी ज्ञान और विद्या-लिप्सा और भी तीव्र हुई। अब उन्हें इसके लिए समय भी पर्याप्त मिलने लगा। ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य के रूप में वैराग्य की दीक्षा लेकर जब उन्होंने अपने-आपको सर्वात्मना विद्याभ्यास और शास्त्रचिन्तन में लगाया, तब भी भोजनादि के बखेड़े के कारण वे अपना पूरा समय इस ओर नहीं दे पाते थे। उनका संन्यास-ग्रहण में एक प्रयोजन यह भी था जिससे कि वह समग्र विधिनिषेधों से मुक्त होकर एकमात्र विद्याध्ययन में ही प्रवृत्त हो सकें तथा सर्वशास्त्र-निष्णात, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र संन्यासी बनकर धर्मालोचन में प्रवृत्त हों।

अपने प्रमुख शास्त्र एवं दीक्षा-गुरु स्वामी विरजानन्द के समीप पहुँचने से पूर्व स्वामी दयानन्द ने अनेक गुरुओं के सान्निध्य में रहकर शास्त्राभ्यास किया था। कृष्ण शास्त्री से उन्होंने व्याकरण के कुछ ग्रन्थ पढ़े तथा चाणोद कर्नाली निवासी किसी राजगुरु से वेदाध्ययन किया। उत्तराखण्ड-भ्रमण के प्रसंग में उन्हें अनेक विलक्षण अनुभव हुए। टिहरी राज्य में निवास करते हुए उन्हें तन्त्र-ग्रन्थों के अध्ययन करने का अवसर मिला और इन ग्रन्थों के अध्ययन के अनन्तर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इन ग्रन्थों को तामस शास्त्रों की कोटि में ही रक्खा जा सकता है। सदाचार और लोकमर्यादा-विरुद्ध पंच-मकारादि के जो प्रयोग तंत्र-ग्रन्थों में बताये गए हैं वे इन ग्रन्थों के रचयिताओं की विकृत और दूषित बुद्धि ही सूचित करते हैं। उत्तराखण्ड-भ्रमण के अनन्तर स्वामीजी गंगा-तट पर विचरण करते रहे। इस समय वे संस्कृत भाषा ही बोलते थे तथा मात्र कौपीन ही

उनका वस्त्र था। अब तक उन्होंने शिवसंध्या, हठप्रदीपिका, योगबीज आदि हठयोग के ग्रन्थों का भी अध्ययन कर लिया था, परन्तु एक शव का परीक्षण कर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि हठयोग के ग्रन्थों में पाई जानेवाली शरीर-रचना मिथ्या ही है क्योंकि मनुष्य-शरीर में उस प्रकार के चक्रादि उपलब्ध नहीं होते, जैसा कि उनका वर्णन इन ग्रन्थों में मिलता है।

विद्या की जो अदम्य प्यास स्वामी दयानन्द में रही, उसकी पूर्ण परितृप्ति उन्हें स्वामी विरजानन्द के निकट आकर हुई। प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द ने विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृत व्याकरण पर जैसा असाधारण अधिकार कर लिया था, वह वस्तुत: प्रशंसा की वस्तु थी। अपने युग में वे "व्याकरण के सूर्य" के नाम से विख्यात थे और पाणिनिकृत अष्टाध्यायी पर उनका असाधारण अधिकार था। जराजीर्ण शरीर लेकर भी वे मथुरा में अपनी पाठशाला चलाते थे जिसमें शास्त्र-शिक्षण के लिए दूर-दूर के छात्र आते थे।

संवत् १९१७ कार्तिक सुदी २ को स्वामी दयानन्द मथुरा में स्वामी विरजानन्द की पाठशाला में प्रविष्ट हुए। लगभग २१ वर्षों तक स्वामी दयानन्द ने यहाँ विद्याभ्यास किया तथा अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्तसूत्र तथा कतिपय अन्य ग्रन्थों का अध्ययन किया। विरजानन्द के अध्यापन में कुछ विशेषताएँ थीं। उनकी यह सुदृढ़ धारणा थी कि संस्कृत में जितनी शास्त्र-सम्पत्ति है उसे आर्ष और अनार्ष इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। आर्ष ग्रन्थ वे हैं जिन्हें साक्षात्कृतधर्मा, मंत्र-द्रष्टा ऋषियों ने अपनी ऋतम्भरा बुद्धि से लिखा है तथा जिनमें सत्य का पूर्ण प्रतिपादन है। इसके विपरीत जो सामान्य मनुष्य-रचित ग्रन्थ हैं वे मिथ्या हैं, विज्ञान, युक्ति और बुद्धि-विरुद्ध हैं। इनमें से अधिकांश कपोल-कल्पनायुक्त, अतिशयोक्तिपूर्ण तथा आडम्बरयुक्त शैली में होने से त्याज्य हैं। स्वामी विरजानन्द का यह भी मत था कि भागवतादि पुराण-ग्रन्थ सर्वथा नवीन एवं कपोल-कल्पित हैं, अत: उन्हें वेदादि सत्यशास्त्रों की तुलना में कदापि मान्य नहीं कहा जा सकता और न उनका प्रामाण्य ही हो सकता है।

शास्त्र-विषयक इन मान्यताओं का स्वामी दयानन्द पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने भावी कार्यक्रमों में आर्ष ज्ञान के प्रचार को अपना महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बनाया। साथ ही उन्होंने यह भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि धर्मालोचन में वेद को एकमात्र प्रमाण-ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए तथा वेदानुकूल होने से ही अन्य ग्रन्थ मान्य हो सकते हैं। वेद के प्रतिकूल किसी भी ग्रन्थ का प्रामाण्य स्वीकार नहीं किया जा सकता।

स्वामी जी का संस्कृत शास्त्राध्ययन का कार्यक्रम विरजानन्द की पाठशाला पर ही समाप्त नहीं होता। वे अपने भावी जीवन में भी शास्त्र-मंथन के कार्य में सतत तल्लीन रहे। एक प्रसंग में उन्होंने कहा कि संस्कृत के लगभग तीन हजार ग्रन्थों का अवलोकन कर उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्तों को अन्तिम रूप प्रदान किया है।

संस्कृत के पठन-पाठन के लिए स्वामीजी ने एक विशिष्ट क्रम निर्धारित किया था। उसका उल्लेख उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास तथा

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पठन-पाठन विषय के अन्तर्गत किया है। सत्यार्थप्रकाश में संस्कृत भाषा तथा साहित्य के पठन-पाठन का निम्न क्रम निर्धारित किया गया है—सर्व-प्रथम पाणिनि-रचित शिक्षा-सूत्र पढ़े, जिससे उच्चारण-ज्ञान हो सके। पश्चात् छात्र को अष्टाध्यायी सूत्र-पाठ से व्याकरण का बोध कराया जाय। अष्टाध्यायी की प्रथम आवृत्ति में धातुपाठ अर्थसहित और दस लकारों के रूप तथा प्रक्रिया-सहित सामान्य और अपवाद सूत्रों का ज्ञान कराया जाय। इसके अनन्तर उणादि, गण, पुन: शंका-समाधान, वार्तिक, कारिका और परिभाषापूर्वक अष्टाध्यायी की द्वितीय आवृत्ति कराई जाय। तदुपरान्त महाभाष्य का अध्ययन करना आवश्यक है। सम्पूर्ण आर्ष व्याकरण का बोध होने में स्वामीजी ३ वर्ष का समय (डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महा-भाष्य) पर्याप्त मानते हैं।

व्याकरण के अनन्तर यास्ककृत निघण्टु और निरुक्त का अध्ययन ६ या ८ महीने में समाप्त हो सकता है। अनन्तर पिंगलाचार्यकृत छन्दो ग्रन्थ से वैदिक और लौकिक छन्दों का ज्ञान तथा नवीन श्लोक-रचना का अभ्यास चार मास में करे। पुन: मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत के उद्योग पर्व के अन्तर्गत विदुर-नीति के प्रकरण धर्म और नीतिशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से पढ़े। इन ग्रन्थों के अध्ययन में एक वर्ष लगाना पर्याप्त होगा। इसके बाद सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा वेदान्त इन षड्दर्शनों को आर्ष व्याख्याओं-सहित पढ़े। वेदान्त-सूत्रों के पढ़ने से पूर्व ईशादि दस उपनिषदों का पढ़ना आवश्यक है। पश्चात् दो वर्षों में ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों को स्वर, शब्द, अर्थ-सम्बन्ध तथा क्रिया-सहित पढ़ना चाहिए। वेदाध्ययन के उपरान्त आयुर्वेद (चरक सुश्रुत) धनुर्वेद, गान्धर्व वेद (नारद संहिता) तथा अर्थवेद, इन चार उपवेदों का अध्ययन किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् ज्योतिष के सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थ भी पढ़ने चाहिएँ जिनमें बीजगणित, अंकगणित, भूगोल, खगोल तथा भूगर्भ आदि विद्यायें हैं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी इन्हीं पठन-पाठन ग्रन्थों का नामोल्लेख करने के साथ-साथ स्वामीजी उन अनार्ष ग्रन्थों की सूची भी प्रस्तुत करते हैं जिनका अध्ययन वे अपेक्षित नहीं समझते। पठन-पाठन-प्रणाली का यह विस्तृत विवरण यह सिद्ध करता है कि स्वामीजी संस्कृतशास्त्र-शिक्षा-पद्धति के मर्मज्ञ शिक्षा-शास्त्री थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

वेद-भाष्यकार

विगत शताब्दी के महान् वैदिक विद्वान् दयानन्द सरस्वती ने अपने धर्मान्दोलन का आधार ही वेद-प्रामाण्य के सिद्धान्त को बनाया। उनकी समस्त मान्यतायें वेदमूलक हैं। वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ जब उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की, तो उसके

नियमों का निर्धारण करते समय वेदों के महत्त्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया। इसी कारण आर्यसमाज का तृतीय नियम वेद को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक घोषित करता है, तथा वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म बताता है। वेद का आधार लेकर चलनेवाले स्वामी दयानन्द के लिए यह भी आवश्यक था कि वे वेद के वास्तविक स्वरूप और अर्थ को लोगों के समक्ष रखते, क्योंकि पर्याप्त समय से वेदों का नाम तो लिया जाता रहा, परन्तु विगत कई शताब्दियों से उनका अध्ययन और विचार करने की प्रथा समाप्त हो चुकी थी। जिन सायण, महीधर, उव्वट आदि भाष्यकारों ने समय-समय पर वेदों के भाष्य बनाये, वे भी स्वामी दयानन्द की दृष्टि से असन्तोषजनक तथा अपर्याप्त थे, क्योंकि उनके द्वारा वेदों के वास्तविक अभिप्राय का उद्घाटन होना तो दूर, उल्टे वेदों के विषय में भ्रमपूर्ण धारणायें ही अधिक फैलती थीं। अतः स्वामीजी ने यह आवश्यक समझा कि वेदों के वास्तविक अर्थ का प्रकाशन भाष्य-रचना द्वारा किया जाय। उनका यह वेदभाष्य संस्कृत में तैयार हुआ तथा उनके सहयोगी पण्डितों ने उसका हिन्दी भाषा में अनुवाद किया।

वेदभाष्य निर्माण करने से पूर्व वेद-विषयक समस्याओं पर आलोचनात्मक दृष्टि से अपने विचार व्यक्त करने के लिए तथा वेदार्थ-विषयक अपने दृष्टिकोण को समझाने के लिए स्वामीजी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखी। स्वामीजी का यह भूमिका-ग्रन्थ भी मूल रूप मे संस्कृत में ही लिखा गया था। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भाष्य-कार ने अपने वेद-विषयक विचारों को अत्यन्त युक्ति तथा तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका यह विवेचन न तो सायण की भाँति सम्पूर्णतया मीमांसादर्शन पर आधारित है, और न अपने कतिपय समकालीन पाश्चात्य वेदविदों की भाँति ऐतिहा-सिक तथा विशुद्ध भाषा-वैज्ञानिक का दृष्टिकोण ही लेकर चले हैं।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदोत्पत्ति, वेदानां नित्यत्व विचार, वेद-विषय विचार, वेद संज्ञा विचार, ग्रन्थ-प्रामाण्याप्रामाण्य विचार, वेदाधिकार निरूपण, भाष्यकरण, शंका-समाधान आदि लगभग चालीस विषयों का आलोचनात्मक तथा युक्तिपूर्ण विवेचन किया गया है। इस प्रसंग में यह जानना आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द की वेद-विषयक कतिपय धारणाएँ मध्यकालीन वेदभाष्यकारों से मेल नहीं खातीं, यद्यपि उनके ये विचार उनसे भी अधिक प्राचीन वैदिक वाङ्मय तथा आर्ष चिन्ता पर आधारित हैं। यथा स्वामी दयानन्द वेद को ईश्वरीय ज्ञान तो मानते हैं, परन्तु आदिसृष्टि में उसे ब्रह्मा द्वारा अभिव्यक्त न मानकर वेद की चारों संहिताओं का अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा—इन चार ऋषियों पर क्रमशः आविर्भूत होना मानते हैं। वे यह भी स्वीकार नहीं करते कि प्रारम्भ में वेद की संहिता एक ही थी और महर्षि व्यास ने उसका चतुर्धा विभाजन कर वेद-चतुष्टय की कल्पना की। स्वामीजी प्रचलित मान्यता के अनुसार ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद-संज्ञा प्रदान नहीं करते। उनकी दृष्टि में मन्त्र-भाग ही वेद हैं, यही भाग ईश्वरोक्त, फलतः प्रमाण है। ब्राह्मण-भाग तो महीदास ऐतरेय, याज्ञवल्क्य आदि विभिन्न ऋषि-मुनियों द्वारा प्रणीत है। दयानन्द ने वेदाध्ययन का अधिकार त्रैवर्णिक द्विजवर्ग तक ही सीमित न रखकर शूद्र तथा स्त्री जाति को भी उसका अधिकार प्रदान

किया। उनकी यह भी मान्यता थी कि वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है। वे न तो मध्यकालीन विद्वानों की भाँति जड़ पदार्थों में कोई चैतन्य-विशिष्ट देवता मानते हैं, और न वैदिक मन्त्रों में चन्द्र, सूर्य, वायु, आकाश, वृष्टि आदि प्राकृतिक पदार्थों और कार्यों की स्तुति ही मानते हैं। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" की सूक्ति का अनुसरण करते हुए स्वामीजी वेदों में वर्णित इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओं को एक ही परमात्मा के गुण-कर्मानुसार विभिन्न नाम स्वीकार करते हैं।

स्वामी दयानन्द के विचारानुसार वेदों का अर्थ आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध प्रकार से होता है। वेद के पदों का अर्थ करने के लिए निरुक्त-प्रतिपादित यौगिक पद्धति स्वामीजी को मान्य है। नैरुक्त पद्धति का अनुसरण करते हुए स्वामीजी वेदों में न तो किसी प्रकार का लौकिक इतिहास ही मानते हैं और न उनमें किसी देशविशेष अथवा जातिविशेष का ऐतिहासिक, भौगोलिक अथवा समाजशास्त्रीय वृत्तान्त ही स्वीकार करते हैं। वेदमन्त्रों का याज्ञिक अर्थ करने के वे विरोधी नहीं हैं, तथापि उनकी यह मान्यता है कि वेदों में जिस यज्ञ-प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है, वह किसी संकुचित कर्मकाण्ड का अर्थ देनेवाली न होकर विश्वब्रह्माण्ड का सुचारु रूप से संचालन करनेवाली ब्राह्मी शक्ति का ही प्रतीकात्मक वर्णन है। यज्ञ-प्रक्रिया की इस प्रकार प्रतीकात्मक तथा आध्यात्मिक व्याख्या करने के कारण स्वामीजी ने यज्ञ के नाम पर प्रचलित पशुहिंसा तथा अन्य उन सभी जटिल, निरर्थक तथा क्रिया-बहुल पद्धतियों का विरोध किया, जो वेद के नाम पर मध्यकाल में प्रचलित हो गई थीं।

भाष्यभूमिका में स्वामीजी ने अपने वेद-विषयक विचारों को तो प्रस्तुत किया ही है, साथ ही वेद में ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्त जो अपने मूल रूप में पाए जाते हैं, उनका भी उन्होंने स्थालीपुलाक-न्याय से उल्लेख किया है, यथा—ब्रह्म-विद्या, सृष्टि-विद्या, पृथिवी आदि लोकभ्रमण विषय, धारणाकर्षण विषय, प्रकाश्य-प्रकाशक विषय, गणित विद्या, वैद्यक शास्त्र आदि विविध विषयों का निरूपण करनेवाले वेदमन्त्र उन्होंने प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रकार विवाह, नियोग, राज-प्रजाधर्म, वर्णाश्रम, पंचमहायज्ञ आदि सामाजिक तथा धार्मिक इतिकर्त्तव्य-विषयक अपने विचारों को भी वेदमन्त्रों के आधार पर निरूपित किया गया है।

दयानन्द सरस्वती के वेद-विषयक विचारों का सिंहावलोकन कर लेने के पश्चात् उनके द्वारा रचित वेदभाष्य का विवरण देना आवश्यक है—

ऋग्वेदभाष्य—वेद की रचना का उपक्रम स्वामीजी ने १९३३ वि० के आस-पास किया। सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रथम सूक्त के भाष्य को संस्कृत और हिन्दी में तैयार कर प्रकाशित किया और उस पर सम्मति प्रकाशित करने के लिए काशी, कलकत्ता तथा लाहौर की पण्डित-मण्डली के पास भेजा। वेदभाष्य का यह नमूना सर्वश्री आर० टी० एच० ग्रिफिथ, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस, सी० एच० टॉनी, प्रिंसिपल प्रेसीडेंसी कालिज कलकत्ता, हैड पण्डित ओरियण्टल कालेज लाहौर,—पं० ऋषिकेश भट्टाचार्य, द्वितीय पण्डित ओरियण्टल कालेज लाहौर, पण्डित भगवानदास, सहायक प्राध्यापक, गवर्नमेंट कालेज लाहौर तथा पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट

संस्कृत कॉलेज कलकत्ता के पास भेजा गया। इन विद्वानों की सम्मतियाँ स्वामीजी की वेदभाष्य-शैली के प्रतिकूल थीं, अतः स्वामीजी ने अपनी वेद-प्रणाली के औचित्य को सिद्ध करने के लिए 'भ्रान्ति निवारण' शीर्षक पुस्तक लिखी जिसमें पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न द्वारा प्रस्तुत किये आक्षेपों का उत्तर दिया गया है।

ऋग्वेद-भाष्य का लेखन मार्गशीर्ष शुक्ला ६, १९३४ वि० से हुआ। यह भाष्य मासिक पत्र के रूप में धारावाही प्रकाशित होता था। उस काल के यूरोपीय तथा भारतीय प्राच्य विद्याविद् विद्वान् स्वामीजी के वेदभाष्य के ग्राहक थे। मैक्समूलर और मोनियर विलियम्स जैसे संस्कृतज्ञ विद्वानों ने स्वामीजी के भाष्य का महत्त्व स्वीकार किया था। स्वामी दयानन्द अपने जीवनकाल में इस भाष्य को पूरा नहीं कर पाए। सातवें मण्डल के ६२वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र पर्यन्त ही उनका भाष्य मिलता है। इस प्रकार उन्होंने ऋग्वेद के ५६४९ मन्त्रों पर भाष्य लिखा।

भाष्य लिखने की स्वामीजी की अपनी शैली है। प्रथम वे मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर का संकेत देकर मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख करते हैं। यहाँ यह लिख देना अप्रासंगिक न होगा कि वेद-भाष्यकारों में स्वामी दयानन्द ने ही प्रथम बार वेदमन्त्रों के स्वरों का निर्देश किया है। पुनः मूल मन्त्र को लिखकर उसका पद-पाठ किया गया है। तत्पश्चात् वे संस्कृत में पदार्थ, अन्वय और भावार्थ लिखते हैं। अपने अर्थ की पुष्टि में स्वामीजी शतपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों, निरुक्त-निघण्टु आदि वेदांगों का प्रमाण देते चलते हैं। वे वैदिक शब्दों को यौगिक मानते हैं तथा शब्द के निर्वचन के आधार पर उसके एकाधिक अर्थ करते हैं। स्वामी दयानन्द का यह ऋग्वेद-भाष्य नौ खण्डों में वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित हुआ है।

यजुर्वेद भाष्य—इसका आरम्भ स्वामीजी ने पौष शुक्ला १३ सम्वत् १९३४ वि० को किया। उसे पूरा करने में उन्हें प्रायः पाँच वर्ष लगे। इसका समाप्ति-काल मार्गशीर्ष कृष्ण १ सम्वत् १९३९ वि० है। भाष्यारम्भ में स्वामीजी ने निम्न पद्य द्वारा मंगलाचरण किया है—

> यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृत ज्ञानं गुणैरीश्वर—
> स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च।
> ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं
> भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया॥

यजुर्वेद के स्वामीकृत संस्कृत-भाष्य का हिन्दी-अनुवाद पण्डित भीमसेन तथा पण्डित ज्वालादत्त ने किया था। स्वामीजी ने इस भाष्य में याज्ञिक पद्धति को पूर्णतया छोड़कर व्यावहारिक प्रक्रिया का अनुसरण किया है।

ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य-शैली

ऋषि दयानन्द का वेदभाष्य एक ओर जहाँ सायण, उव्वट, महीधर आदि

आचार्यों के भाष्य से भिन्न है वहाँ ग्रिफिथ, मैक्समूलर, मैकडॉनल आदि पाश्चात्य विद्वानों के भाष्य एवं अर्थ-पद्धति से भी उसकी पृथक्ता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सायण आदि प्राचीन आचार्यों ने वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार किया था, परन्तु उसके अर्थ की वास्तविक शैली से अनभिज्ञ होने और पौराणिक संस्कारों से प्रभावित होने के कारण वे इस सिद्धान्त का सर्वत्र रक्षण नहीं कर सके। उन्होंने अनादि वेदज्ञान में भी ऋषियों और राजाओं का इतिहास मान लिया और पशुहिंसा आदि के निर्मूल विचारों से अपने भाष्यों को दूषित कर दिया। दूसरी ओर ग्रिफिथ आदि 'पाश्चात्य भाष्यकारों के लिए वेद केवल ऐतिहासिक पुस्तकें मात्र थीं, जो आर्यों के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।'

ऋषि दयानन्द जहाँ वेद को ईश्वरीय ज्ञान घोषित करते हैं, वहाँ वे उसे धर्म का मूलाधार भी मानते हैं। मनु के शब्दों में उन्होंने धर्म-जिज्ञासुओं के लिए श्रुति को ही परम प्रमाण माना है। ऋषि दयानन्द ने वेदार्थ की आर्ष प्रणाली को स्वीकर किया। इससे उनका तात्पर्य यह था कि प्राचीन ब्राह्मण, निरुक्त, अष्टाध्यायी आदि ऋषिकृत ग्रन्थों की सहायता से ही वेद का वास्तविक अर्थ निश्चित हो सकता है। सायण आदि ने इसकी बहुत कम सहायता ली है और यत्रतत्र अपनी कल्पना से ही काम चलाया है। पाश्चात्य विद्वानों के भाष्य तो सायण के अर्थों का ही अनुसरण करते हैं, इसलिए जो दोष सायण के हैं, वे इनमें भी आ गए हैं। वास्तव में बात यह है कि लौकिक संस्कृत एवं वैदिक संस्कृत में बहुत अन्तर है। लौकिक भाषा में "अहि" साँप को कहते हैं परन्तु वेद में इसके "मेघ" आदि कई अर्थ हैं। इसी नियम के अनुसार जो लौकिक संस्कृत का ही ज्ञान रखते हैं, उनकी वेद में गति होना कठिन है—ऋषि ने इसी सत्य का उद्‌घाटन किया। निरुक्त आदि शास्त्रों में वैदिक भाषा के शब्दों का जिस शैली से निर्वचन किया गया है, ऋषि को वह मान्य था, अतः उनकी भाष्य-शैली निरुक्त-पद्धति के सर्वथा अनुकूल है। एक बात और भी है—वैदिक शब्दों के अर्थ धात्वज होने के कारण यौगिक होते हैं, रूढ़ नहीं। यही कारण है कि वेद में धातु के आधार पर एक शब्द के अनेक अर्थ लगाए जा सकते हैं और प्रकरणानुकूल वे सब ठीक होते हैं। उदाहरण के लिए लोक में 'अग्नि' केवल आग कोकहते हैं परन्तु इसकी निरुक्ति इस प्रकार है "अग्नि कस्मात् ? अग्रणी भवति" अर्थात् आगे बढ़ने और गमनशील होने के कारण अग्नि शब्द ईश्वर, आत्मा, राजा, नेता, विद्वान्, अध्यापक और भौतिक अग्नि सबके लिए प्रयुक्त होता है। इसी शैली का अनुकरण कर ऋषि ने यह सिद्ध किया है कि वेदों में जो किन्हीं विशेष व्यक्तियों के नाम दिखाई पड़ते हैं, वास्तव में वे वैसे नहीं हैं। शतपथ के प्रमाणानुसार उन्होंने वसिष्ठ आदि को 'प्राण' माना है—वसिष्ठो वै प्राणः।

इसी यौगिकवाद का अनुसरण करने के कारण ऋषि दयानन्द वेद में लौकिक इतिहास की सत्ता स्वीकार नहीं करते। अनादि ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान में साधारण मानवों का इतिहास होना सम्भव नहीं। पुरूरवा, उर्वशी आदि की कथा तथा इन्द्र और वृत्र का का युद्ध, सुदास, दिवोदास आदि राजाओं का वर्णन आदि जो वेद में बताए जाते हैं, उनके वास्तविक तात्पर्य को समझ लेने पर ये इतिहास की घटनाएँ नहीं रहतीं। वृत्र

और इन्द्र का युद्ध बादल और सूर्य का युद्ध है, जो सदा होता रहता है। ऐसे इतिहास माने जानेवाले स्थलों की व्याख्या ऋषि ने अपनी 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' में विशेष रूप से की है। यह निश्चित है कि किसी समय में वेद में इतिहास माननेवाला एक सम्प्रदाय अवश्य विद्यमान था, क्योंकि निरुक्त में ही उसकी उपस्थिति का प्रमाण—"तत्को वृत्राः, मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्राऽसुरो इत्यैतिहासिकाः" आदि वाक्यों में मिलता है। यास्क महाराज ने अनित्य इतिहास के इस सिद्धान्त का स्थान-स्थान पर निराकरण किया है। महर्षि दयानन्द को भी यह मत ही अभिप्रेत था।

ऋषि के वेदभाष्य की एक और विशेषता यह है कि उन्होंने वेदमन्त्रों के विविध अर्थ किये हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। यह ऋषि का मौलिक आविष्कार नहीं था। प्राचीन स्कन्द स्वामी, भट्ट भास्कर, दुर्गाचार्य आदि वैदिक विद्वानों ने इस प्रक्रिया का समर्थन किया है। सायण आदि का दृष्टिकोण एकांगी था। उन्होंने वेदों की याज्ञिक कर्मकाण्डपरक व्याख्या तक ही अपने भाष्य को सीमित रक्खा। इसका एक भयंकर परिणाम यह निकला कि वेद की उदात्त और जीवन को उत्थान की ओर प्रेरित करनेवाली शिक्षाओं को भूलकर लोग उन्हें केवल यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाली वस्तु ही समझने लगे। तभी तो सायण ने "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" जैसी उच्च भावना रखने-वाली ऋचा को सोमरस पीसने और छानने के कर्म में विनियुक्त किया। यह कर्मकाण्ड की लीला बड़ी विचित्र है। 'शन्नो देवी···' मन्त्र इसीलिए शनि ग्रह की पूजा में प्रयुक्त होने लगा। प्रकरणानुकूल वेदमन्त्रों की व्याख्या करना और उनसे राजधर्म, भौतिक विज्ञान, गृहस्थ जीवन, सृष्टिविज्ञान आदि विद्याओं का निष्कर्ष प्रकाशित करना ऋषि का ही काम था।

वेदभाष्य की परम्परा में ऋषि दयानन्द ने एक और क्रान्तिकारी परिवर्तन किया था—वेदों से एकेश्वरवाद की सिद्धि। पाश्चात्यों का वेदों पर सबसे बड़ा आक्षेप यही था कि वेदों में विविध प्राकृतिक शक्तियों की पूजा और उपासना का विधान है। प्राचीन आर्यों को ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता का ज्ञान नहीं था, इसलिए जब सृष्टि की शैशवा-वस्था में प्राकृतिक शक्तियों से उन्हें पीड़ा पहुँचती, तो उससे निस्तार पाने के लिए वे सविता, इन्द्र, अग्नि, पूषा, सोम आदि की स्तुति करते। इन स्तुतियों का ही संग्रह ऋग्वेदादि है। महर्षि ने इस कल्पना का प्रमाण-पुरस्सर खण्डन किया। उन्होंने कहा कि "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति—अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः" (ऋग्वेद)। इस प्रकार के मन्त्रों के रहते वेदों पर बहुदेवतावाद का आरोपण करना दुःसाहस मात्र है। श्री अरविन्द आदि विद्वानों ने ऋषि के इस मत को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। एकेश्वरवाद की स्थापना के लिए वैदिक साहित्य में ऋषि का नाम अमर रहेगा।

ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेद मनुष्यों के लिए सार्वभौम और सार्वकालिक नियमों का प्रतिपादन करता है। वह समस्त ज्ञान-विज्ञान का स्रोत है। यह ऋषि का निश्चित मत है। संसार की समस्त भौतिक और आध्यात्मिक विद्याओं का मूल वेद में ढूंढा जा सकता है, यह ऋषि का दावा था। उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वैद्यक, गणित, ज्योतिष, तार, विमान आदि विविध विद्याओं की प्रतिपादक ऋचाओं का

संकलन किया है। यद्यपि पण्डित बलदेव उपाध्याय जैसे पूर्वाग्रह रखनेवाले विद्वानों ने ऋषि के इस कथन का मजाक उड़ाया है, परन्तु अरविन्द जैसे सुप्रसिद्ध योगी और विद्वान् ने ऋषि के इस मत को सादर ग्रहण करते हुए उसकी सत्यता में निश्चित विश्वास व्यक्त किया है।

वेद का ज्ञान देश, काल, सम्प्रदाय और वर्ग के संकुचित भेदों से ऊपर उठा हुआ है। इसलिए कुरान, बाइबिल, जेन्दावस्ता आदि जो पुस्तकें इलहामी होने का दावा रखती हैं वे वेद के समक्ष नहीं टिकतीं। इन ग्रन्थों का निर्माण देशविशेष की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए और किसी सम्प्रदाय या समूहविशेष के हित को दृष्टि में रखते हुए हुआ था। इन ग्रन्थों की उपयोगिता भी सीमित समय के लिए है। उनके निर्माता मनुष्यविशेष थे।

यदि वेद को ईश्वरीय माना जाय तो उसका उपदेश मनुष्यमात्र के लिए होना चाहिए। मध्यवर्ती सम्प्रदायाचार्यों ने स्त्री और शूद्रों के लिए वेदाध्ययन का निषेध कर दिया था। कपोल-कल्पित सूत्रों व स्मृतियों में तो वेद के पढ़ने और सुननेवाले शूद्रों के लिए कठोर शारीरिक दण्ड की व्यवस्था भी की गई थी। ईश्वरीय ज्ञान के नाम पर होने वाले इस अमानुषी अत्याचार को ऋषि दयानन्द का दयालु हृदय नहीं देख सका। अतः लोकोपकार के लिए समाधि-अवस्था में उसने 'यथेमां वाचं कल्याणीं' इस यजुः-मन्त्र के अर्थ का साक्षात्कार करते हुए संसार के समक्ष अपनी गम्भीर वाणी से यह घोषणा की, "परमात्मा का यह आदेश है कि मैं वह कल्याणकारी वाणी मनुष्यमात्र के हित के लिए प्रदान कर रहा हूँ। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सेवक तथा दास प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस वाणी का उपदेश है।" ऋषि की उदारता का यह ज्वलन्त उदाहरण हैं।

ऋषि दयानन्द और पाश्चात्य विद्वानों की भाष्य-प्रणाली में मौलिक भेद उत्पन्न होने का कारण यह था कि पाश्चात्य लोग जहाँ डारविन के विकासवाद के अनुयायी होने के कारण वेदों को असभ्य मानव की अटपटी वाणी से अधिक महत्त्व देने के लिए तैयार नहीं थे, वहाँ ऋषि उन्हें प्रभु-प्रणीत तथा ज्ञान-विज्ञान का भण्डार मानते थे। ऋषि ने पाश्चात्यों द्वारा वेदों पर लगाई गई अनेक भ्रान्तिपूर्ण उपपत्तियों का खण्डन किया यथा अश्लीलता, जादू, टोना, अस्पष्टता आदि का निराकरण। मन्त्रों के गूढ़ भावों को समझने में असमर्थ होने के कारण ग्रिफिथ आदि विद्वानों ने मन्त्रों में अश्लीलता और अस्पष्टता का दर्शन किया है। उन्होंने कहीं-कहीं ऋचाओं के लैटिन भाषा में अर्थ इस-लिए किये हैं कि वे उन्हें अत्यन्त असभ्यतापूर्ण जान पड़े। परन्तु वास्तव में वहाँ ऐसा कुछ नहीं था। वेदार्थ की वास्तविक परिपाटी को न समझनेवालों के लिए ही ये कठि-नाइयाँ आती हैं। उन्हें ही वेदों में पशु-हिंसा के दर्शन होते हैं और वे ही अथर्ववेद के मन्त्रों में जादू-टोने और अभिचारों की क्रियाएँ देखते हैं। वास्तव में वेद इन दोषों से सर्वथा पृथक् हैं तथा सत्त्व गुण से युक्त हैं, यह ऋषि ने ही प्रतिपादित किया है।

अन्त में, ऋषि ने वेद संज्ञा विचार प्रकरण के अन्तर्गत यह भी सिद्ध कर दिया कि संहिता-भाग ही वास्तव में वेद हैं। सनातनी अब भी ब्राह्मण और उपनिषद् को भी वेद ही मानते हैं, चाहे वे इसे सिद्ध कर सकें या नहीं। ऋषि ने ईश्वरकृत संहिता-भाग

और उनके व्याख्यानस्वरूप ब्राह्मण-भाग का भेद स्पष्टतया सिद्ध कर दिया और अज्ञानियों में जो यह धारणा फैली हुई थी कि वेदों को शंखासुर पाताल में ले गया, उस अज्ञानरूपी शंखासुर का हनन कर ऋषि ने वेदों का उद्धार किया।

महर्षि दयानन्द का वैदिक दृष्टिकोण और यूरोपीय विद्वान्

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य की स्थापना के साथ-साथ यूरोपवासियों का भारत की पुरातन भाषा संस्कृत और आर्य सभ्यता से परिचय हुआ। सन् १७७५ में चार्ल्स विलकिन्स नामक एक अंग्रेज ने भगवद्गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया। तत्कालीन सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश सर विलियम जोन्स ने १७८४ में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की और १७८६ में महाकवि कालिदास के अभिज्ञान,शाकुन्तल का अंग्रेजी अनुवाद किया। यूरोपीय विद्वानों की संस्कृत-अध्ययन की यह प्रवृत्ति वृद्धिगत होती गई। पारवर्ती विद्वानों में हेनरी एच० विलसन, रूडॉल्फ राथ, प्रो० मैक्समूलर, आर्थर एन्थनी मैकडानल, ए० बी० कीथ आदि प्रमुख हैं। यूरोपीय देशों में संस्कृत और वेदों के अध्ययन की यह प्रवृत्ति जर्मनी, इंग्लैण्ड और फ्रांस में विशेष रूप से लक्षित हुई।

महर्षि दयानन्द १९वीं शताब्दी के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत तथा वैदिक साहित्य का उत्कृष्ट अध्ययन किया था। वे पाश्चात्य वेदज्ञों के कार्य तथा उनके परिश्रम से भी परिचित थे। कुछ यूरोपीय विद्वानों का तो उनसे साक्षात्कार भी हुआ था और अन्यों से वे पत्राचार का सम्बन्ध भी रखते थे। उस समय और आज भी अधिकांश भारतवासियों में यह धारणा प्रचलित थी और है कि यूरोप और विशेष रूप से जर्मनी देशवासी संस्कृत और वेदों के प्रकांड पण्डित होते हैं। महर्षि दयानन्द इससे पूर्णतया सहमत नहीं थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रसंग की चर्चा करते हुए लिखा है—"जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा है, यह बात कहने मात्र की है। क्योंकि 'यस्मिन् देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते' अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरण्ड को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं। वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत-विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोग और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा-सा पढ़ा वही उस देश के लिए अधिक है, परन्तु आर्यावर्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है क्योंकि मैंने जर्मनी देश निवासी एक प्रिंसिपल के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत-चिट्ठी का अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

महर्षि को मैक्समूलर के वेद-विषयक ज्ञान और संस्कृत भाषा-ज्ञान का भी पूर्ण परिचय था। मैक्समूलर ने इंग्लैण्ड में रहकर सायण के सम्पूर्ण वेदभाष्य का अंग्रेजी में

अनुवाद किया और स्वतन्त्र रूप से वेदों के सम्बन्ध में अनेक निबन्ध लिखे तथा व्याख्यान दिये। इस पर स्वसम्मति प्रकट करते हुए म० दयानन्द लिखते हैं—"और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और वेद की व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर-उधर आर्यावर्तीय लोगों की की हुई टीका देखकर कुछ-कुछ यथा-तथा लिख दिया है जैसा कि 'युंजन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि' (ऋ० १।६।१)इस मन्त्र का अर्थ घोड़ा किया है। इससे तो जो सायणाचार्य ने सूर्य अर्थ किया सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है, सो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिए।" —स० प्र०, ११वाँ समुल्लास

इसी प्रसंग में महर्षि ने जैकालियट नामक एक फ्रांसीसी विद्वान् द्वारा लिखित 'वाइविल इन इण्डिया' नामक ग्रंथ का उद्धरण दिया है जिसमें भारत को समस्त ज्ञान-विज्ञान और विद्याओं का मूल भण्डार कहा गया है। इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद स्व० श्री संतराम बी० ए० द्वारा किया जाकर गंगा पुस्तकमाला लखनऊ से प्रकाशित हो चुका है। महर्षि के जीवन में उनके मैक्समूलर से पत्र-व्यवहार की भी चर्चा आई है। मैक्समूलर ने महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को अत्यन्त ध्यानपूर्वक पढ़ा था और उसकी चर्चा अपने ग्रंथ 'India : What it can teach us ?' में इस प्रकार की है—

"We may divide the whole of Sanskrit Literature beginning with the Rigveda ending with Dayanand's Introduction to his edition of Rigveda, his by no means uninteresting Rigveda Bhumika in two parts."

अर्थात् "ऋग्वेद से आरम्भ होकर दयानन्द की ऋग्वेदभाष्यभूमिका पर समाप्त होनेवाले संस्कृत साहित्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। यह भूमिका पर्याप्त रोचक है।"

यहाँ यह लिख देना भी अनुपयुक्त न होगा कि महर्षि दयानन्द-स्वीकृत वेदभाष्य-प्रणाली से मैक्समूलर का मतभेद था जिसकी चर्चा उन्होंने प्रसिद्ध पारसी सुधारक बहराम जी मलाबारी को लिखे अपने पत्रों में की है। महर्षि ने वेद के बारे में विलसन, मैक्समूलर आदि विद्वानों की धारणाओं का खण्डन अपने "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" नामक ग्रंथ में किया है। जहाँ वे सायणाचार्य की याज्ञिक वेदार्थ-प्रणाली की आलोचना करते हैं वहाँ नवीन भाषा-विज्ञान, विकासवाद और कल्पित देवगाथावाद(Mythology) आधारित यूरोपीय वेदार्थ-प्रणाली की भी कटु समालोचना की है। इस ग्रंथ के वेदोत्पत्ति के प्रकरण में उन्होंने विलसन, मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विपश्चितों के इस मत को अलीक ठहराया है कि वेदों का निर्माण २४००, २६००, ३००० या ३१०० वर्ष ईसा-पूर्व हुआ था। उनके मूल शब्द ये हैं—"इस कथन से यूरोप-निवासी अध्यापक विल्सन और मैक्समूलर का यह कथन है कि वेद मनुष्यों के रचे हैं, श्रुति नहीं हैं, तथा उनका रचनाकाल २४००, २६००, ३०००, ३१०० ई० पूर्व का है भ्रममूलक ही सिद्ध होता है।" इसी प्रकार भूमिका में सर्वत्र पाश्चात्य विद्वानों के मतों का खण्डन प्रमाण-पुरस्सर किया गया है।

और उनके व्याख्यानस्वरूप ब्राह्मण-भाग का भेद स्पष्टतया सिद्ध कर दिया और अज्ञानियों में जो यह धारणा फैली हुई थी कि वेदों को शंखासुर पाताल में ले गया, उस अज्ञानरूपी शंखासुर का हनन कर ऋषि ने वेदों का उद्धार किया।

महर्षि दयानन्द का वैदिक दृष्टिकोण और यूरोपीय विद्वान्

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य की स्थापना के साथ-साथ यूरोपवासियों का भारत की पुरातन भाषा संस्कृत और आर्य सभ्यता से परिचय हुआ। सन् १७७५ में चार्ल्स विलकिन्स नामक एक अंग्रेज ने भगवद्गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया। तत्कालीन सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश सर विलियम जोन्स ने १७८४ में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की और १७८६ में महाकवि कालिदास के अभिज्ञान,शाकुन्तल का अंग्रेजी अनुवाद किया। यूरोपीय विद्वानों की संस्कृत-अध्ययन की यह प्रवृत्ति वृद्धिगत होती गई। पारवर्ती विद्वानों में हेनरी एच० विल्सन, रूडॉल्फ राथ, प्रो० मैक्समूलर, आर्थर एन्थनी मैकडानल, ए० बी० कीथ आदि प्रमुख हैं। यूरोपीय देशों में संस्कृत और वेदों के अध्ययन की यह प्रवृत्ति जर्मनी, इंग्लैण्ड और फ्रांस में विशेष रूप से लक्षित हुई।

महर्षि दयानन्द १९वीं शताब्दी के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत तथा वैदिक साहित्य का उत्कृष्ट अध्ययन किया था। वे पाश्चात्य वेदज्ञों के कार्य तथा उनके परिश्रम से भी परिचित थे। कुछ यूरोपीय विद्वानों का तो उनसे साक्षात्कार भी हुआ था और अन्यों से वे पत्राचार का सम्बन्ध भी रखते थे। उस समय और आज भी अधिकांश भारतवासियों में यह धारणा प्रचलित थी और है कि यूरोप और विशेष रूप से जर्मनी देशवासी संस्कृत और वेदों के प्रकांड पण्डित होते हैं। महर्षि दयानन्द इससे पूर्णतया सहमत नहीं थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रसंग की चर्चा करते हुए लिखा है—"जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा है, यह बात कहने मात्र की है। क्योंकि 'यस्मिन् देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते' अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरण्ड को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं। वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत-विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोग और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा-सा पढ़ा वही उस देश के लिए अधिक है, परन्तु आर्यावर्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है क्योंकि मैंने जर्मनी देश निवासी एक प्रिंसिपल के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत-चिट्ठी का अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

महर्षि को मैक्समूलर के वेद-विषयक ज्ञान और संस्कृत भाषा-ज्ञान का भी पूर्ण परिचय था। मैक्समूलर ने इंग्लैण्ड में रहकर सायण के सम्पूर्ण वेदभाष्य का अंग्रेजी में

अनुवाद किया और स्वतन्त्र रूप से वेदों के सम्बन्ध में अनेक निबन्ध लिखे तथा व्याख्यान दिये। इस पर स्वसम्मति प्रकट करते हुए म० दयानन्द लिखते हैं—"और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और वेद की व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर-उधर आर्यावर्तीय लोगों की की हुई टीका देखकर कुछ-कुछ यथा-तथा लिख दिया है जैसा कि 'युंजन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि' (ऋ० १।६।१)इस मन्त्र का अर्थ घोड़ा किया है। इससे तो जो सायणाचार्य ने सूर्य अर्थ किया सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है, सो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिए।" —स० प्र०, ११वाँ समुल्लास

इसी प्रसंग में महर्षि ने जैकालियट नामक एक फ्रांसीसी विद्वान् द्वारा लिखित 'बाइबिल इन इण्डिया' नामक ग्रंथ का उद्धरण दिया है जिसमें भारत को समस्त ज्ञान-विज्ञान और विद्याओं का मूल भण्डार कहा गया है। इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद स्व० श्री संतराम बी० ए० द्वारा किया जाकर गंगा पुस्तकमाला लखनऊ से प्रकाशित हो चुका है। महर्षि के जीवन में उनके मैक्समूलर से पत्र-व्यवहार की भी चर्चा आई है। मैक्समूलर ने महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को अत्यन्त ध्यानपूर्वक पढ़ा था और उसकी चर्चा अपने ग्रंथ 'India : What it can teach us ?' में इस प्रकार की है—
"We may divide the whole of Sanskrit Literature beginning with the Rigveda ending with Dayanand's Introduction to his edition of Rigveda, his by no means uninteresting Rigveda Bhumika in two parts."

अर्थात् "ऋग्वेद से आरम्भ होकर दयानन्द की ऋग्वेदभाष्यभूमिका पर समाप्त होनेवाले संस्कृत साहित्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। यह भूमिका पर्याप्त रोचक है।"

यहाँ यह लिख देना भी अनुपयुक्त न होगा कि महर्षि दयानन्द-स्वीकृत वेदभाष्य-प्रणाली से मैक्समूलर का मतभेद था जिसकी चर्चा उन्होंने प्रसिद्ध पारसी सुधारक बहराम जी मलाबारी को लिखे अपने पत्रों में की है। महर्षि ने वेद के बारे में विलसन, मैक्समूलर आदि विद्वानों की धारणाओं का खण्डन अपने "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" नामक ग्रंथ में किया है। जहाँ वे सायणाचार्य की याज्ञिक वेदार्थ-प्रणाली की आलोचना करते हैं वहाँ नवीन भाषा-विज्ञान, विकासवाद और कल्पित देवगाथावाद(Mythology) आधारित यूरोपीय वेदार्थ-प्रणाली की भी कटु समालोचना की है। इस ग्रंथ के वेदोत्पत्ति के प्रकरण में उन्होंने विलसन, मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विपश्चितों के इस मत को अलीक ठहराया है कि वेदों का निर्माण २४००, २६००, ३००० या ३१०० वर्ष ईसा-पूर्व हुआ था। उनके मूल शब्द ये हैं—"इस कथन से यूरोप-निवासी अध्यापक विलसन और मैक्समूलर का यह कथन है कि वेद मनुष्यों के रचे हैं, श्रुति नहीं हैं, तथा उनका रचनाकाल २४००, २६००, ३०००, ३१०० ई० पूर्व का है भ्रममूलक ही सिद्धहोता है।" इसी प्रकार भूमिका में सर्वत्र पाश्चात्य विद्वानों के मतों का खण्डन प्रमाण-पुरस्सर किया गया है।

बम्बई-प्रवास में स्वामीजी की भेंट संस्कृत के प्रसिद्ध अंग्रेजी विद्वान् मोनियर विलियम्स से हुई थी। ये वही महाशय हैं जिन्होंने संस्कृत अंग्रेजीकोश तथा इण्डियन-विजडम आदि ग्रंथ लिखे हैं। विलियम्स महाशय स्वामीजी की योग्यता और विद्वत्ता से अतीव प्रभावित हुए और उन्हें इंग्लैंड चलकर भारतीय धर्म और संस्कृत के प्रचार के लिए आमंत्रित किया। स्वामीजी ने उत्तर में यही कहा कि प्रथम तो उनके लिए स्वदेश में ही पर्याप्त कार्य है; द्वितीय, बिना अंग्रेजी भाषा पर पूरा अधिकार प्राप्त किये उन्हें यूरोप में सफलता नहीं मिल सकती और जितना समय वे अंग्रेजी पढ़ने में लगा सकते हैं, उतने में बहुत-कुछ कार्य भारत में हो सकता है। फिर यह भी बात है कि उनके सुधार-कार्य के जितने विरोधी हैं और उनके शत्रु उनके प्राणों को लेने की विविध चेष्टायें कर रहे हैं, उसे देखते हुए उन्हें यह लगता है कि वे अधिक काल तक जीवित नहीं रहेंगे।

काशी के गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपल श्री आर० टी० एच० ग्रिफिथ के पास स्वामीजी ने ऋग्वेद-भाष्य के प्रारम्भिक सूक्त सम्मति के लिए भेजे थे। स्वामीजी के निरुक्तकृत वेदार्थ पर आधारित भाष्य-शैली को सायण-भाष्य पर आधारित वेद की अंग्रेजी टीका करनेवाले ग्रिफिथ साहब भला क्या समझते? स्वामीजी ने अपने वेद-भाष्य के इन सभी आलोचकों—ग्रिफिथ, महेशचन्द्र न्यायरत्न, गुरुप्रसाद शास्त्री को "भ्रान्ति निवारण" नामक ग्रंथ में करारा उत्तर दिया है। स्वामीजी का थियोसोफी मत के प्रवर्त्तकों—रूस देशीया मैडम ब्लैवेट्स्की तथा कर्नल आल्काट से भी सौहार्द्र भाव था। इन लोगों ने तो अमेरिका में रहते ही स्वामीजी से पत्र-व्यवहार करना आरम्भ कर कर दिया था और स्वामीजी को अपना गुरु तथा स्वस्थापित थियोसोफिकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा कहते थे। थोड़े समय के पश्चात् वे भारत में भी आए। उन्होंने बम्बई तथा उत्तरप्रदेश के अनेक नगरों में भ्रमण किया और आर्यसमाजों के मंचों से भाषण दिये।

स्वामीजी से इन लोगों की भेंट मेरठ में हुई। कर्नल और मैडम स्वामीजी के प्रति आदर का भाव रखते हुए भी आर्यसमाज की ख्याति का अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए दुरुपयोग करना चाहते थे। इसी बात को लेकर आर्यसमाज और थियोसोफी में मतभिन्नता हो गई, जिसका परिणाम दोनों के सम्बन्ध-विच्छेद के रूप में हुआ। स्वामीजी ने इसकी औपचारिक घोषणा बम्बई में की। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द का वेद-विषयक प्रयत्न अपने काल में ही यूरोपीय विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कर सका था। कालान्तर में तो उनके वेद-विषयक विचारों का विस्तार से अध्ययन यूरोप में हुआ ही। रूस के लियो तॉल्स्तॉय और अमेरिका के एण्ड्रू जैक्सन डेविस जैसे अध्यात्मवादी योगी आर्यसमाज की विचारधारा से प्रभावित हुए। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स में आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द का महत्त्वपूर्ण शब्दों में उल्लेख हुआ है। Modern Religious Movements in India के लेखक पादरी जे० एन० फर्कुहर ने भी आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के विषय में विस्तार-पूर्वक प्रकाश डाला है यद्यपि यह बहुत-कुछ पूर्वाग्रहग्रस्त है। □

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार

लेखक—**श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती**

स्वामीजी की अँग्रेजी पुस्तक 'Founders of Sciences in Ancient India' का सारे विश्व में स्वागत हुआ है और उसके कई संस्करण हो चुके हैं। यह हिन्दी संस्करण अब पुनः छप रहा है। इसमें निम्न विषय सम्मिलित हैं :

१. **अथर्वन् :** अग्नि के पहले आविष्कारक
२. **अग्नि के** द्वारा यन्त्र साधनों का आविष्कार
३. **दीर्घतमस् :** वैदिक संवत् के आविष्कर्ता
४. **गार्ग्य** द्वारा नक्षत्रों का पहली बार संख्यान
५. **भरद्वाज** द्वारा प्रथम वनस्पति गोष्ठी का सभापतित्व
६. **आत्रेय पुनर्वसु** और उनकी चिकित्सापीठ
७. **सुश्रुत :** शल्य चिकित्सा के पिता
८. **कणाद :** यथार्थवाद, कारणवाद और परमाणु सिद्धान्त के पहले प्रतिपादक
९. **मेधातिथि :** अंकों को पहले-पहल परार्ध तक पहुँचाने वाले
१०. **आर्यभट्** द्वारा बीजगणित का शिलारोपण
११. **लगध :** ज्योतिष को युक्ति संगत करने वाले प्रथम ऋषि
१२. **लाटदेव और श्रीषेण** द्वारा भारत में ग्रीक ज्योतिष का सूत्रपात
१३. **बौधायन :** सबसे पहला महान् ज्यामितिज्ञ

यह महान् ग्रन्थ 'वेदप्रकाश साइज' में छपकर तैयार बढ़िया कागज़, आफसैट की छपाई, कपड़े की पक्की जिल्द मूल्य ३२५-०० ।

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली

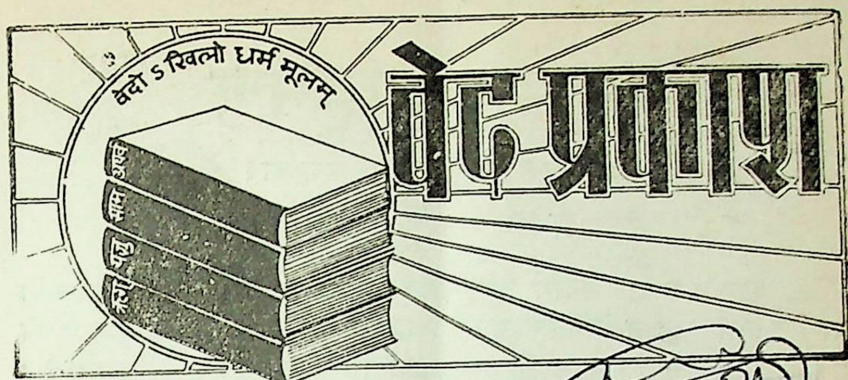
इतिहासवेत्ता प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा संकलित व सम्पादित

प्रथम भाग : तपोनिधि महात्मा हंसराज और उनका युग
द्वितीय भाग : अमृत कलश
तृतीय भाग : अमृत वर्षा
चतुर्थ भाग : वेदामृत

८०० से अधिक पृष्ठ मूल्य २४०-००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



वेदप्रकाश का विशेषांक

वेदप्रकाश का अगस्त का अंक ३९वें वर्ष का पहला अंक था। यह अंक श्रावणी अंक था तथा इसमें डॉ० भवानीलाल भारतीय के वेद और महर्षि दयानन्द विषयक लेख थे। सितम्बर के इस ग्रंक में पं० धर्मदेव मनीषी के विशेष लेख हैं।

अक्टूबर का अंक वैदिक सिद्धान्तों पर "दो सखियों की बात" विशेषांक होगा। इस अंक को तैयार किया है वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार ने। यह अंक हम उन्हीं ग्राहकों को भेजेंगे जिनका इस वर्ष का वार्षिक शुल्क हमारे कार्यालय में पहुँच गया है।

इसी प्रकार स्वामी वेदानन्द जी की एक पुस्तक "वैदिक धर्म" के लगभग आठ पृष्ठ हर अंक में इस वर्ष में देंगे। यह अद्‌भुत पुस्तक है। वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि के प्रमाणस्वरूप स्वामी वेदानन्द जी ने वेद-मन्त्रों को उद्धृत किया है। हर अंक में विशेष सामग्री देते ही रहते हैं, इस वर्ष विद्वानों से विशेष अनुरोध करके आपके लिए अधिक-से-अधिक ज्ञानवर्धक व सुरुचिपूर्ण लेख प्रकाशित करेंगे।

हम फिर निवेदन करते हैं कि जिन पाठकों ने वेदप्रकाश का वार्षिक शुल्क १५ रु० अभी तक नहीं भेजा है वे तुरन्त भेज दें, बल्कि यह भी चाहेंगे कम-से-कम एक वर्ष के लिए वेदप्रकाश अपने इष्ट मित्रों, बहन-बेटियों को भिजवायें। हम लोग शिकायत ही करते हैं कि हम आर्यों की नई पीढ़ी को हमारे सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं। इसके लिए प्रयत्न तो हमें ही करना होगा। इसलिए अपना वार्षिक शुल्क भेजते हुए अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को वेदप्रकाश भेजने के लिए उनका शुल्क भी भेजें और अन्यों को भी प्रेरित करें।

—विजय कुमार

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक २] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [सितम्बर १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१—वेद में प्रातकालिक ईशस्तुति

पं० धर्मदेव 'मनीषी' वेदतीर्थ, गुरुकुल कालवा जि० जीन्द

यजुर्वेद चौंतीसवें अध्याय के चौंतीस से अड़तीस इन पाँच मन्त्रों को महर्षि दयानन्द जी महाराज ने 'संस्कारविधि' गृहस्थ प्रकरण में सब मनुष्यों को नित्य प्रातः उठकर चिन्तन करना चाहिए, ऐसा विधान किया है। उनके यहाँ अर्थ, भावार्थ और मन्त्रों से क्या शिक्षा प्राप्त होती है, यह प्रस्तुत किया जाता है—

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रँ हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रँ हुवेम ॥१॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(प्रातः) प्रभात-वेला में (अग्निम्) पवित्र, स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा व अग्नि को, (प्रातः) प्रभात में (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को, (प्रातः) प्रभात में (मित्रावरुणा) प्राण और उदान को (प्रातः) प्रभात में (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक को (हवामहे) स्वीकार करते हैं, वा बुलाते हैं। (प्रातः) प्रभात में (भगम्) सेवन करने योग्य भाग (पूषणम्) पुष्टिकारक भोग को (ब्रह्मणः) धन वा वेद के (पतिम्) स्वामी व पालक को (प्रातः) प्रभात में (सोमम्) ओषधिगण को (उत) और (रुद्रम्) जीव को भी (हुवेम) ग्रहण करते हैं—वैसे तुम भी करो।

भावार्थ—जो मनुष्य प्रातः परमेश्वर की उपासना, अग्निहोत्र, ऐश्वर्य की उन्नति का उपाय, प्राण और उदान की पुष्टि, अध्यापक-उपदेशक-विद्वानों तथा

ओषधियों का सेवन और जीव को प्राप्त करने तथा जानने का प्रयत्न करते हैं, वे सब सुखों से अलंकृत होते हैं।

उपदेश—हम लोग प्रभात-वेला में उस प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की और प्रभात-वेला में उस परमैश्वर्यवान् परमेश्वर की और प्रातःकाल के अवसर में प्राण और उदान दोनों के समान सर्वस्नेही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की और प्रभात-वेला में ही गुरु और उपदेशक-माता और पिता दोनों की उपासना करें, आदर करें, व्यवस्थित करें और नमस्कार करें। प्रभात-वेला में ही भजन करने योग्य, सबके पोषक, वेद और ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभु की और प्रभातकाल में ही उस अन्तर्यामी, प्रेरक और पापियों को रुलानेहारे, सर्वरोग-नाशक जगदीश्वर की उपासना करें ॥१॥

ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रँ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

अर्थ—हे मनुष्यो! जैसे हम—(प्रातः) प्रभात-वेला में (यः) जो (विधर्त्ता) विविध पदार्थों को धारण करनेवाला है, (आध्रः) अपुत्र का पुत्र है, (चित्) और (यम्) जिस ऐश्वर्य को (मन्यमानः) स्वीकार करनेवाला, (तुरः) शीघ्रकारी (चित्) और (राजा) प्रकाशमान राजा है, (यम्) उक्त (भगम्) ऐश्वर्य का (चित्) भी (भक्षि) सेवन कर, (इति) इस प्रकार से (आह) परमेश्वर उपदेश करता है। उस —(अदिते) अविनाशी कारण के तुल्य माता के (पुत्रम्) पुत्र,(जितम्) अपने पुरुषार्थ से प्राप्त (उग्रम्) अत्युत्तम (भगम्) ऐश्वर्य को (हुवेम) हम ग्रहण करते हैं, वैसे तुम भी स्वीकार करो।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो! तुम सब प्रातःकाल से लेकर शयनपर्यन्त यथाशक्ति-सामर्थ्य, विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति करके आनन्द भोगो, दरिद्रों को सुख प्रदान करो, यह ईश्वर का उपदेश है।

उपदेश—प्रातः पाँच घड़ी रात्रि रहे तब सदा जयशील अथवा प्रभातकाल में सबके हृदयों पर वश करनेवाले, सबके सेवन करने योग्य, तेजस्वी, बलशाली, इस आदित्य को भी गिरने से बचानेहारे, परमात्मा की हम उपासना करते हैं। जो सूर्य आदि लोकों का विशेष रूप से धारण करनेहारा है और दरिद्र पुरुष भी और बलशाली, वेगवान् पुरुष और समृद्ध राजा भी जिस सेवन, भजन करने योग्य ईश्वर को अपना इष्टदेव स्वीकार करता हुआ मैं उसका भजन-उपासना करूँ इस प्रकार कहा करता है ॥२॥

ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

अर्थ—हे (भग) ऐश्वर्य से युक्त (प्रणेतः) पुरुषार्थ की ओर प्रेरणा करनेवाले,

(भग) ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, (सत्यराधः) सत्यधनों से युक्त, (भग) भजनीय ईश्वर ! तू—(नः) हमारी (इमाम्) इस वर्तमान (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) देता हुआ (उदव) उत्तमता से रक्षा कर। हे (भग) [विद्यारूप] ऐश्वर्य को प्रदान करने-वाले विद्वान् ! तू (गोभिः) गौ आदि तथा (अश्वः) घोड़े आदि पशु और (नृभिः) नायक नरों के साथ (नः) हमें (प्रजनय) प्रसिद्ध कर, हे (भग) भजन करनेवाले सन्त पुरुष ! जिससे हम (नृवन्तः) नरों से युक्त (प्र+स्याम) अच्छे प्रकार होवें, वैसा कर।

भावार्थ—मनुष्य जब-जब ईश्वर-प्रार्थना तथा विद्वानों का संग किया करें तब प्रज्ञा की ही याचना करें, अथवा सन्त पुरुषों की कामना किया करें।

उपदेश—हे भगवन् परमैश्वर्यवन् ! (भग) ऐश्वर्य के दाता संसार वा परमार्थ में आप ही हो तथा (भग प्रणेतः) आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ। सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले करें, क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे भगवन् ! (सत्यराधः) सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिए तथा जो मोक्ष कहाता है, उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आपसे भिन्न कोई नहीं है। (भगेमां धियं ददन्नः) हे सत्य भग ! ऐश्वर्य—सर्वोत्तम बुद्धि हमको आप दीजिए जिससे हम लोग आप, आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान, ज्ञान, इनको यथावत् प्राप्त हों। सो हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को (उदव)=उद्गमय=प्रापय=प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें। (भग प्र नो जनय) हे सर्वैश्वर्योत्पादक ! हमारे लिए भग=ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार से उत्पन्न कर। (गोभिरश्वैः) सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अनुत्तम=अत्युत्तम ऐश्वर्य हमको सदा के लिए दीजिए। हे सर्वशक्तिमत् !(भग प्र नृभिर्नृ वन्तः स्याम) आपकी कृपा-कटाक्ष से सब दिन हम लोग उत्तम-उत्तम पुरुष, स्त्री और सन्तान, भृत्यवाले हों। आपसे हमारी अधिक यही प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हममें दुष्ट और मूर्ख न रहे, तथा न पैदा हो, जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्ति हो, और निन्दा कभी न हो।

(महर्षि दयानन्दकृत 'आर्याभिविनयः' द्वितीयः प्रकाशः मन्त्र ११)

ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व ऽ उत मध्ये ऽ अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवाना ँ सुमतौ स्याम ॥४॥

अर्थ—हे (मघवन्) परम पूजित धन से युक्त ईश्वर ! हम लोग—(इदानीम्) वर्तमान समय में (उत) भी (प्रपित्वे) पदार्थों के प्राप्त करने में, (उत) और भविष्यत्काल में (उत) भी (अह्नाम्) दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) सकल ऐश्वर्य से युक्त (स्याम) होवें। (उत) और (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय समय

में (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) सुमति में रहते हुए (भगवन्तः) सकल ऐश्वर्य से युक्त (स्याम) होवें।

भावार्थ—मनुष्य वर्तमान और भविष्यत् में योगैश्वर्य की उन्नति से लौकिक व्यवहार की वृद्धि और प्रशंसा में सदा प्रयत्न करें।

उपदेश—हे परमपूजित धन से युक्त ईश्वर ! हम लोग—इस वर्तमान समय में उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने में लगे रहें तथा भविष्यत्काल में भी प्रतिदिन सकल ऐश्वर्य से युक्त हों। सूर्य के उदय-काल में विद्वानों की सुमति में रहकर सकल योग-ऐश्वर्य की उन्नति करें। लौकिक व्यवहार की वृद्धि और प्रशंसा में सदा प्रयत्न करें ॥४॥

ओ३म् भग ऽ एव भगवाँ ऽ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व ऽ इज्जोहवीति स नो भग पुर ऽ एता भवेह ॥

अर्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! जो (भगः) भजनीय एवं सेवनीय (एव) ही (भगवान्) प्रशस्त ऐश्वर्य से युक्त (अस्तु) है, (तेन) उस ऐश्वर्यस्वरूप भगवान् परमेश्वर के साथ (वयम्) हम (भगवन्तः) सकल शोभा से युक्त (स्याम) होवें। हे (भग) अखिल शोभा से युक्त ईश्वर ! (तम्) उस (त्वा) तुझको (सर्वः) सब जनता (इत्) ही (जोहवीति) अत्यन्त पुकारती है। हे (भग) सकल ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ईश्वर ! (सः) वह तू—(इह) यहाँ (नः) हमारा (पुर एता) अग्रगामी (भव) हो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम--जो सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न परमेश्वर है, और उसके साथ इसके उपासक विद्वान् और उनके साथ सिद्ध और श्रीमान् लोग हों। जो जगदीश्वर माता-पिता के तुल्य हम पर कृपा करता है, उसकी भक्ति-पूर्वक यहाँ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् सदा करो।

उपदेश—हे सर्वाधिपते ! महाराजेश्वर ! आप (भगः) परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो। हे (देवाः) विद्वानो ! तेन=भगवतेश्वरेण प्रसन्नेन तत्सहायेर्वव= उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से (वयं······स्याम) हम लोग परमैश्वर्य-युक्त हों। हे (भग) परमेश्वर ! सर्व संसार (तं त्वा) उन आपको ही (जोहवीति) ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है। क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है, जो आपको प्राप्त होने की इच्छा न करे ? (स नो······भवेह) सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों। फिर कभी हमसे आप और ऐश्वर्य अलग न हों। आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें और आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहें ॥५॥

(महर्षि दयानन्दकृत 'आर्याभिविनय' द्वितीयः प्रकाशः मन्त्र ४५)

इस प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना-उपासना करनी चाहिए।

प्रातर्वेलायामिन्द्रभजनम्—

वयं प्रभातवेलायां भगमिन्द्रं हवामहे ।।
असि अग्निः पतिः पूषा सदा मित्रं वरेण्यो मे ।
अश्विनौ च रुद्रोऽसि वयं सोमं हवामहे ।।१।।
जयी भगवान् तेजस्वी विधर्त्ता खादीनां कर्त्ता ।
असि राजा तुरश्चिच्च प्रभु मान्यं भजामहे ।।२।।
भगः सत्यस्य राधोऽसि प्रणेता धीः प्रदातासि ।
नरैरश्वैस्तथा गोभिर्वयं नित्यं मोदामहे ।।३।।
इदानीं स्याम भगवन्तः प्रपित्वेह्नामुत मध्ये ।
अर्कस्योदिता मघवन् वयं मेधामेघामहे ।।४।।
पुर एता भव देव ! विबोधय कोऽस्ति पन्था मे ।
वयं तु प्राणिनां मघवन् कल्याणं याचामहे ।।५।।

(सुदर्शनदेवाचार्यः)

अर्थ—हम प्रातःकाल की शुभ वेला में कल्याणकारी इन्द्र परमात्मा की स्तुति करते हैं।। हे ईश्वर ! तू अग्नि, पति, पुष्टकर्त्ता, मित्र एवं हमारे वरण करने योग्य है। अश्विनौ, रुद्र, सोम आदि संज्ञावाले परमेश्वर को हम बुलाते हैं ।।१।। वह परमात्मा विजय प्राप्त करानेवाला, तेजस्वी, सबका धारक तथा आकाशादि का निर्माता है। तू सभी का राजा, उत्तम अमन्दानन्द देनेवाला है, ऐसे प्रभु की हम भक्ति करते हैं ।।२।। हे भगवन्, तू कल्याण, ऐश्वर्य तथा सत्य को सिद्ध करानेवाला है। मेधा बुद्धि का प्रदान करनेवाला है तथा जगत् का कर्त्ता है। हे प्रभो ! हम आपकी कृपा से सज्जन पुरुषों, वेगवान् घोड़ों तथा दुधारू गायों के द्वारा सदा प्रसन्न रहें ।।३।। हम दिन के मध्य में भी आपको प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली हों। हे इन्द्र ! सूर्योदय के समय हम मेधा बुद्धि की ही याचना करते हैं ।।४।। पूर्व काल से ही विश्व के पूज्य देव ! कृपया मुझे सच्चा रास्ता बताओ तथा सत् ज्ञान का प्रकाश करो। हम तो प्राणि-मात्र का कल्याण चाहते हैं। उसी की माँग करते हैं ।।५।।

२—वेद में ईश्वरस्तुति-प्रार्थना-उपासना के आठ मन्त्र

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ।।१।। —यजुर्वेद अध्याय ३०, मन्त्र ३

अर्थ—हे (देव) दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले (सवितः) उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव में प्रेरणा करनेवाले परमेश्वर ! तू हमसे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्ट

आचरणों वा दुःखों को (परा+सुव) दूर भगा, और (यत्) जो (भद्रम्) धर्माचरण वा सुख है (तत्) उसे हमारे लिए (आ+सुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जैसे—उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत करके श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है, वैसे राजा भी प्रजा को अधर्म से निवृत्त करके धर्म में प्रवृत्त करे; और स्वयं भी वैसा ही करे ॥१॥

शिक्षा—हे दिव्य गुण-कर्म-स्वभाववाले, उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव में प्रेरणा करनेवाले परमेश्वर ! तू हमारे सब दुष्ट आचरणों तथा दुःखों को दूर कर; और जो धर्माचरण तथा सुख है उसे हमारे लिए सब ओर उत्पन्न कर ॥१॥

हे देव सवितर् विश्वकर्ता शुद्ध तेज महान् हो,
दुरितानि दुर्गुण दुर्व्यसन से मुक्त करते प्राण हो।
आचरण दो शुद्ध हम में भद्र भावोद्गान है,
पापहर्ता शुद्धकर्ता तुम्हीं एक भगवान् हो ॥१॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

—यजुर्वेद अध्याय १३, मन्त्र ४

अर्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो इस (भूतस्य) उत्पन्न जगत् का (जातः) जनक, (पतिः) पालक, (एकः) अद्वितीय, (हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ=मध्य में सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थ विद्यमान हैं वह परमेश्वर (अग्रे) सृष्टि से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था, उसने (इमाम्) इस सृष्टि को रचकर (उत) और (पृथिवीम्) प्रकाश-रहित भूगोल आदि को, (द्याम्) प्रकाशमय सूर्य आदि को (दाधार) धारण किया है, उस (कस्मै) सुखस्वरूप प्रजापति (देवाय) प्रकाशमान परमेश्वर की (हविषा) आत्मा आदि सामग्री से (विधेम) परिचर्या-सेवा करते हैं, वैसे तुम भी इसकी सेवा करो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—इस सृष्टि से पूर्व परमेश्वर ही जागरूक था, जिसने इन लोकों को धारण किया है, जो प्रलय-समय में इनका भेदन करता है, उसी परमेश्वर को उपास्य मानो ॥२॥

शिक्षा—परमेश्वर का स्वरूप—परमेश्वर इस उत्पन्न मात्र जगत् का जनक तथा पालक है, वह अद्वितीय है, उसके मध्य में ही सूर्य-चन्द्रादि तेजस्वी पदार्थ विद्यमान हैं, परमेश्वर ही सृष्टि से पूर्व विद्यमान था, वह ही इस सृष्टि को रचकर पृथिवी आदि प्रकाशरहित तथा सूर्यादि प्रकाशमय लोकों को धारण कर रहा है। उसी की उपासना हम सब श्रद्धा से करें, क्योंकि वह परमेश्वर सुखस्वरूप तथा सुखों का दाता है ॥२॥

वर्तमान और प्रलयकाल में प्राणी मात्र का जो स्वामी है,
सूर्य चन्द्र तारे अन्तर् में, सबका वह अन्तर्यामी है।
द्यौ पृथिवी और अन्तरिक्ष का आश्रय वह कहलाता है,
कौन नियन्ता? वन्दन किसका? वह ओ३म् एक महान् है ॥२॥

य ऽ आत्मदा बलदा यस्य विश्व ऽ उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

—यजुर्वेद अध्याय २५।मन्त्र १३

अर्थ—हे मनुष्यो! (यः) जो (आत्मदाः) आत्मा का दाता तथा (बलदाः) बल का दाता है और (यस्य) जिसके (प्रशिषम्) प्रशासन की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं, एवं जिसके सान्निध्य से सब व्यवहार उत्पन्न होते हैं; (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय (अमृतम्) अमृत है, और (यस्य) जिसकी आज्ञा का भंग करना (मृत्युः) मृत्यु है, (तस्मै) उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) देव की हम लोग (हविषा) होम योग्य पदार्थ से (विधेम) सेवा करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर के प्रशासन में बनी हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम से चलते हैं, जिस सूर्य के बिना वर्षा और आयु का क्षय नहीं होता, वह सूर्य जिसने बनाया है, उसकी ही उपासना सब लोग मिलकर करें ॥३॥

शिक्षा—उपासित ईश्वर क्या देता है—जो ईश्वर उपासना करने से आत्मज्ञान प्रदान करता है, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाता है, उसके प्रशासन की सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं। सब व्यवहार उसी से उत्पन्न होते हैं। उसका आश्रय (उपासना) अमृत है। उसकी आज्ञा का भंग करना मृत्यु है। अतः उस सुखस्वरूप, सबके प्रकाशक परमात्मा की सकल उत्तम सामग्री से हम लोग उपासना करें ॥३॥

"आत्मज्ञान और बल का दाता, विश्व जिसे अपनाता है,
जीव प्रशंसा जिसकी करते, वही मृत्यु का दाता है।
जिसकी दया असीम से, मिलता सबको जीवन दान है,
कौन नियन्ता? वन्दन किसका? वह ओ३म् एक महान् है ॥३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक ऽ इद्राजा जगतो बभूव।
य ऽ ईशे ऽ अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

अर्थ—हे मनुष्यो! जैसे हम—(यः) जो सूर्य (प्राणतः) प्राणी एवं (निमिषतः) चेष्टा करनेवाले (जगतः) संसार का (महित्वा) अपनी महिमा से (एकः) एक (इत्) ही (राजा) प्रकाशक (बभूव) है; (यः) जो (अस्य) इस

(द्विष्पदः) दो पैरों वाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पदः) चार पैरों वाले गौ आदि को (ईशे) ऐश्वर्य प्रदान करता है; (तस्मै) उस (कस्मै) सुखकारक (देवाय) दीपक—प्रकाशक सूर्य के (हविषा) गुणों को ग्रहण करके (विधेम) सेवन करते हैं, वैसे तुम भी करो ।।४।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। यदि सूर्य न हो तो स्थावर और जंगम जगत् अपना कार्य नहीं कर सकता। जो सूर्य सबसे महान्, सबका प्रकाशक और ऐश्वर्य का हेतु है, उसका सब मनुष्य युक्ति से सेवन करें ।।४।।

शिक्षा—सूर्य कैसा है—सूर्य चेष्टा करनेवाले प्राणीरूप संसार का अपनी महिमा से अकेला ही प्रकाशक है। वह दो पाँव वाले मनुष्य आदि और चार पाँव वाले गौ आदि प्राणियों को ऐश्वर्य प्रदान करता है। उस सुखकारक, सबके प्रकाशक सूर्य के गुणों को ग्रहण करके उसका सेवन करें। यदि सूर्य न हो तो स्थावर और जंगम जगत् अपना कार्य नहीं कर सकता। सूर्य सबसे महान्, सबका प्रकाशक, ऐश्वर्य-प्राप्ति का हेतु है। सब मनुष्य उसका युक्तिपूर्वक सेवन करें ।।४।।

महिमा से अनन्त जो अपनी, वह विराट् बन जाता है,
चर और अचर सकल जगत् का, वह सम्राट् कहाता है।
दोपाये चौपायों को, प्रभु देता सबको प्राण है,
कौन नियन्ता ? वन्दन किसका ? वह ओ३म् एक महान् है ।।४।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।
यो ऽ अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।५।।

अर्थ—हे मनुष्यो ! (येन) जिस जगदीश्वर ने (उग्रा) तीव्र तेजवाले (द्यौः) सूर्य आदि प्रकाशवान् पदार्थ, (च) और (पृथिवी) भूमि (दृढा) दृढ़ की है; (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया है; (येन) जिस जगदीश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है; (यः) जो (अन्तरिक्षे) मध्यवर्ती आकाश में वर्तमान (रजसः) लोक-समूह का (विमानः) विविध प्रकार से निर्माण करनेवाला है; उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) स्वप्रकाशस्वरूप सकल सुखदाता ईश्वर के लिए हम (हविषा) प्रेम-भक्तिभाव से (विधेम) सेवा करें वा उसे प्राप्त करें, इस प्रकार तुम भी इसकी सेवा करो ।।५।।

भावार्थ—जो सकल जगत् को धारण करनेवाला, सब सुखों का दाता, मोक्ष का साधक, आकाश के समान व्याप्त परमेश्वर है उसकी ही भक्ति करो ।।५।।

शिक्षा—परमेश्वर कैसा है—तीव्र तेजवाले सूर्य आदि प्रकाशवान् पदार्थ तथा भूमि परमेश्वर ने रची है। वह सब सुखों को धारण किये हुए है, इसलिए सब सुखों का दाता है। दुःखरहित मोक्ष को भी उसने धारण किया है, इसलिए मोक्ष का

साधक भी वही है। वह स्वयं आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त है तथा आकाश में वर्तमान लोकों का विशेष निर्माण करता है। इसलिए हम उस सुखस्वरूप, स्वप्रकाश, सकल सुखदाता परमेश्वर की प्रेमपूर्ण भक्तिभाव से पूजा करें, उसे प्राप्त करें ॥५॥

उग्र सूर्य, पृथिवी, शशि, तारे, किये हैं जिसने भीतर धारण,
वही मोक्ष-सुख देनेवाला सभी दुःखों का करे निवारण।
तेजवान् वह सभी ग्रहों को, घुमा रहा अन्तर्धान है,
कौन नियन्ता ? वन्दन किसका ? वह ओ३म् एक महान् है ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जाता) उत्पन्न हुए भूगोलादि जगत् को बनानेहारा और (परिता) व्यापक (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले होके हम लोग भक्ति करें (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो ! जो सब जगत् में व्याप्त है, सबके प्रति माता-पिता के समान वर्तमान है, दुष्टों को दण्ड देनेवाला और उपासना के योग्य है, उस जगदीश्वर की ही उपासना करो। इस प्रकार अनुष्ठान से तुम्हारी सब कामनाएँ अवश्य सिद्ध होंगी ॥६॥

शिक्षा—ईश्वर प्रजा का स्वामी है। जो इच्छादि गुणों से युक्त जीव, रूप आदि गुणों से विशिष्ट प्रकृति-पदार्थों को सब ओर से व्याप्त कर रहा है अर्थात् ईश्वर सब जगत् में व्यापक है, जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग उसकी उपासना करते हैं उसकी कृपा से वह-वह कामना हमारी सिद्ध हो जाती है ॥६॥

हे प्रजापति ! घट-घट व्यापक, तुम बिन कौन रचे जग को,
कभी तिरस्कृत नहीं करते हो, मनुज कीट पशु या खग को।
भक्त कामना लेकर आए अभयपूर्ण वरदान हो,
हों ऐश्वर्यपति, धन के स्वामी, तुम्हीं ओ३म् सबसे महान् हो ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा ऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस (तृतीये) जीव और प्रकृति से विलक्षण तीसरे (धामन्) धाम=आधारभूत जगदीश्वर में—(अमृतम्) मोक्षसुख को (आनशानाः)

प्राप्त करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, और जो—(विश्वा) सब (भुवनानि) लोक-लोकान्तरों को (वेद) जानता है; (सः) वह (नः) हमारा (बन्धुः) भ्राता के समान माननीय, सहायक है; (जनिता) उत्पन्न करनेवाला है; (सः) वह (विधाता) सब पदार्थों और कर्मफलों का विधान करनेवाला है; ऐसा तुम निश्चय करो ।।७।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस शुद्धस्वरूप परमात्मा में योगी विद्वान् मुक्ति-सुख को प्राप्त करके प्रसन्न रहते हैं, उसे ही सर्वज्ञ, सबका उत्पादक और सहायक मानो, अन्य को नहीं ।।७-।

शिक्षा—परमेश्वर कैसा है—परमेश्वर जीव और प्रकृति से विलक्षण होने से तृतीय है । वह सबका आधारभूत धाम है । उस शुद्ध-स्वरूप परमेश्वर में योगी विद्वान् लोग मोक्ष-सुख को प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं, सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं । वही परमेश्वर सब लोक-लोकान्तरों को तथा जन्म, स्थान और नामों को जानता है । इसलिए वह सर्वज्ञ है । वही हमारा भ्राता अर्थात् भाई के समान मान के योग्य एवं सहायक है, सबका उत्पादक है, सब पदार्थों और कर्मफलों का विधाता है, ऐसा निश्चय रखें ।।७।।

है वह सुखदायक भ्राता, सकल जगत् का त्राता है,
नाम स्थान भुवन जन्मों का, अखिल विश्व का ज्ञाता है,
भक्त मुक्त हो जहाँ विचरते, मोक्ष परम कल्याण है,
कौन गुरु और सखा हमारा वह ओ३म् सबसे महान् है ।।७।।

अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम ऽ उक्तिं विधेम ।।८।।

—यजुर्वेद अध्याय ४०, मन्त्र १६

अर्थ—हे (देव) दिव्यस्वरूप (अग्ने) स्वप्रकाशरूप करुणामय जगदीश्वर ! जिससे हम (ते) तेरे लिए (भूयिष्ठाम्) बहुत अधिक (नमः उक्तिम्) सत्कारपूर्वक प्रशंसा (विधेम) करते हैं, इससे (विद्वान्) सर्वज्ञ तू (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलता और (एनः) पापाचरण को (युयोधि) दूर कर । (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान, धन और धन प्राप्त होनेवाले सुख की प्राप्ति के लिए (सुपथा) धर्म-पथ से (विश्वानि) सब (वयुनानि) श्रेष्ठ ज्ञान एवं श्रेष्ठ बुद्धि (नय) प्राप्त करा ।।८।।

भावार्थ—जो सच्ची भावना से परमात्मा की उपासना करते हैं, उसकी आज्ञा का पालन करते हैं तथा सबसे अधिक सत्कार करने योग्य परमात्मा को मानते हैं, उनको दयालु ईश्वर पापाचरण के मार्ग से हटाकर, धर्म-मार्ग में चलाकर, उन्हें विज्ञान देकर, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि के लिए समर्थ बना देता है । इसलिए

सब मनुष्य एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़कर किसी की भी उपासना न करें ।।८।।

शिक्षा—ईश्वर किन मनुष्यों पर कृपा करता है—जो मनुष्य दिव्यस्वरूप, स्व-प्रकाशमय, करुणामय, जगदीश्वर की बहुत अधिक सत्कारपूर्वक प्रशंसा करते हैं अर्थात् सच्ची भावना से परमेश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, सबसे ऊपर सत्कार योग्य परमात्मा को ही मानते हैं, उन पर विद्वान् दयालु परमेश्वर बड़ी कृपा करता है; कुटिलता और पापाचरण के मार्ग से पृथक् करता है; धर्मयुक्त मार्ग में चलाकर उन्हें विज्ञान, धन और धन से प्राप्त होनेवाले सुख प्रदान करता है। उन्हें श्रेष्ठ प्रज्ञान एवं श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त कराता है; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए उन्हें समर्थ बनाता है। अतः सब मनुष्य एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य की उपासना कभी न करें ।।८।।

हे अग्रणे ज्योतिर्मय स्वामी, हमें सुपथ पर सदा बढ़ाओ,
हम हों धनी, सुसम्पत् दानी, सदा ज्ञान के शिखर चढ़ाओ।
पाप कुटिल, दुष्कर्मों से दूर रहो कल्याण है,
करें प्रार्थना हम सब उसकी, वह ओ३म् सबसे महान् है ।।८।।

३—वेद में आत्म-तत्त्व

अथर्ववेद में कहा है—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ।। अथर्व० १०।८।२५

एक जीवात्मा बाल से भी अधिक सूक्ष्म है, और एक प्रकृति मानो नहीं दीखती, उससे अधिक सूक्ष्म और व्यापक परमात्मा देवता है, वह मेरा प्यारा है। अर्थात् परमात्मा जीव से सूक्ष्म और जीव में व्यापक है। वह सदा अंगसंग रहनेवाला है, अतः जीव को उससे प्यार करना चाहिए।

कल्याणाभिलाषी को प्रकृति के प्यार से ऊपर उठकर परमात्मा से प्रीति लगानी चाहिए। कितना कठिन और कितना सरल कार्य है यह ! यथार्थ ज्ञान के बिना यह सिद्ध नहीं होता।

'वैदिक योगी कह गये हैं—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयी।
—बृह० ४।५।६

अरे मैत्रेयी ! आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। दर्शन के साधन हैं—श्रवण, मनन, निदिध्यासन। श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः=वेदवचनों के द्वारा आत्मज्ञान

प्राप्त करना चाहिए। वेद से बढ़कर आत्मज्ञान करानेवाला ग्रन्थ ब्रह्माण्ड में दूसरा नहीं है। आत्म-जिज्ञासु को तो अवश्य वेद पढ़ना चाहिए। मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः= युक्तियों के द्वारा मनन करो। कहीं कोई श्रुति के नाम से अनर्गल बात ही न सुनाने लग जाए और श्रोता भ्रम में न पड़ जाए। उसके लिए कहा है मन्तव्यश्चो-पपत्तिभिः=युक्तियों से मनन करे। इसी कारण तर्कविद्या को शास्त्रों में अध्यात्म-विद्या कहा है।

यह बात सभी मानते हैं कि शरीर और इन्द्रिय आत्मा के लिए हैं। शरीर आत्मा का भोगाधिष्ठान=सुख-दुःख भोगने का ठिकाना है। इन्द्रियाँ आत्मा का करण=हथियार हैं। अतः आत्मा इनसे श्रेष्ठ है। कठोपनिषद् में इस तत्त्व का प्रति-पादन इन शब्दों में किया है—

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्।
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति।

इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ, मन से बुद्धि (अहंकार) उत्कृष्ट, अहंकार से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अव्यक्त और प्रकृति उत्कृष्ट है, अव्यक्त से पुरुष पर=उत्तम है। वह व्यापक सामर्थ्यवाला तथा अलिंग=किसी का उपादान कारण नहीं है। प्रकृति विकृति दशा को प्राप्त हो रही है, उसके विकार उसके अनुमापक हैं; किन्तु आत्मा का इस प्रकार का कोई विकार या कार्य नहीं, अतः ऋषि ने आत्मा को अलिंग कहा है। आत्मा की शक्तियाँ सारे देह में कार्य कर रही हैं, अतः उसे व्यापक कह दिया है

कठोपनिषद् में आत्मा के सम्बन्ध में और भी कहा है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाणि हयनाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

आत्मा को रथी समझ और शरीर को रथ, बुद्धि को कोचवान जान और मन को लगाम मान; इन्द्रियों को घोड़ा कहते हैं और विषयों को उनका घास। आत्मा, इन्द्रिय तथा मन इनके संघात को ज्ञानी लोग भोक्ता कहते हैं।

आत्मा अमर है, शरीर मर्त्य है। आत्मा अविनाशी है, शरीर विनाशी है किन्तु वासना के कारण 'अमृत्यो मर्त्येन सयोनिः' अमृत आत्मा मर्त्य के साथ एक ठिकाने-वाला हो रहा है। शुद्ध, पवित्र, विमल, उज्ज्वल जीव अशुद्ध, अपवित्र, समल, अन्धेरे शरीर में आन फँसा है। यही आत्मा का 'चारुचित्रं जनिम्' (ऋ० ५।३।३) सुन्दर अद्भुत जन्म है। आत्मा विष्णु समान बना हुआ है। संसार में रहता हुआ वह

संसार का संचालन कर रहा है। शरीर में बैठा आत्मा शरीर का संचालन कर रहा है।

आत्मा का परिणाम :

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीव: स विज्ञेय: स चानन्त्याय कल्पते ।। —श्वेता० ५।२

बाल के अगले हिस्से के सौ टुकड़े कर दिये जाएँ, उस सूक्ष्म सौवें हिस्से के भी सौ हिस्से कर दिये जाएँ, उस सूक्ष्म भाग के समान जीव है किन्तु सामर्थ्य बहुत है।

महर्षि दयानन्दजी ने भी कहा है—

जीव एक सूक्ष्म पदार्थ है जो परमाणु में भी रह सकता है। उसकी शक्तियाँ शरीर में प्राण और बिजली और नाडी के साथ संयुक्त हो रहती हैं। उनसे सब शरीर का वर्तमान जानता है।

श्वेताश्वतर और दयानन्द दोनों ने यह रहस्य वेद तथा योग द्वारा जाना।

भजन

आर्यों की सन्तान डरना क्या जानें।
जीव आत्मा अमर ये मरना क्या मानें।।
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, पढ़ लो गीता की वाणी।
कृष्ण की साफ जबानी, फिर मोह-शोक नादानी
करना क्या जानें ।।१।।

परनारी मात समाना, और परधन मिट्टी जाना।
इस सिद्धान्त को जाना, तो फिर माल पुराना
हरना क्या जानें ।।२।।

जीवन-पथ में बाधायें, चाहे कितनी भी आ जायें।
पर किंचित् न घबरायें, कभी वीर बहादुर आहें
भरना क्या जानें ।।३।।

जिन्होंने हमसे बात बिगाड़ी, हम आ गये तभी अगाड़ी।
बने अरि के लिए कुल्हाड़ी, "ताराचन्द" कदम पिछाड़ी
धरना क्या जानें ।।४।।

४—वेद में यज्ञ का स्वरूप

वैदिक धर्म के अनुसार जीवन यज्ञ है। जैसाकि छान्दोग्योपनिषद् में कहा है "पुरुषो वाव यज्ञः" मानव-जीवन यज्ञ है। यज्ञ का मूल अर्थ समझने से मानव-जीवन

का यज्ञ होना अवगत हो सकता है। यज्ञ के अर्थ हैं—देवपूजा, संगतिकरण तथा दान। देवपूजा का अर्थ है दैवी शक्तियों—सूर्य, चन्द्र, अग्नि,जल, पृथ्वी, वनस्पति आदियों से यथायोग्य उपकार लेना, विद्वानों का आदर-सत्कार करना, शिल्पियों, कलाकारों, कलाविदों, पदार्थ विद्या के पण्डितों का आदर करना। यज्ञ का दूसरा अर्थ है 'संगतिकरण'। यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय के १ से १७ तक प्रत्येक मन्त्र के अन्त में "यज्ञेन कल्पताम्" (यज्ञ के द्वारा सफल हो, समर्थ हो) आता है। उन मन्त्रों को देखने से प्रतीत होता है—शिक्षा, कृषि, पशुपालन, उद्यान, संस्थापन, कला, सेना-संचालन, संग्राम, भूगर्भ से सुवर्ण आदि का निकालना, प्राण-साधन, शरीर को उत्कृष्ट बनाना, उत्तम संतान उत्पन्न करना, चिकित्सा करना, शाला-निर्माण आदि-आदि मनुष्योपयोगी पदार्थों का साधन तथा संधान, सभी यज्ञ के अन्तर्गत हैं। इन कार्यों की सिद्धि और वह भी उत्कृष्ट सिद्धि एक व्यक्ति से साध्य नहीं, अपितु संघों के द्वारा इन कार्यों की निष्पत्ति संभव है। इन कार्यों पर दृष्टि डालने से एक बात और भी सामने आती है कि पदार्थों की योग्यता एवं उपयोगिता का विचार करके उनका उचित अनुपात में सम्मेलन और सम्मिश्रण करने से लाभ होता है। इसी को 'संगतिकरण' कहते हैं। यज्ञ का तीसरा अर्थ 'दान' है अर्थात् अपनी किसी वस्तु पर अपना अधिकार त्याग करके उस पर दूसरे का अधिकार करा देना। यह कार्य ऐसा है, जिसके बिना संसार का कार्य चल ही नहीं सकता। मनुष्य जब अकेला है तब तो कुछ कमाता है, उसका वह स्वामी है। उसका जब विवाह हो जाता है तब अपनी कमाई का भाग अपने दूसरे साथी को देता है। न दे तो गृहस्थी के शकट को चलाना विकट हो जाए। गृहस्थ राष्ट्र की इकाई—मूल है। यज्ञ के इन अर्थों पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि यज्ञ का अनुष्ठान विशाल बुद्धि एवं अद्भुत चातुर्य तथा माधुर्य की अपेक्षा करता है।

महर्षि दयानन्द जी की होम अर्थात् अग्निहोत्र के विषय में शिक्षा—

होम की सामग्री—"होम के द्रव्य चार प्रकार के हैं—(प्रथम सुगन्धित) कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि; (द्वितीय पुष्टिकारक) घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि; (तीसरे मिष्ट) शक्कर, शहद, छुवारे, दाख आदि; (चौथे रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियाँ।" (संस्कारविधिः, सामान्य प्रकरण)

होम की समिधा—"पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, बिल्व की समिधा, वेदी के प्रमाणे छोटी-बड़ी कटवा लेवें, परन्तु यह समिधा कीड़ा-लगी, मलीन-देशोत्पन्न, और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हो।"

अग्निहोत्र का समय—"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र का समय है।"

किन मन्त्रों से होम करें—"प्रातः और सायंकाल, सन्ध्योपासन के पीछे इन

पूर्वोक्त (अर्थात् नित्य अग्निहोत्र के) मन्त्रों से होम करें।" —पञ्चमहायज्ञविधि

होम के लाभ—(१) पूर्वोक्त सुगन्धादि युक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है। जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्ध-द्रव्य और घी, इन दोनों को चमचे में अग्नि से तपाके उनमें छोड़ देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं, क्योंकि उस सुगन्ध-द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दालादि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ानेवाले कर देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भाप उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषय

(२) जो वायु सुगन्धित द्रव्य के परमाणुओं से होम द्वारा आकाश में चढ़के वृष्टि-जल को शुद्ध कर देता और उससे वृष्टि भी अधिक होती है, क्योंकि होम करके नीचे गर्मी अधिक होने से जल भी ऊपर अधिक चढ़ता है। शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि ओषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती है। ऐसे प्रतिदिन सुगन्ध के अधिक होने से जगत् में नित्यप्रति अधिक-अधिक सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने के बिना दूसरे प्रकार से होना असम्भव है।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषय

क्या होम न करने से पाप भी होता है—

(१) "हाँ, क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु व जल में फैलाना चाहिए।"

—सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

(२) जहाँ जितने मनुष्यादि के समुदाय अधिक होते हैं वहाँ उतना ही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं किन्तु मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि हस्ति आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिए इकट्ठा करते हैं, इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है, सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है। इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टि-जल को बिगाड़नेवाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है, तो उसका निवारण करना भी उनको ही योग्य है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषय

क्या अग्निहोत्र स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर करें?

"सायं-प्रातः दोनों सन्धि-वेलाओं में सन्ध्योपासन करें। इसी प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष अग्निहोत्र भी नित्य किया करें।"

यदि अग्निहोत्र के समय स्त्री-पुरुष दोनों उपस्थित न हों तो फिर क्या किया जाए ?

"किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक ही स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे। अर्थात् एक-एक मन्त्र को दो-दो बार पढ़ के दो-दो आहुति करें।"

—संस्कारविधि, गृहस्थ प्रकरण

लिखा वेदों में विधान अद्भुत है महिमा हवन की ।।
जो वस्तु अग्नि में जलाई, कर हलकी ऊपर उड़ाई।
वायु से करके मिलान जाती है रस्ता गगन की ।।१।।
फिर आकाश-मण्डल में गई, वहाँ जल की होत सफाई।
वृष्टि हो अमृत समान, वृद्धि हो अन्न और धन की ।।२।।
जब अन्न की वृद्धि होती है, सब प्रजा सुखी होती है।
न रहता दुःख का निशान, आ जाए लहर अमन की ।।३।।
जब से यह यज्ञ छूटा है, लोगों का सुख मिटा है।
करो फिर यज्ञ महान्, क्यों सहते हो मार दुखन की ।।४।।

६—वेद में चोटी का विधान

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और आर्य जाति का सर्वस्व वेद है। 'धर्म-जिज्ञासामानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः'—जो धर्म को जानना चाहे उसके लिए परम प्रमाण श्रुति (वेद) ही है। संस्कृत में चोटी को शिखा कहते हैं। वेद भगवान् शिखा के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम।
केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिँ्हस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ।।

—यजुर्वेद अ० १९, मन्त्र ९२

इस युग के वेदों के प्रकाण्ड पण्डित महर्षि देव दयानन्द इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

हे मनुष्यो ! जिसके (आत्मन्) आत्मा में (उपस्थे) समीप स्थित होने में (वृकस्य) भेडिये के (लोम) बालों के (न) समान (व्याघ्रलोम) बाघ के बालों के (न) समान (मुख) मुख पर (श्मश्रुणि) दाढ़ी और मूँछ (शीर्षन्) सिर में (केशाः) बालों के (न) समान (शिखा) शिखा, चोटी (सिंहस्य) सिंह के (लोम) बालों के समान (त्विषिः) कान्ति=शोभा और (श्रियै) लक्ष्मी के लिए प्राप्त होने को समर्थ होता है।

भावार्थ—जिस प्रकार भेड़िये, व्याघ्र और सिंह के बाल, दाढ़ी और मूछें उनकी शोभा, कान्ति आदि गुणों को बढ़ानेवाले हैं, उसी प्रकार मनुष्य के सिर पर उसकी शिखा वा चोटी कान्ति, तेज वा शोभा और लक्ष्मी, ऐश्वर्य को बढ़ानेवाली है। सिंह व्याघ्र आदि का रौब, दबदबा, तेज, कान्ति उसके लम्बे केशों, जो दाढ़ी, मूँछ और शिखा के रूप में हैं, इसी प्रकार मनुष्य को शोभा और कान्ति भी शिखा द्वारा प्राप्त होती है।

उव्वट तथा महीधर दोनों ने अपने भाष्य में माना है कि चोटी को रखने से यश और शोभा की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र से स्पष्ट सिद्ध होता है कि बुद्धि और यश के लिए शिखा रखनी चाहिए। अथर्ववेद (१९।२२।१५) में 'शिखिभ्यः स्वाहा' शिखा रखनेवालों का कल्याण हो। पं० क्षेमकरण वेदभाष्यकार ने लिखा है, चोटी रखनेवालों की वाणी सुन्दर हो।

इस विषय में पं० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, जो आयुर्वेदशास्त्र के बहुत बड़े विद्वान् और सफल वैद्य हैं, वे अपनी 'चोटी का महत्त्व' पुस्तक में सप्रमाण लिखते हैं कि—आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति सबसे प्राचीन और पूर्ण वैज्ञानिक है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है सबसे अधिक रक्षा मर्मस्थानों की करनी चाहिए—'मर्माणि जीवधराणि प्रायेण मुनयो जगुः'।

शार्ङ्गधर ने लिखा है—जिन स्थानों पर आघात (चोट) लगने से मनुष्य शीघ्र मर जाता है वे मर्मस्थान हैं। ऊपर का श्लोक इसका साक्षी है। इसमें तो बहुत स्पष्ट कहा है कि जीव-धारण के अधिकतर स्थान मर्मस्थान ही हैं, ऋषि-मुनियों की यही मान्यता है। उन मर्मस्थानों में लघु मस्तिष्क और सुषुम्णा-केन्द्र भी है।

सन्निपातः शिरा-स्नायु-संधि-मांसास्थि-संभवः।
मर्माणि तेषु तिष्ठन्ति प्राणाः खलु विशेषतः॥

—भावप्रकाश, पूर्वखण्ड १

'शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस और अस्थि जहाँ एक स्थान पर होती हैं उसको मर्मस्थान कहते हैं, क्योंकि वहाँ पर विशेष रूप से प्राण रहते हैं।' इससे सिद्ध होता है कि इन मर्मस्थानों पर लगी चोट प्राणघातक होती हैं। अतः इन मर्मस्थानों की रक्षा करना अत्यावश्यक है। शिवसंहिता में लिखा है—

अत ऊर्ध्वं तालुमूलं सहस्रारं शिरोरुहम्।
अस्ति यत्र सुषुम्णानां मूलं सविस्तरं स्थितम्॥१५६॥

'इससे आगे तालु के मूल से जहाँ सहस्रों शाखाएँ शिर के उस भाग में एकत्रित होती हैं, जहाँ कि सुषुम्णा का मूल स्थान है वही शिखा (चोटी) रखने का स्थान है।'

तालुस्थानं च यत् पद्मं सहस्रारं पुरोहितम्।
तत् कन्दयोनिरेकोऽस्थि पश्चिमाभिमुखं च यत्॥१६१॥

'तालु के उस ऊपर के भाग में जहाँ हजारों केन्द्रग्रामी तारों का स्थान है, वहाँ कन्द नाम की एक अस्थि वा हड्डी है । यह सिर के पश्चिमी भाग में होती है ।'

तस्या मध्ये सुषम्णाया मूलं सविस्तरं स्थितम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं तदेवोक्तं मूलाधारपंकजम् ॥१६२॥

उसके मध्य में सुषुम्णा का स्थान है । इसी को ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं । मनुष्य के शरीर में १०७ मर्मस्थान होते हैं। उनमें से कुछ मर्मस्थान ऐसे हैं कि जिन पर चोट लगने से मनुष्य बहुत शीघ्र मर जाता है। सुषुम्णा का स्थान भी ऐसा ही है।

वेद भगवान् भी मर्मस्थानों की रक्षार्थ आदेश देता है—

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि ।
सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ॥ —सामवेद उ० अ० ३१

मर्मस्थानों की रक्षार्थ वेद ने कवच धारण करने की आज्ञा दी है। युद्ध में इसीलिए कवच आदि धारण करते हैं। सभी उपायों से मर्मस्थानों की रक्षा करनी चाहिए। जो वार्ता शरीरविज्ञान में हैं वही आयुर्वेद और वेद से भी पुष्ट होती हैं। यहाँ जिन स्थानों को सुषुम्णा-केन्द्र बताया है वही स्थान ब्रह्मरन्ध्र है। इसी स्थान को ज्ञानपथ भी कहते हैं और इसी स्थान पर शिखा धारण की जाती है।

सद्यःप्रसूत=तुरन्त ब्याही हुई गाय के बछड़े के पैर के खुर की जितनी चौड़ाई और मोटाई होती है उतने स्थान पर चोटी रखनी चाहिए, क्योंकि लघु मस्तिष्क और सुषुम्णा-केन्द्र का भी इतना ही स्थान होता है । इसमें वेद की शाखा का प्रमाण है—

"याज्ञिकैर्गोर्दर्णि मार्जनि गोक्षुरवच्च शिखा"

—यजुर्वेदीय कठ शाखा

अर्थात् गोक्षुर के समान चोटी रखनी चाहिए। लघु मस्तिष्क की लम्बाई तथा चौड़ाई और उसकी आकृति गौ के खुर से बहुत-कुछ मिलती है । प्रतीत होता है कि इसीलिए शास्त्र ने गौ के खुर के समान चोटी रखने का आदेश दिया है । इसी स्थान के माप की विधि निम्न प्रकार से वैद्य धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'चोटी का महत्त्व' में लिखी है। माथे के ऊपर के उस भाग से जहाँ से शिर के बाल उगने आरम्भ होते हैं और गर्दन के उस भाग तक जहाँ कि शिर के बालों का अन्त होता है, नाप लो और इस माप के चार भाग कर लो । माथे की ओर के दो भाग कर दो और एक भाग गर्दन की ओर छोड़ दो, जितना स्थान बाकी भाग के चौथे हिस्से का हो उतने स्थान में चोटी रखो। यह सद्योत्पन्न गाय के बछड़े के समान ही होता है।

महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—"जो विद्या का चिह्न यज्ञो-

पवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों को सदृश बन बैठना व्यर्थ है। जब पतलून आदि-आदि वस्त्र पहिरते हो और तमगों की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था?" इससे यही सिद्ध होता है कि (शिखा) चोटी और (यज्ञोपवीत) जनेऊ सबको धारण करना चाहिए; बिना इसके नहीं रहना चाहिए, क्योंकि ये हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं।

७—वेद में गौ की महिमा

वेद में गौ को घर की शोभा, कुटुम्ब का आरोग्य, बल और पराक्रम तथा परिवार का धन है यह स्पष्ट मन्त्रों में बताया है। यथा

१ 'गौ घर की शोभा' है इस विषय में निम्नलिखित मन्त्रभाग देखिए—

(१) गावः भद्रं अक्रन् (अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २१, मन्त्र १)

(२) गावः भद्रं गृहं कृणुथ (अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २१, मन्त्र ६)

"गौवें घर को कल्याण का स्थान बनाती हैं। अर्थात् जिस घर में गौवें रहती हैं वह घर कल्याण का धाम होता है।" जो पाठक गौ का महत्त्व जानेंगे वे इस बात की सत्यता का अनुभव कर सकते हैं।

२. पुष्टि देने वाली गौ—

मनुष्य को पुष्टि देनेवाली गौ है इसलिए हर एक घर में गौ का निवास होना चाहिए। इस विषय में निम्नलिखित मन्त्रभाग देखिये—

(१) गावः अस्मे रणयत् (अथर्व० का० ४, सू० २१, मं० १)

(२) गावः यूयं कृशं चित् मेदयथ। (अथर्व० का० ४, सू० २१, मं० ६)।

(३) अश्रीर चित् सुप्रतीकं कृणुथ (अथर्व० का० ४, सू० २१, मं० ६)

"गौवें हमें रमणीय बनाती हैं। कृश मनुष्य को गौवें पुष्ट बनाती हैं। निस्तेज को सतेज करती हैं।" इसीलिए घर में गौ रखनी चाहिए और हर एक को उस गौ माता का दूध पीना चाहिए, तथा उसकी उत्तम सेवा करनी चाहिए। हर एक गृहस्थी का यह आवश्यक कर्त्तव्य है।

३. गौ ही धन, बल और अन्न है—

मनुष्य को धन, बल और अन्न गौ ही देती है। सब यश गौ से प्राप्त होता है। यथा—

गावः भगः। गावः इन्द्रः। गावः सोमस्य भक्षः।

इमाः गावः स इन्द्रः (अथर्व० का० ४, सू० २१, मं० ५)

गौवें धन हैं, गौवें ही इन्द्र (बल) की देवता हैं, गौवें ही (दूध देने के कारण)

अन्न हैं, जो गौवें हैं वही इन्द्र है। गौवों को धन कहा जाता है।

४. उत्तम घास और पवित्र जलपान—

यजमान यज्ञ के लिए गौ की रक्षा करता है, इसलिए वह उनकी पालना का बड़ा प्रबन्ध करता है। यह प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय इस विषय में मन्त्र देखने योग्य है—

(गावः) सुयवसे रुशन्तीः।
सु प्रपाणे शुद्धा अपः पिबन्तीः॥ (अथर्व ४।२१।७)

"गौवें उत्तम घास खावें और उतम जलस्थान में शुद्ध जल पीवें।" शुद्ध घास खाने और शुद्ध जल पीने से गौ की उतम रक्षा होती है। इस प्रकार गौ की रक्षा करें और गौ के दूध से पाठक हृष्ट, बलिष्ठ, यशस्वी, तेजस्वी, प्रतापी और दीर्घायु हों।

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २१, गौ का अत्यन्त सुन्दर काव्य है। इतना उत्तम वर्णन बहुत ही थोड़े स्थान पर मिलेगा। गौ का महत्त्व इस काव्य में अति उत्तम शब्दों द्वारा बताया है। जो लोग यह काव्य पढ़ेंगे, वे गौ का महत्त्व जान सकते हैं।

वेद के उपदेश करने की शैली निराली है। कहीं आदेश करता है, कहीं निषेध करता है। कहीं प्रार्थना द्वारा कर्त्तव्याकर्तव्य का बोध कराता है, कहीं वास्तविक स्थिति आगे रखकर समझाता है। इन मन्त्रों में जो बात कही है वह पहले भी ठीक थी, आज भी सत्य है और कल को भी यथार्थ होगी। वेद के उपदेश सामयिक नहीं वरन् सनातन=सदा रहनेवाले, त्रिकालाबाधित हैं। अथर्ववेद ५।२८।३ में कहा है—

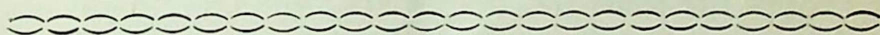
त्रयः पोषास्त्रिवृत्तिः श्रयन्तामनुक्तु पूषा पयसा घृतेन।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्॥

इस त्रिगुणात्मक जगत् में तीन पुष्टियाँ बनी रहें—(१) अन्न की बहुतायत, (२) पुरुषों की बहुलता, तथा (३) पशुओं की बहुतायत। वे इस संसार में बने रहें; पशुपति दूध-घी से भरपूर रहें। दूध-घी कहाँ से आए? पशुओं से। पशुओं में गौ का घी-दूध सबकी अपेक्षा उत्कृष्ट माना गया है। अतएव वेद में गौ की महिमा बहुत है। यथा—"गावो भगो गाव इन्द्रो मे" (अथर्व० ४।२१।५)—गौएँ ही भाग्य और गौएँ ही मेरा ऐश्वर्य हैं। गौएँ दुबले को मोटा कर देती हैं और शोभाहीन को भी सुन्दर बना देती हैं। मधुर बोली वाली गौएँ घर को कल्याणमय बना देती हैं। सभाओं में गौओं की बहुत कीर्ति कही जाती है। गौओं की पालने की रीति का भी थोड़ा-सा संकेत है—"प्रजावतीः सूयवसे रुशन्ती शुद्धाः अपः सु प्रपाणे पिबन्तीः" (अथर्व० ४।२१।७)—सन्तानसहित उत्तम चारे के कारण पुष्ट हों, उत्तम जल-पान के स्थान में शुद्ध जल का पान करें। आज गौभक्त आर्य इस उपदेश को भूल-सा

गया है। अब न अच्छा चारा मिलता है और न गौओं को शुद्ध जल पिलाने की व्यवस्था की जाती है। यह तभी हो सके जब "स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः" (ऋ० २।३५।७)—अपने घर में उत्तम दूध देनेवाली गौ हो। वेद के कथनानुसार जिसके दूध पीने से दुर्बल भी हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं और हीन सुश्रीक=सुन्दर शोभायमान हो जाते हैं, उससे पूरा लाभ उठाने के लिए उसे घर में पालना अच्छा होता है।

गोमाता की आरती

ओ३म्—जय जय गौ माता
बोलो तेरी जय में जय, भारत की माता सुखदाता ॥
ला दूध, दही और मक्खन, रबड़ी जो खाता।
सबसे अधिक अक्ल बल में, वो ही कहलाता ॥
तेरे बछड़ों पर जुवा धर, किसान हल चलाता।
अन्न कमा सबको अन्न दे, देश की अन्नदाता ॥
तेरे घी से हवन करें, नित प्रति माता।
उस धुएँ के बादल बन, पानी बरसाता ॥
गोबर और मूत्र भी तेरा अमूल्य कहलाता।
दर्द कान का, पैर का चमरस दो दिन में जाता ॥
मरने पर भी चमड़ा दे जाती, काम बहुत आता।
तेरी हड्डी का खाद बने, किसान ले जाता ॥



प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

वेदो ऽखिलो धर्म मूलम्

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ३] [अक्तूबर १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विशेषांक

वैदिक सिद्धान्तों पर

सहेलियों की वार्ता

लेखक : सुरेशचन्द्र वेदालंकार

एक अति आवश्यक और महत्वपूर्ण सूचना

शतपथ ब्राह्मण

अनुवादक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

प्रकाशन प्रारम्भ

शतपथ ब्राह्मण वेदार्थ और कर्मकाण्ड का अत्यन्त प्रसिद्ध और अति प्राचीन ग्रन्थ है। इसकी रचना महर्षि याज्ञवल्क्य और शाण्डिल्य मुनि ने की है। मूल ग्रन्थ में १४ काण्ड हैं, १०० अध्याय और ७६२५ कण्डिकायें हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम काण्ड बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से विख्यात है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे लिए गौरव की बात है। इसके स्वाध्याय और संग्रह करने वाले भी अपने को गौरवान्वित समझेंगे।

इसके चार खण्ड होंगे। पहले खण्ड में शतपथ ब्राह्मण का सांस्कृतिक तथा समीक्षात्मक अध्ययन होगा। इसे श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने अंग्रेजी में लिखा है—A Critical and "Cultural Study of Sathpath Brahman".

बड़े आकार के ७५० पृष्ठ होंगे। मूल्य होगा ७००.००

प्रकाशन से पूर्व ग्राहक बनने वालों को यदि यही खण्ड लेना हो तो ३५०.०० भेजें।

दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड में बायें पृष्ठ पर मूल पाठ होगा। इसे हम एल्बर्ट बेवर द्वारा सम्पादित, १८४९ में जर्मनी से प्रकाशित फोटो प्रोसेस द्वारा स्वर सहित प्रकाशित करेंगे। दायें पृष्ठ पर हिन्दी अनुवाद होगा श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत।

चारों खण्डों की पृष्ठ संख्या लगभग बड़े आकार में २७५० होगी। चारों खण्डों का मूल्य २५००.०० होगा।

प्रथम खण्ड (अंग्रेजी का) जो ग्राहक न लेना चाहेंगे उन्हें मूल तथा हिन्दी अनुवाद वाले तीन खण्ड १८००.०० के अग्रिम ग्राहक बनने पर रु० १०००.०० में प्राप्त हो जायेंगे। चारों खण्ड के अग्रिम ग्राहक बनने पर १३००.०० देने होंगे।

केवल एक सौ रुपये देकर आप इसके ग्राहक बन सकते हैं। शेष राशि पुस्तक प्रकाशित होने से पहले मँगा ली जायेगी।

बहुत थोड़ी प्रतियाँ ही छपेंगी। पीछे निराश होने से बचने के लिए आज ही, अभी ग्राहक बनकर अपनी प्रति आरक्षित करा लें।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

।। ओ३म् ।।

वैदिक सिद्धान्तों पर
सहेलियों की वार्ता

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

सत्यार्थप्रकाश का उद्देश्य क्या है ?

सरला की आयु यही लगभग बत्तीस वर्ष की होगी। वह अधिक पढ़ी-लिखी तो नहीं, पर स्वाध्याय और सतसंग के कारण जीवन की अनेक गूढ़ बातों और रहस्यों को समझने लगी है।

श्रावण का महीना है। सरला अपने मैके आई हुई है। उसके दो पुत्र और एक छः वर्षीया बालिका भी है। वे बच्चे भी आए हुए हैं। इन बच्चों के जीवन को देखकर तो यह लगता है कि उन्होंने 'माता' की पवित्र और सुदिव्य संज्ञा को सार्थक बनाया है। पुत्र और पुत्री, दोनों जिस समय भक्ति के गीत, ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना-उपासना तथा संध्या-हवन के मंत्रों का पाठ करते हैं तो उनके शुद्ध और सुमधुर उच्चारण, प्रेम, मातृभक्ति, शिष्ट व्यवहार और बोलने की मृदु शैली को देख-सुनकर सभी 'धन्य-धन्य' कह उठते हैं।

सरला के मैके आने पर उसके बच्चों की अनुशासनप्रियता, मधुर व्यवहार और शिष्टता देखकर सभी महिलाएँ उसके यहाँ आती रहती हैं। भारती, मनोरमा, मधु, कमलेश, ऊषा माहेश्वरी, जग्गो, शन्नो आदि बचपन की सखियाँ भी उसके पास पहले की तरह आती हैं और वहाँ वैदिक सतसंग चल पड़ता है। वैसे सरला का अपना जीवन 'सादा जीवन और उच्च विचार' का एक नमूना है। सरला समय पर सोती और समय पर जागती है। वह प्रातः जागते समय और रात को सोते समय पवित्र वेद-मंत्रों द्वारा प्रभु-स्मरण और आत्म-निरीक्षण करती है। दोनों समय सन्ध्या, अग्निहोत्र (हवन) और वेद का स्वाध्याय उसके नियमित कार्य हैं। अपनी माँ और भाभी के कार्यों में सहयोग देने, सीने-पिरोने, कढ़ाई-

बुनाई आदि के काम से समय निकालकर वह अपनी सखियों के बीच वेद-प्रवचन, प्रभुनाम-स्मरण और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रंथों की चर्चा करती है।

एक दिन रविवार को जब वह सन्ध्या-हवन आदि कर चुकी और स्वाध्याय के लिए सत्यार्थप्रकाश पढ़ने लगी, तभी भारती, कमलेश, मधु, जग्गो, मनोरमा आदि सखियाँ आ गईं और उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' से सम्बन्धित विषयों पर वार्ता शुरू कर दी। सबसे पहले मनोरमा ने पूछा—"बहन जी, इस सत्यार्थप्रकाश के लेखक कौन हैं और यह कब लिखा गया है?"

सरला बहन ने कहा--"सत्यार्थप्रकाश १८७४ ई० में लिखा गया और इसके लेखक महर्षि दयानन्द सरस्वती हैं।"

"इसके लिखने का प्रेरणा-स्रोत क्या था?"

सरला बहन ने बताया—"उन दिनों महर्षि दयानन्द सरस्वती काशी आए हुए थे। प्रतिदिन उनके सुमधुर प्रभावशाली प्रवचन होते थे, जिन्हें सुनने के लिए उच्च सरकारी कर्मचारी, पढ़े-लिखे विद्वान् और सामान्य जनता आती थी। एक दिन मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास ने ऋषि दयानन्द के प्रवचनों से प्रभावित होकर उनकी सेवा में जाकर कहा—'महाराज, आपके उपदेशामृत से वे ही लाभ उठा सकते हैं जो आपके व्याख्यान सुनते हैं। सबको आपका व्याख्यान सुनने का अवसर नहीं मिलता; या जो सुनते हैं वे भी सब बातें अपने मस्तिष्क में रख नहीं पाते; उन्हें विचार का अवसर नहीं मिलता। इसलिए यदि आप अपने विचारों को ग्रन्थ-रूप में लिख दें तो जनता का बड़ा उपकार हो।' ग्रन्थ के छपने का भार राजा जयकृष्णदास ने अपने ऊपर ले लिया।"

भारती ने सत्यार्थप्रकाश को अपने हाथ में लेकर उलटा-पलटा और कहा—"इतने हत्काय तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को बनाने और लिखने में तो बहुत समय लगा होगा?"

सरला बहन मुस्काई और उन्होंने बताया—"भारती! तुम्हें आश्चर्य होगा कि महर्षि दयानन्द ने इस ग्रन्थ को कुल साढ़े तीन महीनों में ही पूरा कर दिया।"

जग्गो ने आश्चर्य के साथ कहा—"कुल साढ़े तीन महीने में?"

"हाँ, साढ़े तीन महीने में।" सरला बहन ने कहा--"और यह ऐसा ग्रन्थ है कि इसे पढ़कर गुरुदत्त विद्यार्थी ने कहा—मैंने यह ग्रन्थ चौदह बार पढ़ा है और हर बार के अध्ययन से मुझे नया रत्न हाथ आया है।"

कमलेश ने पूछा—"दीदी! यह गुरुदत्त विद्यार्थी कौन हैं?"

सरला बहन ने कहा—"कमलेश! गुरुदत्त विद्यार्थी के विषय में किसी और दिन चर्चा करेंगे, आज तो बस इतना समझ लो कि गुरुदत्त विद्यार्थी एक बहुत ही विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। पहले वे ईश्वर को नहीं मानते थे अर्थात् नास्तिक थे। महर्षि दयानन्द को जब ज़हर दिया गया तो गुरुदत्त जी भी उनके दर्शन को गए। जानलेवा कष्ट होने पर भी महर्षि के चेहरे पर अपूर्व तेज और कान्ति देखकर गुरुदत्त जी मुग्ध रह गए। महर्षि के प्रभुविश्वास की ऐसी झाँकी देखी कि वे आस्तिक बन गए।"

सारी सखियाँ आश्चर्य की मुद्रा में थीं। भारती ने तो स्पष्ट कह दिया—"साढ़े तीन महीने में ऐसा ग्रन्थ लिखना संभव नहीं लगता, बहन जी!"

कमलेश, मधु आदि ने भी उसकी बात का समर्थन किया।

सरला बहन ने अत्यन्त सरल भाव से कहा—"बहनो! सत्यार्थप्रकाश साढ़े तीन महीने में ही स्वामी दयानन्द जी ने पूरा कर दिया था, और इस ग्रन्थ का जिन्होंने अध्ययन किया है उन्होंने पाया है कि इसमें ३७७ ग्रन्थों का हवाला है। इस ग्रन्थ में १५४२ वेद-मंत्रों या श्लोकों का उद्धरण दिया गया है। चारों वेद, सब ब्राह्मण-ग्रन्थ, सब उपनिषद्, छहों दर्शन, अठारह स्मृतियाँ, सब पुराण, सूत्र-ग्रन्थ, ग्रह्यसूत्र, जैन और बौद्धग्रन्थ, बाइबिल, कुरान, सबके उद्धरण ही नहीं, उनके रेफरेन्स भी दिये गये हैं, अर्थात् किस ग्रन्थ में कौन-सा मंत्र या श्लोक या वाक्य कहाँ है, उसकी संख्या क्या है, यह सब-कुछ इस साढ़े तीन महीनों में लिखे ग्रन्थ में मिलता है।"

जग्गो संस्कृत में रिसर्च कर रही थी और उसके रिसर्च का चौथा वर्ष था। वह बोली, "बहन जी, मैं तो संस्कृत के पुस्तकालय में बैठकर ४-५ वर्ष से रिसर्च कर रही हूँ। आज का कोई भी रिसर्च-स्कॉलर अगर किसी विश्वविद्यालय की अप-टु-डेट लायब्रेरी में, जहाँ सब ग्रन्थ उपलब्ध हों, इतने रेफरेन्स वाला कोई ग्रन्थ लिखना चाहे, तो भी उसे सालों लग जाएँ, जिसे ऋषि दयानन्द ने केवल साढ़े तीन मास में पूरा कर दिया—यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है?"

जग्गो की बात सुनकर सरला बहन ने बताया—"स्वामी दयानन्द जी सचमुच दिव्यात्मा थे। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उनकी स्मरण-शक्ति अद्‌भुत थी। भारत में प्रचलित सभी मत-मतान्तरों का उन्होंने गहराई से मनन और मन्थन किया था। वे सत्य के पारखी थे और सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने सत्य पर पड़े हुए परदे ही हटाए हैं। बहन जी, सत्यार्थप्रकाश उनके मौलिक विचारों का ग्रन्थन है। यह ऐसा ग्रन्थ है जिसने समाज को एक सिरे से दूसरे सिरे तक हिला दिया। जिन ग्रन्थों ने संसार को झकझोरा है, उनके निर्माण में प्रायः सालों लगे हैं। भारती! तुम तो जानती ही हो, इस संसार में साम्यवाद (कम्यूनिज्म) का जनक कौन है?"

भारती झट से बोली—"जर्मनी का कार्ल मार्क्स।"

सरला बहन ने पूछा—"उसने कौन-सा ग्रन्थ लिखा है?"

भारती ने कहा—"कैपिटल।"

सरला बहन ने बताया—"कार्ल मार्क्स को अपना ग्रन्थ लिखने के लिए ३४ वर्ष इंगलैण्ड में रहना पड़ा था। इन ३४ वर्षों का परिणाम यह हुआ कि विश्व में नवीन आर्थिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। आज विश्व के दो महान् राष्ट्र, रूस और चीन, साम्यवादी हैं। क्यूबा का विश्वास भी साम्यवाद की ओर है। पोलैण्ड, यूगोस्लाविया आदि में भी यह विचारधारा फैली हुई है। परन्तु ऋषि दयानन्द ने साढ़े तीन महीने में लिखे हुए सत्यार्थप्रकाश द्वारा न केवल आर्थिक, अपितु सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी दिशाओं में एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया और आज जिन समस्याओं को लेकर हम उलझे रहते हैं, जैसे जातिवाद की समस्या, छुआछूत की समस्या, गरीबी की समस्या, चुनाव की समस्या, नियम तथा व्यवस्था की समस्या, गोरक्षा की समस्या, परिवार-नियोजन या नसबन्दी की समस्या, आचार-विचार की समस्या, नवयुवकों की समस्या, बेकारी तथा

आर्थिक समस्या, इन सभी का हल या समाधान सत्यार्थप्रकाश में मिलेगा। स्त्रियों की शिक्षा, उनका महत्त्व और उनका मातृरूप भी सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट रूप में उल्लिखित है।"

"सत्यार्थप्रकाश में मुख्यतः किन-किन विषयों का वर्णन किया गया है?" कमला ने पूछा।

"सत्यार्थप्रकाश में चौदह समुल्लास हैं। समुल्लास का मतलब है अध्याय। इन अध्यायों में चौदह विषयों की चर्चा है। ११वें समुल्लास में आर्यावर्तीय मतों के पाखण्डों का खण्डन किया गया है, जिनमें पुराणी तथा वाममार्गी आदि मत हैं। १२वें समुल्लास में नास्तिक-मतान्तर्गत चारवाक, बौद्ध, जैन मतों की पोल खोली गई है। उनकी जो वेद-विरुद्ध बातें हैं उनका युक्तियुक्त खंडन किया है। १३वें समुल्लास में ईसाइयों और १४वें समुल्लास में कुरानियों के मत का खंडन किया है। ये चार समुल्लास खंडनात्मक हैं। शेष दस समुल्लासों में वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का मण्डन किया है। प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या की है। द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा का विषय है। तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन-व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति का उल्लेख किया है। चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार है। पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि लिखी है। षष्ठ समुल्लास में राजधर्म और सप्तम समुल्लास में वेद और ईश्वर का विषय है। अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन है। नवम समुल्लास में विद्या-अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या है, तथा दशवें समुल्लास में आचार-अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषयों की चर्चा की गई है। चौदहवें समुल्लास के अन्त में आर्यों के सनातन, वेद-विहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है।"

"सत्यार्थप्रकाश शब्द का अर्थ और भाव क्या है?" मनोरमा ने पूछा।

"सत्यार्थप्रकाश का अर्थ है जो सत्य है उसको सत्य, और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश है। वह सत्य नहीं कहलाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रतिपादन करे। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना, मानना सत्य कहाता है। महर्षि दयानन्द आप्त पुरुष थे। आप्त पुरुष का यह मुख्य काम है कि अपने उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप स्पष्ट कर दे और जिसे पढ़-सुनकर मनुष्य स्वयं अपना हिताहित समझे, सत्यार्थ का ग्रहण करे और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहे। यही सत्यार्थप्रकाश का मुख्य उद्देश्य है।"

ईश्वर का निज नाम 'ओ३म्' है

प्रभु-गुण गाऊँ, तर जाऊँ मैं।
प्रभु के मीठे 'ओ३म्' नाम की,
निशिदिन धूनि रमाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्...

पुण्य-पुष्प मंजुल अंजलि ले,
मैं चरणन में आऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्…
भक्तिभाव का अंजन मलकर,
प्रिय के दर्शन पाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्…
गुरुकुल कमल बसे प्रभुबल से,
अलि बन मैं रस खाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्…
ईश-दया से सब सुख विलसे,
शान्ति-सरोवर न्हाऊँ, तर जाऊँ मैं। ओ३म् ही ओ३म्…

आज साप्ताहिक सत्संग सरला बहन के पड़ोस, मनोरमा के घर हुआ था। उन्होंने सम्मिलित रूप में 'ओ३म्-महिमा' का गीत गाया और संकीर्तन के बाद सत्यार्थप्रकाश की चर्चा हुई।

कमलेश ने सरला बहन से पूछा—"क्या 'ओ३म्' सच्चिदानन्द भगवान् का नाम है? सच्चिदानन्द भगवान् के कितने नाम हैं?"

सरला बहन ने कहा—"ओ३म् सच्चिदानन्द भगवान् का मुख्य नाम है। यह प्रभु का निज नाम है। भगवान् के गुण भी अनन्त हैं और नाम भी अनन्त हैं। वास्तव में नाम चार प्रकार के होते हैं।"

जग्गो ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा—"कौन-कौन-से?"

सरला बहन ने बताया—"प्रथम प्रकार का नाम निज नाम है, जैसे तुम्हारा नाम जग्गो है, इसका कमलेश, इसका भारती, इसका मधु, और यह नीता है। कोई धर्मेन्द्र है, कोई राजेन्द्र है। ये सब निज नाम हैं। इसी प्रकार परमेश्वर का निज नाम 'ओ३म्' है।"

"यह तो हुआ नाम का पहला प्रकार, और दूसरा क्या है?" मनोरमा ने पूछा।

"दूसरे प्रकार के नाम सम्बन्धों के द्योतक हैं। तुम्हारा पुत्र संजय है, उसके सम्बन्ध से तुम माता, तुम्हारे पति देवेन्द्र के नाम से तुम पत्नी, तुम्हारे पिता सूर्यदेव हैं तो उनके नाम से तुम पुत्री हो। ऐसे नाम सम्बन्धों से बनते हैं। परमेश्वर के भी सम्बन्ध-द्योतक नाम हैं, जैसे बन्धु। भक्तों से प्रेमबद्ध होने से बन्धु, संसार का पालन-पोषण करने से वह पिता, स्व-स्व कर्मों के अनुसार फल-भोगार्थ जन्म देने के कारण उसका नाम जनिता या जनक, मान और प्रेम करनेवाला होने से माता, रक्षक तथा सबका स्वामी होने से पति, सबसे स्नेह करने के कारण मित्र भी कहाता है।"

"और तीसरे प्रकार के नाम?" भारती ने पूछा।

सरला बहन बोली—"तीसरे प्रकार के नाम कर्मों के द्योतक हैं। ऐसे नाम हम मनुष्यों के भी हैं और भगवान् के भी। रसोई पकाने के कारण मालती पाचिका कहलाती है; पढ़ाने के कारण विमला को अध्यापिका कहते हैं; खूब अच्छा गाने के कारण संयोगिता गायिका कही जाती है; सुन्दर लेख लिखने के कारण भारती लेखिका मानी जाती है—ये सब कर्म-द्योतक नाम हैं। सर्वत्र प्रकाश देने के कारण भगवान् को सूर्य, समस्त चराचर जगत् को गति देने के कारण वायु, पराक्रमी होने से उरुक्रम, न्यायकारी होने से अर्यमा,

हिरण्यमय अर्थात् चमकीले पदार्थों को गर्भ में धारण करने से हिरण्यगर्भ आदि कर्मद्योतक नाम हैं। चौथे प्रकार के नाम गुणों से सम्बन्ध रखते हैं।"

मनोरमा ने प्रश्न किया--"बहन जी, सच्चिदानन्द प्रभु के गुणवाचक नाम कौन-से हैं?"

मनोरमा आयु में छोटी और सखी की बेटी थी, अतः सरला बहन ने दुलार से कहा, "बेटी! वह प्रभु आकाश की तरह सर्वत्र व्यापक होने से **खम्** है, अविनाशी होने से **अक्षर**, सबका प्रेरक और स्वामी होने से **ईश्वर**, सब आत्माओं में श्रेष्ठ होने से **परमात्मा** समस्त विश्व का संचालक और प्रेरक **होने से विश्वात्मा**, स्वामियों का स्वामी होने से **परमेश्वर**, सबसे बृहत् या महान् होने से **ब्रह्म**, सब वस्तुओं को व्याप्त करने के कारण **विष्णु**, देवों का देव होने से **महादेव**, **परमैश्वर्यवान्** होने से **इन्द्र**, सदा कल्याणकारी होने से **शिव** और दुष्टों को दण्ड देनेवाला और रुलानेवाला होने से **रुद्र** कहते हैं। ये सब प्रभु के गुणवाचक नाम हैं।"

"बहन जी, यह बतलाइये कि 'ओ३म्' शब्द का अर्थ और भाव क्या है?" लेश ने पूछा।

"हम जो पवित्र गायत्री मंत्र का जप करती हैं, वह ओ३म् की ही व्याख्या है। वेद भी उसी ओ३म् की विस्तृत व्याख्या हैं। अखिल विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान, विज्ञान, सब सत्य विद्या और पदार्थविद्या से जो जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल 'ओ३म्' है। ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोतम नाम है। अ-उ-म् तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के कई नाम आते हैं, जैसे अकार से विराट् अग्नि, विश्वादि; उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तेजसादि; मकार से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञादि। 'ओ३म्' शब्द संस्कृत के 'अव् रक्षणे' धातु से बना है। रक्षा करने के लिए प्रभु सदा हमारे समीप विद्यमान रहता है। मन-प्राण से समर्पित उपासकों को बचाने के प्रभु के निराले ही ढंग हैं। इसी प्रसंग में एक लोककथा सुनो!

एक राजा अपने मंत्री के साथ पर्यटन तथा शिकार के लिए जंगल में निकल गया। साँझ हो गई, मगर शिकार हाथ नहीं लगा। वे इतनी दूर निकल आए कि रास्ता भटक गये। घना जंगल था। चलते-चलते काँटोंवाली झाड़ी में राजा का वस्त्र उलझ गया। उसने हाथ से वस्त्र बचाने का यत्न किया, तो अँगुली में अच्छा-खासा घाव हो गया। जब खून बहने से न रुका तो मंत्री ने पट्टी बाँधनी शुरू की और कहने लगा—'कोई बात नहीं महाराज! प्रभु जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं।'

राजा को क्रोध आ गया और उसने मंत्री से कहा—'तुम बड़े ही निष्ठुर और कृतघ्न हो। मुझे इतना कष्ट है और तुम कह रहे हो कि प्रभु जो करता है, अच्छा करता है! तुम्हें शर्म नहीं आती? मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं, मेरी आँखों से दूर हो जाओ!" मंत्री ने राजा को 'नमस्ते' कही और यह कहते हुए चल दिया—'ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है।'

जला-भुना राजा अकेला ही चल पड़ा। वह ऐसे प्रदेश में जा पहुँचा जहाँ मनुष्य की बलि चढ़ाई जानेवाली थी। वे लोग बलि के लिए किसी उपयुक्त पुरुष की तलाश में थे।

जब उन्होंने एक लम्बे-चौड़े पुरुष को देखा तो सोचा—सुन्दर है, शरीर अच्छा है, बलि के लायक है। राजा को पकड़कर वे लोग मन्दिर ले आए। बलि चढ़ाने से पूर्व जब राजा को स्नान कराया जाने लगा तो पुजारी की दृष्टि राजा की कटी अँगुली पर जा पड़ी। वह चिल्ला पड़ा—'अरे, यह तो अंगभंग है! इसकी बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।'

राजा को छोड़ दिया गया। रास्ते में राजा को मन्त्री की बात याद आ गई कि 'ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है।' यदि हाथ पर घाव न होता तो आज उसे बलि का बकरा बनना पड़ता। राजा ने सोचा—ऐसे मन्त्री का तो सत्कार होना चाहिए।

अपने राज्य में लौटकर उसने मन्त्री की खोज में घुड़सवार भेज दिये। जब मन्त्री को खोजकर लाया गया तो राजा ने कहा—'मन्त्रिन्! मेरे घायल होने और अँगुली कटने पर तुमने कहा था कि ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है। तब मैंने अप्रसन्न होकर तुम्हें निकाल दिया था, किन्तु वह मेरी भूल थी। अँगुली कटने के कारण मेरी जान बच गई। परन्तु, मैंने जब तुम्हें दुत्कार दिया था, तब भी तुमने यही कहा कि ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है। यह बताओ कि तुम्हें क्या लाभ हुआ?'

मन्त्री ने मुस्कराते हुए कहा—'यह तो और भी अधिक अच्छा हुआ। यदि आप मुझे दुत्कार न देते, तो उस दशा में मैं आपके साथ रहता। आप तो घायल होने के कारण बच गए, किन्तु अंग-भंग न होने से मुझे अवश्य बलि का बकरा बनना पड़ता। मेरे ऊपर तो प्रभु ने विशेष कृपा की—मुझे न तो घायल ही किया और बलि का बकरा बनने से भी बचा लिया।'

सो बहनो, 'ओ३म्' ही सबका रक्षक है। वह परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण में लगा रहता है। हमारी दृष्टि छोटी है, प्रभु की आँखें बहुत दूर तक देखती हैं।

तुम्हरी चाही में प्रभो, है मेरा कल्याण,
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख नादान॥

'ओ३म्' सबमें है और सर्वत्र है। 'ओ३म्' सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। 'ओ३म्' सर्वाश्रय और सर्वाधार है। 'ओ३म्' अजर, अमर, सर्वशक्तिमान्, अरूप और निराकार है। 'ओ३म्' हमारे सब कर्मों, विकर्मों और भावों को जानता है, और तदनुसार ही फल देता है। अतः भूलकर भी कोई अशुभ कर्म, विचार और भावना न करो।

'ओ३म्' का स्मरण करती हुई तुम सब निर्भय होकर ग्राम, नगर, वन, पर्वत, सिंधु-सागर कहीं भी विचरो, सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी। विश्वास रक्खो 'ओ३म्' सदा सर्वत्र तुम्हारे साथ है, और तुम्हारा सहायक और रक्षक है। दुःख में 'ओ३म्' का स्मरण करो, तुम्हें शान्ति मिलेगी और तुम्हारा दुःख दूर होगा। सुख में 'ओ३म्' का स्मरण करो, तुम्हें दुःख न होगा। सोते-जागते, चलते-फिरते, लिखते-पढ़ते, खेलते-कूदते, खाते-पीते सदा 'ओ३म्' का स्मरण करो, तुम्हें आनन्द मिलेगा। 'विदेह' जी के शब्दों में—

ओ३म् का ले नाम पंछी!
ओ३म् का कर काम पंछी!!

'स्तुता मया वरदा वेदमाता'

आज बहनों का जमघट कमलेश के घर लगा। कमलेश ने डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु उसका जीवन सादा और ऊँचा था। वह धार्मिक गोष्ठियों में भाग लेती थी तथा नयी बातें जानने की चेष्टा करती थी। सरला बहन भी नियत समय पर कमलेश के घर पहुँची। सबसे पहले सरला बहन ने प्रभु-भक्ति और वेद की महिमा का सामूहिक गान करवाया। उनका गीत भावनापूर्ण था—

हे आनन्द-घन ओ३म् !
सुख की वर्षा करो।
दूर करो शुभ-द्युति से अपनी,
मोह-तिमिर घनघोर। सुख की वर्षा करो
पाप-ताप सब दूर नसाओ,
फेर कृपा दृग-कोर। सुख की वर्षा करो
सुरभित शीतल मन्द पवन हो,
उपवन छवि चितचोर। सुख की वर्षा करो
वेद-सुधा-रस पान करें हम,
प्रमुदित हो मन मोर। सुख की वर्षा करो
व्रतपति व्रत हम ब्रह्मचर्य का
पाल सकें सुकठोर। सुख की वर्षा करो
मातृभूमि सुख-सम्पत्ति साजे,
विनति यही कर जोर। सुख की वर्षा करो

सरला बहन ने सभी स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"महर्षि दयानन्द से पूर्व हिन्दू जाति में यह विश्वास घर कर गया था कि स्त्रियों को और शूद्रों को वेद एवं शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार नहीं है। विचारों में इतनी गिरावट आ गई थी कि पुरुष की अर्द्धांगिनी को विद्याध्ययन के सम्बन्ध में शूद्र के समान माना जाने लगा था। इस भ्रम-मूलक विचार का महर्षि ने खण्डन किया।"

मनोरमा ने पूछा—"क्या स्त्री लोग भी वेद पढ़ें ?"

सरला बहन ने कहा—"अवश्य ! देखो, श्रौत सूत्रादि में कहा है—इमम् मन्त्रं पत्नी पठेत्, अर्थात् यज्ञ में इस मन्त्र को पत्नी पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित वेदमन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत-भाषण कैसे कर सके ? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं। शतपथ-ब्राह्मण में यह स्पष्ट लिखा है। अतः स्त्रियों को भी वेदादि पढ़ना चाहिए।"

सरला बहन की बात सुनकर मधु ने पूछा—"बहन जी, एक बात मुझे समझ में नहीं आती, लोग कहते हैं कि वेद द्वारा प्रभु ने अपना ज्ञान और आज्ञाएँ मनुष्य को दी हैं; जब ईश्वर के मुख नहीं, आँख नहीं, कान नहीं, हाथ नहीं, पैर नहीं, तब भला वह मनुष्य को अपनी आज्ञाएँ कैसे देता है ?"

सरला बहन ने कहा—"वेद का अर्थ है ज्ञान। 'वेद' शब्द 'विद् ज्ञाने' धातु से बना है। दयानन्द स्वामी ने अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में लिखा है कि वेद वह पुस्तक है, जिसमें विश्व की सम्पूर्ण सत्य विद्याओं, या ज्ञान की निधि, स्थापित है। मनुष्य या दूसरे प्राणियों में यह भेद है कि मानव तो ज्ञान के लिए निरन्तर चेष्टा किया करता है, परन्तु दूसरे पशु-पक्षी आदि नहीं। अतः ज्ञान ही मानव की अपनी विशेषता है।"

मनोरमा ने पूछा—"बहन जी, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, गणित, इतिहास, खगोल, भूगोल आदि क्या ज्ञान नहीं?"

सरला बहन ने कहा—"ये सब ज्ञान की शाखाएँ हैं। ज्ञान तो अनन्त प्रकार का है। ज्ञान चाहे इतिहास का हो या भूगोल का, एकांगी है, क्योंकि उसमें एक ही विषय को लिया गया है। अपनी-अपनी आवश्यकता को देखते हुए हमने ज्ञान की अनन्त शाखाएँ बना ली हैं। परन्तु, मूल रूप में ज्ञान एक ही वस्तु है।"

मनोरमा ने इस विषय को स्पष्ट करने की प्रार्थना की।

"देखो बहन! धरती न हो तो दुकान नहीं बन सकती, पैसा न हो तो धरती नहीं खरीदी जा सकती, मतलब यह कि भूगोल और अर्थशास्त्र अलग-अलग होने पर भी एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। विद्यालय में भी हिन्दी, इतिहास, भूगोल आदि के लिए वैसे तो अलग-अलग ही पीरियड होते ही हैं, किन्तु इन सबमें योग्यता प्राप्त करने पर ही विद्यार्थी उत्तीर्ण हो पाता है। सब विषयों की सामूहिक जानकारी का नाम ही ज्ञान है और सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का मूलाधार वेद हैं। वेद उस विशाल भवन के सदृश हैं जिनमें उपयोग के सभी पदार्थ विद्यमान हैं और उसके प्रत्येक कमरें के पास उसकी चाभी भी पड़ी हुई है। जिस प्रकार चाभी द्वारा भवन खोलकर व्यक्ति अपने योग्य पदार्थों को ले सकता है, वैसे ही बुद्धिरूपी चाभी से वेदार्थ का ज्ञान कर हम भी सत्यज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यही कारण है कि स्वामी दयानन्दजी महाराज ने वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक माना है।"

मधु ने पूछा—"वेद कितने हैं?"

सरला बहन ने बताया—"चार—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये चारों वेद ईश्वरोक्त, सत्यविद्याओं से युक्त हैं और इनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है।"

मनोरमा ने पूछा—"इन वेदों की रचना किसने की है?"

सरला बहन ने कहा—"मनुजी महाराज का मत है कि सूर्य, अग्नि, वायु आदि देवताओं ने वेदों को बनाया अर्थात् इनके द्वारा संसार में प्रकट हुए।"

मनोरमा ने पूछा—"आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का क्या मत है?"

"स्वामी दयानन्द सरस्वती तो अग्नि, सूर्य, वायु और अंगिरा को 'प्राथमिक ऋषि' मानते हैं, जिनके द्वारा सृष्टि के आदि में चारों वेद प्रकट हुए। ये हमारी आर्य-सभ्यता और संस्कृति का मूलाधार हैं, आर्य ज्ञान-विज्ञान का उज्ज्वल धाम हैं। वेद सम्पूर्ण आर्य-वाङ्मय के प्राण हैं। वेद भक्ति-रस की मन्दाकिनी एवं उच्च गम्भीर विचारों का सुखद स्रोत हैं। वेदों में ओज, तेज और वर्चस्व की राशि है। वेद में दिग्-दिगन्त को पावन

करनेवाले उदात्त उपदेश हैं। वेद में मानवता के विद्रोहियों में हड़कम्प मचानेवाले अनुपम आदेश हैं। वेद अत्याचारियों और अनाचारियों को ध्वस्त-विध्वस्त करनेवाला आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। वेद मानव के समस्त उच्च गुणों की क्रीड़ा-स्थली है। वेद में आधिभौतिक उन्नति की चरम सीमा है, आधिदैविक अभ्युदय की पराकाष्ठा है और आध्यात्मिक उन्नयन का चूड़ान्त रूप है।"

मधु ने पूछा—"क्या वेद गीता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है?"

"मधु बहन, गीता यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम दो मन्त्रों की व्याख्या के सिवाय और क्या है?"

भारती ने कहा—"दीदी, एक पुस्तक में वेद की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है, 'वेद ईश्वर की विमल वाणी है और संसार के कल्याण के लिए इसका अवतरण हुआ है। वेद पारिजात से भी अधिक सुगन्धमय और स्फटिक मणि से उज्ज्वल है। वेद के किसी मन्त्र में कुरुक्षेत्र का भैरव रव है, किसी में वीरों की भयंकर हुंकार है, किसी में रण-चण्डी का प्रचण्ड अट्टहास है, किसी में शस्त्रों की झंकार है, कहीं समरभूमि का विकट हास्य है, कहीं वृन्दावन का प्रेम-प्रवाह है, कहीं लक्ष्मी का मधुर चमत्कार है, कहीं ब्रह्मत्व का ललित विलास है। श्रुति भगवती जिसे छू लेती है वह अमृत से अधिक मधुर हो जाता है; जिसे देख लेती है वह चन्द्रिका से अधिक निर्मल हो जाता है, और जिस पर अपने पाद-पद्म रख देती है वह पद्मराग मणि से अधिक मूल्यवान् हो जाता है।' यह कहाँ तक सत्य है?"

"यह परम सत्य है, भारती बहन!"

मनोरमा ने सरला बहन की ओर मुख करके पूछा—"बहन जी, यह बताइये कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जिससे प्रकाशित हुए हैं, वह कौन-सा देव है?"

सरला बहन ने उत्तर में कहा—"जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है, वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याण के लिए यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।"

मनोरमा ने पूछा—"परमेश्वर निराकार है या साकार?"

"निराकार।"

मनोरमा का अगला प्रश्न था—"जब परमेश्वर निराकार है, तो वेदविद्या का उपदेश, बिना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिए।"

सरला बहन ने उत्तर दिया—"परमेश्वर सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेद-विद्या का उपदेश करने में उसे कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख-जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न को बोध होने के लिए किया जाता है, कुछ अपने लिए नहीं, क्योंकि मुख-जिह्वा के व्यापार के बिना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अँगुलियों से मूँद देखो, सुनो कि बिना मुख-जिह्वा-तालु आदि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं। वैसे ही परमात्मा ने जीवों को अन्तर्यामी-रूप से उपदेश किया है। केवल दूसरे को समझाने के लिए उच्चारण करने

की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्व-व्यापक है तो अपनी अखिल वेद-विद्या का उपदेश जीवस्थ रूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है। इसलिए निराकार होने से वर्णोच्चारण न होने का दोष नहीं आ सकता है।"

जग्गो ने पूछा—"बहन जी, यह तो बड़ी गहन बात हो गई। आप यह बताइये किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया?"

सरला बहन ने उत्तर दिया—"प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा, इन ऋषियों की आत्मा में एक-एक वेद का क्रमशः प्रकाश किया, अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा की आत्मा में प्रकाशित किया। ब्रह्मा ने इस ऋषियों से वेदों का ग्रहण किया।"

भारती चट से बोली—"बहन जी, उन चारों में ही ईश्वर ने वेदों का प्रकाश किया? अन्य में नहीं? इससे तो ईश्वर न्यायकारी न होकर पक्षपाती माना जाना चाहिए?"

सरला बहन हँस दी—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में वे ही चारों ऋषि अन्य सबसे अधिक पवित्रात्मा थे।"

मनोरमा बोली—"ईश्वर का पक्षपात तो इससे भी सिद्ध होता है, बहन जी, कि उसने किसी देश-भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में किया।"

सरला बहन ने मुस्कराकर कहा—"जो किसी देश-भाषा में करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में करता उसको सुगमता, और विदेशियों को कठिनता होती, वे आसानी से पढ़-लिख न सकते। इसलिए संस्कृत में किया, जो किसी देश की भाषा नहीं, और वेद-भाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालों के लिए एक-सी और सब शिल्पविद्या का कारण है, वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एक-सी होनी चाहिए कि सब देशवालों को पढ़ने-पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता।"

सुधा ने पूछा—"वेद किन ग्रन्थों का नाम है!"

सरला बहन ने कहा—"ऋक्, यजुः, साम और अथर्व-मन्त्रसंहिताओं का; अन्य का नहीं।"

सुधा ने पूछा—"वेदों की कितनी शाखा हैं?"

सरला बहन ने उत्तर दिया—"एक हजार एक सौ सत्ताईस।"

मनोरमा ने पूछा—"शाखा किसे कहते हैं?"

सरला जी ने बताया—"व्याख्यान को शाखा कहते हैं। जैसे माता-पिता अपनी सन्तानों पर कृपा-दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार, भ्रम-जाल से छूटकर विद्या-विज्ञान-रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करें।"

मनोरमा ने पूछा—"वेद नित्य हैं या अनित्य?"

सरला बहन ने कहा—"वेद नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण-कर्म-स्वभाव नित्य, और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं।"

मनोरमा ने फिर पूछा—"क्या यह पुस्तक भी नित्य है?"

सरला बहन ने कहा—"नहीं। क्योंकि पुस्तक तो स्याही और पन्ने से बनी है, वह नित्य कैसे हो सकती है? किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं, वे नित्य हैं।"

मनोरमा ने फिर पूछा—"सम्भव है ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया हो और उस ज्ञान से उन ऋषियों ने वेद बना लिये हों?"

सरला बहन ने कहा—"ज्ञान, ज्ञेय के बिना नहीं होता। गायत्री आदि छन्द और उदात्त-अनुदात्तादि स्वर के ज्ञानपूर्वक, गायत्री आदि छन्दों के निर्माण करने में सर्वज्ञ के बिना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार का सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बना सके। हाँ, वेद पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि-मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिए बनाये हैं। यदि परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके। अतः वेद परमेश्वरोक्त हैं। वेद ईश्वर की आज्ञा हैं। ईश्वर की पहली आज्ञा वेद हैं। यह ईश्वर की पहली आवाज है। दूसरी आवाज अन्तरात्मा की आवाज है अर्थात् जब मनुष्य किसी बुरे काम में प्रवृत्त होता है या किसी कठिन काम से घबराता है, तो उसे अनुचित या पाप के कार्य से रोकनेवाली, सन्मार्ग दिखलानेवाली अथवा कठिन काम को भी करनेवाली या प्रेरणा देनेवाली आवाज अन्तरात्मा की आवाज कहलाती है। इसका पालन मानव का धर्म है। महर्षि दयानन्द के जीवन की एक घटना सुनिये—

कठिन तप के पश्चात् घोर अभ्यास के अनन्तर, जब उनके लिए मुक्ति का द्वार खुल गया, तो उन्होंने सोचा कि अब इस शरीर को जीवित रखने का कोई लाभ नहीं। गंगोत्तरी के निकट एक चोटी पर वे पहुँचे। उन्होंने सोचा कि चोटी से कूदकर शरीर का अन्त कर दूँगा।"

मधु बोली—"चोटी से कूदकर अपने प्राणों को दे देना क्या बड़ा भारी पाप नहीं? सुना है कि आत्महत्या करनेवाले असूर्य नामवाले घने अंधकारमय लोकों में जाते हैं। क्या सिद्धि-प्राप्त महात्माओं को पाप नहीं लगता?"

सरला बहन ने कहा—"बहन, महात्मा, ऋषि, मनुष्य, देवता या असुर, सबको कर्म के अनुसार भोगना पड़ता है। परन्तु ऋषि के मन में जब यह विचार आया, उसी समय अन्दर से अन्तरात्मा की आवाज आई—दयानन्द! यह क्या कर रहे हो? अपने लिए मोक्ष का द्वार खुल गया, इससे तुम्हें शान्ति मिल गई? नीचे इस जलते हुए, अन्धकार और अविद्या में भटकते हुए संसार को देखो! ये अग्नि की लपटें, ज्वालाओं के समुद्र, क्या इन करोड़ों लोगों पर तुम्हें दया नहीं आती? क्या उनके सम्बन्ध में तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं? आगे बढ़ो! इस अग्नि को शान्त करने का प्रयत्न करो!" सरला बहन बोलती चली गई—"महर्षि के अन्तःकरण में उत्पन्न दूसरी आवाज ने कहा—'मैं एक छोटी-सी बूँद उस विशाल ज्वाला को कैसे बुझा पाऊँगी?' और पहली आवाज ने अधिकार के साथ कहा—'यह अग्नि बुझे या न बुझे, तुम्हारा कर्त्तव्य यह है कि इसे बुझाने का यत्न करो। भले ही

ऐसा करते हुए राख हो जाओ, परन्तु कर्त्तव्य यही है।'...

और महर्षि अकेले ही समराङ्गण में ऐसे उतर पड़े कि विश्व को ज्ञान की दीप्ति से दीप्त कर दिया। उसी दिव्य आलोक के प्रताप से स्वामी श्रद्धानन्द के मन में एक आवाज उठी—'मदिरा गन्दी चीज है! यह बुद्धि का लोप कर देती है! मांस खाना स्वास्थ्य और मनुष्य के मन को मलिन करता है! इसी विचार की प्रतिक्रिया में उन्होंने मांस और मदिरा के बर्तन चकनाचूर कर दिये। अन्तःकरण ने कहा—संसार को आचारवान् बनाने के लिए गुरुकुल खोलना चाहिए! इस विचार-स्वप्न को साकार करने के लिए गुरुकुल खोल दिया। सबसे पहले अपने पुत्रों को उस भयावने जंगल में शिक्षित करना प्रारम्भ किया।...

पं० लेखराम ने इसी आवाज की बदौलत मांस खाना छोड़कर हिन्दुओं को मुसलमान होने से बचाने के लिए चलती गाड़ी से कूदकर, लोहू-लुहान होकर भी बचा लिया।

गुरुदत्त विद्यार्थी नास्तिक से आस्तिक बने। महात्मा गांधी को अपने कर्ममय जीवन में अन्तरात्मा की आवाज ने ही अनेक बार रास्ता दिखलाया है।...

इस प्रकार प्रभु की आज्ञाएँ दो प्रकार से मनुष्य के सामने आती हैं—पहली, जब मनुष्य बुरे काम में लगता है; प्रभु की आवाज या अन्तःकरण की आवाज उसे वैसा करने से रोकती है, प्रेरणा देती है; और दूसरी आवाज वेद की है। आइये, हम वेद का प्रतिदिन स्वाध्याय करें।"

यज्ञ का भाव और महत्त्व

आज वैदिक गोष्ठी का चौथा दिन था। आज का आयोजन जग्गो के घर था। जग्गो तो दुलार का नाम था, वास्तविक नाम यशकुमारी था। जग्गो का जन्म उस दिन हुआ जब उसकी सबसे छोटी बुआ की शादी का दिन था। बरात दरवाजे पर आई हुई थी। उधर द्वाराचार-विषयक यज्ञ हो रहा था और इधर यशकुमारी का जन्म। इसी कारण उसका नाम यशकुमारी रखा गया। सबसे पूर्व सरला बहन ने सामूहिक गान करवाया। गान था--

पूजनीय प्रभो! हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए,
छोड़ देवें छल-कपट को, मानसिक बल दीजिए ॥१
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक-सागर से तरें ॥२॥
अश्वमेधादिक रचाएँ यज्ञ पर-उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को ॥३॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥४॥
भावना मिट जाय मन से पाप-अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नार की ॥५॥

लाभकारी हवन हों सब जीवधारी के लिए।
वायु-जल सर्वत्र हों शुभ गंध को धारण किए ।।६।।
स्वार्थ-भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ विस्तार हो।
'इदन्न मम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ।।७।।
प्रेम-रस में तृप्त होकर वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा-रूप ! करुणा आपकी सब पर रहे ।।८।।

आज सखी-वार्ता का चतुर्थ दिवस है और संगीत की समाप्ति पर यज्ञ की सुगन्ध से चतुर्दिक् वातावरण मनमोहक हो गया था। सरला बहन से मनोरमा ने प्रश्न पूछा—"बहनजी ! वैदिक साहित्य में यज्ञ का बड़ा महत्त्व है। यज्ञ से क्या उपकार होता है ? यज्ञ क्यों करना चाहिए ? होम और यज्ञ में क्या अन्तर है ?"

सरला बहन ने बताया—"बहन, वैसे तो यज्ञ और होम में कोई अन्तर नहीं, किन्तु यज्ञ शब्द होम शब्द से अधिक व्यापक है। वेद में यज्ञ के लिए 'अध्वर' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। चारों वेदों में यज्ञ शब्द ११८४ बार आया है—ऋग्वेद में ५८० बार, यजुर्वेद में २४३ बार, सामवेद में ६३ और अथर्ववेद में २९८। बार वेद के कोश 'निघण्टु' में वेन, अध्वर, मेध, विदथ, नार्यः, सवनम्, होत्रा, दृष्टिः, देवताता, मखः, विष्णुः, इन्दुः, प्रजापतिः, धर्मः इत्यादि भी यज्ञ के नाम हैं। इसे अग्निहोत्र भी कहते हैं। होम भी यही है। इतना तो सब लोग जानते हैं कि वायु और जल दूषित होंगे तो रोग पैदा होंगे और रोग से प्राणियों को दुःख होगा। सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य रहेगा और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।"

मनोरमा ने कहा—"चन्दनादि घिसके किसी के लगाने या घृतादि खाने को देवें तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डालकर व्यर्थ नष्ट करना कोई बुद्धिमानों का काम तो है नहीं ?"

सरला बहन ने हँसकर कहा—"मनोरमा बहन ! पदार्थ-विद्या या विज्ञान के अनुसार किसी भी पदार्थ का नाश नहीं होता। पदार्थ केवल अपना रूप बदलता है। उदाहरण के लिए हम कागज जलाते हैं तो कागज का नाश नहीं होता; कागज का कुछ अंश राख बन जाता है, कुछ धुआँ और गैस बनकर उड़ जाता है; परन्तु यदि इन चीजों को इकट्ठा करके तोलें तो मालूम पड़ेगा कि उनका भार कागज के भार के बराबर ही है। इसी प्रकार यज्ञ में डाली हुई सामग्री और घी भी नष्ट नहीं होते। वे सूक्ष्म होकर, फैलकर, वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध से निवृत्ति करते हैं।"

मनोरमा ने फिर प्रश्न किया—"इस महँगाई के जमाने में घी, बादाम, केशर, कस्तूरी आदि को जलाना बुद्धिमानी नहीं है, बहन जी ! जलाने की अपेक्षा केशर, कस्तूरी, सुगन्धित फूल और इत्र आदि को घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखदायक होगा।"

सरला बहन ने बताया—"इन पदार्थों से निकली सुगन्ध में इतना सामर्थ्य नहीं है कि घर में विद्यमान अशुद्ध वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके। यह भेदक शक्ति अग्नि में अवश्य होती है। भेदक शक्ति को समझने के लिए तुम आग में मिर्च डालो, तब पता चलेगा।"

भारती झट से बोल उठी—"छींक आने लगेगी, खाँसी उठेगी। दूर बैठनेवाले भी ऐसा ही करने लगेंगे।"

सरला बहन ने कहा—"यह सब अग्नि का ही प्रताप है, क्योंकि अग्नि में भेदक शक्ति होती है जो घर की दूषित वायु बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सकती है। अग्नि ही का सामर्थ्य है कि दूषित वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकाल देती है और पवित्र वायु का प्रवेश कराती है।"

भारती बोली—"तो मन्त्र पढ़कर यज्ञ करने का क्या प्रयोजन है?"

सरला बहन ने कहा—"मन्त्रों में वह व्याख्यान है, जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएँ और मन्त्रों की आवृत्ति अर्थात् दुहराने से कण्ठस्थ रहें। इससे वेद-पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होगी।"

भारती ने पूछा—"क्या होम न करने से हानि भी होती है?"

सरला बहन ने कहा—"हाँ; जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़कर रोगोत्पत्ति का कारण होने से प्राणियों को दुःख देता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप को दूर करने के लिए उतनी सुगन्ध या उससे अधिक सुगन्ध, वायु और जल में फैलानी चाहिए।"

भारती ने पूछा—"बहनजी! घी, अन्न तथा बादामादि मेवे खिलाने-पिलाने से क्या लाभ न होगा?"

सरला बहन ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"खाने-पीने या खिलाने-पिलाने से कौन मना करता है? परन्तु उससे तो केवल खाने-पीनेवाले को ही लाभ होगा। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने पदार्थ के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। इसीलिए होम करना अत्यावश्यक है।"

भारती ने पूछा—"बहनजी! प्रत्येक व्यक्ति को कितनी आहुति देनी चाहिएँ? और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है?"

सरला बहन ने कहा—"प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति देनी चाहिएँ और न्यून-से-न्यून छः-छः माशे की घृतादि की आहुति का परिमाण होना चाहिए। जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है।"

भारती ने फिर पूछा—"बहनजी! मेरे माता-पिता, दोनों यज्ञोपवीत पहनते हैं। पर, प्रायः स्त्रियाँ नहीं पहनतीं। क्या यज्ञोपवीत स्त्रियों को भी पहनना चाहिए?"

सरला बहन ने कहा—"हाँ, दोनों को पहनना चाहिए।"

भारती ने पुनः पूछा—"यज्ञोपवीत पहनने से लाभ क्या है? इसका उपयोग बताइये।"

सरला बहन ने बताया—"यज्ञोपवीत को प्रतिज्ञा-सूत्र या व्रत-बन्ध कहते हैं। इसको पहनकर मनुष्य कर्त्तव्य करने का व्रत या संकल्प करता है। इसमें तीन धागे इस बात की सूचना देते हैं कि मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण हैं। इन ऋणों को उसे पूरा करना चाहिए।"

भारती ने कहा—"बहनजी, ऋणों की व्याख्या जरा समझा दीजिए।"

सरला बहन ने तीनों धागों के विषय में विस्तार से समझाते हुए कहा—"देव-ऋण, ऋषि-ऋण और अतिथि-ऋण। देव-ऋण चुकाने का तात्पर्य है माता-पिता और आचार्य का श्राद्ध करना और तर्पण करना।"

भारती ने विस्मित होकर कहा—"बहनजी, श्राद्ध और तर्पण तो लोग मृतकों का करते हैं?"

सरला बहन ने हँसकर कहा—"भारती बहन ! यह उनकी भूल है। श्राद्ध केवल जीवित प्राणियों से सम्बन्ध रखता है, जिनके प्रति हम श्रद्धा-भाव रखते हैं। तुमने अपने से बड़ों की श्रद्धापूर्वक सेवा की, उन्हें धन और भेंट दी और मन में इच्छा रही कि यह तो कुछ भी नहीं दिया, कुछ भी सेवा नहीं की। इसी को श्राद्ध कहते हैं। तर्पण भी जीवित प्राणियों से ही सम्भव है, जिसमें तृप्त कर देने का प्रयोजन है। मान लो कि तुमने किसी को एक हजार रुपया दिया, सेवा भी की, परन्तु कोसते हुए, यह न तो श्रद्धा हुई और न तर्पण हुआ। श्राद्ध और तर्पण बड़ों का ही होता है और जीवित अवस्था में करना चाहिए। इसी को कहते हैं देव-ऋण चुकाना।"

"और ऋषि-ऋण?"

"ऋषि-ऋण का मतलब है प्राप्त ज्ञान दूसरों को देना। ऋषियों, गुरुजनों और आचार्यों से हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह उनका हमारे ऊपर ऋण होता है। यह ऋण तभी उतरता है जब हम दूसरों को अपना ज्ञान बाँट देते हैं। तीसरा है अतिथि-ऋण, इसका मतलब है अतिथियों की सेवा करना। बहन, अतिथि की सेवा न करने से तो यमराज भी डर गया था और नचिकेता को उसे तीन वर देने पड़े।

यज्ञोपवीत के तीन तागे ज्ञान, कर्म और उपासना,—पृथिवीलोक, द्युलोक, अन्तरिक्ष-लोक,—ईश्वर, जीव और प्रकृति,—भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक के भी सूचक हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं को पूर्ण करके 'तुरीय' अवस्था में प्रभु से मेल के संकल्प की सूचना भी ये तागे देते हैं। सत्त्व, रज और तम, तीनों गुणों से लाभ उठाते हुए जीवन के उद्देश्य परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने का संकल्प करना है। इस प्रकार ये तीन तागे संकल्प और प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने का उपदेश देते हैं।"

यज्ञोपवीत के विषय में अनेक प्रश्न और चर्चाएँ हुई और अन्त में सरला बहन ने हरियाणा के श्री भगतसिंह पटवारी की जनेऊ की घटना सुनाई—एक बार पटवारी भगत जी को आर्यसमाजी मित्र जबरदस्ती यज्ञ में ले गए और उनके गले में जनेऊ डालकर पण्डितजी द्वारा जनेऊ के लाभ पर प्रवचन भी करा दिया। उसके बाद जब वे घर पहुँचे तो उनके जीवन में अद्भुत परिवर्तन आ गया। अब उन्होंने घूस आदि लेना बन्द कर दिया; जो गलत कमाई से धन कमाया, जमीन और मकान बनवाया था वह याद कर-करके लौटा दिया और पवित्र तथा सरल जीवन बिताना शुरू कर दिया। आइये, हम भी यज्ञो-पवीत धारण कर जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने का संकल्प लें—

'व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतां
इदमहमनृतात् सत्य मुपैमि ॥'

असत्य को त्यागकर सत्य धारण करने के व्रत का यह मन्त्र सरला बहन ने सबसे बुलवाया और गोष्ठी समाप्त कर दी।

स्वास्थ्य-रक्षा

आज की संगोष्ठी बहन मनोरमा ने अपने यहाँ रखवाई। सरला बहन ठीक समय पर पहुँची और उसने बातचीत का कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व यह गीत सबके साथ गाया—

दया कर हे दयामय देव ! आओ।
सुभग इस दीन कुटिया को बनाओ ॥
कहाँ मैं नाथ, दोनों हाथ खाली।
कहाँ तुम हो सकल संपत्ति शाली ॥
न आडंबर बड़े मैं कर सकूँगा।
न भारी भेंट लाकर धर सकूँगा ॥
मुझे इसकी न कुछ परवाह ही है।
तुम्हें भगवन् ! न इसकी चाह ही है ॥
हृदय अपना बना आसन बिछाऊँ।
तुम्हें तब प्रेम से उस पर बिठाऊँ ॥
निरन्तर भक्ति के आँसू बहाऊँ।
तुम्हारे पाद-पद्मों को धुलाऊँ ॥
बना श्रद्धा-सुमन का हार लाऊँ।
तुम्हारे कंठ में सादर पिन्हाऊँ ॥
कृपा कर हे कृपा के सिन्धु ! आओ।
सफल मेरे मनोरथ कर दिखाओ ॥
दया कर हे दयामय देव ! आओ !
सुभग इस दीन कुटिया को बनाओ !

इस गीत के बाद कुसुम ने सरला जी से पूछा—"बहन जी ! आज आप हमें 'जीवन की कला' बताइए। जीवन की कला से हमारा मतलब है कि कैसे हम स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें और जीवन में आगे बढ़ें।"

सरला बहन जी की गोष्ठियों में कुसुम बहुत अधिक नहीं आ पाती है। बात यह है कि उसके घर में अत्यन्त वृद्ध और गठिया आदि रोगों से पीड़ित सास-ससुर हैं और दो छोटे बच्चे हैं। पति भी इधर-उधर आने-जाने की ड्यूटी में रहते हैं। उसके प्रश्न को सुनकर मुस्कराते हुए सरला बहन ने उससे पूछा—"कुसुम जी, यह बताइए कि जीवन क्या है ?"

कुसुम ने सोचकर कहा—"जीवन की परिभाषा करना तो बड़ा कठिन है। वैसे जीवन का अनुभव मैं, आप और सभी बहनें एवं अन्य लोग भी करते ही रहते हैं। जहाँ तक

मैं समझती हूँ शरीर, आत्मा, मन, बुद्धि आदि का ठीक प्रकार से कार्य करते रहना ही जीवन है।"

सरला बहन बोली—"जीवन की परिभाषा कभी फिर बताऊँगी, अभी तो इतना ही जान लो कि जीवन के लिए पहली और आवश्यक वस्तु है 'स्वास्थ्य'। यही कारण है कि श्री राम की माता कौसल्या, श्री कृष्ण की माता देवकी और शिवाजी की माता जीजाबाई बचपन से ही उनके शारीरिक विकास की ओर ध्यान देती थीं और साथ-ही-साथ उनकी मानसिक और आत्मिक शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न भी करती थीं। एक बलवान् मनुष्य आता है और वह सैकड़ों को झुका देता है। शरीर स्वस्थ न हुआ, बलवान् न हुआ तो न हम उठ सकेंगे और न बैठ सकेंगे। अत्याचार के विरुद्ध लड़-भिड़ भी न सकेंगे, सत्संग और अध्ययन द्वारा ज्ञानार्जन भी न कर सकेंगे। बल नहीं तो कुछ नहीं। इसीलिए कहा गया है **'बलमुपासस्व'**—बल की उपासना करो। उपनिषद् में कहा गया है **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'**—यह आत्मा कमजोर व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता। दुर्बलों को दासता और दुःखों में जीवन काटना पड़ता है। यदि शरीर में शक्ति नहीं तो कुछ भी नहीं। शरीर की नींव है उसका बल। इमारत की तरह शरीर की नींव भी गहरी और मजबूत होनी चाहिए। चट्टानों पर खड़ी की गई इमारत वर्षों तक टिकी रहती है, परन्तु बालू पर खड़ी इमारत कब गिर जाएगी, कुछ कह नहीं सकते। जीवन का आधार है स्वस्थ शरीर, इसलिए—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

शरीर ही सब धर्मों और कर्त्तव्य कर्मों का मुख्य साधन है। शरीर की उपेक्षा करना मूर्खता है, पाप है, समाज और ईश्वर के प्रति अपराध है। सन्ध्या के प्रारम्भ में इन्द्रिय-स्पर्श और और मार्जन-मन्त्रों का विनियोग इसी उद्देश्य से किया गया है। बिना मजबूत शरीर के न हम मातृ-ऋण चुका सकेंगे और न आचार्य-ऋण।"

कुसुम ने पूछा—"बहन जी! आपने बल एवं स्वास्थ्य की महिमा का बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में वर्णन किया है। अब यह भी बता दीजिए कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए हमें क्या-क्या करना चाहिए?"

सरला बहन ने बताया—

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

उचित भोजन, ठीक प्रकार रहना, उचित निद्रा, उचित कर्म, उचित प्रयत्न, यह सब जो भी करता है, वही योगी है, उसके दुःख नष्ट हो जाते हैं। परन्तु, आजकल उपयुक्त एवं नियमित भोजन की ओर लोग ध्यान ही नहीं देते। इसके परिणामस्वरूप जिसे देखो वही कोई-न-कोई रोग पाले हुए है।"

सरला बहन ने आनन्द स्वामी जी महाराज की 'उपनिषदों का सन्देश' नामक पुस्तक में उद्धृत ऐतरेयोपनिषद् की एक कथा सुनाते हुए कहा—"भगवान् जब सारी सृष्टि बना चुके—पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, फल, फूल सब बन चुके, तब मनुष्य और पशु सब

इकट्ठे होकर भगवान् के पास पहुंचे। मनुष्य ने आगे बढ़कर कहा—'महाराज! आपने बना तो दिया हमें, पर अब हम खायें क्या? और कितनी बार खायें?'

ईश्वर ने कहा—'तुम चौबीस घण्टे में, दिन और रात में, दो बार खाओ।'

मनुष्य ने सुना और पीछे हट गया। पशुओं ने भी सुना तो घबरा गए; आगे बढ़कर बोले—'महाराज! चौबीस घण्टे में केवल दो बार? हम तो भूखे मर जाएँगे।'

भगवान् ने मुस्कराकर कहा—'घबराओ नहीं, चौबीस घण्टे में दो बार खाने का नियम तुम्हारे लिए नहीं, केवल मनुष्यों के लिए है। तुम तो पशु हो, चाहे जितनी बार खाओ, जो भी खाओ। तुम्हारे लिए कोई भी नियम नहीं।'

इस आख्यान का सार यह है कि मनुष्य के लिए शास्त्रों ने दो बार के भोजन का विधान किया है और वह भी नियत समय पर। अन्यथा, जब चाहे और जो सामने आ जाय उसे खाने को ललक उठना मनुष्यता नहीं, पशुता है।"

भारती ने सरला बहन की इस बात की पुष्टि में हँसते हुए कहा—"बहन जी, आज का मानव पशुओं से भी बाजी मारना चाहता है। मनुष्य ने जब देखा कि पशु हर समय खाते हैं तो उसने सोचा कि ये पशु तो हमसे छोटे हैं, बुद्धिहीन हैं और खाएँ अधिक, यह तो ठीक नहीं। हमें भी अधिक खाना चाहिए। तब उसने ईश्वरीय नियम के विरुद्ध खाने-पीने का अपना प्रोग्राम बनाया। अर्ली-टी, बैड-टी, और फिर टी, और पी, और पी, पी टी, पी-पी टी, टी, टी, पी, पी, बस सारा दिन यही होता रहता है। मनुष्य अब मनुष्य नहीं रहा, कुछ और बन गया है। भूल गया है कि खाना स्वाद के लिए नहीं, केवल शरीर-रक्षा के लिए है। भूल गया है कि हमें खाने के लिए नहीं, जीने के लिए खाना है।"

सरला बहन ने बताया—"स्वास्थ्य के लिए सबसे पहले उपयुक्त भोजन पर ध्यान देना चाहिए। जो अधिक खाता है, वह जल्दी मर जाता है। क्योंकि, परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को भोजन के लिए जीवन-भर का एक राशन कार्ड देता है। कार्ड में जितनी भोजन की मात्रा लिखी है, उतना खाना ही उसे जीवन-भर मिलेगा; इससे न तो कम और न ही अधिक। अब आपके अधिकार में है इस राशन को शीघ्र समाप्त कर दीजिए अथवा देर तक रहने दीजिए। जितनी देर राशन रहेगा, उतनी देर आप जीवित रहेंगे।"

मनोरमा बोली—"बहन जी! आनन्द स्वामी जी महाराज की एक कथा में मैंने भी एक घटना सुनी थी। उनकी सब बातें तो मुझे समझ में नहीं आईं, पर वह जो छोटी-मोटी घटनाएँ और कहानियाँ सुनाते थे, बड़ी अच्छी लगती थीं। स्वामी जी ने बताया था—एक दिन उनका एक भक्त 'मिलाप' कार्यालय में आया। स्वामी जी ने प्रेम से कहा 'सुनाओ भाई दुर्गा! कुछ पानी-वानी पिओगे?' उसने कहा, 'नहीं।' स्वामी जी ने कहा—'लेमनेड?' उसने कहा—'हाँ।' स्वामी जी ने अपने सेवक से लेमनेड लाने को कहा। वह एक बोतल ले आया। दुर्गा ने कहा—'इससे मेरा क्या होगा?' स्वामी जी ने उसकी इच्छानुसार दो दर्जन बोतलें मँगवाईं और एक-एक बोतल खोलकर उसे देने को कहा। दुर्गा ने कहा—'महाराज, ऐसा करो कि एक बाल्टी में सब उँडेल दो।' चपरासी ने वैसा ही किया और दुर्गा सारी बाल्टी पी गया। दुर्गा के विषय में स्वामी जी ने कहा कि वह अब नहीं है, छोटी ही आयु में मर गया।"

दुर्गा के 'लेमनेड' पीने की बात सुनके सभी हँस पड़ीं, परन्तु उसकी मृत्यु ने भोजन कम करने की प्रेरणा भी दी।

सरला बहन ने कहा—"बहनो ! चरक ऋषि प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र के निर्माताओं में से एक हैं। उन्होंने जब सब ग्रन्थ लिख लिये और अपने शिष्यों को उन्होंने चिकित्सा की सब विधियाँ बता दीं तथा उन्हें अपने यहाँ से विदा कर दिया, तो उन शिष्यों की परीक्षा के लिए वे एक बार उन चिकित्सकों के बाजार में पहुँचे और पक्षी का रूप धरकर ऊँची आवाज में बोले, 'कोऽरुक्? कोऽरुक्? कोऽरुक्? अर्थात् रोगी कौन नहीं ? रोगी कौन नहीं ? रोगी कौन नहीं ?'

एक शिष्य ने पक्षी को देखकर और उसकी आवाज समझकर कहा—'जो मेरी दूकान का बना च्यवनप्राश प्रतिदिन सेवन करता है, वह रोगी नहीं होता।'

दूसरा बोला—'जो मेरी दूकान की बनी चन्द्रप्रभावटी का सेवन करनेवाला है, वह कभी रोगी नहीं हो सकता।'

तीसरे ने कहा—'जो हमारा बनाया हुआ लवणभास्कर खाता है, वह कभी रोगी नहीं हो सकता।'

चौथा बोला—'मेरे यहाँ का सत्तशिलाजीत खानेवाला कभी बीमार नहीं हो सकता।'

परन्तु चरक को किसी का उत्तर नहीं जँचा। अन्त में जब निराश होकर वे जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि नदी से नहाकर उनके प्रसिद्ध शिष्य वाग्भट्ट आ रहे हैं। चरक फिर एक बार एक वृक्ष पर चढ़कर पहले की भाँति बोले—'कोऽरुक्? कोऽरुक्? कोऽरुक्?' अर्थात् रोगी कौन नहीं, रोगी कौन नहीं, रोगी कौन नहीं?

वाग्भट्ट ने इधर-उधर देखा, उस वाक्य पर विचार किया और उसका उत्तर दिया—'हितभुक्, मितभुक्, ऋतुभुक्।' जो 'हितभुक्' अर्थात् हितकारी भोजन करता है, जैसे दूध, फल, हरी सब्जियाँ, वह कभी अस्वस्थ नहीं हो सकता। जो भोजन शरीर और मन के लिए हितकारी भी हो वह भी 'मितभुक्' अर्थात् नपी-तुली मात्रा में खाना चाहिए। जो मात्रा में भोजन करता है, कभी अस्वस्थ नहीं होता। हम हर समय खाते रहते हैं—प्रातःकाल की चाय, फिर कॉफी, फिर चाय, फिर नाश्ता, फिर भोजन। यह ठीक नहीं; हितकारी भोजन भी मात्रा में ही हो। साथ ही 'ऋतभुक्' हो, अर्थात् ईमानदारी की कमाई का होना चाहिए। पाप के अन्न से आत्मा का पतन होता है। गिरी हुई आत्मावाले मनुष्य का सिर कभी ऊँचा नहीं होता। उसका भोजन पचता नहीं। चिन्ताएँ उसे खाती रहती हैं। इसलिए अपने और अपने बच्चों के जीवन को स्वस्थ और सुखी बनाने के लिए अपने घर में लिखकर टाँग दीजिए—'हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्' अर्थात् हितकारी भोजन करो, सीमित मात्रा में भोजन करो, और ईमानदारी की कमाई का भोजन करो। स्वास्थ्य को उत्तम रखने के लिए भोजन के इन नियमों का पालन करना आवश्यक है।"

भारती ने पूछा—"बहन जी ! भोजन के अतिरिक्त स्वास्थ्य के लिए और क्या करें ?"

सरला बहन ने कहा—"स्वास्थ्य के साथ-साथ बल भी पैदा करना आवश्यक है !

उपनिषदों और वेदों में भी बल की महिमा का गान किया गया है। दुर्बल आदमी अपनी रक्षा भी सरलता से नहीं कर सकता तो दूसरों की सहायता कैसे करेगा ? शरीर स्वस्थ होगा तो पुरुषार्थ भी होगा। पुरुषार्थ होगा तो संसार के वैभव भी प्राप्त होंगे। तभी तो कहा गया है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी

अर्थात् उद्योगी शेरदिल ही ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। शरीर ही सब धर्मों और कर्मों का मूल साधन है। बिना मजबूत शरीर के मातृ-ऋण, पितृ-ऋण और आचार्य-ऋण भी नहीं चुकाये जा सकते। इसलिए शरीर को बलवान् और स्वस्थ रखने के लिए 'व्यायाम' की ओर ध्यान देना चाहिए।''

भारती ने लजाते हुए कहा—''हम स्त्रियाँ व्यायाम करती हुई कोई अच्छी लगेंगी ?''

सरला बहन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—''शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पुरुषों के समान स्त्रियों को भी व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम से तात्पर्य है शारीरिक श्रम। जिन्हें घर-गृहस्थी में निरन्तर कर्म करना पड़ता है, उन्हें अलग से व्यायाम करने की कोई आवश्यकता नहीं; किन्तु जिन्हें आराम और सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, उन्हें तो व्यायाम करना ही होगा। तभी उनका स्वाभाविक सौन्दर्य निखर सकता है। व्यायाम से ही मनुष्य आत्मरक्षा कर सकता है। स्त्रियों को अपने अनुकूल कुछ खेल-कूद का चुनाव कर लेना चाहिए। खेल भी व्यायाम के ही अंग हैं। खेलों से हमें कई अन्य गुणों को सीखने का भी अवसर मिल जाता है। खेल में बड़े और छोटेपन का भाव दूर हो जाता है, अनुशासन आता है, नियम में रहना पड़ता है, चिन्ताओं और बुराइयों से छुटकारा मिलता है, शरीर के कई प्रकार के रोग निकल जाते हैं। स्त्रियों को चाहिए कि बच्चों को भी खेलों के द्वारा शारीरिक और नैतिक शिक्षा दिया करें।''

खेलों का नाम सुनते ही खिलंडरी जग्गो की बाछें खिल गईं। वह चहककर बोली, ''दीदी ! क्या लड़कियाँ भी लड़कों की भाँति खेलों में भाग ले सकती हैं ?''

सरला बहन ने कहा—''क्यों नहीं ! किन्तु लड़के लड़कों के साथ खेलें और लड़कियाँ लड़कियों के साथ। आजकल स्त्रियाँ घरों में बन्द रहती हैं जिससे वे अनेक रोगों से ग्रसित हो जाती हैं। पहले तो चक्की आदि चलाने से उनके शरीर स्वस्थ रहते थे। अब तो आटा पीसना तथा अन्य सभी कार्य मशीन से होने लगे हैं और लड़कियों को उपन्यास पढ़ने और सोने के सिवाय कोई काम नहीं रहा। इसलिए लड़कों के समान लड़कियों को भी खेलना और भी अनिवार्य हो गया है। खेल-कूद और व्यायाम से शरीर में सौष्ठव आता है, शरीर में चपलता आती है, स्फूर्ति आती है, आलस्य दूर हो जाता है। साधारणतः लड़कियाँ जरा-सी बड़ी हुईं कि उन्हें खेलों से विरत कर दिया जाता है। इसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे जीवन के प्रारम्भ से ही अनेक रोगों से पीड़ित हो जाती हैं।''

जग्गो ने फिर पूछा—''दीदी ! क्या हम योगासन भी कर सकती हैं ?''

''अवश्य कर सकती हैं, परन्तु योगासन का चुनाव सोच-समझकर ही करना

चाहिए।" सरला बहन ने आसनों के विषय में बताते हुए कहा—"शरीर की स्वस्थता के लिए कई तरह के आसनों की खोज की गई है। योगासनों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि थोड़े समय में ही बहुत व्यायाम हो जाता है। आसनों के साथ प्राणायाम भी जुड़ा रहता है।" सरला बहन ने स्वयं बालिकाओं एवं महिलाओं को भुजंगासन, गरुड़ासन, कुक्कुटासन, शीर्षासन, आदि आसन बतलाए और कहा—"पुरुषों की भाँति ये आसन स्त्रियों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी हैं। मेरी राय में व्यायाम भी ऐसा चुनना चाहिए जो शरीर को तो स्वस्थ बना ही दे, साथ ही आमदनी का भी साधन हो।"

मनोरमा ने चकित होकर पूछा—"ऐसा कौन-सा व्यायाम हो सकता है?"

"सब्जियाँ उगाना, फल-फूल उत्पन्न करना ऐसे ही व्यायाम हैं। आपने यदि कालिदास का 'शकुन्तला' नाटक पढ़ा है तो उसमें साफ लिखा है कि कण्व के आश्रम में शकुन्तला, प्रियंवदा और अनुसूया आदि छात्राएँ शिक्षा प्राप्त करते हुए आश्रम में बगीचे की भी देख-भाल करती थीं। शकुन्तला पानी देते-देते थक जाती है और पसीने से तरबतर हो जाती है। इसी प्रकार कपड़े स्वयं धोना, अपना घर स्वयं स्वच्छ करना आदि कार्य भी शारीरिक दृष्टि से स्त्रियों के लिए ऐसे उपयोगी और उत्तम व्यायाम हैं कि 'एक पन्थ दो काज' वाली कहावत चरितार्थ होती है—घर के काम भी निपट जाते हैं और रूप-रंग भी निखर आता है। व्यायाम से शरीर पुष्ट, फेफड़े मजबूत तथा रक्त शुद्ध होता है। आयु भी दीर्घ होती है।

औषध नहीं व्यायाम समाना,
व्यय नहीं तनिक भी, लाभ महाना।"

मधु ने कहा—"दीदी! जरा यह बताइए कि स्वास्थ्य के लिए हम और क्या-क्या करें?"

सरला बहन ने उन सब लड़कियों को कहा—"मैं एक उपयोगी 'हैल्थ प्रोग्राम' (स्वास्थ्य की योजना) बतला देती हूँ, आप सब उसे नोट कर लें। अपनी घरेलू परिस्थिति के अनुसार इसमें अदल-बदल भी कर सकती हो। यह दिन-भर का चार्ट है—

(१) प्रातःकाल उठना। प्रभु-भक्ति एवं नित्य कर्म करना।

(२) प्रातःकाल ताजा पानी से स्नान करना, व्यायाम करना, खुली हवा में साँस लेना।

(३) स्वच्छ वस्त्र धारण कर संध्या-हवन करना और उसके बाद शान्त मन से दिन-भर के कार्यों का निर्धारण।

(४) जलपान, जिसमें भिगोये हुए चने, सूखे मेवे, दूध, दलिया, दही, मट्ठा आदि ले सकते हैं।

(५) ग्यारह बजे के आसपास अपनी सुविधा के अनुसार भोजन। भोजन में रोटी, चावल, दाल, सब्जी आदि के अतिरिक्त कच्ची तरकारियों का सलाद, गाजर, टमाटर आदि भी लिये जा सकते हैं।

(६) शाम को तीसरे पहर यदि आवश्यकता हो तो कोई ऋतु का फल।

(७) शाम को खेल-कूद, सैर-सपाटा आदि परिस्थितियों के अनुसार शारीरिक श्रम।

(८) रात में रोटी या चावल और एक सब्जी, या भात के साथ दाल ली जा सकती है।

भोजनादि के विषय में बच्चों को निम्नलिखित बातों का अभ्यास कराएँ—

(क) भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। दाँत हमें भगवान् ने भोजन चबाने के लिए ही दिये हैं। यदि दाँत से नहीं चबाओगी तो दाँतों का काम आँतों को करना पड़ेगा और वे कमजोर हो जाएँगी। चबाने के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि दूध को खाइए और रोटी को पीजिए। मतलब यह कि भोजन इतना चबाएँ कि मलाई बन जाए। चबाने से भोजन में रस आता है और वह शीघ्र पचता है।

(ख) दिन और रात में कम-से-कम आठ गिलास पानी पीना चाहिए। पानी का बीच-बीच में आचमन भी करना चाहिए।

(ग) अण्डे, मांस, शराब तथा अन्य नशीली वस्तुओं के सेवन से स्वयं तथा अन्यों को बचाना चाहिए।"

भारती बोली—"दीदी, इन सब बातों के साथ मेरे पिताजी ने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए हँसी को आवश्यक बतलाया था; कहा था यह शरीर की नाड़ियों के लिए एक बहुत अच्छा व्यायाम है। उन्होंने बताया कि 'जब मैं गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में कक्षा ६ में पढ़ता था तो उस समय गुरुकुल के वार्षिकोत्सव में विद्यार्थियों की ड्यूटी अलग-अलग कार्यों के लिए लगती थी। आर्यसमाज के एक वीतराग, हृष्ट-पुष्ट और बहुत ही अधिक साहसी संन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज हुए हैं। उनकी वाणी में भी ओज था। वे एक समय भोजन करते थे और बहुत ही प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के उत्सव पर वे आए और उनकी सेवा का भार मेरे पिताजी पर पड़ा। एक दिन जब वे दोपहर को भोजन करा चुके और नियमानुसार जब स्वामीजी गंगासागर-भर लस्सी पी चुके तो उन्हें आराम करने के लिए छोड़कर जब वे जाने लगे तो देखते क्या हैं कि स्वामीजी महाराज लगभग पन्द्रह मिनट तक कमरा बन्द करके हँसते रहे। हँसी बिल्कुल स्वाभाविक लगती थी।' मेरे पिताजी आश्चर्य में पड़ गए। वहीं खड़े हो गए। जब हँसी बन्द हुई और दरवाजे खुले तो मेरे पिताजी ने अकेले हँसने के विषय में स्वामीजी से पूछा। उन्होंने मुस्कराते हुए उन्हें बताया—बेटा, यह ऐसा व्यायाम है कि शरीर की सभी नस-नाड़ियाँ पूरी तरह खुल जाती हैं। शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न और आत्मा आनन्द से भर जाती है।"

सरला बहन ने इसका समर्थन किया और कहा—"हँसना सचमुच ही एक अच्छा व्यायाम है। यूरोप में तो अनेक व्यक्ति एक 'लाफिंग ग्लास' में अपना चेहरा देखते हैं और हँसते हैं। हमें भी इसका अभ्यास करना चाहिए।"

मनोरमा ने कहा—"दीदी, आपने जो हैल्थ प्रोग्राम बताया है, उसमें आपने भोजन में फल, सब्जियाँ, दूध आदि के उपयोग का तो उपदेश दिया है पर अण्डे और मांस का विरोध किया है, जबकि आज के सभी डॉक्टर और चिकित्सक इनको खाने का निर्देश

देते हैं।" क्या आप किसी भी व्यक्ति को इसका विरोध करते हुए पाएँगी ?"

सरला बहन ने हौले से हँसते हुए कहा— "कोई भी समझदार डॉक्टर अपने रोगी को मांस खाने का निर्देश नहीं दे सकता। रोग कोई भी हो, उससे पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। रोग दूर होते ही उसे ऐसे भोजन की आवश्यकता होती है जो हल्का और सुपाच्य हो, इसीलिए आमतौर पर साबुत मूँग की पतली दाल या घीया, या शलजम की सब्जी से भोजन की शुरूआत की जाती है। जो डॉक्टर मांस या अण्डों का निर्देश करते हैं, वास्तव में वे डॉक्टर होते ही नहीं; वे केवल विदेशों की नकल से तैयार पुस्तकों को रटकर डिग्रीधारी बने होते हैं। सच तो यह है कि मांस खानेवाले जानवरों के दाँत ही अलग तरह के होते हैं, जैसे बिल्ली, शेर, भेड़िया और कुत्ता आदि। मनुष्यों के दाँत गाय-भैंस या बकरी-घोड़े जैसे होते हैं। इस भ्रम को भी मन से निकाल दो कि मांस और अण्डे अधिक शक्ति देते हैं। फलों, अनाजों और शाक-सब्जियों में मांस-अण्डे से कहीं अधिक ऊर्जा और ऊष्मा मिलती है, कहीं अधिक आवश्यक खनिज-लवण होते हैं और सुपाच्य भी।"

मनोरमा बोली— "वैसे मांस खाने में बुराई ही क्या है ?"

"गुण भी क्या है ?" मधु ने कहा।

सरला बहन ने कहा—"मांस विचार और मन को दूषित करता है। मांस-भक्षण से मनुष्य के हृदय से दया के भाव दूर हो जाते हैं और हृदय में निर्दयता अपना स्थान बना लेती है। इससे मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा बौद्धिक शक्तियों का ह्रास होता है। मनुष्य व्यवहार में अशिष्ट और जंगली बनने लगता है। पाइथागोरस, प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, राम, कृष्ण, दयानन्द, गांधी और जार्ज बर्नार्ड शॉ को सारा संसार महान् कहता है और ये सब-के-सब मांसाहारी नहीं थे।

बिहार के राज्यपाल और लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष अनन्तशयनम् आयंगर ने दिल्ली शाकाहारी क्लब का उद्घाटन करते हुए मांस-भक्षण के विरोध में कहा था— 'भोजन के लिए हत्या जंगली पशुओं का स्वभाव है।'

जार्ज बर्नार्ड शॉ एक बार एक दावत में गए हुए थे। वहाँ अधिकतर वस्तुएँ मांस से बनी हुई थीं और मांस वे खाते न थे। अतः उन्होंने फल और सब्जियाँ तो ले लीं, किन्तु मांस की प्लेटें परे सरका दीं। दावत देनेवाले मित्र ने आग्रह से पूछा—'ये चीजें आप क्यों नहीं ले रहे हैं ?'

अपनी लट्ठमार शैली में शॉ बोले—'जनाब, मुझे ईश्वर ने भोजन करने को जो पेट दिया है, वह मुर्दे दफनाने का कब्रिस्तान नहीं है।' महापुरुषों के ये कथन स्पष्ट बता रहे हैं कि मांस में गुण होते तो वे भी इन्हें अपनाते।"

मधु बोली—"दीदी! आपका बताया 'हैल्थ प्रोग्राम' वैसे तो अत्युत्तम है, परन्तु हमारे परिवारों में तो देर से उठना एक फैशन ही बन गया है। आप प्रातः-जागरण के महत्त्व पर भी थोड़ा प्रकाश डाल दीजिए!"

सरला बहन ने बताया—"प्रातः ४-४½ बजे उठना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यदि तुम सुन्दर, सुडौल, स्वस्थ और दीर्घजीवी होना चाहती हो, अपने हृदय को वसन्त की सुगन्धित वायु की तरह आनन्दोल्लास से परिपूर्ण करना चाहती हो, अपनी

धमनियों में स्वच्छ रक्त की लालिमा प्रवाहित करने की अभिलाषा रखती हो, आयु को बढ़ानेवाली पुष्प-सौरभ से परिपूर्ण प्रातःकालीन मन्द पवन का सेवन करना चाहती हो, तो खूब तड़के शय्या-त्याग करने का अभ्यास करो। वेद में लिखा है— सूर्योदय से पूर्व, ऊषादेवी के आने से पहले उठना आवश्यक है। बहनो ! वेद परम पिता का कभी न मरने-वाला और कभी न बूढ़ा होनेवाला काव्य है। ऋग्वेद के १२३वें 'ऊषा सूक्त' के एक मन्त्र में कहा गया है—'देखो, ऊषा का रथ जुड़ गया। अजर और अमर देवता इसमें सवार हो आए हैं। ऊषादेवी देवताओं को साथ लेकर मनुष्य के रोगों को दूर करने के लिए आगे बढ़ रही है !' इसी सूक्त के दूसरे मन्त्र में बताया गया है कि यह ऊषा देवी प्रभात की पहली ज्योति के साथ किरणों के रथ पर आरूढ़ होकर आगे बढ़ती है तो अपने साथ चार वस्तुएँ लेकर चलती है, उन्हें बाँटती हुई चलती है। परन्तु देती है उन्हें, जो जागते हैं। जो सोते रहते हैं वे चार वस्तुएँ उससे नहीं प्राप्त कर सकते। जिन चार वस्तुओं को वह लुटाती चलती है, बाँटती जाती है, वे हैं बुद्धि, बल, धन और यश।' यदि इन चार वस्तुओं को लेना चाहती हो तो मधु, तुम और सभी बहनें, ऊषा के आने से पूर्व उठो ! ऊषादेवी आएगी और अपने कोष की सम्पत्ति देती चली जाएगी।

हर रात के पिछले पहरे में
इक दौलत लुटती रहती है।
जो जागते हैं वो पाते हैं,
जो सोते हैं वे खोते हैं।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण महाराज की दिनचर्या लिखी गई है। उससे ज्ञात होता है कि वे उस समय उठते थे, जब आकाश में अभी तारे होते थे। उठकर शुद्ध ताजा जल से स्नान करते थे, तब शुद्ध वस्त्र पहनकर संध्या-हवन करते थे। 'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरित-मानस' में भी राम और लक्ष्मण के प्रातः-जागरण और सन्ध्योपासना का वर्णन है। इस-लिए हमें जल्दी सोना और जल्दी उठना चाहिए। एक कहावत है कि जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान् और बुद्धिमान् बनाता है।

महर्षि दयानन्द सूर्योदय से दो घण्टा पूर्व उठते थे। नगर से बाहर जाकर दौड़ते थे। एक बार उन्होंने अपने आठ वर्ष के अनुभव की बात सुनाई कि 'इतना सवेरे उठकर घूमते हुए मुझे कोई भारतीय कभी दिखाई नहीं दिया। पहले कुछ अंग्रेज स्त्री-पुरुष दिखाई देते थे, अब वे दिखाई नहीं देते।' सवेरे उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर ताजा हवा में व्यायाम, भ्रमण या दौड़ना स्वास्थ्य के लिए, शरीर के लिए, स्फूर्ति के लिए और जीवन के लिए उपयोगी एवं आवश्यक है। ताजी हवा में रक्त साफ करनेवाला ऑक्सीजन तो होता ही है, चुम्बकीय तत्त्व भी विद्यमान रहते हैं, जो हमारे अन्तर्मन को अपनी आकर्षण-शक्ति से भरपूर कर देते हैं। हमारा शरीर बिजली की बैटरी के समान है। यदि हम इसे बिना चार्ज किये प्रयोग में लाएँगे तो निश्चित है कि इसकी कार्य-शक्ति समाप्त हो जाएगी। अतः अपने स्वास्थ्य को उत्तम बनाने के लिए प्रातःकाल उठकर और स्वच्छ वायु में गहरी साँस लेना सीखो।"

कमलेश ने पूछा—"बहन जी, गहरी साँस लेने का क्या उद्देश्य और क्या विधि है?"

सरला बहन ने बताया—"गहरी साँस लेना भी एक कला है। इसका भी अभ्यास करना होगा। इसके आरम्भ के लिए तुम किसी खुली खिड़की के सामने अपनी ठोडी को जरा ऊँचा करके सीधी खड़ी हो जाओ और धीरे-धीरे नाक से वायु को भीतर ले जाओ। फेफड़े के नीचे के हिस्से को भी ऊपर के हिस्से के समान भर लो और वायु को जितना सामर्थ्य और इच्छा हो उतनी देर तक भीतर रखो, फिर धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दो। जबर्दस्ती साँस नहीं रोकनी चाहिए। ऐसा करते हुए अपनी आँखें बन्द कर लेनी चाहिएँ तथा अपने मन में 'ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम्' इस मन्त्र का पाठ करते हुए स्वास्थ्य, सौन्दर्य तथा अन्य उत्तम भावों का हृदय में ध्यान करना चाहिए। हमें सोचना चाहिए कि वायु की पवित्र धारा के साथ हममें शक्ति, उत्साह, स्फूर्ति एवं जीवन का प्रवेश हो रहा है। इस प्रकार हमारे रक्त का प्रत्येक कण चुम्बकीय शक्ति से भर उठेगा और इसमें आकर्षण-शक्ति की निरन्तर वृद्धि हो जाएगी।"

कमलेश ने पूछा—"बहन जी, स्नान के लिए गर्म पानी ठीक है या ठण्डा?"

सरला बहन ने कहा—"गर्म पानी से नहाना ठीक नहीं। शरीर को नहाने से पूर्व हथेली से खूब रगड़ लेना चाहिए। हथेली को इस प्रकार रगड़ना चाहिए कि नस-नस में रक्त दौड़ उठे और फिर शीतल ताजा पानी से मल-मलकर स्नान करना चाहिए।

इस प्रकार स्वास्थ्य को उत्तम बनाने और स्वच्छ रखने के लिए व्यायाम, सन्ध्या-वन्दन और उत्तम भोजन करना चाहिए। उत्तम स्वास्थ्य सदाचार का मूल है। अतः बालक-बालिकाओं में स्वास्थ्य-प्रेम जगाना सन्तान-निर्माण-कला एक प्रमुख अंग है। शारीरिक स्वास्थ्य से ही हम आत्मिक स्वास्थ्य या शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अब समय अधिक हो गया है, इसलिए आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के साधनों और लाभों पर अगली किसी गोष्ठी में चर्चा होगी।"

स्वच्छता

आज जब साप्ताहिक गोष्ठी में मधु, कमलेश, ऊषा, भारती, जग्गो, मनोरमा आदि सभी महिलाएँ एकत्र हुईं तो निम्न गीत से सरला बहन ने कार्यवाही प्रारम्भ की—

हे आनन्दघन ओ३म्!
सुख की वर्षा करो।
पाप-ताप सब दूर नसाओ।
फेरि कृपा-दृग-कोर। सुख की···
दूर करो शुभ द्युति से अपनी
मोह-तिमिर घनघोर। सुख की···
शीतल मन्द पवन सुरभित हो,
उपवन छवि चितचोर। सुख की···

गुरुकुल-कमल लसे प्रभु-बल से
प्रमुदित हो मन-मोर । सुख की ···
व्रतपति व्रत हम ब्रह्मचर्य का,
पाल सकें सुकठोर । सुख की···
मातृभूमि सुख-सम्पत्ति साजे,
विनति यही कर जोर ।। सुख की···

सरला बहन ने कहा—"जो प्रभु इतना सुन्दर, इतना पवित्र और इतना आकर्षक है, उसे प्रसन्न और खुश करने के लिए हमें भी स्वच्छ, सुन्दर और निर्मल बनने की आवश्यकता है । तभी हमारे चारों ओर सुख की वर्षा हो सकती है ।"

भारती ने अनुरोध किया—"बहन जी ! आज आप स्वच्छता के महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।"

सरला बहन बोली—"बहनो ! स्वच्छता का महत्त्व ईश्वर-पूजा से कम नहीं और सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ता । बस, हमें इतना ध्यान रखने की आवश्यकता है कि हम जहाँ रहते हैं, जहाँ जाते हैं, जहाँ देखते हैं, वहाँ जो वस्तु अच्छी न लगे उसको सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें । दूसरों को शुद्ध बनाने से पहले हमें, विशेषकर महिलाओं को, अपना तथा अपने बच्चों का शरीर तथा घर साफ-सुथरा करना होगा ।

अद्भिः गात्राणि शुध्यन्ति अर्थात् 'जल से शरीर शुद्ध होता है ।' अतः हमें स्वयं, तथा बड़ों को भी प्रतिदिन नहाने की आदत डालनी चाहिए । नहाने के समय शरीर के प्रत्येक अंग को साफ रखने का ध्यान रखना चाहिए । नहाने के साथ-साथ दाँत, नाक, आँख आदि की सफाई भी आवश्यक है । हमारा सिर यदि साफ नहीं होगा तो उसमें 'जूँ' पड़ जाएँगी । एक जूँ की आयु तीन-चार सप्ताह तक की होती है, इस काल में एक जूँ सौ अण्डे दे देती है । इन्हें लीख कहते हैं । इन लीखों को एक से दूसरे सिर तक पहुँचते देर नहीं लगती । जब ये किसी के शरीर में पड़ जाती हैं तो परेशान कर देती हैं । बच्चे और बच्चियाँ खुजा-खुजाकर तंग आ जाते हैं । जिनके सिर में जूँ पड़ गई हैं, उन्हें शाम को साबुन से धोकर 'पैरेफीन आइल' या किसी जूँ-नाशक वस्तु का प्रयोग करना चाहिए । पतली कंघी से उन्हें निकाल भी देना चाहिए । ये कपड़ों में भी आकर बहुत परेशान करती हैं । उन कपड़ों को धोकर उन पर गर्म लोहा चलाकर जुओं से मुक्ति पा लेनी चाहिए ।

इसके अतिरिक्त, दाँतों पर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है । दाँत दो प्रकार के होते हैं— दूध के दाँत और पक्के दाँत । छः-सात मास से दूध के दाँत निकलने आरम्भ हो जाते हैं । उस समय बच्चों का ध्यान रखना माता का कर्त्तव्य है । ये सात-आठ वर्ष तक रहते हैं । दाँत के ठीक न रहने का कुप्रभाव पाचन-शक्ति पर भी पड़ता है । दाँतों की भाँति आँखों की स्वच्छता भी बड़ी आवश्यक है । प्रायः मुख में जल भरकर, आँखों को खोलकर शीतल जल के छींटे देना, आवश्यकतानुसार आँखों में उत्तम अंजन लगाना भी उपयोगी है । पाचन ठीक न होने से पेट साफ नहीं होता और बालक को कब्ज की शिकायत हो जाती है । पेट की गन्दी-सड़ी हवा का हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है । माता को

चाहिए कि बचपन में उसे ठीक समय पर शौच जाने का अभ्यास करावे। पेट ठीक रखने और शौच ठीक समय पर कराने के लिए उसे, जब से वह दूध पीना प्रारम्भ करे, ठीक समय पर नियत मात्रा में भोजन की भी आदत डालनी चाहिए। पेट के कृमि और अन्य रोगों को दूर करने के लिए स्वास्थ्य के नियमों के साथ, योग्य चिकित्सक से भी सहायता लेनी चाहिए। लेकिन बालकों को ओषधि का आदी बना देना और अनावश्यक इंजैक्शनों का प्रयोग करना ठीक नहीं। बच्चों के लिए जो आवश्यक टीके हैं, उन्हें समय पर लगा दें तो बाद में कोई आवश्यकता कम ही रहती है।

स्वच्छता का व्यवस्था से भी बहुत अधिक सम्बन्ध है। घर की स्त्रियों का बहुत अधिक समय चीजों को खोजने में ही चला जाता है। चाभी, दियासलाई, जूता, बर्तन आदि इधर-उधर रखने से बड़ी कठिनाई होती है। पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज ने अपने साथ घटी एक घटना सुनाई थी—

दिल्ली के करौल बाग में एक सज्जन उन्हें रात को दूध पिलाने अपने घर ले गए। घर में जाकर बैठे ही थे कि बिजली फेल हो गई। अन्धकार हो गया। गृहपति महोदय ने पहले बिजली-विभाग को बुरा-भला कहा, और इसी क्रम में उन सज्जन महानुभाव ने सरकार को भी कोसना प्रारम्भ कर दिया। पूज्य स्वामी जी महाराज ने कहा— 'महाशय! राज्य को कोसने से और सरकार को बुरा बताने से तो कुछ बनेगा नहीं, आपके घर में कोई मोमबत्ती आदि होगी ही, उसे जला लीजिए, काम चल जाएगा।' तब गृहपति ने कक्कू की माँ को पुकारा और मोमबत्ती तथा दियासलाई माँगी। अब दियासलाई और मोमबत्ती की खोज शुरू हुई। जब घर में दियासलाई नहीं मिली तो एक सिगरेट पीनेवाले से माँगी। तीलियाँ जला-जलाकर मोमबत्ती की खोज शुरू हुई। नौबत यहाँ तक पहुँची कि तीलियाँ खत्म होने लगीं। दियासलाईवाले ने कहा—'तीलियाँ जरा सँभालकर खर्च कीजिए, नहीं तो वे भी समाप्त हो जाएँगी और आप अधिक कठिनाई में पड़ जाएँगे।' इसी भाग-दौड़ में बिजली आ गई। गृहपति बैठते हुए बड़बड़ाए—'इस राज्य का सारा प्रबन्ध ही खराब है। जिस विभाग को देखो वहीं अव्यवस्था है। कितना समय इन लोगों ने नष्ट किया!'

स्वामी जी महाराज ने आलोचना सुनकर हँसते हुए कहा— 'राज्य का प्रबन्ध अच्छा है या बुरा, परन्तु तुम अपने घर का प्रबन्ध तो देखो! न दीपशलाका रखने का ठिकाना, न मोमबत्ती रखने का स्थान, और कोसा जाता है राज्य को! राज्य क्या तुम्हारे घर का भी प्रबन्ध करेगा?'

यही हाल प्रायः सभी घरों का होता है। हमें इसे सुधारना चाहिए। स्वच्छता के साथ-साथ व्यवस्था भी घर के लिए आवश्यक है। शारीरिक, मानसिक और यहाँ तक कि आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति में भी इनका बड़ा महत्त्व है।''

भारती ने सरला बहन की बात को आगे बढ़ाते हुए कहा— ''बहन जी, सरकार को कोसने की तो हमारी आदत ही बन गई है। अगर हम स्वच्छता और व्यवस्था की बातें स्वयं अपने स्वभाव ले आएँ तो हमारी सरकार को भी इससे सहयोग मिलेगा। गाड़ी में यात्रा करते हुए हम पढ़ती हैं 'थूको मत!' लेकिन डिब्बे में थूकने से लोग बाज नहीं

आते। दियासलाई और बीड़ियों के टुकड़े भी बाहर न फेंककर अन्दर ही फेंकते हैं। स्त्रियाँ बच्चों को पाखाना तक करवाकर वहीं धो देती हैं।"

मनोरमा झट से बोल उठी—"आप सत्य कहती हैं, सरला बहन! एक बार मैं अपने पिताजी के साथ यात्रा कर रही थी। बस से गोरखपुर से मेहरौना जाना था। उन्होंने रास्ते के लिए अखबार खरीदा और उसे पढ़ना शुरू ही किया था कि एक अपटूडेट सज्जन ने बाहर का पन्ना माँग लिया। दूसरे व्यक्ति क्यों बैठे रहते, उन्होंने दूसरा भी ले लिया। वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ में जाता हुआ फटता चला गया, परन्तु इसकी चिन्ता किसी को भी नहीं हुई। एक सीट पर एक स्त्री के बच्चे को पाखाना लगा और उसने वह अखबार लेकर उसी पर करवा दिया और बाहर फेंक दिया। मेरे पिताजी के मुख से निकला कि 'अरे भाई, हमने तो पढ़ा भी नहीं!' यह है हमारी सभ्यता! यह है सफाई, स्वच्छता और अनुशासन! रेलवे की ओर से बड़े-बड़े स्टेशनों पर सफाई के लिए मेहतरों का प्रबन्ध रहता है, लेकिन उन्हें बुलाकर डिब्बा साफ करवाने की आदत हममें नहीं है। मेहतर भी बुलाने से आ ही जाएगा, यह भी निश्चित नहीं। वस्तुतः हमें अपनी आदतें सुधारनी होंगी।"

कमलेश बोली—"ट्रेन और बसों में सिगरेटों के धुएँ का भी एक पेचीदा सवाल है। रेलवे का नियम तो ऐसा है कि दूसरे मुसाफिरों की स्वीकृति के बिना कोई भी डिब्बे में सिगरेट नहीं पी सकता, लेकिन इस नियम को माने कौन? रेलवे के अधिकारी भी इस ओर ध्यान नहीं देते। सच बात तो यह है कि अधिकतर लोग बीड़ी-सिगरेट पीते हैं तो धुआँ भी उसी की ओर उड़ाते हैं जो उससे बचना चाहता है। लेकिन हम महिलाएँ, जो मुख से धुआँ उड़ाने की आदी नहीं हैं, कैसे उस बदबू को सहन करें?"

सरला बहन बोली—"जब रेलवे का कानून अधिकार दे रहा है तो हमें उस अधिकार का प्रयोग करना चाहिए। सिगरेट-बीड़ी पीनेवालों को प्यार से समझाया जा सकता है कि वे बन्द कर दें। नियम अथवा कानून तोड़नेवाला अपराधी ही होता है, भले ही वह कितना ही दबंग हो। अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखने में हमें भी सहयोग देना चाहिए, परन्तु यह तभी संभव है, जब हम स्वयं नियमों का परिपालन करें।"

कमलेश ने सरला बहन की बात का समर्थन करते हुए कहा—"हमारी नसों में अनुशासन कहाँ? जहाँ बैठे वहीं थूक दिया, वहीं लाकर जूठन डाल दी। किसी पार्क में गए तो फूलों पर धावा बोल दिया। घर में भी और सब चीज़ों की ओर तो हम कभी-कभी सफाई पर ध्यान देती हैं, परन्तु रसोईघर, स्नानघर, पेशाबघर और पाखाने की सफाई की बात सोची ही नहीं जा सकती। रेल-सफर में भी वहीं खाकर हाथ-मुँह धोना, वहीं थूकना, वहीं नाक छिनक देना अपना अधिकार मानते हैं। सड़क पर चलते खाँसी आई तो झट बीच रास्ते में ही थूक दिया। दूकानदार अपनी दूकानें साफ करके कूड़ा सड़क पर फेंक देते हैं। विद्यालयों, कचहरियों, कार्यालयों और सार्वजनिक स्थानों और दीवारों को हम पान की पीक से गन्दा कर देते हैं। घर के बड़े-बूढ़े और बूढ़ियाँ अपने छोटे बच्चों को, जो आँगन में इधर-उधर दौड़-भाग रहे होते हैं, उनकी परवाह किये बिना अपनी चारपाई पर बैठे-बैठे जहाँ चाहे थूकते रहते हैं। एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी की आँख बचाकर दूसरे

के घर के सामने रास्ते पर ही अपने बच्चों को शौच के लिए बिठा देते हैं। अपनी स्वच्छता की ओर तो पूरा ध्यान देते हैं, मगर दूसरों के घरों को कूड़ादान समझ लेते हैं। देखा-देखी दूसरे लोग भी वही तरीका अपना लेते हैं। दोनों की आत्मा को केवल अपनी-अपनी सफाई से ही सन्तोष होता है। क्या वे कभी यह भी सोचते हैं कि इस गन्दगी से दूषित होनेवाले वातावरण का प्रभाव हम पर भी पड़ेगा ?

हमारे घरों में स्त्रियाँ तरकारी का छीलन, बच्चों के गन्दे कपड़े, कूड़ा-करकट, बिना किसी हिचक के घर की खिड़की से या छत से बिना देखे इधर-उधर फेंक देती हैं। सड़क से जानेवाले आदमी के सिर या आँख पर चोट लगने और उनके कपड़े मैले होने का ध्यान ही नहीं होता। रेलवे स्टेशन, प्लेटफॉर्म, बाग-बगीचे, सड़क या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर फेंके हुए केले या नारंगी के छिलके कितनों की हड्डियाँ तोड़ देते हैं।

कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद एक बार वायसराय से मिलने जा रहे थे। तब तक स्वराज्य नहीं मिला था, बातचीत चल रही थी। शिमला जाते समय केले के छिलके पर पैर पड़ने से फिसलकर गिर पड़े, हाथ की हड्डी टूट गई। वायसराय-भवन की जगह अस्पताल ले-जाए गये। अभी कुछ ही दिन पूर्व एक लड़का अपनी बीमार माँ के लिए दवा ला रहा था। नारंगी के छिलके पर पैर फिसल जाने से वह गिर गया। शीशी फूट गई, और उसके टुकड़ों से वह बुरी तरह घायल हो गया। यदि इन छोटी-छोटी बातों पर हम ध्यान दें तो बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं से बच सकते हैं।''

सरला बहन ने स्वच्छता, अनुशासन और दूसरों के सुख का ध्यान रखने की बात समझाकर गोष्ठी का विसर्जन कर दिया।

आत्मा यज्ञेन कल्पताम्

आज सखि-संगोष्ठी का सातवाँ दिन था। मधु के घर सभी सखियाँ एकत्र हुईं। सरला जी भी स्वच्छ खद्दर की सफेद साड़ी पहने वहाँ आ पहुँची। उनको सबने 'नमस्ते' की और मधु ने बड़े आदर के साथ ऊँचे आसन पर बैठाया। सरला बहन के कहने पर भारती ने प्रभु-विनय का यह गीत गाया—

मैं निर्मल मन लिये भगवन् ! तेरे गुण गाने आई हूँ।
हे ज्योतिर्मय पिता ! तुमसे मैं ज्योति पाने आई हूँ।। टेक ।।
हटे अज्ञान का पर्दा, समस्या हल यह हो जाए।
इसी से शान्ति-वेला में इसे सुलझाने आई हूँ ।।२।।
बहाकर अश्रुधाराएँ, मिटा दे पाप-तापों को।
करूँ मैं मार्जन अपना, इसे चमकाने आई हूँ ।।३।।
दो भक्तिदान हे भगवन् ! परम सुख-शान्ति के दाता !
रहूँ सम्पर्क में तेरे, यही वर पाने आई हूँ ।।४।।
किये संसार में सबसे, सदा व्यवहार शुभ मैंने।
सरलता अपने जीवन की तुम्हें दिखलाने आई हूँ ।।५।।

गीत समाप्त करने के बाद, थोड़ी देर शान्ति छाई रही। शान्ति को भंग करते हुए, भारती ने सरला बहन जी से पूछा—"बहन जी ! आपने पिछली गोष्ठियों में सत्यार्थ-प्रकाश, ओ३म्-महिमा, वेदवाणी, स्वास्थ्य-रक्षा, यज्ञ, स्वच्छता आदि के महत्त्व पर जो प्रकाश डाला है, हम सब उसे अपने जीवन में उतारने का प्रत्यक्ष लाभ परिवारों में देख रही हैं। आज आप हमें बताइये कि आत्मा क्या है ? आत्मिक बल कैसे पा सकते हैं और आत्म-शुद्धि का क्या उपाय है ?"

सरला बहन ने मुस्कराते हुए कहा—"बहन भारती ! तुमने तो आज बहुत ही रोचक प्रश्न पूछ लिया। तुम्हारे इस प्रश्न को सुनकर मुझे कठोपनिषद् के नचिकेता और यम, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी तथा नारद मुनि का ध्यान हो आया है। बहनो, हर-एक का जीवन 'शरीर और आत्मा के संयोग' पर निर्भर है। न हम शरीर की उपेक्षा कर सकते हैं, न आत्मा की। अपनी सन्तानों को हमें शारीरिक बल-प्राप्ति, भोजन, शुद्धि, शरीर-वस्त्रादि की स्वच्छता, व्यवस्था, अनुशासन के संस्कार देने के साथ ही, आत्मा के स्वरूप और सत्ता, आत्म-दर्शन का मार्ग, आत्मिक बल की प्राप्ति और आत्म-विश्वास की महत्ता से भी भली-भाँति परिचित कराना चाहिए। तभी वे सन्तानें 'दिव्यजन' बनेंगी और तभी हम वेद माँ की इस सूक्ति को चरितार्थ करेंगी—

'मनुर्भव जनयं दैव्य जनम्'

मनुष्य बनो और दिव्य जनों को उत्पन्न करो !"

कमलेश ने पूछा—"कठोपनिषद् की नचिकेता की कथा क्या है ?"

सरला बहन ने बताया—"नचिकेता यह जानने के लिए यमराज के यहाँ पहुँचा कि आत्मा क्या है ? यमराज उस समय वहाँ नहीं थे। वे तीन दिन बाद लौटे और अतिथि के तीन दिन तक बिना अन्न-जल के दरवाजे पर पड़े रहने की बात जानकर उसकी सेवा की और उसे तीन वर माँगने को कहा।

नचिकेता ने पिता की सन्तुष्टि, और यज्ञ-विषयक जानकारी के पहले दो वर माँगे। यमराज ने दोनों वर दे दिये। तीसरे वर में नचिकेता ने आत्मा के विषय में बतलाने को कहा। यमराज ने आत्मा-विषयक जानकारी देने से पूर्व उसकी परीक्षा के लिए कहा—'नचिकेता ! तू हाथी, घोड़े, संसार के सभी ऐश्वर्य, आयु, भोग-विलास, प्रकृति पर शासन, जो चाहे माँग ले, पर आत्मज्ञान बड़ा कठिन है, इसे मत माँग।'

नचिकेता आजकल का युवक नहीं था; उसने कहा, 'महाराज ! भौतिक वासनाएँ तो एक जन्म क्या, सैकड़ों जन्म लेते जाएँ तब भी नहीं मिटतीं, पर आत्म-तत्त्व जान लेने पर भौतिक जगत् स्वयं हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। भगवन्, मुझे आत्मा का ही उपदेश दीजिए।' यमराज ने उसे आत्मा का उपदेश दिया।

बृहदारण्यकोपनिषद् (४-५) में मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य में संवाद भी आत्मा से सम्बन्धित है। याज्ञवल्क्य ऋषि की दो स्त्रियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। कात्यायनी तो साधारण स्त्री थी; पर मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी। एक बार घर-बार छोड़कर परिव्राजक (संन्यासी) बनने की याज्ञवल्क्य की इच्छा हुई। उन्होंने मैत्रेयी से कहा—'मैं परिव्राजक

बनना चाहता हूँ; इसलिए कात्यायनी के साथ तुम्हारे हिस्से का धन बाँट देना चाहता हूँ।'

कात्यायनी ने अपना हिस्सा ले लिया, पर मैत्रेयी ने पूछ लिया, 'यदि धन-धान्य से पूर्ण सारी पृथिवी ही मुझे मिल जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी ?' याज्ञवल्क्य ने कहा—'नहीं, अमरता तो नहीं मिल सकती। हाँ, धनियों की तरह भौतिक साधन-सम्पन्न जीवन अवश्य हो जाएगा।' मैत्रेयी ने कहा—'जिसे पाकर मैं अमर नहीं बनूँगी, उसे लेकर क्या लाभ ? भगवन्, आप अमरत्व-प्राप्ति का उपाय बताइये, आत्म-दर्शन का मार्ग बताइए।' तब याज्ञवल्क्य ने उसे आत्म-दर्शन का मार्ग बताया।"

मधु ने पूछा—"बहन जी ! नचिकेता और मैत्रेयी की उपनिषद् की कथाएँ तो आपने सुना दीं, किन्तु यह नहीं बताया कि आत्मा क्या है ? इसे कैसे पाया जा सकता है ? इसके कैसे दर्शन हो सकते हैं ?"

सरला बहन ने बताया—"आत्मा जन्म और मृत्यु से रहित है। वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी वह मरता नहीं है।"

"आत्मा के दर्शन और प्राप्ति का क्या मार्ग है ?" कमलेश ने यह प्रश्न पूछा।

सरला बहन बोली—"जैसे तिलों को पेरने से तेल और दधि को मथने से मक्खन पाया जाता है, अथवा नहर खोदने से पानी और अरणि-काष्ठ के रगड़ने से आग पायी जाती है, वैसे ही सत्य और तपस्या के द्वारा खोज करने पर अपनी आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन किये जा सकते हैं।"

मधु ने कहा—"बहन जी, आत्मा को मनुष्य क्यों भूल जाता है ?"

सरला बहन ने एक कथा के माध्यम से उत्तर दिया—"बारह यात्री थे। वे एक नगर से दूसरे नगर को जा रहे थे। आगे बढ़े तो एक नदी आ गई। अब सब लोग घबराए कि नदी को कैसे पार करें ? कोई पुल नहीं, नाव नहीं। पार जाना भी जरूरी है। कैसे जावें ?

उनमें से एक चतुर था। उसने कहा कि पार जाना आवश्यक है तो एक-दूसरे का हाथ पकड़ लो। हम सब मिलकर पार हो जायेंगे। सबने वैसा ही किया। पार हो गए। किनारे पर पहुँचने पर चतुर व्यक्ति बोला—'अब गिन लो, कहीं कोई नदी में तो नहीं छूट गया ?'

एक बोला—'अरे भाई ! हममें सबसे समझदार तू ही है, अतः तू ही गिन।'

उसने गिनना शुरू किया—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह। स्वयं को गिना नहीं। चौंककर बोला—'ये तो ग्यारह ही हैं। एक व्यक्ति कहाँ गया ?'

इसके बाद दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें ने गिना। किसी ने भी अपने-आपको नहीं गिना, और बैठकर लगे रोने कि एक डूब गया।

राह-चलते लोगों ने देखा तो एक ने पूछा—'क्यों रोते हो ?' उन्होंने बारह में से एक के डूबने की बात कही। राहगीर ने उन्हें मन-ही-मन गिना तो बारह-के-बारह सही निकले। उसने कहा—'देखो, यदि मैं तुम्हारे बारहवें साथी को खोज दूँ तो ?' वे बोले—

'हम तुम्हें भगवान् की तरह मान लेंगे।'

अब क्या था ! उसने सबको बैठाया और एक के गाल पर चपत मारकर कहा—बोल 'एक।' उसने कहा—'एक।' इसी प्रकार दूसरे और तीसरे के मुख पर चपत लगाता गया और सब-के-सब गिन डाले। अन्तिम यात्री ने कहा—'हाँ, बारह।' वे सब यात्री उसे भगवान् की तरह पूजने लगे।''

सब सखियाँ हँस पड़ीं।

सरला बहन मुस्कराते हुए बोली—''बहनो ! तुम्हें इन यात्रियों की मूर्खता पर तो हँसी आती है, परन्तु हम भी तो उन्हीं मूर्खों की तरह हैं ! हम बारह यात्री चले थे जीवन की इस यात्रा पर—पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और बारहवाँ आत्मा। हमने भी आत्मा को भुला दिया। इन ग्यारह के लिए तो हम सब-कुछ करते हैं, परन्तु आत्मा के लिए कुछ भी नहीं। आत्मा की उपेक्षा के कारण ही हम दुःखी हैं, अशान्त हैं, हमें कहीं भी शान्ति नहीं। आओ, आत्मा को देखने और पाने की कोशिश करें।''

''आत्मा के दर्शन का मार्ग क्या है ?'' कमलेश ने पूछा।

सरला बहन ने कहा—''यह हृदय से, बुद्धि से और मन से प्रकाशित होता है—

''हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो।''

''बहन जी, बात समझ में नहीं आई। इसे और स्पष्ट कीजिए।''

सरला बहन ने मुण्डक ३-१-५ का उल्लेख करते हुए कहा—''कमलेश, वहाँ आया है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

अर्थात् यह आत्मा सत्य से, तपस्या से, सम्यक् ज्ञान से और ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। यह शुभ्रवर्ण का है और प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्जगत् में विद्यमान है, इसे अपने हृदय को पापरहित करनेवाले योगी देख सकते हैं। सत्य, तपस्या, सम्यक् (ठीक) ज्ञान और ब्रह्मचर्य, ये चार चट्टानें हैं जो आत्मा की नींव और शक्ति को दृढ़ और अचल बनाती हैं। इन चट्टानों को आधार बनाकर जिस व्यक्ति, जिस समाज और जिस देश के जीवनरूपी भवन का निर्माण होगा, वह अडिग होगा। उसे किसी तरह का भूचाल अपने लक्ष्य की ओर जाने से रोक नहीं सकेगा। व्यक्ति, समाज, देश का जीवन इन्हीं से ठीक दिशा की ओर जाएगा।''

मधु बोली—''सत्य से आत्मा के दर्शन कैसे हो सकते हैं ?''

सरला बहन ने समझाना शुरू किया—''भौतिक जगत् में जो स्थान प्रकाश का है आध्यात्मिक जगत् में वही स्थान सत्य का है। प्रकाश को ढका तो जा सकता है, फिर भी वह प्रकट हो जाता है। इसी तरह सत्य को भी छिपाया जा सकता है, पर मिटाया नहीं जा सकता। सत्य से ही आत्मा के दर्शन होते हैं।

याद रक्खो, सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं—**न हि सत्यात्परो धर्मः।** सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही कहना आर्य बालक-बालिकाओं का स्वभाव होना चाहिए।

सत्यवादियों का ही सर्वत्र मान होता है। सत्यवादी ही विद्या, लक्ष्मी, श्री और सम्पदा की ओर बढ़ते हैं—इस विश्वास के साथ सदा सत्य का आचरण करो। अपनी भूल या त्रुटि को छिपाने के लिए कभी झूठ न बोलो ! दण्ड या अप्रतिष्ठा से बचने के लिए भी कभी असत्य का आश्रय न लो। बहनो ! आकाश में जिस प्रकार सूर्य तपता है और लोक-लोकान्तर में उजाला करता है, उसी प्रकार सत्यवादी उदीयमान होकर संसार का मार्ग-प्रदर्शन करता है।

कभी भूलकर भी झूठ न बोलो ! मधु, याद रक्खो कि खेल या विनोद में भी असत्य भाषण न करो। माता-पिता, भाई-बहन, गुरु-सहपाठी, सखा-सेवक सबसे सत्य ही बोलो ! सत्य बोलनेवाले के हृदय में ही प्रभु के दर्शन होते हैं। उसकी आत्मा में अपूर्व बल आता है। सत्यवादी ही लोक और परलोक का विजेता बनता है।

सत्य से बनते उच्च महान्।
सत्य से मिलते हैं भगवान्॥

कमलेश बहन ! आत्म और अनात्म का, सत्य और झूठ का, अंधेरे और उजाले का झगड़ा नित्य और शाश्वत है। प्रकाश तो भौतिक होने से बुझ सकता है, किन्तु सत्य अभौतिक है, दिव्य है जिसे ढका तो जा सकता है, किन्तु मिटाया नहीं जा सकता।"

सरला बहन की सत्य-विषयक वार्ता सुनने के थोड़ी देर बाद तक वहाँ स्तब्धता छाई रही। उस स्तब्धता को भंग करते हुए भारती ने शंका उठाई—"हम दुनिया में देखते हैं कि सत्यवादियों को बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। उन कष्टों से बचने के लिए थोड़ा असत्य व्यवहार कर दिया जाय तो क्या हानि है ?"

"भारती !" सरला बहन ने कहा—"हानि यह है कि इससे सत्य ढक जाता है और एक गलत मार्ग पर दुनिया चलने लगती है। जीवन-भर गलत मार्ग पर भटकने से यही अच्छा है कि थोड़ा कष्ट सह लिया जाए। जो कष्ट से घबरा गया वह लक्ष्य कैसे पाएगा ?"

इतिहास साक्षी है कि अन्तिम विजय सत्य की होती है। सत्यवादियों ने सदा बुराइयों का सामना किया है।"

भारती बोली—"है कोई ऐसा ऐतिहासिक उदाहरण ?"

सरला बहन ने कहा—"यूनान देश का नाम तो तुमने सुना ही होगा, और यूनान को अमर करनेवाले अरस्तू, प्लेटो और सुकरात को सारा जगत् जानता है। सुकरात को वहाँ के राजा ने फाँसी की सजा दे दी थी। उस समय जिसे फाँसी दी जाती थी, उसके सामने जहर का प्याला रख दिया जाता था और उसे निर्धारित समय पर पीना पड़ता था। सुकरात के सामने निश्चित दिन वह प्याला रख दिया गया और सुकरात पीने के लिए तैयार होकर आ गए। हजारों से भी अधिक उनके शिष्य सामने बैठ गए। शिष्यों की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्हें रोते देखकर सुकरात मुस्कराते हुए बोले—'मेरे प्यारे युवको ! क्या मैंने तुमको यही सिखाया है कि मैं मरूँ और तुम लोग रोओ ? कई बार तुम्हें बताया है कि इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको आग जला नहीं सकती,

इसको जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता। यह आत्मा न तो कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र को ग्रहण करता है, वैसे यह जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर नया शरीर प्राप्त करता है। बस, जीवन और मृत्यु का रहस्य इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिए मेरी मृत्यु से घबराओ नहीं।' सुकरात ने विष का प्याला पीते हुए आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास का परिचय दिया। उसने सत्य से मुँह नहीं मोड़ा और प्राण देकर भी सत्य पर अडिग रहा।"

भारती ने कहा—"बहन जी ! मुझे एक कवि की कविता याद रही है। कवि कहता है—

न जन्म कुछ, न मृत्यु कुछ, बस सिर्फ इतनी बात है,
किसी की आँख खुल गई, किसी की आँख मुँद गई।"

"जन्म और मरण का सचमुच बहुत सुन्दर चित्र खींचा है कवि ने !" सरला बहन बोली—"वास्तव में यह सब भारतीय संस्कृति की देन है। इतिहास-पुरुष वीर सावरकर जहाँ परम देशभक्त थे, वहाँ वे भारतीय संस्कृति के उपासक भी थे। अपनी मातृभूमि के लिए उन्होंने पूरे २७ वर्ष अण्डमान के कारागार में बिताये। मृत्यु की विभीषिका से भयभीत न होनेवाले उस महापुरुष ने कहा था—

'काल स्वयं मुझसे डरा, मैं नहीं। कई बार फाँसी के फन्दे को चूमकर, उसके कराल-स्तम्भों को चूमता हुआ लौट आया हूँ। मैं जीवित रहा, यह मृत्यु की पराजय थी।'

इतिहास में ऐसे कई उदाहरण भरे पड़े हैं जो सत्य की महिमा प्रतिष्ठित करते हैं।"

मधु ने पूछा—"क्या आत्म-विजयी मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होता ?"

सरला बहन बोली—"बिल्कुल नहीं; इसी का नाम आत्म-विजय है। स्वामी श्रद्धानन्द ने आत्मा की वास्तविकता को पहचान लिया था, तभी तो मौत से जूझ पड़े। दिल्ली में स्वतन्त्रता-प्रेमियों का एक विशाल जुलूस निकल रहा था। जुलूस का भार स्वामी जी पर था। जुलूस आगे बढ़ रहा था। अंग्रेजों की शक्तिशाली सेना अपने घातक अस्त्रों से सुसज्जित जुलूस के सामने आकर खड़ी हो गई और जुलूस को तितर-बितर होने का आदेश दिया। स्वामी श्रद्धानन्द व्यवस्था कर रहे थे। सूचना मिलते ही आगे आए। वे दूसरों को आगे बढ़ने को नहीं कहते, स्वयं आगे बढ़ते हैं। वे दूसरों को सिर कटाने को नहीं कहते, स्वयं सिर कटाने को उद्यत रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द आत्म-विजेता थे, आत्मज्ञ थे। बन्दूकों के सामने सीना तानकर वह बोले—'जुलूस अवश्य आगे जाएगा ! यदि तुम जुलूस पर गोली चलाना चाहते हो तो पहले मेरी छाती पर गोली मारो !' इतना कहना था कि 'स्वामी श्रद्धानन्द की जय' और 'भारत माता की जय' के नारों से आकाश गूँज उठा। अंग्रेजों की बन्दूकें झुक गईं। यह थी पशुता की शक्ति के सामने आत्म-शक्ति की विजय।

भारती ! तुम्हें मैंने स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित्र पढ़ने को दिया था अ

मने पढ़ा ही होगा। महापुरुषों के जीवन-चरित्र ही हमारा मार्ग-प्रदर्शन करते हैं। स्वामी यानन्द की आत्मिक शक्ति के चमत्कारों से पुस्तक का एक-एक पन्ना भरा पड़ा है। पत्थरों ी वर्षा हो रही है, एक उज्ज्वल दिव्यात्मा दयानन्द के रूप में खड़ी होकर सत्य का मण्डन ौर असत्य का खण्डन कर रही है। पत्थरों की वर्षा से घबराकर श्रोता भागने लगते हैं, यानन्द के भक्त विचलित हो उनसे भाषण बन्द करने को कहते हैं, परन्तु स्वामी दयानन्द स्कराते हुए उत्तर देते हैं—यह पत्थरों की वर्षा नहीं, फूलों की वर्षा है ! सत्य संकटों से वकसित होता है, सत्य कठिनाइयों में फूलता-फलता है, सत्य आपत्तियों में खिलता है, त्य मुसीबतों में चमकता है। पत्थरों को भी फूल समझनेवाला दिव्य दयानन्द अपने धीर म्भीर स्वर से असत्य का खण्डन करता चला जाता है। आत्म-शक्ति से भरे हुए भाषण ा प्रभाव पड़ता है। भागने को तैयार जनता रुक जाती है, भागे हुए जन लौटने लगते हैं ौर आत्म-शक्ति का चमत्कार साक्षात् दीखने लगता है।

कमलेश बहन ! एक दिन सत्य का मण्डन करते हुए इस महापुरुष पर किसी ने यंकर फणिहर (गेहुँअन) साँप फेंक दिया। यह बड़ी भयंकर जाति का साँप है; काट ले ा आदमी पानी भी न माँगे। सभा में भगदड़ मच जाती है, परन्तु वह साँप स्वामीजी के े में फूलों की माला की तरह शोभित होने लगता है। शोभित हो भी क्यों न ? जिस रह शंकर ने विश्व का विष (कष्ट) पीकर उसका कल्याण किया था, वैसे ही मूलशंकर भी किया। इस दयानन्द का 'मूल' नाम ही कल्याणमय 'शंकर' था, तभी तो दयानन्द नकर संसार के अज्ञान, पाप, कष्ट, दुःख और अन्याय को मिटाने के लिए इस भूमि पर वतरित हुए !"

सरला बहन की यह वक्तृता सुनकर भारती ने एक कविता सुनाई—

साकार 'दया' की दिव्य मूर्ति
'आनन्द' के तुम आधार बने।
वेदों का तत्त्व दिया जग को,
तुम सत्य स्वयं साकार बने।
कर लिया गरल का पान स्वयं
वसुधा को अमृत दान दिया।
जो पावन कर दे अग-जग को,
निर्मल गंगा की धार बने।
सत्यार्थप्रकाश के व्याख्याता,
तुम सत्य अर्थ के थे ज्ञाता।
ऋषिवर, तुमको मेरा वन्दन,
हम करते शत-शत अभिनन्दन।

जग्गो ने कहा—"बहन जी ! शास्त्र भी यही कहते हैं कि 'अहं आत्मा न शरीरम, इन्द्रो न इन्द्रियम्' अर्थात् मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं; मैं ऐश्वर्यशाली हूँ, इन्द्रिय नहीं।' इस बात का है कि हमारा सारा ध्यान शरीर की ओर ही केन्द्रित रहता है, इसी को ाने में लगे रहते हैं। हमें अपने बालकों व बालिकाओं में सत्यशीलता आदि आन्तरिक

सद्‌गुण जगाने का भी प्रयत्न करना चाहिए, जिससे उन्हें आत्मस्वरूप का बोध हो और वे आत्मिक बल से युक्त हों। आत्म-शक्ति और आत्म-विश्वास ही तो वे चट्टानें हैं जिन पर खड़े होकर हम स्वयं भी धन्य होंगी और अपने राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने में सहायक होंगी।"

जग्गो की बात सुनकर मनोरमा ने एक हिन्दी की कविता सुनाई—

मानव, अपना अपमान न कर !
इससे बढ़ कोई पाप नहीं,
मानवता पर अभिशाप नहीं।
तू अपने को पहचान जरा,
परवशता का तू भान न कर ! मानव···

तू परवश या लाचार नहीं,
विधि का तुझ पर अधिकार नहीं।
तू ईश्वर-नन्दन है, ओछी-
गन्दी माया का मान न कर। मानव···

निज को तूने लाचार कहा,
सब जग ने तुझे धिक्कार कहा।
तू स्वाभिमान के पंख खोल,
दिग्दिगन्त में उन्मुक्त विचर !
मानव अपना अपमान न कर !!

अन्त में सरला बहन ने सामूहिक गान करवाया—

जिस नर में आत्मिक शक्ति है, अन्याय से झुकना क्या जाने ?
जिस दिल में ईश्वर-भक्ति है, वह पाप कमाना क्या जाने ?
माँ-बाप की सेवा करते हैं, उनके दुःखों को हरते हैं।
वे मथुरा, काशी, हरिद्वार, वृन्दावन जाना क्या जानें ?
दो काल करें सन्ध्या व हवन, नित सत्सँग में जो जाते हैं।
भगवान् का हो विश्वास जिन्हें, दुःख में घबराना क्या जानें ?
जो खेला है तलवारों से, और अग्नि के अंगारों से।
समरांगण में जा के पीछे, वह कदम हटाना क्या जाने ?
हो कर्मवीर और धर्मवीर, वेदों को पढ़नेवाला हो।
वह निर्बल दुःखिया बच्चों पर, तलवार चलाना क्या जाने ?
मन-मन्दिर में भगवान् बसा, जो उसकी पूजा करता है।
पत्थर की नश्वर प्रतिमा पर, वह फूल चढ़ाना क्या जाने ?
जिसका अच्छा आचार नहीं, और धर्म से जिसको प्यार नहीं,
जिसका सच्चा व्यवहार नहीं, 'नन्दलाल' का गाना क्या जाने ?

वह घर स्वर्ग समान बने !

आज सहेलियों की वार्ता का आठवाँ दिवस था। आज की बैठक बहन मनोरमा के हाँ थी। बैठक में सरलाजी भी पहुँच चुकी थीं और ठीक सात बजे संध्या-हवन का कार्य-म प्रारम्भ हो गया। सन्ध्या-हवन के बाद सरला बहन ने संकीर्तन आरम्भ किया—

चारों तरफ हो माधुरी, ऐसा वरदान दो प्रभो !
बहती हो सुख की सुरसरी, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
वायु मधुर-मधुर बहे, शीतल सुगन्ध को लिये,
दुर्गन्धियों का नाश हो, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
नदियाँ, समुद्र, ताल सब, मीठे जलों से हों भरे,
समय-समय पर वृष्टि हो, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
वृक्ष, लता, वनस्पति, मीठे फलों से हों लदे,
पृथिवी हो शस्य-श्यामला, ऐसा वरदान दो प्रभो!!
प्रातः मधुर, निशा मधुर, सायं मधुर, उषा मधुर,
माधुर्य से कण-कण भरे, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
वाणी मधुर, मानस मधुर, मधुरा हो सारी भावना,
भ्रातृत्व का विस्तार हो, ऐसा वरदान दो प्रभो !!
चारों तरफ हो माधुरी, ऐसा वरदान दो प्रभो !!

संगीत की समाप्ति पर वास्तव में ही चतुर्दिक् माधुरी-सी बरसने लगी। मनोरमा परिवार को सुखी बनाने के साधनों पर प्रकाश डालने के लिए सरला जी से प्रार्थना ।

सरला बहन ने बड़ी प्रसन्न मुद्रा में कहा—"बहनो ! यों तो अभी तक की ष्ठियों में हम जो कुछ विचार कर चुकी हैं, पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए प्रभी बातें आवश्यक हैं, परन्तु आज विशेष रूप से परिवार से सम्बन्धित बातों पर ही ाश डालूँगी। सबसे पहले यह सोचो कि मनुष्य-जन्म को ऋषियों ने कितने भागों में टा है ?"

थोड़ी देर सोचने के बाद भारती ने कहा—"बहनजी, मनुष्य के सामान्य जीवन अवधि को सौ वर्ष निर्धारित करते हुए, उसे चार आश्रमों में बाँटा गया है। ये चार श्रम हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य ब्रह्मचारी कर बल-वीर्य का संग्रह करता है; शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों इकट्ठा करता है, फिर इन संचित शक्तियों को गृहस्थ के विभिन्न कार्यों में खर्च करता गृहस्थ के २५ वर्षों में वह अपनी शक्तियों को आजीविका, पत्नी, सन्तान, सम्बन्धीजन र गृहस्थ के अन्य कामों में खर्च करने के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। नप्रस्थ में ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, जप एवं तप के द्वारा वह उन्हें गुणीभूत करता है, अर्थात् ाता है। उसके बाद अपने ज्ञान, विज्ञान एवं अनुभव को सामाजिकों में बाँटने को संकल्प हो जाता है, यही उसकी संन्यासाश्रम की दीक्षा का समय होता है। सभी

आश्रमों का बोझ गृहस्थ ही उठाता है, अतः गृहस्थाश्रम की अपनी विशेष महत्ता, उपयोगिता और उपादेयता है। इसी गृहस्थाश्रम को सुखी बनाने के उपायों पर बहन जी प्रकाश डालेंगी।"

सरला बहन ने कहा—"जैसा कि भारती बहन ने मानव-जीवन के चारों आश्रमों के विषय में बतलाया है, वही परम सत्य है। इनमें गृहस्थाश्रम का विशिष्ट महत्त्व है। सबसे पहला तो यह कि इस आश्रम के कारण हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है। दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, फूफा-फूफी, नाना-नानी, मौसी-मौसा, मामा-मामी, श्वसुर-जामाता, सास-बहू, बेटा-बेटी, भाई-बहिन, पोते-पोती, धेवते-धेवती के रिश्ते गृहस्थाश्रम के ही परिणाम हैं। इन सम्बन्धों से मनुष्य अपने-आपको अकेला और असहाय नहीं अनुभव करता। इस गृहस्थ-जीवन को सुखी बनाने के लिए, गृहस्थ का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए माता-पिता को बहुत ध्यान देना होता है।"

सरला बहन की बात सुनकर मधु ने पूछा—"बहनजी, हमें किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?"

सरला बहन ने बताया—"कामेच्छा मनुष्य की एक प्रबल प्रवृत्ति है। यदि गृहस्थाश्रम का विधान न हो तो कामेच्छा (सेक्स) भयंकर और वीभत्स रूप धारण करके समाज के सुन्दर एवं स्वस्थ रूप को कुरूप बना दे। अव्यवस्था में पुरुष और स्त्रियाँ वैसे ही रतिक्रिया न करते, जैसे पशु और पक्षी करते हैं। वासनात्मक, एवं मर्यादाहीन वातावरण से बच्चों को बचाने, उनमें शिष्टता और सभ्यता लाने के लिए गृहस्थाश्रम द्वारा काम पर नियन्त्रण आवश्यक है। इससे मनुष्य के जीवन में संयम आता है।"

मनोरमा ने पूछा—"गृहस्थ का भग (ऐश्वर्य) क्या है?"

सरला बहन ने कहा—"यशस्वी जीवन और श्री-सम्पन्नता।" सरला बहन ने अपने विषय को बढ़ाते हुए कहा—"गृहस्थ जो भी कार्य करे, वह शोभावाला हो। 'घर' उसी को कहा जा सकता है जहाँ प्रत्येक वस्तु यथास्थान रखी हुई हो, मैलापन कहीं नाम को न हो, सर्वत्र चमक-ही-चमक हो। महाभारत में एक सुन्दर वर्णन आता है—

किसी ने लक्ष्मी से पूछा—तुम कहाँ रहती हो? लक्ष्मी ने उत्तर दिया—जो स्त्रियाँ कमनीय गुणों से युक्त, विद्वानों और बुद्धिमानों की सेवा में तत्पर, घर के बर्तन और भांडों को स्वच्छ रखनेवाली, गौओं की सेवा तथा धन-धान्य-संग्रह में तत्पर रहती हैं, मैं सदा उनमें रहती हूँ। इसके विपरीत, जो घर के बर्तनों को सुव्यवस्थित नहीं रखती, सोच-समझकर काम नहीं करती, सदा अपने पति के विरुद्ध बोलती है, दूसरों के घरों में घूमने-फिरने में आसक्त रहती है और लज्जा छोड़ देती है, उसको मैं त्याग देती हूँ।"

मधु ने पूछा—"सुघड़ गृहिणी किसे कहते हैं?"

"सुघड़ गृहिणी को सदा प्रसन्न रहना चाहिए; घर के कार्यों में अत्यन्त दक्ष और निपुण हो, घर में व्यवस्था रक्खे, खर्च आदि भी व्यवस्थित रूप में करे।" सरला बहन बोली।

रजनी भी गोष्ठी में आती थी। वह नव-विवाहिता थी। उसकी सास उसके विरुद्ध बोलती थी और हर समय डाँटती थी। वह उदास चेहरे के साथ बोली, "सास को सन्तुष्ट

रखने का क्या उपाय है ?"

सरला बहन ने कहा—"बेटी ! एक गाँव में एक महात्माजी आए थे। उनकी कथा में हजारों नर-नारी आते थे। कथा समाप्त होनेवाले दिन वे एक घर में गए। सास और बहू वहाँ दो ही स्त्रियाँ थीं। दोनों ने प्रार्थना की कि 'कुछ सुनाते जाइए।'

साधु महाराज कुछ बताना ही चाहते थे कि संग्रहणी रोग से पीड़ित सास शौचार्थ चली गई। उस समय बहू स्वामीजी के पास आकर बोली—'महाराजजी, यदि आप सास को कुछ उपदेश कर दें तो बड़ी कृपा होगी। वह नागिन मुझे हर समय डाँटती और डपटती रहती है। मैं तो इसके हाथों जीते-जी मर रही हूँ।'

महात्माजी बोले—'बेटी ! उसे तो उपदेश दूँगा ही, एक छोटी बात तुझे भी कहनी है। जब तेरी सास तुझे डाँटे तो हाथ जोड़कर इतना ही कहना—निभा लो, तुम्हारी ही हूँ।'

सास को आने में बहुत देर हो गई। महात्माजी की गाड़ी का समय हो गया तो वे चले गए।

दो वर्ष बाद महात्माजी फिर वहाँ आए तो सास उनके पास पहुँची और हाथ जोड़कर बोली—'आपने कौन-सा जादू कर दिया कि हमारा तो भाग्य ही पलट गया है ! घर स्वर्गधाम बन गया है ! पहले घर में प्रतिदिन लड़ाई होती थी। यदि मैं भूल से भी कुछ कह देती, तो बहू तुरन्त सुना देती थी—दूसरी बहू खोज लेनी थी न ! परन्तु जिस दिन से आपने उपदेश दिया है, उस दिन से वह बिल्कुल बदल गई है। घर में कभी घी-दूध फैल जाए और मैं डाँटने लगती हूँ तो बहू हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगती है—सासजी ! निभा लेना, जैसी भी हूँ तुम्हारी ही हूँ। साग में नमक ज्यादा पड़ जाए और मैं घुड़कने लगती हूँ कि माँ ने साग बनाना भी सिखाया है या नहीं ? तो वह नम्रता से कहती है—माँ ने तो नहीं सिखाया, परन्तु आप भी तो मेरी माँ ही हैं, आपसे सीख लूँगी। बहू में यह परिवर्तन देख मेरा तो हृदय भर आता है। मेरे मुँह से निकलता है—अरी बहू ! निभा लेना क्या, तुझे तो मैं सिर-आँखों पर बिठाऊँगी। मेरे पाँच-सात बहुएँ थोड़े ही हैं ! यदि हों भी तो तुझे आँखों की पुतली समझूँगी, अपनी छाती से लगा लूँगी। बस, उसी दिन से घर में लड़ाई-झगड़े का नाम भी नहीं है। प्रेम का समुद्र हिलोरें मारता रहता है। आनन्द और शान्ति का साम्राज्य है। हमारा घर स्वर्ग बन गया है।"

सरला बहन की वक्तृता सुनकर सबकी चेतना जागृत हुई। भारती ने कहा—"बहनजी, घरों में जो शान्ति नहीं, क्या इसका कारण एक-दूसरे की निन्दा और आलोचना नहीं ?"

सरला बहन ने कहा—"बचपन में एक कहानी पढ़ी थी। एक था काँच का विशाल महल। उसमें भटकता हुआ कहीं से एक कुत्ता घुस आया। हजारों काँच के टुकड़ों में अपनी शक्लें देखकर वह चौंका। उसने जिधर नजर डाली, हजारों कुत्ते दिखाई दिए। उसने समझा कि ये सब कुत्ते उस पर टूट पड़ेंगे और उसे मार डालेंगे। अपनी शान दिखाने के लिए वह भौंकने लगा। उसे दूसरे कुत्ते भी भौंकते दिखाई दिए। आखिर वह इन कुत्तों पर झपटा; वे भी उस पर झपटे। बेचारा जोर-शोर से उछला, कूदा, भौंका और

चिल्लाया। अन्त में गश खाकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद दूसरा कुत्ता उस महल में आया। उसको भी हजारों कुत्ते दिखाई दिए। वह डरा नहीं। उसने धीरे से अपनी दुम हिलाई। सभी कुत्तों की दुम हिलती दिखाई दी। वह खूब खुश हुआ और प्रसन्नता से उछला-कूदा। अपनी ही छाया से खेला, खुश हुआ और फिर पूँछ हिलाता चला गया।"

"इस कहानी का गृहस्थाश्रम की शान्ति से क्या सम्बन्ध है?" जग्गो ने पूछा।

सरला बहन ने कहा—"इस कहानी में जो दो प्रकार के कुत्तों का वर्णन है, वह मनुष्यों के आपसी व्यवहार का एक ठोस दृष्टांत है। डर और सन्देह हमारे जीवन को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं, यह पहले कुत्ते के व्यवहार से स्पष्ट हो जाता है। दूसरे कुत्ते में स्वाभिमान और आत्म-विश्वास है, इसलिए उसके दुम हिलाने को प्यार की निशानी समझकर सभी उसके रंग में रँग जाते हैं। डर और सन्देह की दुर्भावना ने आज हमारा पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न कर डाला है, पारस्परिक सद्भावना नष्ट हो गई है। भाई-बहन, पिता-पुत्र, माता-बेटी एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन गए हैं। हम भी उन कुत्तों की तरह इस दुनिया के काँच के महल में घुस आए हैं। हमारे स्वभाव की छाया पूरे परिवार पर पड़ती है। हम यह कहावत भूल जाते हैं कि 'आप भले तो जग भला, आप बुरे तो जग बुरा।' हमारे परिवारों में, और समाज में भी, निन्दा का दोष काफी दिखाई देता है। परिवार में प्रेम बढ़ाने के लिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का दायित्व अधिक है। सबसे पहली बात यह है कि हम एक-दूसरे की निन्दा से बचें। हम किसी के गुणों की प्रशंसा नहीं कर सकतीं तो हमें दूसरों की निन्दा करने का भी कोई अधिकार नहीं।" सरला बहन ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"परिवारों में साधारणतया प्रत्येक स्त्री यह अनुभव करती है कि जब मैं बहू थी तो सास अच्छी नहीं मिली और अब मैं सास बनी तो बहू अच्छी नहीं मिली। जानती हो मधु, इसका कारण क्या है?"

मधु कोई उत्तर न दे पाई।

सरला बहन मुस्कराई और उसने स्वयं ही उत्तर देते हुए कहा—"इसका सबसे मुख्य कारण है—अधिकार की भावना। सब पर अधिकार जमाने के चक्कर में मनुष्य अपना कर्त्तव्य ही भुला देता है।"

मनोरमा पॉलिटिक्स (राजनीतिशास्त्र) की छात्रा थी; झट से बोली—"बहन जी! अधिकार और कर्त्तव्य को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। ये एक ही चीज के दो पहलू हैं। यदि कोई उनको अपनी दृष्टि से देखे तो वे उसके अधिकार हैं, और कोई उनको दूसरे की दृष्टि से देखे तो वे उसके कर्त्तव्य हैं। अधिकार और कर्त्तव्य अभिन्न हैं। वे एक-दूसरे के विरोधी नहीं, प्रत्युत पूरक हैं।"

रजनी ने कहा—"मनोरमा बहनजी की बात सत्य लगती है। मैं सड़क पर चल रही हूँ, उधर से मनोरमा बहन आ रही हैं। यदि दोनों सड़क पर चलने के अधिकार की पूर्ति में लगेंगी तो कोई भी आगे नहीं बढ़ेगा। उनका अधिकार मेरा कर्त्तव्य है और मेरे अधिकार की पूर्ति उनका कर्त्तव्य है।"

सरला बहन ने एक घटना सुनाते हुए कहा—"एक अच्छे समृद्ध घराने में एक

नवयुवक का विवाह हुआ। विवाह से पूर्व उस घर में बड़ा स्नेह था। भोजन के बाद सब इकट्ठे होते, गप्पें चलतीं, रेडियो और टेलीविज़न सुनते-देखते, दिन में सब मिलकर खाते-पीते, आनन्दमय वातावरण था। विवाह के बाद परिस्थिति बदली और वह नवयुवक अब परिवार के लोगों को छोड़ अपनी बीवी के घर में चला जाता, वहीं खाना खाता, रात बिताता, सवेरे बिना किसी से मिले-जुले वह अपने काम पर चला जाता। धीरे-धीरे इस व्यवहार के कारण ईर्ष्या, द्वेष, व्यंग्य, कटाक्ष और खुला विरोध बढ़ा। सास बहू से बुरा-भला कहती और बहू सास पर व्यंग्य-बाण चलाती। वास्तव में कौन दोषी था? विचार करने पर पता चलेगा कि यदि वह स्त्री अपनी कर्त्तव्य-भावना को जगाकर अपने आनन्द में अपने पति के माता-पिता और भाई-बहनों को सम्मिलित कर लेने की प्रेरणा देती तो यह दुःखद प्रतिक्रिया न होती। इन दोनों का यह कर्त्तव्य था कि वे भोजन करने, रेडियो सुनने, टेलीविजन देखने, वार्तालाप में और घर के अन्य छोटे-मोटे कामों में घरवालों का साथ देते तो परिवार में वैमनस्य न आता। यह काम और उत्तरदायित्व पुरुष की अपेक्षा स्त्री का अधिक है, क्योंकि वही घर की स्वामिनी है।"

मधु ने पूछा—"बहनजी, पारिवारिक सौमनस्य के लिए हमें क्या करना चाहिए?"

सरला बहन ने कहा—"पारिवारिक स्नेह के लिए, संघर्ष से बचने के लिए, हमें इसके मनोवैज्ञानिक कारण को समझना चाहिए। घरों में सास, ननद और पतोहू में जो झगड़े होते हैं, उनमें सास की हीन-ग्रन्थि (इन्फीरियोरिटी कॉम्प्लैक्स) के कारण आलोचना या विरोध शुरू हो जाता है। ऐसे समय पतोहू का कर्त्तव्य है कि उससे संघर्ष करने, उसे चिढ़ाने या लड़ने के स्थान पर उसके साथ इतना अच्छा व्यवहार करे कि उसे नाराज होने का अवसर ही न मिले। उदाहरण के लिए घर का काम-काज सुचारु रूप से करने के कारण बहू की प्रशंसा होते देख यदि सास को ईर्ष्या होती है, तो बहू को उस सुष्टुता का कारण अपनी सास को बताना चाहिए और उसे ही श्रेय देते रहना चाहिए। इससे कुछ बनता-बिगड़ता तो है नहीं, हाँ, सास अवश्य प्रसन्न होगी और घर में सुमनसता आएगी।"

मनोरमा बोली—"बहू तो कमसमझ होती है, मेरे विचार में सास को भी अपनी बहू को बेटी समझकर उसकी छोटी-छोटी भूलों की उपेक्षा करनी चाहिए और उसे ढंग से सुधारना चाहिए। दाल-तरकारी में नमक अधिक पड़ जाने, किसी वस्तु के गिरकर टूट जाने, कोई काम समय पर न हो सकने पर बहू का अपमान नहीं करना चाहिए। किसी भी अपराध के लिए सबके सामने उसे लज्जित करना उचित नहीं। बहू को सुघड़ और व्यवस्थित बनाने के लिए आलोचना या निन्दा से नहीं, सहानुभूति से काम लेना चाहिए।"

सरला बहन ने मुस्कराते हुए कहा—"ताली दोनों हाथों से बजा करती है, मनोरमा बहन! इसीलिए अथर्ववेद के ३-३०-१ मन्त्र में बताया गया है—'हे मनुष्यो! एकचित्तता, सहृदयता, सम्मनस्कता, सम-विचार द्वारा पारस्परिक प्रेम को बढ़ाओ और एक-दूसरे से ऐसा प्रेम करो जैसे गाय अपने नवजात बछड़े से करती है।' प्रीति सम्पादन करनेवालों को

यह समझ लेना चाहिए कि प्रीति की रीति न्यारी है। जिनके दिल एक नहीं, जिनके चित्त की भावनाएँ भिन्न-भिन्न हैं, उनमें प्रीति कैसे हो सकती है? प्रेम चित्त की सूक्ष्म भावनाओं में से एक है। जब चित्त की धाराएँ विरुद्ध दिशाओं में बहें, तब कैसे अनुराग हो सकता है? जब मन एक-सा न सोचते हों, तब आपस में प्रेमभरा सम्बन्ध कैसे बने? इन नियमों का समाज की भाँति परिवार में भी पालन होना चाहिए।''

मनोरमा ने पूछा—''क्या परिवार पति-पत्नी तक ही सीमित है?''

सरला बहन ने उत्तर में कहा—''परिवार केवल पति-पत्नी तक ही सीमित नहीं, इनसे भी आगे है। पुत्र, भाई, बहन, माँ-बाप और बड़े लोग भी परिवार के अंग हैं। वेद में कहा गया है—पुत्र पिता के अनुकूल व्रतवाला हो, सन्तान का मन माता-पिता के मन के साथ मिला हो, पत्नी पति के साथ मीठी वाणी बोले तो परिवार स्वर्ग बन सकता है।''

''पुत्र किसको कहते हैं?'' उमा ने पूछा।

''जो अपने आचरण से पिता को प्रसन्न करे वही पुत्र है। पत्नी वही है जो अपने पति की हित-कामना करनेवाली है। पुत्र का अर्थ करते हुए कहा गया है—

पुनाति त्रायते चैव कुलं स्वं योऽत्र शोकतः।
एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

अर्थात् पुत्र अपने कुल को पवित्र करता है और शोक से बचाता है। इसीलिए बुद्धिमान् लोग पुत्र को पुत्र कहते हैं।''

''परिवार में क्या भाई-बहन भी आते हैं?'' उमा ने पूछा। उमा नवागन्तुका थी।

सरला बहन बोली—''परिवार में वे सभी आते हैं जो एक छत के नीचे इकट्ठे रहते हैं। भाई अपने भाई से, बहन अपनी बहन से और भाई अपनी बहन से द्वेष न करे। उनकी चाल और व्यवहार एक हों। भाई-बहन का सम्बन्ध अनादि है, सहज है, सार्वभौम है। यही एक सम्बन्ध है जो निर्विकार, निष्काम और समानतापूर्ण है।''

उमा ने फिर पूछा—''बहन जी! इस अवसर पर आप यह भी स्पष्ट कीजिए कि माता-पिता और बड़े लोग बच्चों से कैसा सम्बन्ध रक्खें?''

सरला बहन ने कहा—''यह भी एक आवश्यक प्रश्न है। इस प्रसंग में बालकों के साथ माता-पिता के व्यवहार की बात भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। कुछ माताएँ बात-बात में बच्चों पर झुँझलाकर मारती-पीटती रहती हैं, उन्हें झिड़कती और अपमानित करती रहती हैं; यह ठीक नहीं। जहाँ अनुचित लाड करके अथवा बालक के अपराधों के प्रति उपेक्षित रहकर माता-पिता अपने ही हाथों अपने बालक का सर्वनाश कर लेते हैं, वहाँ अनावश्यक ताड़ना भी बालक को ढीठ बना देती है। अच्छे माता-पिता बाल-मनोविज्ञान का विचार करके, बालक को पूरा-पूरा प्यार भी देते हैं, साथ ही उन्हें छोटे-छोटे कार्यों में लगाकर आज्ञापालक, अनुशासनप्रिय, चतुर व व्यवस्थित भी बनाते हैं। दूसरों के सामने वे कभी बालक की निन्दा नहीं करते। हाँ, एकान्त में प्यारपूर्वक उनके दोषों को हटाते हैं और उनके उत्तम कार्यों की प्रशंसा करते हैं। विशेष अवसरों पर उपहार और पारितोषिक भी देते हैं। उन्हें अच्छे स्थानों पर साथ भी ले जाते हैं। मुख्य बात यह है

कि उनमें पूर्ण रुचि लेते हैं।"

उमा ने फिर पूछा—"बहन जी, क्या माता-पिता के कार्य और आचरण का प्रभाव भी बच्चों पर पड़ता है?"

सरला बहन ने कहा—"बेटी! यह तो बहुत ही अच्छी बात तुमने पूछी। बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही बालक या अबोध बच्चे भी आचरण करते हैं। माँ-बाप गाली देते हैं तो बच्चे भी गाली देने लगते हैं, माँ-बाप बीड़ी-सिगरेट पीते हैं तो बच्चे भी पीने लगते हैं। माँ-बाप घर में रहते हुए भी बच्चे से कहते हैं कि 'जाओ, कह दो पिता जी घर में नहीं हैं' तो वह असत्य बोलना सीखने लगता है। एक बार की बात है कि एक व्यक्ति ने अपने बच्चे से कहा कि मकान-मालिक से कह दो कि पिताजी नहीं हैं। अबोध बालक गया और उसने कहा, 'पिताजी कह रहे हैं कि वह घर में नहीं हैं।' यह सुनकर आगन्तुक तो मुस्कराने लगा, परन्तु पिताजी बच्चे पर बहुत क्रुद्ध हुए और एक जोर का चाँटा भी जड़ दिया। बोलो, इसमें बच्चे का क्या दोष था?"

सरला बहन की बात सुनकर कमलेश ने कहा—"बहन जी, आज की आपकी बातों पर यदि हम बहनें चलें तो परिवारिक जीवन को सरल और आदर्श बना सकेंगी। परिवार के व्यक्ति यदि एक-दूसरे के हितों को अपना हित समझने लगें, एक-दूसरे की व्यर्थ की और झूठी आलोचनाओं एवं निन्दाओं को बन्द कर दें, तो निश्चय ही परिवार सुखी एवं स्वर्ग-समान हो सकता है।"

अन्त में निम्न गीत के साथ गोष्ठी का समापन हुआ—

जहाँ पतिव्रता नार रहेगी, वहीं प्रेम की धार बहेगी,
वह घर स्वर्ग-समान बने।
घर-आँगन और कपड़े सारे, बर्तन घर में साफ मिलें,
लड़के-लड़की प्रातः उठकर, करते प्रभु का जाप मिलें।
आपस में मिल रहना जानें, सभी बड़ों का कहना मानें।
शुभकामी सन्तान बने।
वह घर स्वर्ग-समान बने॥१॥

सास-ससुर और पति-सेवा में, रहती आज्ञाकारी जो।
मीठी वाणी, ननद-जिठानी, सबको लागे प्यारी जो।
कभी किसी से लड़ती ना हो, बिना बात झगड़ती ना हो।
उसका ही सम्मान बने॥२॥
वह घर स्वर्ग-सम्मान बने।

ऐसी नारी, पति की प्यारी, शुचि सिंगार बनाती हो।
वस्त्र स्वदेशी धारण करके, जीवन सरल बनाती हो।
करती नहीं किसी से दंगा, शीश ढका रहे, ना रहे नंगा,
यह सारी पहचान बने॥३॥
वह घर स्वर्ग-समान बने।

देते वेद गवाही जग में, ऊँचा दर्जा नारी का।
सुख का वास वहीं होता है, नहीं काम बीमारी का ।।
'राघव' ऐसे ही घर-घर में, कस्बा, बस्ती, नगर, शहर में।
ब्रह्मचारी बलवान् बने ।।४।।
वह घर स्वर्ग-समान बने।

भूत-प्रेत और अन्धविश्वास

आज सहेलियों की वार्ता का दसवाँ दिन था। आज की बैठक मधु के यहाँ थी। सरला बहन के आने पर बड़े उत्साह के साथ आज का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की समाप्ति के बाद सरला बहन के साथ सबने गीत गाया—

कल्याण मेरे इस जीवन का भगवान् न जाने कब होगा?
जिससे भय-भ्रान्ति मिटा करते, वह ज्ञान न जाने कब होगा?
जिससे निज दोष दिखा करते, पापों-अपराधों से डरते,
उस सद्विवेक का मानव में, सम्मान न जाने कब होगा?
शीतलता जिससे आती है, सारी अशान्ति मिट जाती है,
वह नित्य प्राप्त है सोम-सुधा, पर पान न जाने कब होगा?
अच्छे दिन बीते जाते हैं, गुरुजन बहुविधि समझाते हैं।
भोगस्थल से योगस्थल में, प्रस्थान न जाने कब होगा?
वासना और चिन्ता मन में, फिर कुछ भी नहीं सताती हैं,
जिससे प्रभु तेरा दर्शन हो, वह ध्यान न जाने कब होगा?

सरला बहन ने 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वितीय समुल्लास का उल्लेख करते हुए बालकों के सुधार की बातें बताना प्रारम्भ किया और कहा—"स्वामीजी महाराज ने लिखा है—जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो-जो विद्याधर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल हैं, उनमें गिरानेवाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें जिससे प्रेत-भूतादि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।"

निर्मला ने पूछा—"बहन जी! भूत-प्रेत क्या होते हैं? क्या भूत-योनि भी है? ओझा, सयाने और मौलवी आदि भी भूत-प्रेत मानते हैं, झाड़ते-फूँकते हैं, क्या यह सब ठीक है?"

सरला बहन ने कहा—"भूत-प्रेत आदि कुछ नहीं होते। हाँ, प्रेत का अर्थ है मृत शरीर; जब किसी का देहान्त हो जाता है, तब मृतक शरीर को प्रेत कहते हैं, अर्थात् जो यहाँ से चला गया है, वह प्रेत कहलाता है। और जब प्रेतहार, अर्थात् मृतक को उठानेवाले उस शरीर का दाह कर देते हैं और वह व्यक्ति इतिहास की वस्तु हो जाता है, तब हम कहते हैं कि वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हों, वर्तमान में आके न रहें, वे भूतस्थ होने से 'भूत' कहलाते हैं। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है। परन्तु, जिसको शंका, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शंकारूप भूत, प्रेत,

शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःख-दायक होते हैं।''

निर्मला ने फिर पूछा—''बहन जी ! भूत-प्रेतादि का सम्बन्ध क्या शिक्षा से भी है ?''

सरला बहन ने कहा—''इनका शिक्षा से सीधा सम्बन्ध है। स्वामी दयानन्द ने शिक्षा के बारे में जो मार्ग-प्रदर्शन किया है, वह आज के शिक्षा-विशेषज्ञों को ध्यान में रखना चाहिए। महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा-पद्धति से भी स्वामीजी की शिक्षा-पद्धति अधिक उच्चकोटि की है। स्वामीजी 'सत्यार्थप्रकाश' में बतलाते हैं कि बालकों को सबसे पहले सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य, सुशिक्षित और निडर हो। किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें······उस बालक को सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य, माता-पिता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होकर सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे।······सन्तान को इस प्रकार शिक्षित करे कि किसी भूर्त के बहकावे में न आवे और जो-जो विद्याधर्म-विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिरानेवाले व्यवहार हैं, उनको भी समझा दे जिससे भूत-प्रेतादि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।''

निर्मला ने कहा—''मेरे घर के लोभ भूत-प्रेतादि में बहुत विश्वास करते हैं। अतः इस विषय को और भी स्पष्ट कर दीजिए ताकि मैं उनको समझाने का प्रयत्न करूँ।''

निर्मला अभी आयु में बहुत छोटी थी, अतः उसको समझाते हुए सरला बहन ने कहा—''देखो बेटी ! जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख-दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। अज्ञानी लोभ पदार्थ-विद्या या वैद्यक शास्त्र के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादिक मानसिक रोगों का नाम भूत-प्रेतादि धरते हैं। उनका औषध-सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी लोगों पर विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा-धागा आदि मिथ्या मन्त्र-यन्त्र बाँधते-बँधवाते फिरते हैं; अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं। जब आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि 'महाराज, इस लड़का-लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है ?' तब वे बोलते हैं कि 'इसके शरीर में बड़ा भूत-प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई हैं। जबतक तुम इसका उपाय न करोगे तबतक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा या इतनी भेंट दो तो हम मन्त्र, जप, पुरश्चरण से झाड़के इनको निकाल दें।' तब वे अंधे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज ! चाहे हमारा सर्वस्व जाए, परन्तु आप इसको अच्छा कर दीजिए।' तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त कहते हैं—'अच्छा, लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा देवता को भेंट और महादान कराओ।' झाँझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते, गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच-कूद के कहता है—'मैं इसका प्राण ले लूँगा।' तब वे अन्धे उस धूर्त के पगों में पड़के कहते हैं—'आप चाहे सो लीजिए, इसको बचाइए।' तब वह धूर्त बोलता है—'मैं हनुमान हूँ, लाओ पक्की मिठाई,

तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट।' 'मैं देवी या भैरव हूँ, लाओ पाँच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र।' अब वे कहते हैं कि 'जो चाहे सो लो।' तब तो वह धूर्त बहुत नाचने-कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट पाँच जूता, दंडा व चपेटा, लातें मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि यह उनका हरणार्थ ढोंग है।"

निर्मला अभी कुछ ग्रहों के विषय में पूछना चाहती थी कि भारती ने उसे रोककर बहन जी को लक्ष्य करके बतलाया—"मेरे पिताजी, मुझे अपने गाँव के पास के एक गाँव नदौली ले गए। नदौली ब्राह्मणों का गाँव है। वहाँ से थोड़ी दूर पर रामचन्द्र पण्डित की कुटिया थी। उनकी कुटिया के पास सोम और शुक्रवार को हजारों स्त्रियाँ जुटती थीं। मेरे पिताजी अपने दो-तीन मित्रों के साथ जब वहाँ पहुँचे तो एक बहुत बड़े भूखंड पर हजारों स्त्रियाँ अपना झोंटा खोलकर सिर हिला रही थीं, कुछ बोल रही थीं। रामचन्द्र पण्डित पिताजी की जान-पहचान के थे। वे उनसे मिले और बतलाया कि इन सब को कुछ है नहीं, भूत-प्रेतादि कुछ होता नहीं है। परन्तु, ये सब औरतें बदमाश हैं, अपने पति, सास-ससुर, ननद और घरवालों से लड़कर जान-बूझकर यह उपद्रव करती हैं। अभी मैं इनका भूत भगाता हूँ। उनके पास बेंत थी। उन्होंने एक बनावटी मन्त्र पढ़ने का अभिनय किया और बड़ी बुरी गालियाँ देते हुए आगे बढ़े और सच मानिए बहन जी, जब उनके बीच पहुँचे तो जोर-जोर से चिल्लानेवालियों की पीठ पर सटासट बेंत मारी। फलस्वरूप, वे सब सन्न हो गईं और उनके भूत भी भाग गए।"

सारी सखियाँ खिलखिलाकर हँस दीं।

निर्मला ने पूछा—"बहन जी ! ग्रह क्या होते हैं ?"

सरला बहन ने बताया—"सूर्य तारा है, और तारे से जो अलग हुए हैं वे ग्रह हैं, जैसे मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, पृथिवी, यूरेनस, नेप्चून और अवान्तर ग्रह, ये नौ ग्रह हैं।"

"तो क्या बहन जी, ये ग्रह किसी को ग्रसते भी हैं ?"

सरला बहन ने कहा—"ग्रह आदि से कुछ बनता-बिगड़ता तो नहीं है, परन्तु अस्वस्थ व्यक्ति जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं—'हे महाराज ! इसको क्या है ?' तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनका शान्तिपाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाएगा, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो आश्चर्य न होगा।'

सरला बहन ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"ग्रह आदि के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। जैसी यह पृथिवी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि भी लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ नहीं कर सकते। क्या वे चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख, और शान्त होके सुख दे सकते हैं ? नहीं, वे चेतन नहीं।"

निर्मला ने पूछा—"क्या जो यह संसार में राजा-प्रजा सुखी-दुःखी हो रहे हैं, यह ग्रहों का फल नहीं है ?"

सरला बहन ने कहा—"निर्मला बेटी, इस विषय को समझने के लिए सत्यार्थ-

प्रकाश का द्वितीय समुल्लास पढ़ो। ऐसे अन्धविश्वास स्त्रियों में अधिक पाए जाते हैं, अतः सत्यार्थप्रकाश विशेष रूप से पढ़ना चाहिए। दुःख-सुख सब पाप-पुण्य के फल हैं।"

निर्मला ने पूछा—"तो क्या ज्योतिश्शास्त्र झूठा है ?"

सरला बहन ने कहा—"नहीं, उसमें जो अंकबीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।"

निर्मला ने फिर पूछा—"क्या जो ग्रहों के आधार पर जन्मपत्र है, सो निष्फल है ?"

सरला बहन ने कहा—"बेटी, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम शोकपत्र रखना चाहिए। क्योंकि, जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है, परन्तु वह आनन्द तबतक होता है कि जबतक ग्रहों का फल जन्मपत्र के आधार पर न सुनें। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता-पिता पुरोहित से कहते हैं—'महाराज, आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइए।' जो धनाढ्य हो तो बहुत-सी लाल-पीली रेखाओं से चित्र-विचित्र, और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाने को कहता है। वह सुनाने आता है। तब उसके माँ-बाप ज्योतिषी जी के सामने पैठके कहते हैं—'इसका जन्मपत्र अच्छा तो है ?' ज्योतिषी कहता है—'जो है सो सुना देता हूँ। इसके जन्मग्रह और मित्र ग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा।' इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं—'वाह-वाह ! ज्योतिषी जी महाराज, आप बहुत अच्छे हैं।' ज्योतिषी जी जब समझते हैं कि इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता, तब वह बोलता है कि 'ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, ये ग्रह क्रूर हैं, अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग है।' इसको सुनके माता-पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़के शोकसागर में डूबकर ज्योतिषी से कहते हैं कि—'महाराज जी। अब हम क्या करें ?' तब ज्योतिषी जी कहते हैं—'उपाय करो !' गृहस्थ पूछे—'क्या उपाय करें ?' ज्योतिषी जी महाराज प्रस्ताव करने लगते हैं कि 'ऐसे-ऐसे दान करो। ग्रह के मन्त्र का जाप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जाएँगे।' निर्मला, जानती हो 'अनुमान' शब्द इसलिए कह देते हैं कि तो मर जाएगा तो हम क्या करें ? परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है; हमने तो बहुत-सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे।' और जो बच जाय तो कहते हैं कि 'देखो, हमारे मन्त्र-देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है ? तुम्हारे लड़के को बचा दिया'।"

भारती बोली—"सचमुच, बहन जी, ये सब बड़े धूर्त होते हैं। मेरे पिता जी ने अपने गाँव से कुछ दूर एक 'कोंहड़ा' नामक गाँव की बात सुनाई। वहाँ एक झाड़-फूँक करनेवाले, चोरी की चीज बतानेवाले, लड़का पैदा हो जाय तो आशीर्वाद देनेवाले एक महाशय रहते थे। उन्होंने जब कुछ रुपया कमा लिया तो कुछ अपने एजेण्ट रख लिये। वे 'लार रोड' स्टेशन पर आनेवाली गाड़ियों, बसों आदि पर पहुँच जाते और साइकिल से सबका कार्य जान लेते, फिर सोखा के पास पहुँचकर उसे बता देते कि उस लाल साड़ी-वाली के गहने गायब हो गए हैं, पीले कुर्तेवाले की पत्नी के बच्चा नहीं होता, बक्सेवाले

व्यक्ति को अमुक रोग है। अब जब वे उनके पास पहुँचते तो सोखा जी पहले ही कह देते —तुम्हारे आभूषण गायब हो गए हैं, तुम्हारे लड़का नहीं होता, तुम्हें क्या रोग है, और वे प्रभावित होकर, अपना धन फूँककर उनकी सेवा करते। उनकी कार्यसिद्धि हो न हो, उनका उल्लू तो सीधा हुआ!"

निर्मला ने फिर पूछा—"शीतला, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि क्या हैं?"

सरला बहन ने कहा—"ये भी कुछ नहीं हैं। जो इनको हटाने का दावा करे तो उससे कहना चाहिए कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे? इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ानेवाले उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना, जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस काम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं, उनको भी महापामर समझना चाहिए। मिथ्या बातों से बचने का उपदेश बचपन में ही सन्तानों के हृदयों में डाल दें जिससे कि स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़के दुःख न पावें। बालकों में यह आदत डालनी चाहिए कि सदा सत्यभाषण, और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए। किसी को अभिमान नहीं करना चाहिए। छल, कपट या कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिए! इस प्रकार भूत, प्रेतादि अन्धविश्वासों से बचपन से ही माता-पिता का कर्तव्य है कि बच्चों को बचावें।"

प्राचीन शिक्षा-पद्धति

सरला बहन की इस गोष्ठी का आज ग्यारहवाँ दिन था। इस गोष्ठी की चर्चा देवनगर के घर-घर में पहुँच चुकी थी। मधु के घर हुई दसवीं गोष्ठी में सुधा जी के विशेष आग्रह पर उसके यहाँ ही गोष्ठी का कार्यक्रम रखा गया। आज सबसे पहले भारती ने प्रभु-भक्ति का गीत गाया—

दया कर हे दयामय देव, आओ,
सुभग इस दीन कुटिया को बनाओ।
कहाँ मैं नाथ दोनों हाथ खाली,
कहाँ तुम हो सकल संपत्तिशाली।
न आडम्बर बड़े मैं कर सकूँगा,
न भारी भेंट लाकर धर सकूँगा।
मुझे इसकी न कुछ परवाह ही है,
तुम्हें भगवन् न इसकी चाह ही है।
हृदय अपना बना आसन बिछाऊँ,
तुम्हें तब प्रेम से उस पर बिठाऊँ।
निरन्तर भक्ति के आँसू बहाऊँ,
तुम्हारे पाद-पद्मों को धुलाऊँ।

बना श्रद्धा-सुमन का हार लाऊँ,
तुम्हारे कंठ में सादर पिन्हाऊँ।
कृपा कर हे कृपा के सिन्धु आओ,
सफल मेरे मनोरथ कर दिखाओ।

गीत की समाप्ति पर सरला जी ने पास रखे 'सत्यार्थप्रकाश' को उठाया और उसका एक पृष्ठ खोलकर कहा—"ऋषि ने लिखा है 'मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद'—यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है।"

मधु ने पूछा—"यह मातृमान्, पितृमान् और आचार्यवान् का क्या मतलब है?"

सरला बहन ने कहा—"वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य है, वह सन्तान बड़ी भाग्यवान् है, जिसके माता-पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिए मातृमान् अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी माता यस्य, स मातृमान्' प्रशस्त और धार्मिक जिसकी माता है वह मातृमान् होता है, अर्थात् गर्भाधान से लेकर जबतक पूरी विद्या और शिक्षा न हो तबतक सुशीलता का उपदेश करे।" सत्यार्थप्रकाश के इस सन्दर्भ का उल्लेख करते हुए सरला बहन ने उपनयन संस्कार की चर्चा की और बालक-बालिकाओं की शिक्षा का उत्तरदायित्व ाता, पिता और आचार्य पर डालते हुए उन्हें किस प्रकार शिक्षा दे, यह बतलाया।

सरला बहन की बात सुनकर मधु ने पूछा—"बहन जी, शिक्षा किसे कहते हैं और उसका क्या उद्देश्य है?"

सरला बहन ने कहा—"जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटे, उसको शिक्षा कहते हैं।"

भारती ने पूछा—"बहन जी, शिक्षा का उद्देश्य क्या है?

सरला बहन ने बताया—"इस विषय को इस प्रकार समझो कि शिक्षा एक साधन है जिससे मानव-जीवन के उद्देश्यरूपी साध्य को प्राप्त किया जा सकता है। मानव-जीवन का उद्देश्य क्या है, बता सकती हो, सुधा?"

सुधा को चुप देखकर भारती ने कहा—"मानव-जीवन का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। आनन्द की चरम सीमा मुक्ति में है। मुक्ति का मतलब है जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाना; इसी को पुरुषार्थ, मोक्ष आदि शब्दों से पुकारा जाता है।"

सरला बहन ने कहा—"भारती! तुमने जीवन का उद्देश्य ठीक बतलाया है। अब जरा मधु बताए कि जब शिक्षा का उद्देश्य मानव-जीवन के उद्देश्य पर निर्भर है और मानव-जीवन का उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना है तो शिक्षा का उद्देश्य क्या हुआ?"

मधु ने कहा—"शिक्षा का उद्देश्य मानव-जीवन के उद्देश्य मोक्ष, मुक्ति, पुरुषार्थ या आनन्द-प्राप्ति के योग्य बनाना है, और यह आत्म-साक्षात्कार से हो सकता है। आत्मा के ऊपर जो अज्ञान या अविद्या का आवरण आया हुआ है, उसे हटाना शिक्षा का उद्देश्य है। अन्यथा, हम आत्मा के वास्तविक आनन्दमय रूप को भूल जायेंगे।"

सुधा ने पूछा—"आत्मा के वास्तविक रूप का साक्षात्कार कैसे हो सकता है?"

इसका उत्तर जब उनकी बातचीत से नहीं निकला तो सरला बहन ने कहा—"योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार हो सकता है।"

"तो क्या विद्यालयों में योग की शिक्षा देनी होगी?" मधु बोली।

सरला बहन ने कहा—"योग की शिक्षा देना तो सम्भव नहीं, परन्तु उसके लिए वातावरण अवश्य बनाना होगा। योग के वातावरण का निर्माण चरित्र-निर्माण के द्वारा सम्भव होगा। 'चरित्र-निर्माण' संकुचित अर्थ में नहीं। चरित्र में कार्य के प्रति रुचि का भी सवाल है। कार्य के प्रति छात्र की रुचि तभी होगी, जब उसका कोई लक्ष्य होगा। अपने सामने लक्ष्य रखने और उसे पूरा करने के लिए योगदर्शन के समाधिपाद, ३३वें सूत्र में बतलाया गया है—

'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्' अर्थात् सुखी पुरुषों को देखकर हर्षित होना मैत्री, दुःखी मनुष्यों को देखकर दुःखी होना करुणा, किसी को अच्छा काम करते देख उसे उत्साहित करना मुदिता होना और पाप से घृणा करना तथा पापियों से घृणा न करना उपेक्षा कहलाता है। इनसे मन निर्मल होता है, एकात्मकता या ध्यान की सृष्टि होती है। एकाग्रता से चरित्र-निर्माण होता है, योग का वातावरण बनता है, आत्म-साक्षात्कार की ओर बढ़ते हैं तथा मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इनके अतिरिक्त शिक्षा जब हमें कला की ओर झुकाती है और सत्य की ओर प्रवृत्त करती है, तभी हमें आनन्द या मोक्ष प्राप्त हो सकता है।"

शिक्षा का उद्देश्य समझने के बाद मधु ने विद्या का फल पूछा।

सरला बहन ने कहा—"विद्या का यही फल है कि जो मनुष्य को धार्मिक होना अवश्य है। जिसने विद्या के प्रकाश से अच्छा जानकर न किया और बुरा जानकर न छोड़ा, तो क्या वह चोर के समान नहीं है? क्योंकि जैसे चोर भी चोरी को बुरा जानते हुए भी करता, और साहूकारी को अच्छा जानकर नहीं करता, वैसा ही जो पढ़के भी अधर्म को नहीं छोड़ता, धर्म को नहीं करनेवाला मनुष्य है।"

मधु ने पूछा—"बच्चों की शिक्षा का आरंभ किस प्रकार हो?"

सरला बहन ने कहा—"वर्णोच्चारण की शिक्षा का आरंभ घर में होना चाहिए। जब पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों, तब माता-पिता उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें; अन्य देशीय भाषाओं का भी अभ्यास करावें। जन्म से ५वें वर्ष तक माता, छठे से आठ वर्ष तक पिता शिक्षा करे, और ९वें वर्ष के आरंभ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य-कुल में, अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या दान करनेवाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त होना चाहिए। ग्राम या नगर भी पाठशालाओं से दूर रहें तो अच्छा है। विद्यार्थियों के भोजन-छादन का प्रबन्ध विद्यालय की ओर से होना चाहिए। सबको तुल्य वस्त्र, तुल्य खान-पान और तुल्य आसन देने चाहिएँ। चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे निर्धन की सन्तान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।"

मधु ने फिर पूछा—"क्या लड़के और लड़कियों के संयुक्त विद्यालय होने

चाहिएँ ?"

सरला बहन ने कहा—"नहीं। जब वे आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की, और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देना चाहिए !"

"क्या यज्ञोपवीत संस्कार केवल लड़कों का ही होना चाहिए ?" सुधा ने पूछा।

सरला बहन ने कहा—"नहीं, केवल लड़कों का नहीं। दोनों का संस्कार होना चाहिए। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत संस्कार और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके आचार्य-कुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज देवे।"

सुधा ने फिर पूछा—"बहन जी, क्या सह-शिक्षा नहीं होनी चाहिए ?"

सरला बहन ने कहा—"स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिए पृथक्-पृथक् आर्य विद्यालय होने चाहिएँ। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का भी न जाने पावे, अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी रहें, तबतक स्त्री या पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त-सेवन, भाषण, विषय-कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और सम्भाषण, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें और अध्यापक लोग इन बातों से बचावें, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।"

सुधा ने फिर पूछा—"बहनजी, पढ़ानेवाले अध्यापक और आचार्य कैसे हों, इसका भी स्पष्टीकरण कीजिए।"

सरला बहन ने कहा—"जो अध्यापक स्त्री या पुरुष भ्रष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें; किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त और धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं।"

सुधा ने फिर पूछा—"बहन जी ! आचार्य-कुल के लिए 'आचार्य' किस प्रकार का होना चाहिए ?"

सरला बहन ने कहा—"आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपांग वेदों के शब्द-अर्थ-सम्बन्ध और क्रिया का जाननेवाला, छल-कपटरहित, अति प्रेम से सबको विद्या का दाता, परोपकारी, तन, मन और धन से सबको सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेशक, सबका हितैषी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय होवे। आचार्य उसको कहते हैं जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे। आचार्य उसको कहते हैं कि जो असत्याचार को छुड़ाके सत्याचार का और अनर्थों को छुड़ाके अर्थों का ग्रहण कराके ज्ञान को बढ़ा देता है। जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा-पूर्वक विद्या होने के लिए तन, मन और धन से प्रयत्न करे, उसको आचार्य कहते हैं। जो सांगोपांग वेद-विद्याओं का अध्यापक, सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे, वह 'आचार्य' कहाता है।"

सुधा ने कहा— "बहनजी, क्या शिक्षा अनिवार्य रूप से बालक-बालिकाओं को देनी चाहिए ?"

सरला बहन ने कहा—"ऐसा राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें या आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के या लड़कियों को घर में न रख सके।

पाठशाला में अवश्य भेज देवें; जो न भेजें वे दण्डनीय हों। राजा को चाहिए कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखकर विद्वान् कराना; जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता-पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का और लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य-कुल में रहें; जबतक समावर्तन का समय न आवे तबतक विवाह न होना चाहिए।"

मधु ने पूछा—"ऋषिकृत ग्रन्थ कौन-कौन-से हैं? क्यों उन्हें ही पढ़ना चाहिए?"

सरला बहन ने कहा—"ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे (ऋषि) बड़े विद्वान्, सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे, और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं, अर्धज्ञानी हैं, उनके बनाए ग्रन्थ ठीक नहीं हैं। विज्ञान आदि विषय भी जिन्होंने बनाये हैं वे भी ऋषियों की श्रेणी में आते हैं, अतः गणित, विज्ञान आदि भी पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार मनुष्य को विद्या प्राप्त करनी चाहिए। विद्वान् उसको कहते हैं जो कि अर्थ-सहित विद्या को पढ़कर वैसा ही आचरण करे कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और परमेश्वर की प्राप्ति यथावत् हो सके। ऐसा जो विद्वान् है, वह संसार को सुख देनेवाला होता है, उसको कोई भी मनुष्य दुःख नहीं दे सकता, क्योंकि जिसके हृदय में विद्यारूपी सूर्य प्रकाशित हो रहा है उसको दुःखरूपी चोर कभी दुःख नहीं दे सकता।"

वैदिक शिक्षा की ये बातें सुनने के बाद माण्टेसरी स्कूल में अपने बच्चों को भेजनेवाली द्रौपदी सिन्हा ने कहा—"क्यों न हम बच्चों को शिक्षित और सभ्य बनाने के लिए माण्टेसरी स्कूल में भेजें? हम महिलाएँ घरों में अपने बच्चों की शिक्षा का भार क्यों लें? उन विद्यालयों में बच्चे की शारीरिक, मानसिक उन्नति का ध्यान रक्खा जाता है। उनकी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की उन्नति के लिए प्रयत्न किया जाता है। इस पद्धति के दो उद्देश्य हैं— एक तो प्रत्येक इन्द्रिय को ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराने का अभ्यास हो जाता है; हमारे ज्ञान में अपूर्णता इसलिए रहती है क्योंकि हम इन्द्रियों से अधकचरा ज्ञान प्राप्त करने के आदी हैं; इन्द्रियों को साधने से दूसरा लाभ यह होता है कि मनुष्य की सम्पूर्ण बुद्धि का विकास होता है। एक इन्द्रिय की सधी हुई शक्ति (Faculty) सब इन्द्रियों और बुद्धि को भी शक्तिदान करती है। यह एक तरह का व्यायाम है। अतः बच्चों को माता-पिता शिक्षा दें, इससे यह अच्छा न होगा कि हम ट्रेण्ड सिस्टर्स के हाथों में बच्चों को सौंप दें?"

सरला बहन ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"माण्टेसरी-पद्धति की जो बात आपने कही, उसके 'शिक्षोपकरण' (Didactic Apparatus) इतने महँगे हैं कि इन्हें हर स्कूल नहीं रख सकता और इससे सर्वसाधारण जनता को लाभ नहीं पहुँच सकता। इसके अतिरिक्त माण्टेसरी-पद्धति में 'बौद्धिक व्यायाम' का विचार भी ठीक नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि माता के हृदय में अपने बच्चे के निर्माण और वात्सल्य-प्रेम की जो भावना होगी, क्या वह सिस्टर्स के हृदय में होगी?"

द्रौपदी सिन्हा इस प्रश्न का उत्तर न दे सकी।

सरला बहन ने अपनी वात को आगे बढ़ाते हुए कहा—"आज जो हममें सहृदयता, राष्ट्रीयता, अनुशासन आदि नहीं रहा है, जो हमारे चरित्र गिर रहें हैं, उसका भी कारण हमारी विदेशी शिक्षा है। आज बच्चा उत्पन्न होने पर माँ का दूध न पीकर विदेशी बोतल का दूध पीता है। दो वर्ष का होने के बाद माँ से शिक्षा न लेकर, अपनी मातृभाषा को तुच्छ समझकर विदेशी भाषा में विदेशी परम्पराएँ और बातें सीखता है। 'माताजी-पिताजी' जैसे सार्थक, भावपूर्ण और पवित्र शब्दों को छोड़कर मम्मी, पापा और डैडी आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग करता है। विदेशी भेष, विदेशी भाव एवं विदेशी रुचि अपनाता है, बड़ा होने पर विदेशी गेहूँ-चावल खाता है। परिणामतः उसमें 'स्व' का नाश हो जाता है। अब तक का 'स्व' का बन्धन टूट जाता है और उस 'स्व' के अभाव में आत्म-नियन्त्रण हट जाता है। आत्म-नियन्त्रण के अभाव में वह विदेशी रूप में 'इंडीपैण्डैंट' तो बन जाता है, किन्तु स्वतन्त्र और स्वाधीन नहीं बन पाता।"

मधु ने पूछा— "बहन जी, इंडीपैण्डैंट और स्वाधीन या स्वतन्त्र में क्या अन्तर है ?"

सरला बहन ने कहा— "इंडीपैण्डैंट' का अर्थ 'अनधीन' है, स्वाधीन नहीं। अनधीन व्यक्ति किसी के अधीन नहीं। वह उच्छृंखल बन जाता है। वह बिना टिकट के यात्रा करता है, दूसरे के घर के सामने चुपके से कूड़ा फेंक देता है, दुकान से दुकानदार की कोई चीज चुपके से साफ कर देता है। दूसरी ओर स्वाधीन व्यक्ति दूसरे के अधीन न होकर अपने अधीन रहता है और यह अधीनता आगे बढ़ने में सहयोग देती है। उसका चरित्र उज्ज्वल और अनुकरणीय बनता है। यह चरित्र-निर्माण भारतीय शिक्षा का उद्देश्य है। यह उद्देश्य 'सिस्टर्स' पूरा नहीं कर सकतीं; माता पूरा कर सकती है, पिता सिखा सकता है और आदर्श अध्यापक सहयोग कर सकता है। चरित्र, शिष्टाचार और सभ्यता के लिए बालक को आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्या भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या-द्वेष, मोह आदि दोषों को छोड़ने और सत्याचार ग्रहण करने की शिक्षा देनी चाहिए। क्रोधादि छोड़कर मधुर वचन बोलने, बकवास न करने की शिक्षा देनी चाहिए। बालक उतना ही बोले जितना उसे बोलना चाहिए। बड़ों का आदर करना चाहिए, उन्हें ऊँचा स्थान दे। उन्हें 'नमस्ते' करे। सभा में योग्य आसन पर बैठे। आचार्य, माता, पिता और गुरुजनों का सम्मान करे और उनकी बातों को माने। अध्यापक का काम भी प्रारम्भ में माता-पिता को ही करना होता है।"

यह सुनकर श्रीमती द्रौपदी सिन्हा की भी आँखें खुल गईं और उसने भी अपने बच्चों को विदेशी शिक्षा से निकालकर, भारतीय संस्कृति में ढालने का संकल्प ले लिया।

□ □ □

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	१००.००
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित २५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४.००
आर्यसमाज विषयक
साहित्य परिचय २५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(सम्पादित) ग्यारह खण्ड ६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in Ancient India
Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India
Two Volumes 600.00
Critical Study of Brahmagupta and His works 350.00
Geomatry in Ancient India 350.00
God and His Divine Love 5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली
चार खण्ड २४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००
सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा ५०.००
मैं ब्रह्म हूँ ४.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा ६.००
ईशोपनिषद् ४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की
साधना व संघर्ष ६.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप ५.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

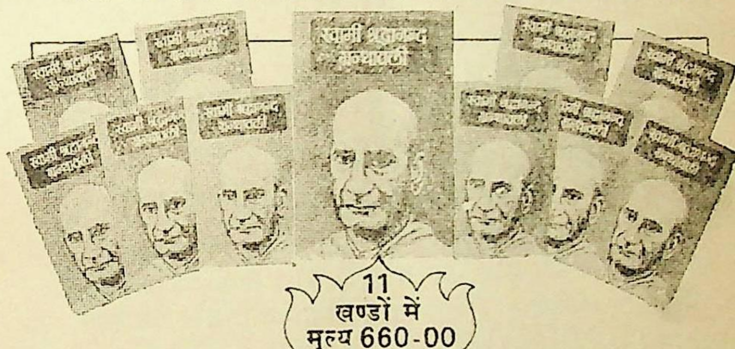
वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

23 दिसम्बर 1987

राष्ट्रभक्त स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
पर प्रकाशित।

इसमें संकलित हैं उनके समस्त ग्रन्थ, प्रमुख भाषण,
आत्मकथा तथा नवलिखित सचित्र जीवन चरित।



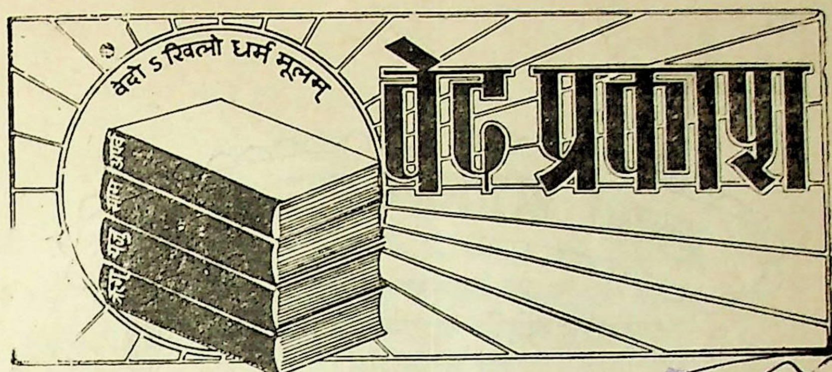
11
खण्डों में
मूल्य 660-00

हर राष्ट्र-भक्त के लिए संग्रहणीय

- मैकाले की दूषित शिक्षाप्रणाली के स्थान पर प्राचीन ऋषि अनुमोदित शिक्षा प्रणाली के समर्थक **स्वामी श्रद्धानन्द** शिक्षा के क्षेत्र में अनन्य प्रयोगी तथा टैगोर की समकक्षता में शिक्षा शास्त्री थे। उन्होंने राष्ट्रीय महत्व के गुरुकल कांगडी की स्थापना की।
- अंग्रेजों की संगीनों के सामने छाती खोलकर खड़ा होने वाला **वीर राष्ट्-भक्त संन्यासी श्रद्धानन्द** का एक तेजस्वी रूप था। कर्मवीर गांधी को महात्मा गांधी बनाने वाला व्यक्ति **देशभक्त स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- दिसम्बर 1919 में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष **स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- 1883 से 1926 बलिदान होते समय तक **श्रद्धानन्द** का इतिहास आर्य समाज का राष्ट्र का इतिहास है।
- अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, शुद्धि आन्दोलन, धार्मिक, सामाजिक एव राजनीतिक कार्यों में रत रहते हुए **स्वामी श्रद्धानन्द** भारतीय एवं विदेशी नेताओं शिक्षा-शास्त्रियों और जन-मानस के हृदय-सम्राट् बन गए।

गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया ।


वेदोऽखिलो धर्म मूलम्
वेद प्रकाश

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ४] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [नवम्बर १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

दयानन्द की महत्ता

लेखक—**महता जैमिनि (स्वामी ज्ञानानन्द सरस्वती)**

ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य को पढ़कर जो सम्मति पश्चिमी विद्वानों ने परिवर्तन की है, हम इस लेख में उसका जिक्र करेंगे। सबसे पहले हम मैक्समूलर को लेते हैं। साधारण जनता का जबतक यह खयाल बना हुआ है कि Maxmuller (मैक्समूलर) को आर्यसमाज से सहानुभूति न थी और उसने वेदों पर अधिक दोष लगाए हैं बल्कि स्वामीजी के साथ जो उसका पत्र-व्यवहार हुआ था, स्वामीजी ने उसके सम्बन्ध में प्रशंसा प्रकट नहीं की, उसका कारण यह है कि मैक्समूलर ने स्वामीकृत पुस्तकों, विशेषकर वेदभाष्य का स्वाध्याय नहीं किया था; परन्तु जब उसने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़ी तो उसपर दयानन्द का जादू चल गया तथा १८८० से उसके जीवन में भारी परिवर्तन हुआ; अब उसकी सम्मति वेद तथा स्वामी जी के सम्बन्ध में सर्वथा बदल गई। हम 'वेदों के महत्त्व' नामी पुस्तक में दिखा चुके हैं कि किस प्रकार से आज मैक्समूलर ने वेद के सम्बन्ध में प्रशंसा प्रकट की है और अब उनको संसार की धर्मपुस्तकों में कितना महान् एवं ऊँचा दरजा दिया है। हम दर्शायेंगे कि स्वामीजी के सम्बन्ध में उसने कितनी प्रशंसा प्रकट की है और उसके लेखों तथा विचारों में कितना परिवर्तन हुआ है।

(१) आर्यसमाज लन्दन (London) के प्रधान महाशय लक्ष्मीनारायण बैरिस्टर ने जो उन दिनों विलायत में विद्यार्थी थे और वहाँ की समाज के प्रधान थे, मैक्समूलर को एक पत्र लिखा जिसमें प्रार्थना की कि आप हमारी समाज की कार्यवाही में प्रधानपद को स्वीकार कीजिए। इसपर मैक्समूलर ने अग्रलिखित उत्तर दिया—

"मुझे आर्यसमाज संस्था के साथ पूरी सहानुभूति है। आर्यसामाजिक पुरुषों को उचित है कि जो कुछ कार्य स्वामीजी कर गए हैं उसपर सन्तुष्ट न रहें, परन्तु उस कार्य को जारी रखें जो कुछ अधूरा छोड़ गए हैं। मैं बड़ी प्रसन्नता से आर्यसमाज की यदि कोई सेवा कर सकूँ तो करने को तैयार हूँ।"—मैक्समूलर।

यह पत्र प्रकट करता है कि मैक्समूलर पर स्वामीजी के लेखों का कितना प्रभाव पड़ चुका था। इसका सबूत उसकी पुस्तक India what can it teach us (भारत से हमें क्या शिक्षा मिली है)से मिल सकता है। उसने स्वामीजी के 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के विषय में लिखा है (देखो पृष्ठ ७४)—

"हम तमाम संस्कृत साहित्य को, जो ऋग्वेद से आरम्भ होता है और दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर समाप्त होता है, निस्सन्देह स्वामीजी की वेदभाष्यभूमिका मनोरंजक पुस्तक है, को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—पहले भाग में वैदिक साहित्य तथा बुद्ध-मत का तमाम प्राचीन साहित्य सम्मिलित है, दूसरे भाग में बाकी तमाम ग्रन्थ शामिल हैं।" इस लेख से प्रकट होता है कि मैक्समूलर ने न केवल स्वामीजी के ऋग्वेदभाष्यभूमिका का स्वाध्याय किया, बल्कि वैदिक साहित्य में अन्तिम पुस्तक का दर्जा देते हुए उसे मनोरंजक पुस्तक का दर्ज दिया है। उसपर कितना गहरा प्रभाव पड़ा! आगे चलकर वह Biographical Essays (जीवन-चरित्र सम्बन्धी निबन्धों) में स्वामीजी के सम्बन्ध में यूँ लिखता है—

उसकी सम्मति में न केवल हर एक विद्या वेद में पाई जाती है, परन्तु वह इससे भी एक पग आगे गया, उसने दूसरे लोगों को निश्चय करा दिया कि हर एक वस्तु जो जानने योग्य है, वेद में पाई जाती है। चुनांचे विज्ञान के वर्तमान समय के आविष्कार जैसे भाप से चलनेवाले यन्त्र रेल, तार, हवाईजहाज यह सब बीजरूप से वैदिक ऋषियों को ज्ञात थे, क्योंकि वेद के अर्थ ईश्वरीय ज्ञान के हैं, इसलिए यह कैसे हो सकता है कि ये बातें परमात्मा से गुप्त रहें और वह मनुष्यों को उनका ज्ञान न होने देवे!

स्वामीजी की दृष्टि में मनुष्य-जीवन के लिए वेद ऐसे ही थे जैसे जहाज के वास्ते लंगर। उसका कथन था कि "वेद की ओर वापस चलो।"

अब मैं यह प्रकट करता हूँ कि वेद के सम्बन्ध में मैक्समूलर ने अपनी सम्मति में कितना परिवर्तन किया है और वेद की कितनी प्रशंसा की है—

"मेरा यह दावा है कि संसार में मनुष्यमात्र के स्वाध्याय के लिए कोई पुस्तक ऐसी आवश्यक नहीं जैसा कि वेद है। मेरा यह भी दावा है कि प्रत्येक मनुष्य जो आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहे या अपने पूर्वजों का ज्ञान प्रसिद्ध करना चाहे या मानव-इतिहास मालूम करना चाहे या मस्तिष्क की उन्नति करना चाहे तो उसके लिए वेद का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक है।"

आगे चलकर पृष्ठ १३३ पर यह लिखता है—

"यह कभी मत खयाल करो कि वेदों के अनेक अनुवाद जर्मन, फ्रेंच तथा आंगल भाषा में हो चुके हैं, इसलिए कि हमको जो कुछ वेदों से सीखना था, सीख लिया। अभी हम बहुत दूर हैं। यह तमाम अनुवाद अभी तजरबा (आजमाइश) के तौर पर हैं, अर्थात् प्रामाणिक लेख नहीं हैं। हम तो अभी वैदिक साहित्य के सागर की सतह के ऊपर फिर रहे हैं। (अभी सागर में डुबकी लगाकर प्रतीत नहीं किया कि उसके भीतर कैसे हीरे भरे पड़े हैं।) परन्तु फिर भी हमारे समालोचना करने-वाले अपनी युक्तियों से आक्षेप करते हैं कि हमें वेदों से मनुष्य की अत्यन्त प्राचीन आदि अवस्था का पूरा ज्ञान नहीं मिलता।"

आगे चलकर पृष्ठ ११८ पर लिखता है—

"वेदों को हम इसलिए आदिसृष्टि से कह सकते हैं कि उनसे पूर्व कोई अन्य लिखित चिह्न नहीं मिलता। परन्तु वेद के भीतर जो भाषा, देवमाला, धर्म तथा अध्यात्मविद्या का ज्ञान हमें दृष्टिगोचर होता है वह हमारे सम्मुख प्राचीन सभ्यता का ऐसा दृश्य दिखाता है, जिसको कोई भी मनुष्य वर्षों की संख्या में नहीं ला सकता। जहाँ वेद में सरल स्वभाव तथा बच्चों के विचार भी मिलते हैं, वहाँ ऐसे उत्तम विचार भी दृष्टिगोचर होते हैं जो वर्तमान समय (उन्नीसवीं शताब्दी) के प्रतीत होते हैं, जो सर्व लेख-पत्रों से प्राचीन हैं और जो हमें मनुष्य के बुद्धिविकास के विचार के इतिहास में ऐसी प्रामाणिक साक्षी तथा ज्ञान प्रकट करते हैं जिससे वेदों के ज्ञान तथा दरियाफ्त से पूर्व हम सर्वथा अपरिचित थे। यदि हम आदिसृष्टि से तात्पर्य उस जाति से लें जिन्होंने पृथिवी पर अपनी जीवनी के लिखित यादगारों को सुरक्षित किया, और सबसे प्रथम तथा अगुवा आर्यजाति कहलाए तो मैं निर्भयता से कहता हूँ कि वे वैदिक ऋषि थे। वेदों की भाषा भी आदिसृष्टि से है तथा वैदिक धर्म आदिसृष्टि से है, और सर्वांश में उन तमाम वस्तुओं से अधिक प्राचीन है जो हम कभी भी मनुष्य-जाति में तमाम इतिहास में खोज करने के अधिकारी होंगे।

"केवल भारत में ही, विशेषकर वैदिक समय में भारत में ही एक वृक्ष ज्ञानरूपी कल्पवृक्ष है, जो अपनी देशी भूमि पर पला है और देशी वायु से ही हरा-भरा हुआ है, अर्थात् वैदिक धर्म पर किसी अन्यदेशीय विचारों का प्रभाव नहीं पड़ा। क्योंकि वैदिक धर्म की ऐसी उत्तमता से रक्षा की गई थी कि इसमें अन्यदेशीय विचारों का प्रभाव सर्वथा नहीं पड़ने दिया गया। इसके भीतर ऐसे शिक्षादायक विचार हैं कि धर्म के जिज्ञासु को अन्य किसी स्थान या पुस्तक में नहीं मिलेंगे।"

अन्त में मैक्समूलर की अन्तिम सम्मति जो उसने मरते समय अपनी आखिरी पुस्तक भारत के षट्शास्त्र में लिखी है उसको लिखकर हम समाप्त करते हैं—

"चाहे वेदों के मन्त्र तैयार करने का समय कोई हो, वे संसार-भर के साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं और किसी अन्य साहित्य या ग्रन्थ पर निर्भर नहीं

तथा स्वतःप्रमाण हैं। उनसे हमें मनुष्य के मस्तिष्क के विकास का ज्ञान मिलता है, जिसकी खोज अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं मिलती। विचारों के सम्बन्ध में चाहे वेदों के सम्बन्ध में आप कैसी सम्मति प्रकट करें, परन्तु वेद सर्वदा अत्यन्त प्राचीन इतिहासों से भी अधिक सर्वोपरि कोटि में रहेंगे तथा अत्यन्त प्राचीन कुतबों से भी अधिक प्राचीनता का उत्तम महान् दरजा रखते हैं। क्योंकि वेदों का प्रत्येक मन्त्र, नहीं-नहीं, बल्कि प्रत्येक शब्द संसार की महा राजधानी तथा मनुष्य की मस्तिष्क और मानसिक बुद्धिरूपी राजधानी के लिए प्रामाणिक लेख है।''

अहा ! मैक्समूलर पर स्वामीजी के वेदभाष्य का कैसा जादू चला कि जो, जिन वेदों को पहले बच्चों के विचार तथा जंगली समय की पुस्तक कहा करता था, वह अब उनको मनुष्यमात्र की मानसिक शक्ति तथा बुद्धि के लिए प्रामाणिक लेख वर्णन करता है। कितना-भारी परिवर्तन है ! मैक्समूलर के वेद-अनुवाद में जो उसने दूसरी बार १८९१ में मुद्रित कराया है हम उसमें अत्यन्त परिवर्तन देखते हैं। चुनांचे अग्नि के अर्थ १८७२ के अनुवाद में उसने आग किए थे, परन्तु जब दयानन्द का रंग चढ़ा तो अब अग्नि के अर्थ सर्वप्रकाशक के करता है।

इसी प्रकार आगे चलकर अन्य विद्वानों की कुछ सम्मतियाँ भी प्रकट की जाती है।

(२) Madam Blavatski जो Theosophical Society की एक प्रसिद्ध नेता हो गुजरी है, उसने भारत-यात्रा करके एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम 'The Caves & Jungles in Hindustan' है अर्थात् 'हिन्दुस्तान के जंगल तथा गुफाएँ'। उसमें स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में निम्नलिखित वर्णन किया है—

''प्रत्येक मनुष्य इस बात पर विचार करने को प्रेरित होता है कि यह विचित्र रूप का हिन्दू एक ऐसी आकर्षक शक्ति रखता है जो अपनी इन्द्रियों पर पूरा प्रभाव रखता है—अर्थात् पूर्ण जितेन्द्रिय है। यह निश्चय रूप से कहा जाता है'कि शंकराचार्य के समय के पश्चात् भारत ने स्वामी दयानन्द से अधिक विद्वान्, गुणी, आत्मिक सम्बन्धी विद्या में निपुण, अद्वितीय मधुर वाणी का व्याख्याता, निर्भय और दुराचार के विरुद्ध गर्जनेवाला महापुरुष नहीं देखा। जहाँ कहीं दयानन्द गुजरता है, जनता उसके पाँवों की धूलि चूमने को तैयार हो जाती है। वह जनता में किसी नये धर्म का प्रचार नहीं करता, न कोई नया सिद्धान्त पेश करता है; वह केवल यही कहता है कि अपने पूर्वजों की भाषा जिसको तुम भूल गए हो पुनः जीवित करो और प्राचीन सिद्धान्तों की वर्तमान समय के सिद्धान्तों के साथ तुलना करके परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को पहचानो। जो हमारे प्राचीन आदिऋषियों ने जिन्होंने मनुष्यमात्र के लिए वेदों को सबसे पहले प्रकट किया था, उसका हमें उपदेश दिया है।''

(३) जब Theosophical Society America (थियोसोफिकल सभा

अमेरिका) के नेताओं ने स्वामीजी के कार्य, उपदेशों और धार्मिक ग्रन्थों की महिमा को सुना तो स्वामीजी को अमेरिका से एक पत्र भेजा, जिसका सारांश यह है—

"अहो भाग्य हैं उस भूमि के जहाँ आप ईश्वरीय ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं तथा शिक्षा दे रहे हैं। हमें आज्ञा दीजिए कि हम आपको अपना पिता तथा गुरु कहकर पुकारें और ऐसे कार्य करें जिनसे आपके कृपापात्र बन सकें। हम तो वैदिक फिलासफी से बच्चों के समान अज्ञानी हैं। ओ पूज्य स्वामी, हमें शिक्षा दीजिए ताकि हम यहाँ (पातालदेश-निवासियों) की जनता में आर्यसमाज के सम्बन्ध में व्याख्या कर सकें। हम आपके शिष्य हैं और आपकी आज्ञा पालन करने को तैयार हैं।"

(४) "दयानन्द के व्यक्तित्व तथा आचरण के बारे में हमें अत्यन्त आश्चर्य पैदा होता है। वह पहले दरजे का जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी था और अपने सिद्धांतानुकूल आचरण रखता था और दृढ़ था। वह हृष्ट-पुष्ट, शूरवीर, योद्धा और स्वतन्त्र विचारवाला था। वह कई बार अपने बरतावे में हठ भी करता था। उसने बड़े धैर्य तथा वीरता से कई वर्ष तक लगातार अपने देश के विद्वानों का मुकाबिला किया। उसके स्वदेश-निवासी नास्तिकपन का दोष उसके सिर मढ़ते थे, परन्तु वह सत्य पर मुग्ध तथा दृढ़ रहनेवाला था।"

(५) अमेरिका के एक प्रसिद्ध योगी Andrew David Jackson (डेविड जैकसन) ने ऋषि दयानन्द सम्बन्धी तथा आर्यसमाज के सम्बन्ध में जो सम्मति अपनी पुस्तक Harmonia Vol. IV (हारमोनिया पुस्तक जिल्द ४) के भाग Beyond the Valley p. 289 (घाटियों से परे, पृष्ठ २८९) में प्रकट की है, वह पढ़ने योग्य है। आप लिखते हैं—

"मुझे एक आग नजर आती है जो सार्वभौमिक (आलमगीर है), अर्थात् असीम प्रेम की अग्नि जो नफरत को जलानेवाली और हर वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमेरिका के चटियल मैदानों, अफ्रीका के घने जंगलों, एशिया के प्राचीन पर्वतों, यूरोप की विशाल राजधानियों पर मुझे इस सबको भस्म तथा शुद्ध करनेवाली अग्नि की ज्वाला दिखाई देती है। इसकी चर्चा तमाम पस्त स्थानों से ही आरम्भ हुई है। अपनी आसाइश तथा उन्नति के लिए मनुष्य ने उसे प्रज्वलित किया है। पृथिवी पर मनुष्य ही ऐसा जीव है जो उसे स्थित रख सकता है। चूँकि प्राणिमात्र में बोलनेवाला केवल मनुष्य ही है, इसलिए नरक की अग्नि अपने स्थानों में भड़काने में प्रथम है। हां, प्रोमीथियस के समान जहन्नुमी स्थानों को प्रेम से पाक तथा बुद्धि को रोशन करनेवाली आकाशी अग्नि लाने के लिए भी वही सबसे आगे पग धरता है। उस अनन्त अग्नि को देखकर जो निश्चयरूप से राजधानियों तथा संसार की राजनीतियों को पिघला डालेगी, मैं अतिप्रसन्नता से एक भड़कनेवाले जोश का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। सब ऊँचे पर्वत जल उठेंगे। अनन्त उन्नति की विद्युत्-रूपी लहरों से मनुष्य की स्वाभाविक शक्ति हिल रही है। आज उसकी चिंगारियाँ

आकाश की ओर उड़ रही हैं। व्याख्यानदाताओं, कवियों और ग्रन्थ-रचायताओं की आज्ञाओं में तथा उपदेशों में इधर-उधर चिंगारियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यह अग्नि सनातन आर्यधर्म को असली पवित्र अवस्था में लाने के लिए एक भट्टी में थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं। वह अग्नि भारतवर्ष के एक परमयोगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशमान हुई थी। हिन्दू तथा मुसलमान इस अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर तेजी से दौड़े, परन्तु यह अग्नि ऐसी तेजी के साथ बढ़ती गई कि उस वेग का उसके बानी दयानन्द को स्वप्न में भी गुमान न था। ईसाइयों ने भी, जिनके गिर्जाघरों की अग्नि और पवित्र बत्तियाँ पहले एशिया में ही प्रज्वलित हुई थीं, एशिया की इस नयी रोशनी को बुझाने के लिए हिन्दू-मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह आकाशी अग्नि और भी वेग के साथ भड़क उठी। तमाम बदियों का समूह नित्य की शुद्ध करनेवाली भट्टी में जलकर भस्म हो जावेगा, यहाँ तक कि रोग के स्थान में आरोग्यता, प्रतिमा के स्थान में परमात्मा, नरक के स्थान में स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, अविद्या के स्थान में ज्ञान-विज्ञान, ईर्ष्या के स्थान में प्रेम, वैर की जगह समता, पाप के स्थान में पुण्य, भूत-प्रेत के स्थान में परमात्मा तथा प्रकृति का राज्य होगा। मैं इस अग्नि की ज्वाला को मुबारिक तथा अहोभाग्य समझता हूँ। जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वजनिक आनन्द, बरकत तथा प्रेम का यज्ञ आरम्भ होगा।"

(६) स्वामी दयानन्द ने जो पत्र-व्यवहार १८८० में जर्मनी आदि देशों के विद्वानों से किया उससे प्रकट होता है कि जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामीजी के कैसे प्रेमी भक्त बन गए थे और स्वामी जी से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति तथा योग सीखने के लिए कैसे उत्सुक थे। चुनांचे मैं अब नमूने के तौर पर दो-तीन लेखकों के पत्रों को संक्षेप में यहाँ लिखता हूँ ताकि पाठकों को पता लग जावे कि स्वामी जी के वेदभाष्य तथा जीवन ने उन विद्वानों पर कितना भारी प्रभाव डाला। सबसे पहले मैं डाक्टर Wiese (वाइज़) को लेता हूँ, जो शिक्षा में निपुण तथा बहुत अनुभवी समझा जाता था। उसके पत्रों का संक्षेप—

"मेरी आत्मा साक्षी देती है तथा पेशीनगोई करती है कि आर्य पुरुष ही यूरोप को अन्धकार तथा प्राकृतिक पूजा से मुक्त करेंगे और उस ब्रह्मज्ञान की ओर लौटावेंगे जो हमारी बाल्यावस्था को हमारे परमपिता की ओर ले-जानेवाले होंगे, जिसने हमें संसार में आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए भेजा था, ताकि हम-आप आत्मिक अधिकार प्राप्त करके उसकी गोद में जाकर शान्ति से लिपटकर उसके अमृतपुत्र कहलाने के अधिकारी बनें।

यदि परमात्मा को मंजूर है तो फिर एक बार तमाम संसार के आर्यजाति के लोग महाभ्रातृसभा का स्थापन करेंगे और मनुष्यमात्र को प्रेम तथा मित्रता से गले लगावेंगे और सबको उपकार करने की ओर प्रेरणा करेंगे ताकि भूमण्डल में मनुष्य

शान्ति से जीवन व्यतीत करें और आकाश में परमात्मा के साथ प्रेम तथा शान्ति से आनन्दमय जीवन व्यतीत हो। मेरे हृदय के नेत्रों के सम्मुख दूर से इस प्रकार की प्रतिमा दृष्टिगोचर हो रही है। क्या यह दृश्य सत्य सिद्ध होगा? आपकी इसमें क्या सम्मति है? मुझे कोई चिन्ता नहीं, यदि मैं इस दृश्य को अपने जीते-जी देख जाऊँ या मेरी मृत्यु के पश्चात् हो। परमात्मा आपको बरकत दे और उन तमाम मनुष्यों की कामना सिद्ध करे जो उसकी इच्छानुकूल कार्य करना चाहते हैं तथा उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।" मैं हूँ आपका आज्ञाकारी पुत्र—जी० वाइज़

ओहो! कैसे प्रेम, श्रद्धा और भक्तिरस से भरे हुए शब्द हैं! क्या भारत के आर्यों ने भी स्वामीजी पर इस प्रकार अगाध प्रेम तथा भक्ति प्रकट की है?

यह पत्र भी बहुत लम्बा है, परन्तु मैंने केवल एक फिकरा ही उसमें से निकालकर संक्षिप्त रूप से नमूने के तौर पर आपके सम्मुख रख दिया है जिसका अर्थ यह है कि—"मेरी कामना केवल यही नहीं है कि सत्य को जानूँ, परन्तु यह है कि जहाँ तक मेरी आत्मा तथा शरीर से हो सके यथाशक्ति सत्य का जीवन व्यतीत करूँ। आपके साथ वार्त्तालाप करने से मैं निश्चय करता हूँ कि मैं एक सत्यकामी पुरुष से वार्त्तालाप कर रहा हूँ जो कि मनुष्यमात्र से सत्यप्रेम करता है और ईश्वरीय प्रेम का भी अनुभव करता है। इसलिए मैं आपसे विनती करने का साहस करता हूँ कि यदि आप मुझे अधिकारी समझें (जैसा कि मैं अपने-आपको समझता हूँ) तो मुझे सत्य ज्ञान जानने के योग्य बनावें तथा ऐसा मार्ग बतावें और ज्ञान दें जिससे मैं संसार में परोपकार करने का भागी बन सकूँ।"

अहा! कैसी शुभकामना है और स्वामीजी पर कितना विश्वास है!

"मैंने मांस खाना छोड़ दिया है, मद्यपानादि नशों को त्याग दिया है। अगरचे मेरा विवाह हो चुका है, परन्तु ब्रह्मचारियों का-सा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मुझे धन तथा सांसारिक पदार्थों की कामना तथा अभिलाषा नहीं। मेरी जिज्ञासु आत्मा के भीतर केवल यही प्रेरणा होती है कि इस बात का ज्ञान हो कि मनुष्य वास्तव में क्या है और वह क्या-कुछ बन सकता है। साथ ही मैं सदाचार में अपने-आपको निपुण करना चाहता हूँ ताकि मैं इस योग्य बनूँ कि उस अपार ब्रह्म के साथ अपनी आत्मा को योग द्वारा मिला सकूँ। संसार में प्रत्येक मनुष्य को मैं अपना भाई तथा भगिनी समझता हूँ और इसी प्रकार से उनसे भ्रातृभाव तथा प्रेमभाव से बर्ताव करता हूँ। इसलिए शुभ कामना से मैं आपसे याचना करता हूँ कि आप कृपापूर्वक मुझे योग करने के साधन बतावें, जिसका अनुकरण करता हुआ मैं योगाभ्यास में उन्नति कर सकूँ।"

"मैं तुम सब सज्जनों के साथ स्वामी दयानन्द की प्रशंसा करने में सहमत हूँ। मुझे आश्चर्य है कि हिन्दू जाति का एक ही भाग स्वामीजी के वेदभाष्य को स्वीकार करता है। सामाजिक संशोधन बड़ा कठिन कार्य है और प्राकृतिक पूजा के युग में

ऐसे विषयों में डुबकी लगाने को बहुत कम लोग तैयार हैं।

मुझे यह प्रतीत करके निराशा होती है कि एनी बेसेण्ट जैसी विदुषी, वाचस्पति देवी जो आर्यसमाज के मिशन को फैलाने के लिए अत्यन्त लाभदायक होती, अपने उपदेशों तथा शिक्षा-प्रणाली में इधर-उधर घूम रही है और सीधे मार्ग पर चलकर काम नहीं करती।"

(७) Theosophist (थियोसोफिस्ट) पत्र में स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में यह लेख निकला था १८८३ में उनकी मृत्यु के पश्चात्—

"पंडित दयानन्द आत्मिक बल में निपुण, निर्भय, किसी से न दबनेवाला, उसकी सिंहनादरूपी आवाज तथा पुरजोश उत्तम भाषण ने जो कई वर्ष उसने किया, भारत के हजारों हिन्दू लोगों की प्रमाद और लापरवाही से जाग्रत्-अवस्था में ला दिया है। उनके भीतर बल और धर्म की उत्तेजना उत्पन्न कर दी है। उसने आर्यजाति को उन्नत तथा पुनर्जीवित करने के लिए आयुभर यत्न किया, अपने पूर्वजों की उत्तम फिलासफी को प्रकट करने के लिए अत्यन्त प्रेम दर्शाया। उसने सामाजिक तथा धार्मिक संशोधन करने में अनथक उत्साह प्रकट किया। उसने भारत की सभ्यता, विद्या तथा मस्तिष्क-विद्या का कोष जो गुप्त हो गया था उसे खोजने का पूरा यत्न किया। उसने पतित हिन्दू धर्म की अवनत तथा सिड़ती हुई जनता और जाति के मध्य में बम्ब का गोला फेंका और सबके हृदय अग्नि से प्रज्वलित कर दिये जो उसके मनोरंजक भाषणों तथा मधुर वचनों के प्रभाव से उसकी ओर आकर्षित होकर आये थे। निश्चय रूप से भारतभूमि में एक सिरे से दूसरे सिरे तक संस्कृत तथा हिन्दी में पंडित दयानन्द से बढ़कर कोई विद्वान् या व्याख्यानदाता नहीं था। उसके भीतर किसी की खुशामद तथा रियायत या लिहाज नहीं था।"

(८) Arbindo Ghosh (अरविन्द घोष) भारत का एक प्रसिद्ध नेता स्वामीजी के विषय में निम्नलिखित सम्मति प्रकट करता है—

"वेदों के भाष्य के विषय में मेरा पूर्ण विश्वास है कि चाहे अन्त में वेद का कोई भाष्य प्रामाणिक माना जावे, परन्तु स्वामी दयानन्द की प्रतिष्ठा सबसे बढ़कर की जावेगी, क्योंकि उसने सत्य अर्थों को खोज निकाला है अर्थात् धातु का अर्थ यौगिक शब्दों से निकालना उसी का काम था। जबकि भारत में गड़बड़ तथा अविद्या और अन्धकार के घोर बादल छाए हुए थे और सदियों से जनता भ्रमजाल में फँसी हुई थी तो दयानन्द के चक्षु ने दीर्घदृष्टि से उस दृश्य को देखा जिससे सत्य को प्रकट किया और जो कुछ भारत के लिए आवश्यक था उसपर चट्टान के समान दृढ़ हो गया। उसने उस द्वार की कुंजी को पा लिया जो सहस्रों वर्षों से बन्द पड़ा था और उस बन्द पड़े हुए स्रोत को, जो जेलखाने के समान बन्द पड़ा था, तोड़-कर शुद्ध-पवित्र जल की धारा बहा दी, जो दुर्गन्ध से सड़ रहा था। सबसे अत्यन्त आवश्यक बात यह है कि उसने वेदों को पुरातनकाल की धर्म की चट्टान सिद्ध

किया अर्थात् धर्म का स्तम्भ वेदों को बनाया और इस पथरीली नींव पर उस मंदिर को तैयार किया जो उसकी दीर्घदृष्टि से गोचर हुआ। उसने वेदों के स्वाध्याय ही से युवकों की उन्नति, वीरता तथा जातीय उन्नति के साधन अनुभव किए। राजा राममोहन राय तो उपनिषदों तक पहुँचा और वहाँ ही ठहर गया, आगे न बढ़ सका, परन्तु दयानन्द ने इससे आगे पग धरा और अनुभव किया कि हमारे ज्ञान का वास्तविक भण्डार वेद है। उसके भीतर जातीयता का भाव कूट-कूटकर भरा हुआ था, इसलिए उसने उसे प्रज्वलित कर दिया। इसीलिए जितने पुस्तक उसने लिखे उनमें गाथाओं तथा दन्तकथाओं के स्थान में कूट-कूटकर जातीयता के भाव भरे हैं। वह धर्म के बल से जाति को उठाना चाहता था। उसने भारत के लिए एक विरसा छोड़ा है अर्थात् पवित्र पुरुषार्थ, महान् साफदिली (हृदय की सफाई), दीर्घदृष्टि, पवित्र व प्रचण्ड खरापन, स्वतंत्रता और सबसे बढ़कर सत्य का प्रकाश—मन, वचन, कर्म से।"

ऊपर लिखित महाशय ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य पर कैसे मुग्ध हैं और किस कदर भक्ति तथा प्रेम स्वामी जी के मिशन से प्रकट करते हैं।

अब मैं बाकी विद्वानों की सम्मतियाँ छोड़कर केवल एक पादरी साहब की सम्मति दिखाकर जर्मनी के एक विद्वान् के विचार पेश करूँगा जिसने अभी स्वामी जी तथा लुथर की तुलना करते हुए प्रकट किए हैं।

(९) पादरी ग्रिसवोल्ड साहब प्रोफेसर मिशन कालिज, लाहौर (Revered Gresvold Professor Missions College Lahore) स्वामी जी के विषय में अपनी सम्मति देते हैं—

"स्वामी जी ने चिरकाल तक सनातनी पंडितों, ईसाइयों तथा मुसलमानों के साथ धार्मिक युद्ध किया, जिससे प्रतीत होता है कि वह स्वाभाविक अर्थात् पैदायश से ही धार्मिक योद्धा था और सत्य की परीक्षा के लिए युद्ध करने, अपने शत्रु पर वार करने तथा उसका वार सहने को तत्पर रहता था। उसका आचरण इतना महान् था कि कदापि अपने दृढ़ संकल्प से हटनेवाला न था; न कभी दुर्बलता प्रकट करने को तैयार था। उसने हिन्दू धर्मपुस्तकों तथा गाथाओं में भेद प्रकट किया और दर्शाया कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के दो भाग हैं। उसने प्रत्येक भाग की भिन्न-भिन्न मूल प्रकट की हैं। हमें उसके इस संशोधन को देखकर जर्मनी का लुथर याद आ जाता जाता है। उसने बहुदेवपूजा तथा सब-कुछ ईश्वर है (अद्वैतवाद) के विरुद्ध बल-पूर्वक निर्भयता से नाद बजाया। यही बात उसके मत तथा विचार की अत्यन्त प्रशंसनीय है।"

(१०) मिसेज़ सरोजिनी नायडू, स्वामी जी के सम्बन्ध में लिखती हैं—

"स्वामी दयानन्द वर्तमान समय की एक विशाल शक्ति था। उसका सन्देश

तथा उपदेश वास्तव में प्राचीन वैदिक धर्म का सत्य निचोड़ तथा इत्र था जो जाति को पुनर्जीवित करनेवाला तथा अपने प्रभाव और आदर्श-सीमा में दूर तक पहुँचने वाला और उत्साही था। भारतवर्ष को यदि अब कोई अत्यन्त आवश्यकता है तो वह रूहानियत (आत्मिक ज्ञान) के पुनर्जीवित करने की है—और स्वामी दयानन्द के समान दीर्घदर्शी और विचारशील पुरुष ही भारतवर्ष के सुधार का मार्ग खोल सकते हैं और उसे उन्नति के शिखर पर ले जा सकते हैं ताकि जिज्ञासु लोग ईश्वरीय ज्ञान के अमृतरूपी स्रोत से अपनी प्यास बुझाकर अमर हो जावें।"

अब ऋषि दयानन्द ने कार्य की सफलता पर कुछ अन्य पुरुषों की सम्मतियाँ प्रकट करते हैं।

(१) टी० विसवानी, पूर्व-आचार्य्य ब्रह्म कालिज, लाहौर की सम्मति—"ऋषि दयानन्द की महत्ता किस बात में है, उसका नाम लेते हुए उसकी यश-कीर्ति को देखकर उसका स्मरण नहीं होता, क्योंकि किसी मनुष्य की शोहरत उसकी पवित्रता या सत्परायणता का साधन नहीं है। सिकन्दर तथा सीज़र दयानन्द से अधिक यश में प्रसिद्ध थे, परन्तु दयानन्द के कपड़े का दामन छूने के भी अधिकारी न थे। न मैं उसकी वक्तृताशक्ति तथा प्रवाहधारा (व्याख्यान देने में सामर्थ्य) के लिए उसकी पूजा करता हूँ, क्योंकि डीमास्थनीज तथा सिसरो उससे अधिक भाषण करने वाले थे। दयानन्द पूर्ण मस्तिष्कवाला, बुद्धिमान्, तेजस्वी और शब्दविद्या में निपुण था, परन्तु अफलातून या हैकल के समान किसी नए पंथ का स्थापन करने वाला न था, बल्कि वह आचार्य था। आचार्य केवल शिक्षा देनेवाला ही नहीं हुआ करता, वह दीर्घदृष्टि हुआ करता है जो वास्तविकता को अपने भीतर ज्ञान के चक्षु से अनुभव करता है, साथ ही वह ऐसे विचारों तथा सिद्धान्तों को अपने जीवन पर घटाकर दर्शाता है। बस, आचार्य वह पुरुष है जिसके भीतर आचार तथा विचार दोनों उपस्थित हों। दयानन्द इसलिए आचार्य था कि वह दीर्घदृष्टि था और उसने अपने जीवन के भीतर विचारों को अमली तौर पर ढालकर प्रकट करके दिखाया। वह सच्चे आर्य आदर्श का संन्यासी था। ऐसा मनुष्य जो कि योगाभ्यास तथा कर्त्तव्य का पालन करनेवाला था।"

(२) ख्वाजा हसन निजामी लिखता है—"मैं स्वामीजी को भारत का महा-पुरुष मानता हूँ, क्योंकि उन्होंने अपनी जाति के संशोधन का महान् कार्य किया। उनकी सबसे अधिक महत्ता जिसके लिए मैं अपने प्रेम को प्रकट करता हूँ उनके जीवन की सादगी है।

स्वामीजी उस काल में पैदा हुए जबकि भारतवासियों ने नुमायशी फिजूलखर्ची को अपने जीवन का अंग बना लिया था। वह यूरोप की देखा-देखी टीप-टाप पर मुग्ध हो चुका था, इसलिए स्वामीजी ने अपना जीवन तथा स्वरूप ऐसा रक्खा जिसको देखकर उसके अनुयायी लोग शिक्षा ग्रहण कर सकें तथा शारीरिक पूजा वा दिखलावे

में अपना जीवन व्यर्थ न खोवें। मुसलमान स्वामीजी के धार्मिक सिद्धान्तों से लाभ उठाने का यत्न नहीं करते, परन्तु स्वामीजी के सरल जीवन का आदर्श ऐसा है जिससे उनको भी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए ताकि ऐसी ही स्वतन्त्रता और सरल जीवन का पाठ वे भी कर सकें, क्योंकि मुसलमान गृहस्थ के कार्यों में पश्चिम की सभ्यता तथा चमक का अनुकरण कर रहे हैं।''

(३) रवीन्द्रनाथ टैगोर की सम्मति—''मैं उस बड़े गुरु के आगे सिर झुकाता हूँ जिसकी दीर्घदृष्टि ने भारत में सत्य तथा एकता का अनुभव किया और आत्मिक इतिहास के रूप में जिसकी बुद्धि ने भारत के जीवन के सब भागों को पूरे प्रकाश में अनुभव किया, जिसकी पुकार तथा सन्देश जो उसने भारत को दिया, वह अविद्या तथा भ्रमजाल के प्रमाद से सत्य तथा पवित्रता को जगाने के लिए था और हमारी भूतकाल की शान को प्रकट करने के लिए था।''

(४) डॉक्टर एनी बेसेण्ट की सम्मति—''स्वामी दयानन्द ने वेद तथा उपनिषदों को भारत की शान तथा गौरव सिद्ध कर दिया और भारत के उत्तम विचारों की महत्ता तथा कद्र प्रकट कर दी और दर्शाया कि भारत की जाति का यह अनमोल ग्रन्थ विरसा (पैतृक सम्पत्ति) है। उसका प्रभाव यहाँ तक पड़ा कि भारतवासी पुनः अपने भूतकाल का आभास करने लगे और अनुभव करने लगे कि हमारे पूर्वजों के धार्मिक ग्रन्थ बच्चों की बलबलाहट या जंगलियों के गीत तथा वहमी खयालात नहीं, बल्कि एक प्रबल धर्म की नींव के समान हैं, जो भूतकाल का गौरव तथा आगामी समय का जीवन प्रकट करते हैं।''

(५) महात्मा गांधी की सम्मति—

''स्वामी दयानन्द एक महान् विद्वान् संशोधक थे। देश की आवश्यकता को देखकर आपने घर को त्याग दिया। ऐसे व्यक्ति का यदि कोई भी अपमान करेगा तो मैं उसे महापापी समझूँगा। मुझे आर्यसमाज बड़ा प्रिय है। यह बुद्धि के प्रयोग से काम करता है और उसका काम देश के लिए लाभकारी है।''

इन सम्मतियों से जनता को पता लग गया होगा कि स्वामीजी को संसार के विद्वान् ,हर एक मत-मतान्तर के अनुयायी कैसे मान, प्रतिष्ठा तथा प्रशंसा से देखते हैं और उसके गुण तथा उपदेशों से लाभ उठाने का यत्न करते हैं। □

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	१००.००
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित	२५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा	२४.००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	२५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (सम्पादित) ग्यारह खण्ड	६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in Ancient India Two Volumes	500.00
Coinage in Ancient India Two Volumes	600.00
Critical Study of Brahmagupta and His works	350.00
Geomatry in Ancient India	350.00
God and His Divine Love	5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली चार खण्ड	२४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश	३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय	४५.००
सत्यार्थ सरस्वती	२५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष	९.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा	५०.००
मैं ब्रह्म हूँ	.४.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा	४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप	३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा	६.००
ईशोपनिषद्	४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप	४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो	४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	६.००

सुरेशचन्द वेदालंकार

महकते फूल	१०.००
ईश्वर का स्वरूप	१५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य	२.५०
प्राणायाम विधि	२.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप	५.००

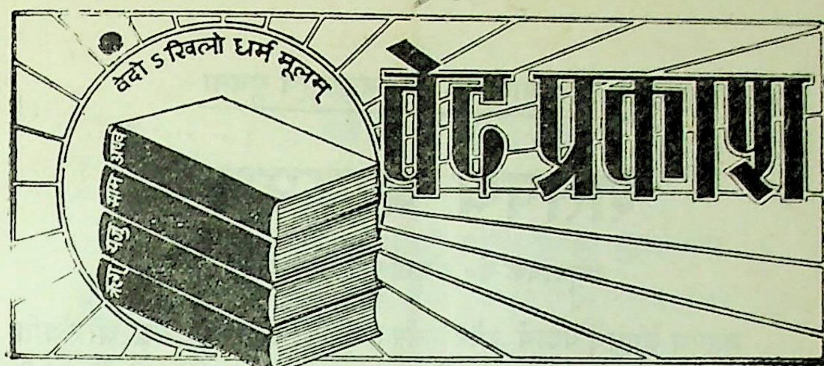
प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम	३५.००
संध्या विनय	८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा	३५.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन (अलवर)

तथा

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
के उपलक्ष्य में 31 दिसम्बर तक
बहुमूल्य पुस्तकों पर विशेष छूट

		छूट के बाद मूल्य
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली	(६६०/-)	५००/-
महाभारतम्	(६००/-)	५००/-
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार	(३२५/-)	२५०/-
Founders of Sciences in Ancient India	(५००/-)	४००/-
Coinage in Ancient India	(६००/-)	५००/-
A Critical Study of Brahmagupta & his works	(३५०/-)	३००/-
Geometry in Ancient India	(३५०/-)	३००/-
महात्मा हंसराज ग्रंथावली	(२४०/-)	२००/-

शतपथ ब्राह्मण

प्रकाशन से पूर्व मूल्य भेजने की तिथि
31 दिसम्बर तक बढ़ा दी गई है
विवरण अन्दर के पृष्ठ में देखें

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

एक अति आवश्यक और महत्वपूर्ण सूचना

शतपथ ब्राह्मण

अनुवादक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथ ब्राह्मण वेदार्थ और कर्मकाण्ड का अत्यन्त प्रसिद्ध और अति प्राचीन ग्रन्थ है। इसकी रचना महर्षि याज्ञवल्क्य और शाण्डिल्य मुनि ने की है। मूल ग्रन्थ में १४ काण्ड हैं, १०० अध्याय और ७६२५ कण्डिकायें हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम काण्ड बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से विख्यात है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे लिए गौरव की बात है। इसके स्वाध्याय और संग्रह करने वाले भी अपने को गौरवान्वित समझेंगे।

इसके चार खण्ड हैं। पहले खण्ड में शतपथ ब्राह्मण का सांस्कृतिक तथा समीक्षात्मक अध्ययन है। इसे श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने अंग्रेजी में लिखा है—A Critical and "Cultural Study of Sathpath Brahman".

दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड में बायें पृष्ठ पर मूल पाठ है। इसे एल्बर्ट वेबर द्वारा सम्पादित, १८४९ में जर्मनी से प्रकाशित फोटो प्रोसेस द्वारा स्वर सहित प्रकाशित किया गया है। दायें पृष्ठ पर हिन्दी अनुवाद है श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत।

		३१ दिसम्बर से पूर्व
चारों खण्डों का मूल्य	२५००/-	१३००/-
सिर्फ प्रथम खण्ड The Critical & Cultural Study of Satapath Brahman by Swami Satya Prakash Saraswati	७००/-	३५०/-
द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ खंड का मूल्य	१८००/-	१०००/-

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ५] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [दिसम्बर १९८८

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद और ऋषि दयानन्द

—पं० धर्मदेव मनीषी, आर्ष गुरुकुल कालवा

वेदवाणी मनुष्यमात्र के लिए है, जैसा कि यजुर्वेद २३/२ में कहा है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥

"मैं यह कल्याणी वेदवाणी मनुष्यमात्र के लिए कहता हूँ; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अपने-पराये सभी के लिए कहता हूँ।" प्रभु का बनाया सूर्य सबके लिए, चन्द्र सबके लिए, जल सबके लिए, पृथिवी सबके लिए है। तब इन पदार्थों का उपयोग बतानेवाले प्रभु का ज्ञान सबके लिए क्यों नहीं? अब्रह्मण्यम्! शान्तं पापम्! जिनके लिए नहीं भगवान् ने उन्हें कान और ज्ञान-आधान के साधन क्यों दिये? वेद विश्वजन्य हैं, कल्याणी वाक् सभी का हित करेगी, सभी का कल्याण करेगी। वेदवाणी प्रमति है, उत्तम ज्ञान की खान है। सुमति है, दुर्मति नहीं, अर्थात् वेद में मानव-समाज के उत्कर्ष के साधन वर्णित हैं; ऐसी कोई भी शिक्षा वेद में नहीं जिससे मनुष्य का पतन संभव हो। ऐसे उत्तम सुमतिदाता ज्ञान का त्याग क्यों मनुष्य ने किया? वेद है चित्र अद्भुत, इसमें ब्रह्मज्ञान है, इसमें जीव की चर्चा है, प्रकृति का बखान है; आग का विधान है तो जल का भी वर्णन है; पृथिवी का गान है तो द्यौ का भी बखान है। मनुष्योपयोगी कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं, जिसका वेद में व्याख्यान न हो। ऐसे सर्वविद्या-निधान के त्याग से ही आज मानव-समाज पीड़ित है। नहीं-नहीं, मानव ही मानव नहीं रहा। इसे पुनः मानव बनाने के लिए वेद को अपनाना होगा। यहाँ वेदों के मन्त्रों का अर्थ, भावार्थ और उनसे क्या शिक्षा प्राप्त होती है

यह महर्षि दयानन्द के शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है—

" 'ओ३म्' यह परमेश्वर का नाम है—

मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमं दधातु। विश्वेदेवास ऽ इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥ —यजुर्वेद अध्याय २, मन्त्र १३

अर्थ—मेरा (जूतिः) अत्यन्त वेग से कर्मों में व्याप्त होनेवाला (मनः) मननशील ज्ञान की प्राप्ति का साधन मन (आज्यस्य) यज्ञसामग्री का (जुषताम्) प्रीतिपूर्वक सेवन करे। (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े प्रकृति और आकाश आदि का रक्षक जगदीश्वर जिस (इमम्) प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप सुखभोग के नियम (यज्ञम्) संसार का जो यज्ञ (अरिष्टम्) नाश-रहित है, (तनोतु) उसका विस्तार करे वा (सम्+दधातु) एकता के भाव से धारण करे। हे (विश्वेदेवासः) सब विद्वानो ! (इमम्) प्रत्यक्ष जो ज्ञान-यज्ञ है (अरिष्टम्) विनाशरहित तथा (यज्ञम्) हमारे द्वारा अनुष्ठान करने योग्य है। इस प्रकार के विनाशरहित एवं हिंसा-शून्य दोनों यज्ञों का विस्तार और एकीभाव से धारण करके (इह) इस संसार में अथवा हृदय में (मादयन्ताम्) सदा आनन्दित रहो। हे (ओ३म्) ओंकार-वाच्य (बृहस्पते) ईश्वर नामक यज्ञ वा वेदविद्या ! तू (इह) इस संसार वा मेरे हृदय में (प्रतिष्ठ) प्रतिष्ठित हो एवं कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्या को स्थापित कीजिए।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है—हे मनुष्यो ! तुम्हारा मन शुभ कर्मों को ही प्राप्त हो। मैं इस संसार में जिस यज्ञ को करने के लिए आज्ञा देता हूँ उसी का अनुष्ठान करके स्वयं सुखो रहो तथा अन्यों को भी सुखी करो। 'ओ३म्' यह परमेश्वर का ही नाम है। जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है वैसे ही ईश्वर के साथ ओंकार का सम्बन्ध है। शुभ कर्म के बिना किसी की भी प्रतिष्ठा (सम्मान) नहीं हो सकती, इसलिए सब मनुष्य सब काल में अधर्म को छोड़कर व धर्म-कार्यों का ही सेवन करें, जिससे निश्चय ही अविद्या-अन्धकार की निवृत्ति होकर विद्या का सूर्य चमक उठे।"

—ऋषिभाष्य से

शिक्षा—परमेश्वर का सर्वोत्तम प्रधान और निज नाम—

१. " 'ओ३म्' यह ओंकार शब्द परमेश्वर का 'सर्वोत्तम' नाम है।"

२. "सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का 'प्रधान' और 'निज' नाम 'ओ३म्' को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं।" —सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १

३. " 'ओ३म्' यह 'मुख्य' परमेश्वर का नाम है, और जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं।" —संस्कारविधिः, वेदारम्भ संस्कार

४. "परन्तु 'ओ३म्' यह तो 'केवल' परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक है।"

—सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १

५. "जो ईश्वर का 'ओंकार' नाम है सो पिता-पुत्र के सम्बन्ध के समान है

और यह नाम ईश्वर को छोड़के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से 'ओंकार' सबसे 'उत्तम' नाम है। इसलिए इस नाम का जप, अर्थात् स्मरण और उसीका अर्थ-विचार सदा करना चाहिए, कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो, जिससे उसके हृदय में परमात्मा के प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम-भक्ति सदा बढ़ती जाय।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपासना विषय

अग्निहोत्र और सन्ध्योपासन में प्रमाण—

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतं हिमा ऋधेम॥

—अथर्ववेद काण्ड १९, सूक्त ५५, मन्त्र ३-४

अर्थ—(सायं सायम्) यह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त होके (सौमनसस्य दाता) जैसे आरोग्य और आनन्द का देनेवाला है उसी प्रकार उत्तम-से-उत्तम वस्तु का देनेवाला है, उसीसे परमेश्वर (वसुदानः) वसु अर्थात् धन का देनेवाला प्रसिद्ध है। हे परमेश्वर! इस प्रकार आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और चित्त में प्रकाशित रहिए। [इस मन्त्र में अग्निहोत्र आदि करने के लिए भौतिक अग्नि भी ग्रहण करने योग्य है।] (वयं त्वे०) हे परमेश्वर! पूर्वोक्त प्रकार से हम आपको प्रकाशित करते हुए अपने शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें। इसी भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करते हुए 'सर्व संसार को पुष्टि करके पुष्ट हों। (प्रातःप्रातर्गृह-पतिर्नो) इस मन्त्र का अर्थ पूर्वमन्त्र के तुल्य जानो। परन्तु यह विशेष है कि अग्नि-होत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हम लोग (शतं हिमाः) सौ हेमन्त ऋतु बीत जाएँ जिन वर्षों में अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त (ऋधेम) धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त होते रहें और पूर्वोक्त प्रकार से अग्निहोत्रादि कर्म करके हमारी हानि कभी न हो ऐसी इच्छा करते हैं। —पञ्चमहायज्ञविधिः

शिक्षा—सन्ध्योपासन—

"सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित से करे।"

"सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं-प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात-दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं।"

"न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान करे, जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे।"

—सत्यार्थ० समु० ३

"जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता, उसको शूद्र के समान समझकर द्विज-कुल से अलग करके, शूद्र-कुल में रख देना चाहिए। वह सेवा-कर्म किया करे और उसको विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिए। इससे मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जानकर पूर्वोक्त दो समयों में (अर्थात् प्रातः-सायं) जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें।"

—पञ्चमहायज्ञविधिः

अग्निहोत्र—"सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है।

—सत्यार्थ० समु० ३

"प्रातः और सायंकाल सन्ध्योपासन के पीछे इन पूर्वोक्त (अर्थात् नित्य अग्निहोत्र के) मन्त्रों से होम करे।"

—पञ्चमहायज्ञविधिः

"सायं-प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन करें। इसी प्रकार स्त्री-पुरुष अग्निहोत्र भी नित्य किया करें।"

—संस्कारविधिः, गृहस्थ

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य
प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥—यजु० १।२३

अर्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू (अतमेरुः) आलस्यरहित यज्ञ करनेवाला बनकर (यजमानस्य) यज्ञ करनेवाले यजमान के यज्ञानुष्ठान से (मा भेः) मत डर और इस यज्ञानुष्ठान से (मा संविक्थाः) विचलित मत हो। इस प्रकार (यज्ञम्) यज्ञ करनेवाले आपकी (अतमेरुः) सदा यज्ञ करनेवाली (प्रजा) उत्तम सन्तानवाली प्रजा (भूयात्) हो। मैं (त्वा) उस अग्नि को यज्ञ के लिए अर्थात् (त्रिताय) अग्नि, कर्म और हवि इन तीनों के लिए (द्विताय) वायु और वर्षा-जल की शुद्धि इन दोनों के लिए (एक) और एक सुख के लिए (संयौमि) स्थापित करता हूँ।

भावार्थ—ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्या-ग्रहण में डरना वा विचलित नहीं होना चाहिए। क्योंकि—तुम इन्हीं शुभ कर्मों से उत्तम सन्तान, शारीरिक, वाचिक और मानसिक स्थिर सुखों को प्राप्त कर सकते हो।

—ऋषि-भाष्य से

शिक्षा—होम के द्रव्य चार प्रकार के—

"(प्रथम सुगन्धित) कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (द्वितीय पुष्टिकारक) घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि। (तीसरे मिष्ट) शक्कर, सहत (शहद), छुहारे, दाख आदि। (चौथे रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियाँ।"

—संस्कार विधिः, सामान्य प्रकरण

होम की समिधा—"पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा, वेदी के प्रमाणे छोटी-बड़ी कटवा लेवें, परन्तु यह समिधा कीड़ी-लगी,

मलीन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों।"

—संस्कारविधिः, सामान्य प्रकरण

होम के लाभ—पूर्वोक्त सुगन्धादियुक्त चार प्रकार के द्रव्यों को अच्छी प्रकार संस्कार करके होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है। जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्ध-द्रव्य और घी इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपाके उनमें छोंक देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं क्योंकि उस सुगन्ध-द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दाल आदि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ानेवाले कर देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भाप उठता है वह भी वायु और वृष्टि-जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषय विचार कर्मकाण्ड

पितृयज्ञ में प्रमाण

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥—यजुर्वेद २।३४

अर्थ—हे पुत्रादि जनो! तुम (मे) मेरे (पितॄन्) पूर्वोक्त पितर लोगों को (ऊर्ज्जम्) प्रिय विविध रसों का (वहन्तीः) प्राप्त करानेवाले स्वादिष्ट जल, (अमृतम्) सब रोगों को हरण करनेवाले रसीले मिष्टान्न आदि (घृतम्) घी (पयः) दूध (कीलालम्) पवित्र भोजन (परिस्रुतम्) सब ओर से रस से परिपूर्ण पके हुए फलादि पदार्थों को देकर (तर्पयत) तृप्त करो। इस प्रकार उनकी सेवा से विद्याओं को प्राप्त करके (स्वधा) पर-धन का त्यागकर अपने धन से सेवा करनेवाले (स्थ) तुम सब पितर-जनों के सेवक बनो।

भावार्थ—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्य अपने सब पुत्र-आदिकों को इस प्रकार आदेश देवें कि तुम लोग मेरे पितर–जनक और विद्या देनेवाले अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक नित्य सेवा करो। जैसे उन्होंने बचपन में विद्यादान के समय में हमारी और तुम्हारी पालना की है, वैसे ही हम भी उनका सब काल में और सब प्रकार से सत्कार करें, जिससे हमारे मध्य में कभी भी विद्या का नाश और कृतघ्नता-दोष उत्पन्न न हों।

—ऋषिभाष्य से

शिक्षा—"तीसरा 'पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें देवयज्ञ जो विद्वान् ऋषि, जो पढ़ने-पढ़ानेहारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं, एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और श्रद्धा से जो कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्" जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न

किये जाएं उनका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिए है, मृतकों के लिए नहीं।"

—सत्यार्थप्रकाश समु० ४

बलिवैश्वदेव यज्ञ का प्रमाण

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेय तिष्ठते घासमग्ने।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम।

—अथर्ववेद कां० १९, सू० ५५, मं० ७

अर्थ—(अहरहर्बलि०) हे अग्ने परमेश्वर! आपकी आज्ञा से नित्यप्रति बलिवैश्वदेव कर्म करते हुए हम लोग (रायस्पोषेण समिषा) चक्रवर्तिराज्यलक्ष्मी, घृत-दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से (मदन्तः) नित्य आनन्द में रहें तथा माता-पिता-आचार्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीतिपूर्वक सेवा करते रहें।(अश्वायेव तिष्ठते घासम्) जैसे घोड़े के सामने बहुत-से खाने व पीने के पदार्थ धर दिये जाते हैं वैसे सबकी सेवा के लिए बहुत-से उत्तम-उत्तम पदार्थ देवें, जिनसे वे प्रसन्न होके हमपर नित्य प्रसन्न रहें। (मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम) हे परम गुरु अग्नि परमेश्वर! आप और आपकी आज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी प्रवेश न करें और अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचावें। किन्तु सबको अपना मित्र और अपने को सबका मित्र समझके परस्पर उपकार करते रहें।

—पञ्चमहायज्ञविधिः

शिक्षा—"चौथा बलिवैश्वदेव अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने उनमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार छोड़के घृत-मिष्ट-युक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित (अर्थात् बलिवैश्वदेव यज्ञ के) मन्त्रों से आहुति और भोग करे।

—सत्यार्थप्रकाश, समु० ४

अतिथि यज्ञ में प्रमाण

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं
व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा
ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति॥

—अथर्ववेद कां० १५, सू० ११, मं० १।२

अर्थ—"जो पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल-कपट-रहित, नित्य भ्रमण करनेवाले होते हैं उनको अतिथि कहते हैं।"

(तद्यस्यैवं विद्वान्०) जिसके घर में पूर्वोक्त गुणयुक्त विद्वान् (व्रात्यः) उत्तम गुणविशिष्ट सेवा करने के योग्य अतिथि आवे, जिसके आने-जाने की कोई भी निश्चित तिथि न हो, अकस्मात् आवे और जावे। जब ऐसा मनुष्य गृहस्थों के घर

में प्राप्त हो ।।१।। (स्वयमेनम०)तब उसको गृहस्थ अत्यन्त प्रेम से उठकर नमस्कार करके उत्तम आसन पर बैठाके पश्चात् पूछे कि आपको जल व किसी वस्तु की इच्छा हो सो कहिए। इस प्रकार उसको प्रसन्न कर और स्वस्थचित्त होके उससे पूछे (व्रात्य क्वावात्सीः) हे व्रात्य उत्तम पुरुष ! आपने यहाँ आने से पूर्व कहाँ वास किया था ?(व्रात्योदकम्) हे अतिथि ! यह जल लीजिए, (व्रात्य तर्पयन्तु) और हम लोग अपने सत्य प्रेम से आपको तृप्त करते हैं और सब हमारे इष्टमित्र लोग आपके उपदेश से विज्ञानयुक्त होके सदा प्रसन्न रहें। (व्रात्य यथा०) हे विद्वान् व्रात्य ! जिस प्रकार से आपकी कामना पूर्ण हो वैसी आपकी सेवा हम लोग करें, जिससे आप और हम लोग परस्पर सेवा और सत्संगपूर्वक विद्या-वृद्धि से सदा आनन्द में रहें।

—पञ्चमहायज्ञविधिः

शिक्षा—"अब पाँचवीं अतिथि-सेवा—अतिथि उसको कहते हैं कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो और अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सबके उपकारार्थ सर्वत्र घूमनेवाला पूर्ण विद्वान्, परमयोगी, संन्यासी, गृहस्थ के यहाँ आवे तो उसको प्रथम पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय तीन प्रकार का जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बिठलाकर खान-पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा-शुश्रूषा करके उनको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्संग कर उनसे ज्ञान-विज्ञान आदि जिनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे-ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और अपना चाल-चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रक्खे। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं।"

—सत्यार्थप्रकाश, समु० ४

मनुष्यों को सर्वविद्या के प्रकाश करनेवाले जगदीश्वर की आश्रयता, स्तुति, प्रार्थना और उपासना करके सब विद्या की सिद्धि के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ करना चाहिए, यह उपदेश निम्नलिखित मन्त्र में किया है—

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।।

—ऋग्वेद मण्डल १, सू० ८९, मं० ५

अर्थ—हे विद्वन् ! (यथा) जैसे (पूषा) पुष्टि करनेवाला परमेश्वर (नः) हम लोगों के (वेदसाम्) विद्या आदि धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (रक्षिता) रक्षा करनेवाला (स्वस्तये) सुख के लिए (अदब्धः) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा में प्राप्त न हुआ हो (पूषा) सब प्रकार की पुष्टि का दाता और (पायुः) सब प्रकार से पालना करनेवाला (असत्) होवे वैसे तू हो जैसे (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिए (तम् ईशानम्) उस सृष्टि का प्रकाश करने (जगतः) जंगम और (तस्थुषः) स्थावरमात्र जगत् के (पतिम्) पालनेहारे (धियम्) समस्त सृष्टि की विद्या के विधान करनेहारे ईश्वर को (हूमहे) आवाहन करते हैं।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि वैसा अपना व्यवहार करें कि जैसा ईश्वर के उपदेश के अनुकूल हो और जैसे ईश्वर सबका अधिपति है वैसे मनुष्यों को भी सदा उत्तम विद्या और शुभ गुणों की प्राप्ति और अच्छे पुरुषार्थ से सब पर स्वामिपन सिद्ध करना चाहिए। और जैसे ईश्वर विज्ञान से पुरुषार्थयुक्त सब सुखों को देने, संसार की उन्नति और सबकी रक्षा करनेवाला सबके सुख के लिए प्रवृत्त हो रहा है वैसे ही मनुष्यों को भी होना चाहिए। —ऋषिभाष्य से

शिक्षा—हम स्तुति, प्रार्थना और उपासना क्यों करें?

"स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव को सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।" —सत्यार्थप्रकाश समु० ७

"स्तुति अर्थात् यथार्थ वर्णन; ईश्वर की स्तुति करने से अपनी प्रीति बढ़ती है, क्योंकि ज्यों-ज्यों उसके गुण समझ में आते जाते हैं त्यों-त्यों प्रीति अधिक जमती जाती है।"

—पूना का व्याख्यान २, ईश्वर-विषयक

"(प्रार्थना करने से) अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण-ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना प्रार्थना का मूल है।"

—आर्योद्देश्यरत्नमाला

"उपासना के द्वारा आत्मा में सुख का प्रादुर्भाव होता है।"

—पूना का व्याख्यान २

पढ़ने और पढ़ानेवालों का कर्तव्य

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास ऽ आगत।
दाश्वाँसो दाशुषः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा
देवेभ्यः॥ —यजुर्वेद ७, मं० ३३

अर्थ—हे (चर्षणीधृतः) सब मनुष्यों का पोषण करनेवाले, (ओमासः) अपने सद्गुणों से रक्षा करनेवाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वानो! तुम (दाश्वांसः) उत्कृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो, अतः (दाशुषः) दानशील उत्तमपुरुष के (सुतम्) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले बालक को (आगत) प्राप्त करो, शरण लो। हे (दाशुषः) दानशील, उत्तमपुरुष के पुत्र विद्यार्थी! तू (उपयाम-गृहीतः) अध्यापन के नियमानुसार स्वीकार किया गया (असि) है, अतः (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) विद्वानों की सेवा करने के लिए आज्ञा देता हूँ, क्योंकि (ते) तेरा (एष) यह विद्या और शिक्षा को ग्रहण करना (योनिः) कारण है। इस-

लिए (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) विद्वानों से (शिक्षयामि) शिक्षा दिलाता हूँ।

भावार्थ—सब विद्वानों और विदुषियों को योग्य है कि वे सब बालक और कन्याओं को रात-दिन विद्या देवें, राजा और धनी जनों के पदार्थों से अपनी जीविका करें। राजा और धनी लोग विद्या और उत्तम शिक्षा से प्रवीण होकर अपने अध्यापक विद्वान् और विदुषियों को धन आदि पदार्थ देकर उनकी सेवा करें। माता-पिता आठ वर्ष के कुमार और कुमारियों को विद्या, ब्रह्मचर्य-सेवन और उत्तम शिक्षा के लिए विद्वानों और विदुषियों को सौंप दें। वे पढ़नेवाले विद्या-ग्रहण में मन को नित्य लगावें और अध्यापक लोग भी विद्या और उत्तम शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें। —ऋषिभाष्य से

शिक्षा—"जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य और वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् (है) जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता···धन्य है वह माता जो गर्भाधान से लेके जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।" —सत्यार्थप्रकाश समु० २

"जन्म से पाँचवें वर्ष तक बालकों को माता, छठे वर्ष से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और नौवें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य-कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने-वाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें।" —सत्यार्थप्रकाश समु० २

"विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए।"

—सत्यार्थ० समु० ३

"पाठशालाओं से एक योजन, अर्थात् चार कोस दूर ग्राम व नगर रहे।"

—सत्यार्थ० समु० ३

"सबको तुल्य वस्त्र, (तुल्य) खान-पान (और तुल्य) आसन दिये जाएँ। चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी (ही) हों, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।" —सत्यार्थ० समु० ३

"स्त्री और पुरुष, इन दोनों के विद्याभ्यास के लिए पृथक्-पृथक् आर्य विद्यालय प्रत्येक स्थान से यथासम्भव बनाए जाएँगे। स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा ही किया जावेगा और पुरुषों की पाठशाला में पुरुषों द्वारा, इससे विरुद्ध नहीं।" —मुम्बई नियम, संख्या २०

"आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपांग वेदों के शब्द-अर्थ-सम्बन्धों और क्रिया का जाननेहारा, छल-कपटरहित, अति प्रेम से सबको विद्या का दाता, परोप-

कारी, तन, मन और धन से सबको सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा, सबका हितैषी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय होवे।"

—संस्कारविधिः, उपनयन

"राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके विद्वान् कराना, जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता-पिता को दण्ड देना; अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का व लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य-कुल में रहें; जब तक समावर्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावे।"

—सत्यार्थप्रकाश समु० ३

बच्चों के साथ बहुत लाड-प्यार मत करो

मनस्तऽआप्यायतां वाक् तऽआप्यायतां प्राणस्तऽआप्यायतां
चक्षुस्तऽआप्यायताँ श्रोत्रं तऽआप्यायताम्। यत्ते क्रूरं
यदास्थितं तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनँ मा हिँसीः ॥—यजु० अ० ६, मं० १५

अर्थ—हे शिष्य! मेरी शिक्षा से (ते) तेरा (मनः) संकल्प-विकल्प-आत्मक मन (आप्यायताम्) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से उन्नत हो, (ते) तेरी (वाग्) वाणी (आप्यायताम्) बढ़े, (ते) तेरा (प्राणः) प्राण (आप्यायताम्) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से बलवान् हो, (ते) तेरी (चक्षु) चक्षु इन्द्रिय (आप्यायताम्) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से देखने में समर्थ रहे, (ते) तेरी (श्रोत्रम्) श्रोत्र इन्द्रिय (आप्यायताम्) सुनने में समर्थ रहे, और जो (ते) तेरा (क्रूरं) अपना उद्देश्य (आस्थितम्) निश्चित किया है वह (आप्यायताम्) शुभ कर्मों के अनुष्ठान से पूरा हो, इस प्रकार (ते) तेरा सब-कुछ पवि हो (अहोभ्यः) सब दिन तेरे लिए (शम्) सुख हो। [गुरुपत्नी का अपने स्वामी के प्रति शिष्य-लालनापरक वचन है—](ओषधे) विज्ञान को धारण करनेवाले एवं विज्ञान के श्रेष्ठ अध्यापक स्वामिन्! आप (एनम्) इस शिष्य की (त्रायस्व) रक्षा कीजिए किन्तु(मा-हिंसी)कुशिक्षा वा व्यर्थ लाड से इसे नष्ट न कीजिए। [गुरु अपनी पत्नी से कहता है—] हे (स्वधिते) अपने सन्तानादि का पोषण करनेवाली अध्यापिके! तू भी (एनाम्) इस शिष्या की (त्रायस्व) रक्षा कर (मा-हिंसीः) कुशिक्षा और व्यर्थ लाड से इसे नष्ट न कर।

भावार्थ—शुभ कर्मों के अनुष्ठान से सबकी उन्नति होती है; अतः सब मनुष्य गुरु की शिक्षा के अनुसार सब शुभ कर्मों का अनुष्ठान करें। गुरु लोग गुणों को ग्रहण करने के लिए ही शिष्यों को ताड़न करते हैं, इसलिए उनका यह ताड़न अभ्युदय और निःश्रेयसकारी होता है। स्त्री-पुरुष परस्पर इस प्रकार उपदेश करें—हे धर्मपत्नि! आप जैसे यह कन्या शीघ्र विदुषी हो वैसा प्रयत्न कीजिए।

—ऋषिभाष्य से

शिक्षा—"उन्हीं के सन्तान विद्वान् और सुशिक्षित होते हैं जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं···जो माता-पिता सन्तान और शिष्यों को ताड़न करते हैं, वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं, और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिलाके नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि, लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं, और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता, अध्यापक लोग ईर्ष्या और द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें। —सत्यार्थप्रकाश समु० २

अब **तीन सभाएँ** राज्य का शासन करें यह मन्त्र में उपदेश किया है—

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु।
ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः॥

—यजुर्वेद अ० ७, मं० ४५

अर्थ—हे सेना और प्रजापुरुषो! जैसे मैं सभापति (रूपेण) नेत्रों से ग्रहण करने योग्य प्रिय रूप से (वः) तुम्हारे (रूपम्) स्वरूप को (अभ्यागाम्) प्राप्त होता हूँ वैसे सर्वज्ञ परमात्मा (विश्ववेदाः) के समान (वः) तुम्हें (विभजतु) राजा न्याय से युक्त करे। और— (तुथः) ज्ञान-वृद्ध आप (स्वः) चमकते हुए सूर्य के समान (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (अन्तरिक्षम्) क्षयरहित, स्वभाव से अन्तर्यामी ईश्वर को वा ब्रह्मविज्ञान को (विपश्य) त्रिविध प्रकार से देख। और सभा में (सदस्यैः) सभा के सभ्य जनों के साथ (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग (प्रयतस्व) प्रयत्न कर। और—(चन्द्रदक्षिणाः) सुवर्ण का दान करनेवाले तुम लोग (ऋतस्य) सत्य के धर्मयुक्त मार्ग को (वि+इत) प्राप्त करो।

भावार्थ—सभापति राजा अपने पुत्रों के समान प्रजा, सेना और सभा के पुरुषों को प्रसन्न रखे और पक्षपात से रहित परमेश्वर के समान सदा न्याय करे। धार्मिक सभ्य पुरुषों की तीन सभा हों—उनमें एक राजसभा हो जिससे सब राज-कार्य सिद्ध हो तथा सब विघ्न दूर किये जाएँ। दूसरी विद्यासभा हो जिससे विद्या का प्रचार और अविद्या का नाश किया जाय। तीसरी धर्मसभा हो जिससे कि उन्नति और अधर्म-हानि सदा करें। सब अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय के मार्ग से हटकर धर्म का सेवन कर समयानुसार सत्य और असत्य के निर्णय में प्रयत्न करें। —ऋषिभाष्य से

शिक्षा—तीन प्रकार की सभा के आधीन सब राज्य-कार्य होना चाहिए—

"महाविद्वानों को विद्या-सभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्म-सभाऽधिकारी (और) प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राज-सभा के सभासद्, और उन सबमें जो

सर्वोत्तम गुण-कर्म-स्वभावयुक्त महापुरुष हो, उसको राजसभापतिरूप मानके सब प्रकार से उन्नति करें। तीन सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें, सबके हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्व-हित करने के लिए परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो-जो निज के काम हैं, उनमें स्वतन्त्र रहें। —सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ६

अथ पुरुषार्थ-प्रशंसामाह

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु
तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी।
अध प्र सू न उपयन्तु धीतयो देवा अच्छा न धीतयः॥

—ऋग्वेद मण्डल १, सू० १३९, मं १

अर्थ—हे मनुष्यो! (धीतयः) अँगुलियों के (न) समान (धीतयः) धारण करने-वाले आप (धिया) कर्म से (नः) हम (देवान्) विद्वज्जनों को (अच्छा) अच्छे प्रकार (उपयन्तु) समीप में प्राप्त होओ जिन्होंने (विवस्वति) सूर्यमण्डल में (नाभा) मध्य-भाग की आकर्षण-विद्या अर्थात् सूर्यमण्डल के प्रकाश को यन्त्रकलाओं से खींचके एकत्र उसकी उष्णता करने में (नव्यसी) अतीव नवीन उत्तम बुद्धि वा कर्म (संदायि) सम्यक् दिया उन (क्राणा) कर्म करने के हेतु (इन्द्रवायू) विजली और प्राण (ह) ही को हम लोग (सवृणीमहे) सुन्दर प्रकार से धारण करें। मैं जिस (श्रौषट्) हविष् पदार्थ को देनेवाली विद्या-वुद्धि (पुरः) पूर्ण (अग्निम्) विद्युत् और (दिव्यम्) शुद्ध प्राणी में हुए (शर्ध) बल को (आ दधें) अच्छी प्रकार धारण करूँ (यत्) जिन प्राण-विद्युत्-जन्य सुख को हम लोग (प्रवृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अध) इसके अनन्तर (तत्) वह सब सुख को (नु अस्तु) शीघ्र प्राप्त हो।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे मनुष्यो! जैसे अँगुली सब कर्मों में उपयुक्त होती है वैसे तुम लोग भी पुरुषार्थ में युक्त होओ जिससे तुममें वल वढ़े।

—ऋषिभाष्य

शिक्षा—पुरुषार्थ बड़ा या प्रारब्ध? "पुरुषार्थ प्रारब्ध से वड़ा इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध वनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब विगड़ते हैं, इसीसे प्रारब्ध की अपेक्षा 'पुरुषार्थ' वड़ा है।"

—स्वमन्तव्यामन्तव्य

चारों वर्णों में स्थिर होनेवाले मनुष्य क्या करें, यह इस मन्त्र में कहा है—

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्तः आयुः॥

—ऋग्वेद मं० १, सू० १२५, मं० ६

अर्थ—(दक्षिणावताम्) जिनके धर्म से इकट्ठे किये धन, विद्या आदि बहुत पदार्थ विद्यमान हैं उन मनुष्यों को (इमानि) ये प्रत्यक्ष (चित्रा) चित्र-विचित्र अद्भुत सुख (दक्षिणावताम्) जिनके प्रशंसित धर्म के अनुकूल धन और विद्या की दक्षिणा का दान होता उन सज्जनों को (दिवि) उत्तम प्रकाश में (सूर्यासः) सूर्य के समान तेजस्वी जन प्राप्त होते हैं (दक्षिणावन्तः),बहुत विद्यादानयुक्त पुरुष (इत्) ही (अमृतम्) मोक्ष को (भजन्ते) सेवन करते और (दक्षिणावन्तः) बहुत प्रकार का अभय देनेहारे जन (आयुः)आयु के(प्रतिरन्ते) अच्छे प्रकार पार पहुँचते अर्थात् पूरी आयु भोगते हैं।

भावार्थ—जो ब्राह्मण सब मनुष्यों के सुख के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा का दान, वा जो क्षत्रिय न्याय के अनुकूल व्यवहार से प्रजाजनों को अभय, वा जो वैश्य धर्म से इकट्ठे किये हुए धन का दान, और जो शूद्र सेवा दान करते हैं वे पूर्ण आयुवाले होकर इस जन्म और दूसरे जन्म में निरन्तर आनन्द को भोगते हैं।

—ऋषिभाष्य

शिक्षा—विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं होता। पशु-पालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है, क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञान-सम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है। इस प्रकार वर्गों को अपने-अपने अधिकारों में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्यजनों का काम है। —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास

वाणी का व्रत

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ —यजु० अ० १, मं० ५

अर्थ—हे (व्रतपते !) सत्यभाषणादि व्रतों के पालक ! (अग्ने !) सत्य धर्म के उपदेशक ईश्वर ! (अहम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा-वाला मैं जो (इदम्) इस सत्यव्रत को (अनृतात्) मिथ्या भाषण, मिथ्या आचरण, मिथ्या बात को मानने से अलग होकर(सत्यम्) जो वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों, सृष्टि-क्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार और आत्मशुद्धि के द्वारा जो भ्रांति से रहित, सबका हितकारक, तत्त्वनिष्ठ, सत्यप्रभव है और जो अच्छी प्रकार परीक्षा करके निश्चय किया जाता है, जो(व्रतम्) सत्यभाषण, सत्याचरण, सत्य मानना-रूप व्रत है, उसका (चरिष्यामि) पालन करूँगा, (तत् मे) मेरे उस व्रत का अनुष्ठान और पूरा होना आपकी कृपा से (राध्यताम्) सिद्धहो, जिसे (उपैमि) जानने, प्राप्त

करने और आचरण में लाने के लिए (शकेयम्) समर्थ होऊँ, (तत्) वह व्रत भी सब आपकी कृपा से (राध्यताम्) सिद्ध होवे।

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों के पालन करने योग्य धर्म का उपदेश करता है—जो न्याय, पक्षपात-रहित, सुपरीक्षित, सत्य लक्षणों से युक्त, सर्वहितकारी, इस लोक और परलोक के सुख का हेतु है वही धर्म सब मनुष्यों के सदा आचरण करने योग्य है; और जो इसके विरुद्ध अधर्म है उसका आचरण कभी किसी को नहीं करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिज्ञा करें—हे परमेश्वर! हम वेदों में आपसे उपदिष्ट इस सत्यधर्म का आचरण करना चाहते हैं। यह हमारी इच्छा आपकी कृपा से अच्छी प्रकार सिद्ध होवे, जिससे—हम अर्थ, काम, मोक्षरूप फलों को प्राप्त कर सकें और जिससे अधर्म को छोड़कर अनर्थ, कुकाम, बन्धरूप दुःख-फलवाले पापों को छोड़ने और छुड़ाने में समर्थ होवें। जैसे आप सत्यव्रतों के पालक होने से व्रतपति हैं वैसे ही हम भी आपकी कृपा से, अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्वव्रत के पालक बनें। इस प्रकार सदा धर्म करने के इच्छुक, शुभकर्म करनेवाले होकर सब सुखों से युक्त और सब प्राणियों को सुख देनेवाले बनें। ऐसी इच्छा सब सदा किया करें। शतपथ ब्राह्मण में इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है—मनुष्यों का दो प्रकार का ही आचरण है: एक सत्य और दूसरा अनृत। जो वाणी, मन और शरीर से सत्य का ही आचरण करते हैं वे देव कहलाते हैं और जो मिथ्याचरण करते हैं वे मनुष्य अर्थात् असुर एवं राक्षस हैं।

—ऋषिभाष्य से

शिक्षा—इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य लोग ईश्वर के सहाय की इच्छा करें, क्योंकि उसके सहाय के बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उसका अनुष्ठान पूरा कभी नहीं हो सकता। हे प्रभो (व्रतम्) मैं जिस व्रत का अनुष्ठान किया चाहता हूँ उसकी सिद्धि आपकी कृपा से ही हो सकती है। इसी मन्त्र का अर्थ शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है कि—जो मनुष्य सत्य के आचरणरूप व्रत को करते हैं वे देव कहाते हैं और जो असत्य का आचरण करते हैं उनको मनुष्य कहते हैं। इससे मैं इस सत्य-व्रत का आचरण किया चाहता हूँ। (तच्छकेयम्) मुझपर आप ऐसी कृपा कीजिए कि जिससे मैं सत्यधर्म का अनुष्ठान पूरा कर सकूँ, (तन्मे राध्यताम्) उस अनुष्ठान की सिद्धि करनेवाले एक आप ही हो, सो कृपा से सत्यरूप धर्म के अनुष्ठान को सदा के लिए सिद्ध कीजिए। (इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि) सो यह व्रत है कि जिसको मैं निश्चय से चाहता हूँ उन सब असत्य कामों से छूटके सत्य के आचरण करने में सदा दृढ़ रहूँ। परन्तु मनुष्य को यह करना उचित है कि ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रखा है, उतना पुरुषार्थ अवश्य करें। उसके उपरान्त ईश्वर के सहाय की इच्छा करनी चाहिए, क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का यही ईश्वर का प्रयोजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिए। जैसे कोई मनुष्य आँखवाले पुरुष को ही किसी चीज को दिखला सकता है, अन्धे को

नहीं, इसी रीति से जो मनुष्य सत्यभाव, पुरुषार्थ से धर्म को किया चाहता है उस-पर ईश्वर भी कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्योंकि, ईश्वर ने धर्म को करने के लिए बुद्धि आदि बढ़ने के साधन जीव के साथ रक्खे हैं। जब जीव उनसे पूर्ण पुरुषार्थ करता है, तब परमेश्वर भी अपने सब सामर्थ्य से उसपर कृपा करता है, अन्य पर नहीं, क्योंकि सब जीव कर्म करने में स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी हैं।" —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोक्तधर्म विषयः

महर्षि दयानन्द ने आर्याभिविनय में इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है—

"हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वराग्ने! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा। इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत=अनित्य देहादि पदार्थों से, इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार=विनाश नहीं होता, उस विद्यादिलक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरण तथा आपकी भक्ति से युक्त धर्मात्मा होऊँ।" —आर्याभिविनय, प्रकाश २, मन्त्र ४७

दीर्घायु

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो ऽ अस्तु त्र्यायुषम्॥ —यजु० ३।६२

अर्थ—हे (रुद्र) जगदीश्वर! आपकी कृपा से (यत्) जैसी और जितनी (देवेषु) विद्वानों में (त्र्यायुषम्) बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य ये सुख देनेवाली तीन अवस्थाएँ हैं और (जमदग्नेः) जगत् के द्रष्टा एवं ज्ञाता (त्र्यायुषम्) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीन गुणों से युक्त सुखप्रद आयु (कश्यपस्य) आप आदित्य ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त (त्र्यायुषम्) विद्या, शिक्षा और परोपकार इन तीन गुणों से युक्त जो आयु है (तत्) वैसी और उतनी ही (त्र्यायुषम्) पूर्वोक्त तीन गुणोंवाली आयु (नः) हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—यहाँ चक्षु आदि इन्द्रियों का कश्यप=ईश्वर सर्वश्रेष्ठ रचयिता है, ऐसा समझे। यहाँ 'त्र्यायुषम्' पद की चार बार आवृत्ति होने से यह अभिप्राय है कि तिगुने से भी अधिक चौगुनी आयु का ग्रहण करें तथा इसकी प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ भी करें। जैसे—हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या, परोपकार और धर्मानुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीन सौ वर्षों तक भोगते हैं, वैसे ही तीन प्रकार के दुःखों से रहित, शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण और प्राण-सम्बन्धी सुखों से युक्त, विद्या और-विज्ञान सहित आयु को प्राप्त करके हम लोग तीन सौ वा चार सौ वर्ष तक आयु को सुख से भोगें। —ऋषिभाष्य से

शिक्षा—महर्षि ने इस मन्त्रांश पर सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास में प्रश्नोत्तर रूप से इस प्रकार प्रकाश डाला है—

"**प्रश्न**—कालाग्निरुद्रोपनिषद् में भस्म लगाने का विधान लिखा है। वह क्या झूठा है? और "त्र्यायुषं जमदग्नेः" यजुर्वेद-वचन इत्यादि वेद-मन्त्रों से भी भस्म-धारण का विधान और पुराणों में रुद्र की आँख के अश्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है, इसीलिए उसके धारण में पुण्य लिखा है; एक भी रुद्राक्ष धारण करे तो सब पापों से छूट स्वर्ग को जाए। यमराज और नरक का डर न रहे।

उत्तर—कालाग्निरुद्रोपनिषद् किसी रखोड़िया अर्थात राख धारण करनेवाले ने बनाई है, क्योंकि "यस्य प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः" इत्यादि वचन उसमें अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रेखा है वह भूलोक वा इसका वाचक कैसे हो सकती हैं? और जो "त्र्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि मन्त्र हैं वे भस्म वा त्रिपुण्ड्रधारण के वाची नहीं किन्तु "चक्षुर्वै जमदग्निः" (शतपथ)। हे परमेश्वर! मेरे नेत्र की ज्योति (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष पर्यन्त रहे और मैं भी ऐसे धर्म के काम करूँ कि जिससे दृष्टि नाश न हो। भला यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है कि आँख के अश्रुपात से वृक्ष उत्पन्न हो सकता है? क्या परमेश्वर के सृष्टिक्रम को कोई अन्यथा कर सकता है? जैसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है उसी से वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है, वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं। उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह इन बातों का विश्वास न करके अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष-भस्म-धारण से यमराज के दूत डरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे। जब रुद्राक्ष-भस्म धारण करनेवालों से कुत्ते, सिंह, सर्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे?"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेद-संज्ञा-विचार में प्रश्नोत्तर-पूर्वक इस प्रकार की है—

प्रश्न—जैसे ऐतरेय आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों में याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी और जनक आदि के इतिहास लिखे हैं वैसे ही 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इत्यादि वेदों में भी पाए जाते हैं। इससे मन्त्र और ब्राह्मणभाग ये दोनों बराबर होते हैं, फिर ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेदों में क्यों नहीं मानते हो?

उत्तर—ऐसा भ्रम मत करो क्योकि जमदग्नि और कश्यप ये नाम देहधारी मनुष्यों के नहीं हैं। इसका प्रमाण शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि चक्षु का नाम जमदग्नि और प्राण का कश्यप हैं; इस कारण से यहाँ प्राण से अन्तःकरण और आँख से सब इन्द्रियों का ग्रहण करना चाहिए अर्थात् जिनसे जगत् के सब जीव बाहर और भीतर देखते हैं (त्र्यायुषं ज०) सो इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए कि हे जगदीश्वर, आपके अनुग्रह से हमारे प्राण आदि अन्तःकरण और आँख आदि सब

इन्द्रियों की (३००) तीन सौ वर्ष तक उमर बनी रहे। (यद्देवेषु) सो विद्वानों के बीच में विद्यादि शुभ गुण और आनन्दयुक्त उमर होती है (तन्नो अस्तु) वैसी ही हम लोगों की भी हो, तथा (त्र्यायुषं जमदग्नेः०) इत्यादि उपदेश से यह भी जाना जाता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण-चतुर्गुण आयु कर सकता है अर्थात् (४००) चार सौ वर्ष तक भी सुखपूर्वक जी सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदों में सत्य अर्थ के वाचक शब्दों से सत्य विद्याओं का प्रकाश किया है, लौकिक इतिहासों का नहीं। इससे जो सायणाचार्यादि लोगों ने अपनी-अपनी बनाई टीकाओं में वेदों में जहाँ-तहाँ इतिहास वर्णन किये हैं, वे सब मिथ्या हैं।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद-संज्ञा-विचार

आदर्श राजा

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभापति बनावें—

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ —यजुर्वेद अध्याय ७, मन्त्र २३

अर्थ—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का इच्छुक मैं (यज्ञस्य) अग्निहोत्र से लेकर राज्यपालन-पर्यन्त यज्ञ की (आयुषे) उन्नति के लिए एवं (मित्रावरुणाभ्याम्) सबका मित्र और श्रेष्ठ पुरुष बनने के लिए (देवाव्यम्) देवों के रक्षक (त्वाम्) तुझ सेनापति को वा पूर्ण विद्या के उपदेशक विद्वान् को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ। हे सेनापते विद्वन् ! (यज्ञस्य) सत्संगति की (आयुषे) उन्नति के लिए एवं (इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् होने के लिए (त्वा) तुझ (देवाव्यम्) देवों के रक्षक विद्वान् को (गृह्णामि) मैं ग्रहण करता हूँ। हे शस्त्र-अस्त्र विद्या को जाननेवाले विद्वन् ! (यज्ञस्य) शिल्पविद्या के कार्यों को सिद्ध करनेवाले यज्ञ की (आयुषे) उन्नति के लिए एवं (इन्द्राग्निभ्याम्) विद्युत्-विद्या और प्रसिद्ध अग्निविद्या को जानने के लिए (त्वा) तुझ (देवाव्यम्) दिव्य विद्या से युक्त विद्वान् को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ और (यज्ञस्य) योगविद्या के प्रापक विद्वानों को (गृह्णामि) अंगीकार करता हूँ। हे विद्वन् ! (यज्ञस्य) ज्ञानमय यज्ञ की (आयुषे) वृद्धि के लिए एवं (इन्द्राविष्णुभ्याम्) ईश्वर और वेदज्ञान की प्राप्ति के लिए (त्वा) तुझ (देवाव्यम्) ब्रह्मवेत्ता को तृप्त करनेवाले को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ—प्रजा के लोग सब शास्त्रों के प्रचार के लिए सब विद्याओं में कुशल, अत्यन्त ब्रह्मचर्य आदि कर्मों के अनुष्ठान करनेवाले पुरुष को सभाध्यक्ष बनावें, और वे प्रीतिपूर्वक सब शास्त्रों का प्रचार करें।

शिक्षा—"राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों

वेदों की कर्मोपासना-ज्ञान विद्याओं के जाननेवालों से तीनों विद्या—सनातन दण्ड-नीति, न्याय-विद्या, आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभावरूप को यथावत् जानने-रूप ब्रह्म-विद्या, और लोक से वार्ताओं का आरम्भ [कहना और पूछना] सीखकर सभासद् वा सभापति हो सकें। सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतके अर्थात् वश में रखके सदा धर्म में वर्तें, और अधर्म से हटे-हटाए रहें। इसलिए रात-दिन नियत समय योगाभ्यास भी करते रहें, क्योंकि अजितेन्द्रिय अपनी इन्द्रियों को जीते विना बाहर की प्रजा को वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।''
—सत्यार्थप्रकाश, षष्ठ समुल्लास

''वही राजा उत्तम होता है, जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान्, सुशिक्षित, सुशील, जितेन्द्रिय होकर राज्य का विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करता और आचार्य हो सकता है जो यथावत् ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ता है।'' —संस्कारविधिः, वेदारम्भप्रकरणम्

''ईश्वर के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं होता, और पूर्ण विद्वत्ता के विना आत्मा और परमात्मा का बोध किस प्रकार हो सकता, और इस बोध के विना सत्पुरुष के समान कोई प्रजा का पालन नहीं कर सकता, अतः योगविद्या का सब सेवन करें।''
—यजुर्वेद, सप्तम अध्याय, मन्त्र २८

''ईश्वर के आश्रय के विना कोई भी पुरुष प्रजा का पालन नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सत्य न्याय के आश्रय से सब प्राणियों को सुख देता है वैसे ही राजा भी सब प्रजा को तृप्त करे।''
—यजुर्वेद, ७।३९ मन्त्र-भावार्थ

''ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिए ब्रह्मचर्य आदि विद्या से पारंगत विद्वानों को तथा उनके मध्य में श्रेष्ठ, सूर्य आदि गुणों से सम्पन्न राजा को स्वीकार करके सत्य नीति को बढ़ावें।'' —यजुर्वेद ९।२६ मन्त्र-भावार्थ

''महाविद्वानों को विद्या-सभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्म-सभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सबमें सर्वोत्तम गुण-कर्म के स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो, उसको राजसभा का प्रतिरूप मानके सब प्रकार से उन्नति करें।''
—सत्यार्थप्रकाश, षष्ठ समुल्लास

संस्कृत में एक उक्ति है—''यथा राजा तथा प्रजा''—जैसा राजा वैसी प्रजा। इसका तात्पर्य है कि प्रजावर्ग राजवर्ग का अनुगामी होता है। यदि राजा तथा राजवर्ग ब्रह्मचारी, सदाचारी, तपस्वी हैं तो प्रजा में ब्रह्मचर्य, तप, सदाचार का प्रचार तथा प्रसार मिलेगा।

भजन

दयानन्द देव वेदों का, उजाला लेके आए थे।
करों में ओ३म् की पावन, पताका लेके आए थे ।।

न थे धन-धाम मठ-मन्दिर, न सँग चेली न चेला थे।
हृदय में वे अटल विश्वास, प्रभु का लेके आए थे ।।१।।

गौ विधवा दलित दुखिया, अनाथों दीन जन के हित।
नयन में अश्रुकण, मानस में करुणा लेके आए थे ।।२।।

अविद्या सिन्धु से अगणित, जनों के पार करने को।
परम सुखदायिनी सत्-ज्ञान, नौका लेके आए थे ।।३।।

कोई माने न माने सच, तो यह ऋषिराज ही पहले।
स्वराज्य स्थापना का मन्त्र सच्चा लेके आए थे ।।४।।

पिलाया जहर का प्याला, उन्हीं नादान लोगों ने।
कि वे जिनके लिए अमृत का प्याला लेके आए थे ।।५।।

प्रकाशादर्श शिक्षा का पुनः विस्तार करने को।
वही प्राचीन गुरुकुल का सँदेशा लेके आये थे ।।६।।

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	१००.००
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित २५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४.००
आर्यसमाज विषयक
साहित्य परिचय २५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(सम्पादित) ग्यारह खण्ड ६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in Ancient India
Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India
Two Volumes 600.00
Critical Study of Brahmagupta and His works 350.00
Geomatry in Ancient India 350.00
God and His Divine Love 5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली
चार खण्ड २४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००
सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा ५०.००
मैं ब्रह्म हूँ ४.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा ६.००
ईशोपनिषद् ४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की
साधना व संघर्ष ६.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप ५.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	४.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००

घर का वैद्य
लेखक : सुनील शर्मा

प्याज	३.५०
लहसुन	३.५०
गन्ना	३.५०
नीम	३.५०
सिरस	३.५०
तुलसी	३.५०
आँवला	३.५०
नींबू	३.५०
पीपल	३.५०
आक	३.५०
गाजर	३.५०
मूली	३.५०
अदरक	३.५०
हल्दी	३.५०
बरगद	३.५०
दूध-घी	३.५०
दही-मट्ठा	३.५०
हींग	३.५०
नमक	३.५०
बेल	३.५०
अनाज	३.५०
साग सब्जी	३.५०
फिटकरी	३.५०
शहद	३.५०
	३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	२.५०
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	०.७५
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	२.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	२.५०
नैतिक शिक्षा	सप्तम	२.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम	२.५०
नैतिक शिक्षा	नवम	३.००
नैतिक शिक्षा	दशम	३.००

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महावली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	५.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	५.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों ,,)	६.००
कीर्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणोंकी कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रंथों ,,)	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली	८.००
राजा-रानी की कहानी	८.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

हास्य-व्यंग्य

हँसो हँसाओ	५.००
हास परिहास	५.००

विविध लेखक

भक्त बालक	६.००
पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हम सब राम-रहीम के बेटे	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००
सफलता की राह	५.००
उन्नति की राह	५.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें	६.००
अवसर को पहचानो	६.००
अपने आपको पहचानिये	६.००
आप सफल कैसे हों	६.००
उन्नति कैसे करें	६.००
धन कुबेर कैसे बनें	६.००

स्वास्थ्य और योग

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

डॉ० जायसवाल

कैंसर : कारण निवारण	१०.००

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	१०.००
सौ वर्ष कैसे जियें	१०.००
आहार चिकित्सा	१०.००

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डाक्टर (होम्योपैथी)	१२.००
मानसिक रोग कारण निवारण	१०.००

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग एक वरदान	१०.००

श्यामजी गोकुल वर्मा

योग-साधना और प्राणायाम	१०.००

महिला-उपयोगी

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक कला	६.००
आधुनिक मिष्ठान्न कला	६.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	६.००
अचार मुरब्बे चटनी	६.००

जीवनियाँ

इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	१०.००

सन्तराय वत्स्य

स्वामी विवेकानन्द	१०.००
स्वामी रामतीर्थ	१०.००
रामकृष्ण परमहंस	१०.००

तकनीकी

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	१२.००
ट्रांजिस्टर गाइड	१२.००
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	१०.००
टेलिविजन गाइड	१०.००

विविध

अमृत वाणी		१०.००
महाभारत		६.००
रामायण		६.००
पंचतन्त्र		६.००
हितोपदेश		६.००
चाणक्य नीति	संस्कृत-हिन्दी	१०.००
भर्तृहरिशतकम्	,,	१५.००
विक्रम बेताल	हिन्दी	६.००
सिंहासन बत्तीसी		६.००
एशियाई खेल		१२.००
जूडो आत्मरक्षा के लिए		१०.००
जूडो कुंग्फू कराटे		६.००
सफल व्यापारी कैसे बनें		१०.००

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

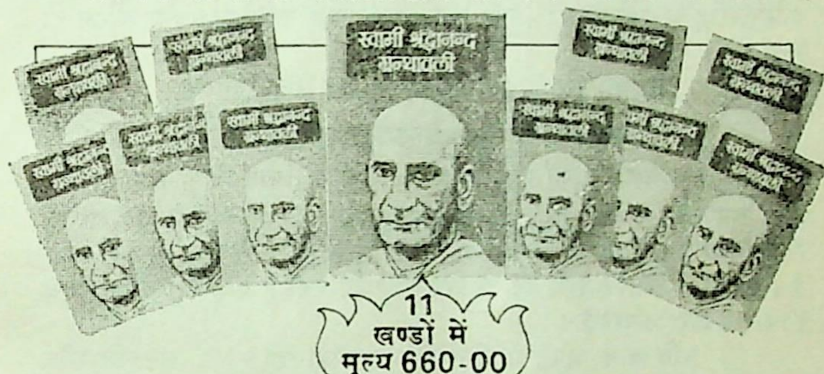
अपने पराये		४.००
अकेली		४.००
चन्द्रनाथ		४.००
अनुराधा		४.००
परिणीता		४.००
बिन्दु का बेटा		४.००
बैकुण्ठ का दानपत्र		४.००
बड़ी दीदी		४.००
बिराज बहू		४.००
ब्राह्मण की बेटी		४.००
पंडित मोशाय		४.००
मँझली दीदी		४.००
देवदास		६.००
नया विधान		६.००
देहाती समाज		६.००
शुभदा		४.००
श्रीकान्त	(दो भाग)	३०.००
विप्रदास		१०.००
देना पावना		१५.००
गृहदाह		१५.००

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

23 दिसम्बर 1987

राष्ट्रभक्त स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
पर प्रकाशित।

इसमें संकलित हैं उनके समस्त ग्रन्थ, प्रमुख भाषण,
आत्मकथा तथा नवलिखित सचित्र जीवन चरित।



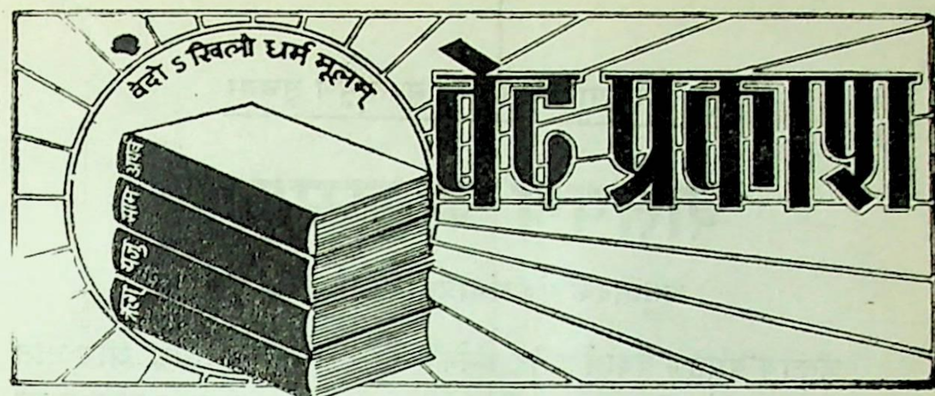
11
खण्डों में
मूल्य 660-00

हर राष्ट्र-भक्त के लिए संग्रहणीय

- मैकाले की दूषित शिक्षाप्रणाली के स्थान पर प्राचीन ऋषि अनुमोदित शिक्षा प्रणाली के समर्थक **स्वामी श्रद्धानन्द** शिक्षा के क्षेत्र में अनन्य प्रयोगी तथा टैगोर की समकक्षता में शिक्षा शास्त्री थे। उन्होंने राष्ट्रीय महत्व के गुरुकल कांगडी की स्थापना की।
- अंग्रेजों की संगीनों के सामने छाती खोलकर खड़ा होने वाला **वीर राष्ट्र-भक्त संन्यासी श्रद्धानन्द** का एक तेजस्वी रूप था। कर्मवीर गांधी को महात्मा गांधी बनाने वाला व्यक्ति देशभक्त **स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- दिसम्बर 1919 में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष **स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- 1883 से 1926 बलिदान होते समय तक **श्रद्धानन्द** का इतिहास आर्य समाज का राष्ट्र का इतिहास है।
- अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, शुद्धि आन्दोलन, धार्मिक, सामाजिक एव राजनीतिक कार्यों में रत रहते हुए **स्वामी श्रद्धानन्द** भारतीय एवं विदेशी नेताओं शिक्षा-शास्त्रियों और जन-मानस के हृदय-सम्राट् बन गए।

गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



समर्पण कर दे, दर्शन होंगे

अर्दर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥

सामवेद ४७

पदार्थः—(गातुवित्तमः) योगभूमि को उत्तम प्रकार से जाननेवाले लोग (यस्मिन्) जिस परमात्मा में (व्रतानि) कर्मों को (आ, दधुः) अर्पण करते हैं, वह (अर्दर्शि) साक्षात् हो जाता है, उस (सुजातम्) साक्षात् हुए (आर्यस्य) उपासक की (वर्धनम्) उन्नति करनेवाले (अग्निम्) परमात्मा को (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियाँ (उप, उ, नक्षन्तु) उपस्थित हों ।

भावार्थः—जो योगभूमि के उत्तम ज्ञाता लोग उस परमात्मा को ही समस्त शुभ कर्मों का अर्पण कर देते हैं और निष्काम भजन करते हैं, वह दयालु उनके हृदय-कमलों में प्रकट होता है अर्थात् साक्षात् अनुभव में आता है, तथा उन आर्यों की वृद्धि-उन्नति करता है। इसलिए उस साक्षात् हुए जगत्-पिता को हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों।

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

एक अति आवश्यक और महत्वपूर्ण सूचना

शतपथ ब्राह्मण

अनुवादक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथ ब्राह्मण वेदार्थ और कर्मकाण्ड का अत्यन्त प्रसिद्ध और अति प्राचीन ग्रन्थ है। इसकी रचना महर्षि याज्ञवल्क्य और शाण्डिल्य मुनि ने की है। मूल ग्रन्थ में १४ काण्ड हैं, १०० अध्याय और ७६२५ कण्डिकायें हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम काण्ड बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से विख्यात है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे लिए गौरव की बात है। इसके स्वाध्याय और संग्रह करने वाले भी अपने को गौरवान्वित समझेंगे।

इसके चार खण्ड हैं। पहले खण्ड में शतपथ ब्राह्मण का सांस्कृतिक तथा समीक्षात्मक अध्ययन है। इसे श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती ने अंग्रेजी में लिखा है—A Critical and "Cultural Study of Sathpath Brahman".

दूसरे, तीसरे, चौथे खण्ड में बायें पृष्ठ पर मूल पाठ है। इसे एल्बर्ट वेबर द्वारा सम्पादित, १८४९ में जर्मनी से प्रकाशित फोटो प्रोसेस द्वारा स्वर सहित प्रकाशित किया गया है। दायें पृष्ठ पर हिन्दी अनुवाद है श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत।

रियायती मूल्य पर खरीदने की तारीख बढ़ा दी गई है

		३१ जनवरी से पूर्व
चारों खण्डों का मूल्य	२५००/-	१३००/-
सिर्फ प्रथम खण्ड The Critical & Cultural Study of Satapath Brahman by Swami Satya Prakash Saraswati	७००/-	३५०/-
द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ खंड का मूल्य	१८००/-	१०००/-

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ६]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [जनवरी १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वैदिक यज्ञों का स्वरूप

(पशुबलि के विशेष सन्दर्भ में)

लेखक—**डॉ० कृष्ण लाल**
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आधुनिक विद्वान् प्रायः वैदिक शब्द का अभिप्राय "सूत्र-पर्यन्त समस्त वैदिक वाङ्मय से सम्बद्ध" मानते हैं और तदनुसार जब वे किसी वैदिक विषय पर विचार करते हैं तो उनकी दृष्टि में यह समस्त वाङ्मय होता है। परन्तु 'वैदिक' का सीधा अर्थ 'वेद-सम्बन्धी' है और वेद केवल मन्त्रात्मक शब्द-राशि का नाम है। ब्राह्मण, आरण्यक आदि वाङ्मय उसकी व्याख्या हैं। इस कारण प्रस्तुत निबन्ध में 'वैदिक' के इसी अर्थ को दृष्टि में रखकर केवल ऋग्वेद (शाकल), वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता (शुक्ल यजुर्वेद), सामवेद (राणायणीय) और अथर्ववेद (शौनक) के आधार पर विषय का विवेचन किया गया है।

इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि यज्ञ से वेद को अलग नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही यज्ञ का उल्लेख है। इन संहिताओं में न केवल यज्ञ के चार प्रमुख पुरोहितों—होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का उल्लेख हुआ है, अपितु पोता, प्रशास्ता, नेष्टा और अग्निध् (आग्नीध्र) जैसे गौण ऋत्विजों का भी वर्णन प्राप्त होता है।[1]

ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध मन्त्र में प्रमुख पुरोहितों के कार्यों का उल्लेख इस प्रकार

---

१. ऋ० २.५.१ (होता), २ (पोता), ४ (प्रशास्ता), ५ (नेष्टा), ६ (अध्वर्यु), ४.९.४ (ब्रह्मा), २.४.२(उद्गाता), २.१.२ (अग्नित्), २.३६.४(आग्नीध्र)

हुआ है कि एक ऋचाओं का उच्चारण कर उनकी पुष्टि करता है (होता), एक शक्वरी में गेय (ऋचाओं) का गायन करता है (उद्‌गाता), एक ब्रह्मा प्रत्येक यज्ञ-विधि-सम्बन्धी विद्या को बताता है और एक यज्ञ के परिमाण को मापता है (अध्वर्यु) अर्थात् यज्ञोपकरणों आदि के फैलाव और यज्ञ-वेदि के आकार-प्रकार को बनाता है।[1]

यज्ञ में जिन तीन प्रमुख अग्नियों का स्थापन किया जाता है उनका उल्लेख भी वेदों में हुआ है। उदाहरणार्थ अथर्ववेद में एक स्थल पर एक साथ गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण अग्नियों का उल्लेख हुआ है।[2] वा० सं० (२।६) में जुहू, उपभृत् और ध्रुवा नामक तीन स्रुचों (कड़छियों) के नाम आते हैं।[3] अथर्ववेद में भूमि की महिमा बताते हुए भी उसका सम्बन्ध यज्ञानुष्ठान से जोड़ा गया है और कहा है कि यह वह भूमि है जिसपर यज्ञ-सम्बन्धी सदोमण्डप अर्थात् सभामण्डप, हविर्धानमण्डप अर्थात् आहुतिद्रव्य रखने का कक्ष और यूप अर्थात् यज्ञस्तम्भ बनाये जाते हैं।[4] इसके अतिरिक्त यजुर्वेद (८।१५-३०) में आसन्दी, उत्तरवेदि, प्रयाज-अनुयाज, पुरोडाश, याज्या, अवभृथ, पत्नी संयाज, दीक्षा, दक्षिणा इत्यादि यज्ञीय पदार्थों और क्रियाओं का उल्लेख हुआ है। अथर्व० (११।७।६-१९) में महाव्रत, राजसूय, अग्निष्टोम, अश्वमेध, अग्न्याधेय, सत्र, अग्निहोत्र, एकरात्र, द्विरात्र, सद्यःक्री, प्रक्री, उक्थ्य, चतुरात्र, पञ्चरात्र, षड्रात्र, षोडशी, सप्तरात्र, विश्वजित्, अभिजित्, साह्न, त्रिरात्र, द्वादशाह, चतुर्होतारः, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, इष्टियाँ यज्ञों के नाम आये हैं। इतना ही नहीं, एक स्थल पर अतिथि-यज्ञ की तुलना अग्निष्टोम की विभिन्न क्रियाओं से करके उसका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। तदनुसार अतिथि के लिए जो जल ले-जाया जाता है, वह वही है जिसे यज्ञ में लाकर रखा जाता है। जो अतिथि की तृप्तिहेतु पदार्थ लाये जाते हैं वे यज्ञ में अग्निषोम को उद्दिष्ट कर बाँधे जानेवाले पशु ही हैं। जो अतिथि के रहने का स्थान बनाते हैं, वह यज्ञ का सदोमण्डप और हविर्द्रव्य का स्थान ही है। जो चादर और ओढ़ने का वस्त्र लाते हैं वे वेदि की परिधियाँ ही हैं। जो काजल और अंगलेप लाते हैं, वे आज्य अर्थात् घी ही हैं। भोजन परोसने से पहले जो पदार्थ खाने को लाते हैं, वे दो

---

१. ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः॥
—ऋ० १०।७१।११

२. तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन्। —अथर्व० १५।६।१४-१५ (द्र० अथर्व० ८।१०)

३. घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना। घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना। घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना।

४. यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते। —अथर्व० १२।१।३८

पुरोडाश ही हैं। जो भोजन बनानेवाले को बुलाते हैं, वे मानो हवि बनानेवाले को बुलाते हैं। भोज्य-सामग्री में जो जौ और धान बर्ते जाते हैं वे सोम के टुकड़े हैं।[१] अथर्व० ७।७९।३ में दर्श और ७।८०।२ में पूर्णमास का उल्लेख है।

वेदमन्त्रों में यज्ञ-नामों, यज्ञीय पदार्थों तथा यज्ञीय क्रियाओं के उल्लेख के आधार पर उनमें ब्राह्मणों तथा कल्पसूत्रों में वर्णित परवर्ती यज्ञों की जटिलताओं एवं सूक्ष्मताओं तथा विस्तार की आशा करना निष्फल होगा। वेदमन्त्रों का उद्देश्य पूर्ण जटिल यज्ञ-प्रक्रिया बताना नहीं है। परवर्ती काल में—ब्राह्मणग्रन्थों, श्रौतसूत्रों, गृह्यसूत्रों में न केवल आवश्यकतानुसार वेदमन्त्रों का सार्थक अथवा अर्थ-निरपेक्ष, ध्वनिसाम्यगत विनियोग किया गया, अपितु नये मन्त्र भी घड़े गये।[२] ध्वनिसाम्यगत मन्त्र-विनियोग का उदाहरण वह निम्नलिखित मन्त्र है, जिसका उच्चारण दही खाने के प्रसंग में करने का विधान है—

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत्॥

यद्यपि मन्त्रगत दधिक्रावा शब्द अश्व का वाचक है, परन्तु इसके आद्य दो अक्षरों 'दधि' के साम्य के आधार पर इसका विनियोग प्रस्तुत प्रसंग में कर दिया गया।[3] वस्तुतः ऐसे विनियोगों के मूल में याज्ञिक पुरोहितों का अज्ञान है जिन्हें मन्त्रार्थ से कोई प्रयोजन नहीं था।[४]

वेदमन्त्र सामान्यतया यज्ञ की समान, व्यापक धारणा की अभिव्यक्ति करते हैं। वह यज्ञ पार्थिव भी है अर्थात् सामान्य मनुष्यों द्वारा भी किया जाता है। सुख का इच्छुक सामान्य मनुष्य अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञ में आहुतियाँ अर्पित करता है। वह यज्ञ साथ-ही-साथ दिव्य भी है, क्योंकि दिव्य जन अथवा विद्वान् भी अथवा

---

१. या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः। यत्तर्पणमाहरन्ति य एवाग्निषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः। यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति। यत्कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते। यदाञ्जनाभ्यंजनमाहरन्त्याज्यमेव तत्। यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ। यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद् ह्वयन्ति। ये व्रीहयो यवा निरूप्यन्तेंऽशव एव ते।
—अथर्व० ९।६।५-१४

२. इस विषय में विद्वानों का यह अभिमत भी है कि ऐसे मन्त्र किन्हीं लुप्त संहिताओं के हो सकते हैं।
—द्र० लेखक का 'गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग' (भूमिका)

३. विस्तृत विवेचनार्थ देखें लेखक का 'गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग' पृ० १५६-५८

४. द्र० वही, पृ० २६

प्राकृतिक शक्तियाँ भी यज्ञ के चिह्न-भूत अग्नि का समिन्धन करते हैं।[1] ज्ञान के प्रकाश और भौतिक इच्छाओंवाले सभास्थल पर सम्पन्न यज्ञ में जहाँ दिव्य गुणों के इच्छुक नेतृत्व-गुणयुक्त मनुष्य आनन्दित होते हैं, जहाँ इन्द्र अर्थात् सबके स्वामी परमेश्वर को जीवन का उत्तम रस अर्पित किया जाता है वहाँ मनुष्य आनन्द को सर्वप्रथम प्राप्त हों और गति को प्राप्त करें।[2] इस प्रकार यज्ञ भौतिक द्रव्यों के समर्पण और दिव्य अर्थात् प्रकाशमय ज्ञान की प्राप्ति का प्रतीक है।

वैदिक यज्ञ मूल रूप में आध्यात्मिक—भावनात्मक अथवा सृष्टि-सम्बन्धी यज्ञ है। इसीलिए पुरुषसूक्त में यज्ञ के द्वारा यज्ञ का, यजन करने का उल्लेख है। वहाँ सृष्टि का वर्णन है। सृष्टि के आरम्भ में सब प्राकृतिक शक्तियों ने परमदेव की पूजा, विभिन्न पदार्थों के संगतिकरण द्वारा उन पदार्थों को देकर सृष्टि-निर्माणरूपी यज्ञ में सहयोग किया।[3] ये तीन कार्य ही प्राथमिक धर्म अर्थात् धारक तत्त्व थे। इसी की व्याख्या यास्क ने 'अग्निनाग्निमयजन्त' कहकर दी है। दुर्गाचार्य के अनुसार देवों अर्थात् ईश्वर की दिव्य शक्तियों ने (जो आगे चलकर देव बनीं), ज्ञान और कर्म का समुच्चय करनेवाले पूर्ववर्ती 'यजमान' बने हुए, विश्वस्रष्टाओं और प्राणों ने स्थावर-जंगम संसार के रूप में प्रकट हवि बने हुए अग्नि के द्वारा आदित्य के रूप में सब देवों के प्रतिनिधि महान् आत्मा का यजन किया अर्थात् उससे संगति की।[4] यहाँ देव सूर्य की किरणें भी मानी गई हैं—उन्होंने अग्नि अर्थात् सूर्य-तेज के द्वारा अग्नि अर्थात् भौतिक (पार्थिव) अग्नि का यजन किया अर्थात् उसे बढ़ाया।[5]

यह यज्ञ सृष्टियज्ञ के साथ-साथ आध्यात्मिक भी है। प्रजापति के प्राणरूप देवों

---

१. सजोषा त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे॥ —ऋ० ६।२।३

२. यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरा यत्र देवयवो मदन्ति।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च॥ —ऋ० ७।९७।१

३. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
—ऋ० १०।९०।१६, वा० सं० ३१।१६

विस्तृत विविध-व्याख्याओं के लिए द्र० 'पुरुषसूक्त का विवेचनात्मक अध्ययन' (कुसुमलता) पृ० १६० और आगे।

४. अग्निना स्थावरजंगमभावमापन्नेन हविर्भूतेन अग्निमेव सर्वदेवता भूतमादित्य प्रनाडिकया महान्तमात्मानमयजन्त देवा। देवभाविनः पूर्वे ज्ञानकर्मसमुच्चय-कारिणो यजमानभावमापन्नाः साध्या विश्वसृजः ऋषयः प्राणाः।

५. देवाः सूर्यरश्मयो यज्ञेनाग्निना सौरेण तेजसा, यज्ञमग्निं पार्थिवग्निममयजन्त-वर्धयन्त। —नि० १२।४१ पर ब्रह्ममुनि परिव्राजक

ने मानसिक संकल्परूप यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप प्रजापति का यजन किया अर्थात् उसकी पूजा की।[1] अथवा योगियों ने समाधिरूप यज्ञ के द्वारा नारायणनामक ज्ञान-रूपी यज्ञ किया।[2] महर्षि दयानन्द के अनुसार देवों अर्थात् विद्वानों ने ज्ञानरूपी यज्ञ के द्वारा पूजनीय अग्नि के समान शत्रुओं को तपानेवाले सबके रक्षक की पूजा की।[3] योगी अरविन्द के मतानुसार, इस यज्ञ का अभिप्राय है आत्मशक्ति का विभुशक्ति से संयोग करना, उसमें विलय करना। यही समाधि की अवस्था है। गीता में इसे ही ब्रह्म-हवि का ब्रह्म में अर्पण कहा गया है।[4]

ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में भी अग्नि अथवा सबका नेतृत्व करनेवाले परमेश्वर को जिस यज्ञ का देव, ऋत्विज्, पुरोहित, होता कहा गया है, उसे भी उपर्युक्त सृष्टियज्ञ अथवा आध्यात्मिक यज्ञ माने विना पूर्ण संगति नहीं लग सकती। वह परमेश्वर उस यज्ञ का देव है, क्योंकि वह सृष्टि अथवा आध्यात्मिक जीवन में सब-कुछ देनेवाला, प्रकाशित करनेवाला है। वह ऋत्विज् है, क्योंकि विभिन्न ऋतुओं अथवा कल्प के आरम्भ में सृष्टियज्ञ करता है। वह सबसे आगे है इसलिए पुरोहित है। वह होता है, क्योंकि वह सब-कुछ देता है, लेता है, (हु दानादानयोः)।

अथर्ववेद में उल्लेख है कि परमेश्वर ने महान् व्यापक सृष्टि के मूल तत्त्व (प्रकृति) से तैंतीस लोकों का निर्माण किया और फिर उन लोकों के ज्ञानार्थ उसने यज्ञ की सृष्टि की।[5] इस प्रकार यज्ञ न केवल सृष्टि का प्रतीक है, अपितु उसकी व्याख्या भी है।

यहाँ सृष्टि के मूल तत्त्व को ओदन कहा गया है। ओदन की विशेषता यह है कि सम्पूर्ण सूक्त (अथर्व० ११।२) में बार-बार उसे सबका अंग, सबके अवयव और सबका शरीर ~~बताया गया~~ है। अभिप्राय यह है कि सभी प्राणियों के शरीर के तत्त्व उसमें विद्यमान हैं।[6]

---

१. देवाः प्रजापतिप्राणरूपा यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन संकल्पेन यज्ञं यथोक्तयज्ञ-स्वरूपं प्रजापतिमयजन्त पूजितवन्तः।
—ऋ० १०।९०।१६ पर सायण, तु० महीधर

२. एवं योगिनोऽपि दीपनाद् देवा यज्ञेन समाधिना नारायणाख्यं ज्ञानरूपमयजन्त।
—उवट

३. यज्ञेन उक्तेन ज्ञानेन यज्ञं पूजनीयं सर्वरक्षकमग्निवत्तपनम् अयजन्त पूजयन्ति देवा विद्वांसः। (वा० सं० ३१।१६ पर दयानन्द-भाष्य)

४. ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।। —गीता ४।२४

५. एतस्माद्वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान्निरमिमीत प्रजापतिः।
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत।। —अथर्व० ११।३।३-४

६. एष वा ओदनः सर्वांग सर्वपरुः सर्वतनूः। —अथर्व० ११।२।१

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार मन्त्रार्थ का चरम लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान ही है। यास्क (नि० १।२०) ने वाणी (मन्त्र) के अर्थ को उसका पुष्पफल बताते हुए कहा है कि ये पुष्प और फल यज्ञ-सम्बन्धी देवता-ज्ञान अथवा देवता-ज्ञान और अध्यात्मज्ञान हैं।[१] इसकी व्याख्या करते हुए पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने बताया है कि याज्ञिक प्रक्रिया का ज्ञान देवता अथवा ब्रह्माण्ड-विज्ञान में सहायक है। जब यह दैवत ज्ञान हो जाता है तो वही आध्यात्मिक ज्ञान की दृष्टि से पुष्परूपी हो जाता है और आगे चलकर अध्यात्मज्ञानरूपी फल को सम्पन्न करता है।[२] गीता के अनुसार भी सर्वव्यापक ब्रह्म यज्ञ में प्रतिष्ठित है।[३]

इसीलिए वैदिक यज्ञ पार्थिव और दिव्य एक साथ दोनों है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को एक साथ सब प्राणियों और सब देवों का आत्मा बताया गया है।[४] अथर्व० में उल्लेख है कि जो पञ्चौदन अज को यज्ञ में अर्पित करता है, वह मानो उस सीमित यज्ञ के द्वारा असीम यज्ञ को और असीम लोक को प्राप्त करता है।[५]

यज्ञ अपने मूल रूप में दिव्य है। इसीलिए यज्ञ का स्थान परम गुहा में छिपा हुआ कहा गया है और बताया गया है कि मनुष्यों ने वहीं से उसे प्राप्त किया।[६] यज्ञ अपने सूत्रों से सब ओर फैला हुआ है; यह एक सौ एक अर्थात् असंख्य प्रकार से दिव्य कर्मों द्वारा विस्तृत है।[७] यज्ञ की दिव्यता इस बात में भी है कि उषा और रात्रि को मनुष्य के लिए सभी समयों में सब ओर से दो विदुषी स्त्रियों के समान यज्ञ को लानेवाली बताया गया है।[८] यहाँ मूल भावना यह प्रतीत होती है कि जिस प्रकार ये दोनों अपने-अपने कल्याणकारी कार्यों का विस्तार करती हैं और बिना विरोध के निश्चित क्रम में आती-जाती रहती हैं, उसी प्रकार उनसे मनुष्य भी संगठित होकर परोपकारार्थ यज्ञ करने की शिक्षा प्राप्त करते हैं।[९] जैसा कि महर्षि दयानन्द ने यज्ञ

---

१. अर्थं वाचः पुष्पफलमाह। याज्ञदैवते पुष्पफले, देवताध्यात्मे वा।

२. याज्ञिकप्रक्रियाया ज्ञानं दैवतज्ञाने (=ब्रह्माण्डविज्ञाने) कारणम्।
यदा च दैवत ज्ञानं सम्पद्यते. तदा तदेवाध्यात्मज्ञानदृष्ट्या।
पुष्पस्थानीयं सत् फलस्थानीयमध्यात्मज्ञानं सम्पादयति।
—श्रौतयज्ञमीमांसा, पृष्ठ १८

३. तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। —गीता ३।१५

४. सर्वेषां वा एष भूतानां, सर्वेषां देवानामात्मा यद्यज्ञः। —श० ब्रा० १४।३।२।१

५. अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्धे।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥ —अथर्व० ९।५।२२

६. अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत्। —ऋ० १०।१८१।२

७. यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः। —ऋ० १०।१३०।१

८. उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्। —ऋ० ५।४१।७

९. साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्वते। ऋ० २।३।६

का उद्देश्य बताया है, वे सब मिलकर ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख के लिए विद्या, ज्ञान, धर्मानुष्ठान में बढ़े हुए विद्वानों का सत्कार करते हैं, सभी पदार्थों के मेल और विरोध का ज्ञान प्राप्त कर उनकी संगति के द्वारा शिल्पविद्या का अभ्यास करते हैं और विद्वानों से संगति करते रहते हैं तथा विद्या, सुख, धर्म आदि शुभ गुणों का नित्यप्रति दान करते हैं।[1]

यज्ञ दिव्य है, क्योंकि देवों ने पहले सूक्तों अर्थात् स्तुतियों से युक्त सूर्यरूप अग्नि को उत्पन्न किया, फिर हवि को उत्पन्न किया। वह यज्ञ उनके शरीरों का रक्षक हो गया, उसे द्यौः, पृथिवी और आकाश जानता है।[2] अभिप्राय यह है कि समस्त ब्रह्माण्ड में, सभी प्राकृतिक पदार्थों में यज्ञ का विस्तार है। वस्तुतः स्वयं ईश्वर यज्ञ-स्वरूप है। इसीलिए उस प्रजाओं के पालक सबके शासक से प्रार्थना की गई है कि वह सब प्राकृतिक पदार्थों तथा विद्वानों के द्वारा हमारे यज्ञ की वृद्धि करे।[3]

पुरुषसूक्त (ऋ० १०।९०) में उसी सृष्टियज्ञ का वर्णन है जिसमें सृष्टि के उद्देश्य से स्रष्टा सब-कुछ होम देता है। तभी सब प्रकार के पशुओं, पक्षियों की सृष्टि होती है, तभी चारों वेदों की सृष्टि होती है।[4] भौतिक जगत् में यदि मनुष्य कुछ निर्माण करना चाहता है तो उस निर्माण-यज्ञ में उसे अपनी सब वृत्तियाँ, अपना सब-कुछ होम देना होता है—तभी सृष्टि होती है। सृष्टि यज्ञ है, क्योंकि उससे समाज लाभान्वित होता है। ज्ञान के प्रकाश से देदीप्यमान, ऋत की वृद्धि करनेवाले, शाश्वत नियमों का चिन्तन करनेवाले विद्वान् ज्ञान के प्रकाश को धारण करके अपनी शक्ति से सब ओर व्याप्त होते हैं और यज्ञ का सम्पादन करके वे अपने

---

१. यज्ञः—विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारलौकिक सुख-सम्पादनाय सत्करणम्, सम्यक् पदार्थगुणसम्मेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्प-विद्याप्रत्यक्षीकरणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं (च), विद्यासुखधर्मादिशुभ-गुणानां नित्यदानकरणम्। —यजुर्भाष्य १।२

२. सूक्तवाकं प्रथमादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः।
स एषां यज्ञो अभवत् तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः॥
—ऋ० १०।८८।८

३. इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिरः स्तवान विश्पते॥
—ऋ० ३।४०।३

४. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ —ऋ० १०।९०।८-९

शरीरों को तेजस्वी बनाते हैं।[1]

दिव्य अध्वर्यु अथवा सूर्य-चन्द्रमा अथवा द्युलोक और पृथिवीरूप अश्विनौ यज्ञ करते हैं, उनका यज्ञरूपी रथ निरन्तर चलता है और उसके द्वारा वे हमारे लिए सुख-शान्ति और नीरोगता उत्पन्न करते हैं।[2]

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि यज्ञ सूक्ष्म होकर वाष्पीकरण के द्वारा द्युलोक तक या बहुत ऊँचे पहुँचता है। दो क्रान्तदर्शी विद्वान् होता मधुर जिह्वा से मन्त्र-उच्चारण करते हुए आज द्युलोक का स्पर्श करनेवाले हमारे इस सिद्धिदायक यज्ञ की वृद्धि करें।[3] यह प्रार्थना एक ओर जहाँ यज्ञ की उपयोगिता बताती है वहीं उसकी व्यापकता,की ओर भी संकेत करती है।

यह यज्ञ सभी मनुष्यों का सामूहिक कर्त्तव्य है। इसीलिए यह संकल्प व्यक्त किया गया है कि हे अग्नि, परिस्थितियों पर शासन करते हुए हम सब नित्यप्रति तुझे बहुत आहुतियाँ अर्पित करें।[4] सब मनुष्यों को प्रेरणा दी गई है कि वे सब सबकी रक्षा के लिए स्तोता के यज्ञ में सम्मिलित होकर शोभन स्तुति करें।[5] पुरुषसूक्त में जो पुरुष के सर्वस्वार्पण का उल्लेख है, वह समाज के हित सम्पूर्ण बलिदान का द्योतक है। इसी प्रकार परमेश्वर की स्तुति का उद्देश्य भी यह है कि उससे सब दोपायों और चौपायों का कल्याण हो और इस संसाररूपी ग्राम में सब-कुछ परिपुष्ट तथा कष्टरहित हो।[6] यज्ञ सम्पूर्ण पृथिवी को धारण करनेवाला महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। उसके साथ जो सत्य, ऋत, दीक्षा, तप और ब्रह्म नामक तत्त्व गिनाये गये हैं वे यज्ञ के ही दूसरे रूप हैं।[7] परमेश्वर यज्ञमय है। वह यजनीय अथवा पूजनीय भी है। वह सब यजनीयों में श्रेष्ठ यजनीय है।[8]

---

१. दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते।
द्यां स्कभित्व्यप आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी नि मामृजुः॥
—ऋ० १०।६५।७

२. तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन्॥ —ऋ० ७।६९।५

३. मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्। —ऋ० १।१४२।८

४. त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या। ऋ० ७।१।१७

५. यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती।
—ऋ० ५।४३।१०

६. यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।
—ऋ० १।११४।१

७. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। —अ० १२।१।१

८. मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानाम्। —ऋ० ८।९६।४

यज्ञवेदि पृथिवी का परला सिरा है। यह भी कहा जा सकता है कि दूर-दूर तक, अन्तिम छोर तक पृथिवी यज्ञ की वेदि है, यज्ञमय है। जिस सोम का आहुति के रूप में प्रयोग होता है, वह कामनाओं के वर्षक बलशाली, गतिशील परमेश्वर का ही सार है। यह यज्ञ समस्त भुवन, ब्रह्माण्ड की नाभि अथवा केन्द्र है। वस्तुतः यज्ञ समस्त जगत् का मूल है।[1] अथर्ववेद में परमेश्वर स्कम्भ अर्थात् समस्त विश्व का आधार बताया गया है। वह सर्वव्यापक है। उसके विस्तार की कल्पना इस बात से की जा सकती है कि चारों दिशाएँ उसकी नाड़ियाँ कही गई हैं। उसमें यज्ञ पराक्रान्त हो जाता है अर्थात् अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। दूसरे शब्दों में कहा गया है कि वह विश्वाधार क्योंकि सृष्टि का आधार है, इसलिए यज्ञमय है। सम्पूर्ण सृष्टि ही यज्ञमय है।[2]

इस प्रकार यज्ञ सृष्टि का शाश्वत नियम है। यज्ञ निरन्तर चलता है। यज्ञ ऋत है।[3] भौतिक यज्ञ इस व्यापक सृष्टियज्ञ का प्रतिरूप है, उसका अनुकरण है। यह सृष्टि के नियमों को पालन करने का संकल्प है। यह सृष्टि को, प्रकृति को, जल-वायु आदि वातावरण को सम्यक् बनाये रखने के रूप में सहायक है। जिस प्रकार समस्त प्रकृति सब जीव-जन्तुओं के लिए उपकारक है, उसी प्रकार आत्म-बलिदान की भावना के कारण यज्ञ भी सबके लिए उपकारक है।[4]

यज्ञ निरन्तर चलता रहता है। इसीलिए पुरातन और अभिनव यज्ञ मिलकर एक हो जाते हैं। प्रथम यज्ञ के विषय में यजमान पूछता है, और दूत अर्थात् अग्नि अथवा परमेश्वर प्रत्युत्तर में पूछता है कि पहलेवाला ऋत अर्थात् यज्ञ कहाँ गया और कौन नया उसको धारण करता है—मेरी इस बात को पृथिवी और आकाश जानें।[5] अभिप्राय यह है कि पृथिवी और आकाश के मध्य में जितने भी तत्त्व हैं, वे इस बात से परिचित हैं अथवा सबमें यह नियम व्याप्त है कि शाश्वत सत्य अथवा यज्ञ नया और पुराना नहीं—वह एक ही है। इसीलिए यजमान यह अनुभव करता

---

१. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः······॥ —अथर्व० ९।१०।१४

२. यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
—अथर्व० १०।७।१६

३. ऋतं वै सत्यं यज्ञः। —मै० सं० १।१०।१२

४. आत्मदक्षिणं वै सत्रमात्मानमेव दक्षिणां नीत्वा सुवर्गं लोकं यन्ति।
—तै० सं० ७।४।९।१

५. यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी॥
—ऋ० १।१०५।४

है मानो वह मनरूपी नेत्रों से उन्हें देख रहा हो जिन्होंने यह यज्ञ पहले किया था।[1] एक अन्य मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि हे अग्नि, जिस प्रकार क्रान्तदर्शी होते हुए तुमने क्रान्तदर्शियों के साथ आहुतियों के द्वारा मेधावी मनुष्य का देवों के प्रति यज्ञ सम्पन्न किया था, उसी प्रकार हे होता, हे सत्यनिष्ठ, तुम आज मधुर आहुति के द्वारा यज्ञ करो।[2] भाव यह है कि यज्ञ सब कालों में एक-सा है और सच्चे यज्ञकर्त्ता की भावना सदा एक-सी रहती है। इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य है कि जिस अग्नि से प्रार्थना की गई है वह भौतिक अग्नि नहीं हो सकता। वह अवश्य ही सद्-गृहस्थ, विद्वान्, सत्यवादी पुरोहित है। मानव-मात्र का पिता, प्रथम चिन्तक स्वयं इतना यज्ञमय है कि उसे यज्ञ ही कह दिया गया।[3]

वैदिक यज्ञ के इस सर्वव्यापक, सर्वोपकारक और निरन्तर प्रवर्तमान शाश्वत रूप को देखकर अगुइलार नामक विद्वान् ने निम्नलिखित भाव प्रकट किये हैं— "आर्यों का सत्य निस्सन्देह यज्ञानुष्ठान है, क्योंकि वैदिक भारतीयों की दृष्टि में यज्ञ के बिना किसी प्रकार का ऋत सम्भव नहीं है।"[4] इस विद्वान् के मतानुसार यज्ञ और ऋत पर्याय हैं, अतः यज्ञ सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है; वह किसी अपने से उत्कृष्ट तत्त्व को प्राप्त करने का साधन नहीं। यज्ञ अथवा ऋत के द्वारा अपने ही उन्नत रूप की उपासना के द्वारा उसकी प्राप्ति की जाती है।[5] एक मन्त्र में कहा गया है कि मैं ऋत के द्वारा निश्चित अथवा सुस्थिर ऋत की उपासना करता हूँ।[6]

वैदिक यज्ञ की इस उदात्त भावना को देखते हुए यह कल्पना करना भी असम्भव है कि वह यज्ञ किसी हीन अथवा निम्न अथवा आदिम अविकसित धारणा से सम्बद्ध रहा होगा। परन्तु जैसाकि खोंडा ने उल्लेख किया है, लुई रेनु (वैदिक इंडिया) और आबेल बर्गे (वैदिक रिलिजन) तथा अन्य विद्वानों ने वैदिक यज्ञ को जादू पर आधारित माना है।[7] इसके विरोध में अगुइलार के अग्रलिखित विचार

---

१. पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान् य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे।—ऋ० १०।१३०।६

२. यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ —ऋ० १।७६।५

३. यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कम् ॥ —ऋ० १०।१००।५

४. The Aryan truth is undoubtedly to sacrifice, for without yajña no ṛta of any kind is possible in the eyes of the Vedic Indians. —The Sacrifice in the Rgveda (से० इन ऋ०), पृ० २७

५. In the Vedic perspective, however, the sacrifice is not ordained to something different or higher than itself, but at the most a higher form of itself. —वही, पृ० २७

६. ऋतेन ऋतं नियतमीळे। —ऋ० ४।३।९

७. 'चेंज एण्ड कंटीन्यूटी इन इंडियन फिलोसोफी', पृ० १३१

उद्धृत करना पर्याप्त होगा—"यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वेदों के अनुसार यज्ञ अपने नाम के अनुरूप ही यातुधान आदि के जादुई आचरणों का विरोधी है। यह बात देवों और असुरों—दोनों पद्धतियों के केवल शक्तियों के आह्वान की विधि पर आधारित नहीं है, अपितु उनके चरम लक्ष्य पर भी आधारित है जिसे एक (देव) प्रसंग में सृष्टि के दिव्य कार्य के साथ सहयोग और संसार के प्रत्युपकार के रूप में, और दूसरे (असुर) प्रसंग में किसी-न-किसी प्रकार उसमें बाधा डालने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।...इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य है कि ब्राह्मणों के अनुसार[1] श्रद्धाविहीन यज्ञ निष्फल है और इसके विपरीत यदि कोई श्रद्धावान् होकर यज्ञ करता है तो यज्ञ कभी निष्फल नहीं होता है।[2]

वैदिक यज्ञ उदात्त है, विराट् है, व्यापक है और लोकोपकारक है। यह यज्ञ सर्वजनकल्याण की भावना से पूर्ण है। यह समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त शाश्वत नियम है। यज्ञ स्रष्टा के प्रति आभार व्यक्त करने का उत्तम साधन है। इसलिए श्रद्धा, सत्य, विनम्रता और तपस्या के बिना यज्ञ की कल्पना नहीं की जा सकती।

ऐसा यज्ञ हिंसा से युक्त हो ही नहीं सकता। यज्ञ अध्वर अर्थात् ध्वर (हिंसा) से रहित है। परमेश्वर की स्तुति करते हुए वेदमन्त्र में कहा गया है कि हे सबका नेतृत्व करनेवाले, तेजःस्वरूप परमेश्वर! जिस अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञ को तू सब ओर से व्याप्त करता है, वही देवताओं या प्राकृतिक पदार्थों अथवा विद्वानों

---

१. तस्माद् यद् ब्राह्मणोक्तोऽश्रद्दधानो यजते शंयुमेव तस्य बार्हस्पत्यं यज्ञस्याशीर्गच्छति। —तै० सं० २।६।१०।१

न वा इह तर्हि किञ्चनासीदथैतदहूयतैव सत्यं श्रद्धायामिति वेत्याग्निहोत्रम्। —श० ब्रा० ११।३।१।४

२. But what can be certainly stated is that according to the Vedas the yajña is antonomastically the contrary of the magical practices of the Yātudhāna etc., and this is not only on account of the mode of being invoked of the powers in both cults, devas and asuras, but also on account of their different finality, which could be defined in one case as collaborating with the divine work of creation and redemption of the world and in the other as trying to obstruct it in one way or the other...... It is worthwhile noticing in this regard that according to the Brāhmaṇas the sacrifice without the shraddhā is sterile and contrariwise, that if one sacrifices having the shraddhā the sacrifice is never really lost. —से०इन ऋ० पृ० १००-१०१

को प्राप्त होता है अथवा विद्वानों के द्वारा स्वीकार किया जाता है।[1] दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विद्वानों को हिंसारहित यज्ञ ही अभीष्ट है, क्योंकि यही परमेश्वर द्वारा निरन्तर अनुष्ठीयमान यज्ञ है। यजुर्वेद में भी अग्नि को सम्बोधित करके कहा गया है कि हे क्रान्तदर्शी, हम तुझ प्राप्ति-हेतु यज्ञ, के धारक, महान् तेजस्वी का अध्वर में समिन्धन करते हैं।[2] सामवेद और अथर्ववेद में भी यज्ञ के लिए बहुधा अध्वर शब्द का प्रयोग हुआ है। सामवेद में क्रान्तदर्शी, सत्यधर्मा देव, रोगनाशक अग्नि का अध्वर में स्तवन करने की प्रेरणा दी गई है।[3] अथर्ववेद में अच्छी वाणीवाले तनूनपात् को सम्बोधित करके कहा गया है कि आप माधुर्य के द्वारा ऋत के मार्गों को युक्त करते हुए और अपनी बुद्धि से उदात्त विचारों को और यज्ञ को समृद्ध करते हुए हमारे अध्वर को देवताओं में स्थित कर दीजिए।[4] ये अध्वर शब्द के प्रयोग के केवल कुछ उदाहरण हैं। यह शब्द चारों वेदों में यज्ञ के पर्याय अथवा विशेषण के रूप में पौनःपुन्येन आया है।[5] इससे यह निश्चित है कि वैदिक यज्ञ की मूल भावना हिंसारहित है।

परन्तु अनेक भ्रान्तियों और पूर्वाग्रहों के आधार पर विद्वान् वैदिक यज्ञों में हिंसा का प्रतिपादन करते रहे हैं। राजेन्द्र लाल मिश्र[6] भूमानन्द[7] मैकडोनल-कीथ[8] प्रभृति विद्वानों ने यज्ञों में पशुवध और गोमांसभक्षण का प्रतिपादन किया है। अतिथिग्व और अतिथिनीर्गा शब्दों के भ्रान्त अर्थों ने इस प्रकार के विचारों को सहायता प्रदान की है। विनायक महादेव आप्टे ने ऋ० १०।६८।३ के आधार पर अतिथिनीर्गा का अर्थ "अतिथि के लिए गाय को मारनेवाला" किया है।[9] मन्त्र निम्नलिखित हैं—साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः॥

---

१. अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद् देवेषु गच्छति।—ऋ० १।१।४

२. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे॥—वा० स०२।४

३. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम्॥

—साम० १।१।३।१२

४. तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समंजन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः॥

—अ० ५।१२।२

५. द्र० स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, 'भूमिका भास्कर', पृ० ३६-३७

६. 'बीफ इन एंश्येंट इण्डिया', बृ० उप० ६।४।१८ की व्याख्या

७. 'बीफ इन एंश्येंट इंण्डिया', भूमिका

८. 'वैदिक इंडेक्स', खं० २, पृ७ १४५

९. 'वैदिक एज' (भारतीय विद्या भवन), पृ० ३९३

इसका सायणकृत अर्थ ही गोवध के विपरीत है। सायण के अनुसार 'बृहस्पति कल्याणकर जल को ले-जानेवाली, निरन्तर गतिशील (अतिथिनीः) अभीष्ट, स्पृहणीय, सुन्दर वर्णवाली, निर्दोष रूपवाली गौओं को वल के पर्वतों से निकालकर देवों के पास पहुँचाता है जैसे कोई ऋण दाता से लेकर जौ बोता है।"[1]

इससे यह स्पष्ट है कि आप्टे महोदय ने स्वयं सायण का भाष्य देखने का कष्ट नहीं किया। यह ध्यान देने योग्य है कि समस्त ऋग्वेद में—"अतिथिनीः" शब्द केवल एक बार यहाँ प्रयुक्त हुआ है।

जहाँ तक अतिथिग्व शब्द का प्रश्न है, इसमें अतिथि-गु, अतिथि-गम् अवयव अत्यंत स्पष्ट हैं और गौ की कल्पना अनावश्यक तथा अनभीष्ट है। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने सर्वत्र इसका अर्थ अतिथियों के सत्कार के लिए उनके पास जानेवाला किया है।[2] सायण ने कुछ स्थलों पर इसे व्यक्तिवाचक संज्ञा माना है, परन्तु अन्य स्थलों पर उसके और महर्षि दयानन्द के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है।[3] यद्यपि अतिथिग्व और अतिथिनीर्गाः के प्रसंग में सायणभाष्य द्वारा किसी रूप में पशुबलि का संकेत नहीं मिलता, परन्तु निम्नलिखित जैसे मन्त्रों के भाष्य द्वारा सायण ने पशुबलि होने के विचार को बल प्रदान किया है—

त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः। अष्टापदीभिराहुतः॥ (ऋ० २।७।५)
इसका सायणभाष्य के अनुसार अर्थ है—हे ऋत्विजों के पुत्ररूप अग्नि, तू हमारी बाँझ गौओं, साँडों और गर्भवती गौओं के द्वारा आहुत अर्थात् आराधित होता है।[4]

यह अर्थ प्रसंग के सर्वथा अनुकूल है। इससे पहले मन्त्र में अग्नि को "घृतेभिराहुतः" (घृतों द्वारा आहुत) और अगले मन्त्र में "सर्पिरासुतिः" (जिसमें सर्पि

---

१. साध्वर्याः साधूनां कल्याणानां पयसां नेत्रीः, अतिथिनीः, सततं गच्छन्तीः इषिराः एषणीयाः स्पार्हाः स्पृहणीयाः सुवर्णाः शोभनशुक्लादिवर्णोपेताः अनवद्यरूपाः प्रशस्यरूपाः एताः गाः पर्वतेभ्यः वलसम्बन्धिभ्यः वितूर्य निर्गमय्य ऊपे देवसमीपे निर्वपति प्रापयति यथा यवं कुसीदेभ्यः आदाय निर्वपति।

२. अतिथिग्वम्—योऽतिथीन् गच्छति तं राजादिजनम् (६।१८।१३), अतिथीन् प्राप्नुवन्तं सेनापतिम् (१।११२।१४), योऽतिथीन् गच्छति गमयति वा तं विद्वज्जनम् (४।२६।३), अतिथिग्वस्य—अतिथीन् गच्छतः प्रजाजनस्य (६।४७ २२), अतिथिग्वाय—अतिथीन् गच्छते विद्वज्जनाय (१।१३०।७)

३. अतिथिग्वम्—अतिथीनाम् अभिगन्तारम्(दिवोदासम्)(४।२६।३, ६।१८।१३) अतिथिभिर्गन्तव्यम् (१।११२।१४)अतिथिग्वाय—अतिथिभिर्गन्तव्याय दिवोदासाय (६।२६।३) पूज्यातिथीन् गच्छति तस्मै (७।१९।८)

४. हे भारत ऋत्विजां पुत्रस्थानीय अग्ने नः अस्मदीयः त्वं वशाभिः वन्ध्याभिर्गोभिः उक्षभिः सेक्तृभिर्बलीवर्दैः अष्टपदीभिः गर्भिणीभिश्च आहुतः आराधितः असि।

अर्थात् पिघला हुआ घी अर्पित किया जाता है) कहा गया है। तदनुसार वशाभिः और अष्टापदीभिः का तद्धितार्थ तथा यौगिकार्थ लेकर "कमनीय धेनुओं से प्राप्त घृत के द्वारा" अर्थ करना तथा उक्षभिः का भी यौगिक अर्थ "सेचनों के द्वारा" लेकर "घृतादि हविर्द्रव्यों के द्वारा" करना अधिक उचित प्रतीत होता है। अथवा जैसाकि महर्षि दयानन्द ने अर्थ किया है तदनुसार यहाँ उत्तम स्तुतियों द्वारा अग्नि-रूप परमेश्वर की आराधना अभिप्रेत है। इस स्थिति में वशा कमनीय स्तुतियाँ और अष्टापदी भी आठ पादों वाली अतिधृति प्रगाथ आदि छन्दों में निबद्ध स्तुतियाँ हैं।[1] उक्षभिः का अर्थ कामनाओं की वर्षक स्तुतियाँ होगा।

निम्नलिखित मन्त्र के सायणभाष्य से भी पशुबलि की भ्रान्ति होती है—

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

—ऋ० १०।८६।१४

सायण-भाष्यानुसार अर्थ होगा—"मुझ भार्या सहित इन्द्र के लिए याज्ञिक पंद्रह और बीस साँडों को पकाते हैं। मैं उनको खाता हूँ और खाकर मोटा हो जाता हूँ। याज्ञिक मेरे दोनों उदरों को सोम से भर देते हैं। इस प्रकार मैं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हूँ।"[2]

इससे पूर्ववर्ती मन्त्र की व्याख्या यास्क द्वारा (नि० १२।९) की गई है। उसके अनुसार जिन साँडों के इन्द्र द्वारा खाये जाने का उल्लेख प्रस्तुत मन्त्र में दिखाई देता है वे साँड (उक्षन्) यास्क के निर्वचन के अनुसार प्रवृद्ध अथवा जल सेचन करने-वाले मेघ हैं।[3] माध्यमिक इन्द्र जब वर्षा करके उन मेघों को खाली करता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि उसने उन्हें खा लिया और वह मोटा हो गया। इन्द्र के दो उदर भी प्रतीकात्मक हैं। ये दो उदर अन्तरिक्ष और पृथिवी हैं, क्योंकि वर्षा के समय दोनों में पानी भर जाता है। उन पन्द्रह-बीस मेघरूप साँडों को पकाने, बनानेवाले सूर्य के विविध रूप हैं जिनमें से एक, वृषाकपायी, का वर्णन निरुक्त के निर्दिष्ट (१२।९) प्रसंग में किया गया है।

इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में दी गई उपमा के द्वारा भी यह माना जाता है कि उसमें वध-स्थान पर गई और वध के पश्चात् पृथिवी पर पड़ी हुई गौओं का

---

१. वशाभिः कमनीयाभिर्गीर्भिः अष्टापदीभिः अष्टौ पादा यासां ताभिर्वाग्भिः।
२. अथेन्द्रो ब्रवीति। मे मदर्थं पंचदशसंख्याकान् विंशतिसंख्याकांश्च वृषभान् साकं सह मम भार्ययेन्द्राण्या प्रेरिता यष्टारः पचन्ति। उत अपि च अहं तान् भक्ष-यामि। जग्ध्वा चाहं पीव इत् स्थूल एव भवामीति शेषः। किंच मे उभौ कुक्षी पृणन्ति सोमेन पूरयन्ति यष्टारः। सोऽहमिन्द्रः सर्वस्मादुत्तरः।
३. उक्षण उक्षतेवृद्धिकर्मणः। उक्षन्त्युदकेनेति वा।

उल्लेख है।[1] इस सूक्त के सप्तम मन्त्र में ही आये 'गाः' शब्द का अर्थ सायण ने "उदकानि" (जल) किया है। इस आधार पर प्रस्तुत मन्त्र में भी गावः के द्वारा गोपशु का उल्लेख न मानकर मेघ से काटकर अलग किया गया पृथिवी पर पड़ा हुआ जल समझना चाहिए।[2]

एक अन्य विद्वान् अगुइलार के अनुसार ऋग्वेद के एक मन्त्र का अर्थ निम्नलिखित है—हे वाजो, ऋभुक्षो, इन्द्र और नासत्यौ, हमें वह धन अर्थात् घोड़ा लाकर दो। उपहारों के प्रभूत वितरण के लिए उसका वध करो।[3]

यहाँ स्पष्ट ही अनुवादक ने "सम् शस्त" शब्दों का अर्थ "वध करो" किया है। उनके अनुसार यह हिंसार्थक शस् धातु का लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप है। परन्तु यह ध्यान देने की बात है प्रशंसार्थक शस् धातु का भी लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यही रूप बनेगा। धातुपाठ में यह "शंसु" पठित है। तदनुसार यह अनिदित् है। लोट् म० पु० बहु० का "त" अपित् होने के कारण ङिद्वत् है। अतः पाणिनि के 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (६।४।२४) सूत्र से शंस् के न् अथवा अनुस्वार का लोप होकर प्रस्तुत रूप प्राप्त होगा और अर्थ होगा—प्रशंसा करो। सायण का अर्थ भी यही है—सम्यगाशासनं कुरुत। यह आश्चर्य की बात है कि यह अर्थ सुलभ होते हुए भी वध-अर्थ किया गया है। सम्पूर्ण सूक्त की भावना को देखते हुए भी वध अर्थ की यहाँ संगति नहीं है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में यज्ञ को अध्वर बताया गया है। दूसरे मन्त्र में यज्ञों को घी से युक्त (घृतनिर्णिज्) कहा है। चतुर्थ मन्त्र में ऋभुओं को स्वस्थ अश्वोंवाले (पीवो अश्वाः) कहकर सम्बोधित किया गया है।

हम देखते हैं कि असावधानी से किये गये इस प्रकार के अर्थों से वैदिक यज्ञों में हिंसा की भ्रान्ति उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार एक अन्य विद्वान् सी० कुन्हन राजा का मानना है कि यद्यपि ऋग्वेद में मांस-भक्षण के सन्दर्भ अत्यल्प हैं, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि देवताओं को

---

१. शसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ।। (ऋ० १०।८६।१४) सायण—पृथिव्याः सम्बन्धिनि शसने विशसनस्थाने गावो न पशव इव आपृक् आपर्चनाहताः सन्तः कनया पृथिव्या संगन्ता युद्धे शयन्ते शेरते।

२. वेदों में गोमांसभक्षण—एक विवेचन, सुरेन्द्रसिंह कादियाण, सिद्धान्ती अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ५०६-५२४

३. तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणीभ्य आ पुरुशस्त मघत्तये ।।—(ऋ० ४।३७।८)
O Vājas, Ṛbhukṣan, Indra, Nāsatyas, bring to us, men, that treasure, the horse, slaughter it for the sake of an abundant distribution of gifts.

पशुबलि अर्पित की जाती थी और मनुष्य भी पशुमांस खाते थे।[1] उनके मतानुसार ऋ० ६।१।३ में वपा भक्षण करनेवाले निरन्तर जाज्वल्यमान अग्नि का उल्लेख है। उनका तर्क है कि यदि अग्नि को वपावन् (वपा से युक्त) कहा गया है तो वपा अथवा मांस की आहुति उन यज्ञों में अवश्य दी जाती होगी।[2] एक अन्य मन्त्र (ऋ० ५।४३।७) के वपावन्तम् शब्द के विषय में इस विद्वान् का अनुमान है कि यह वपा (चर्बी) से युक्त किसी पकानेवाले पात्र का वाचक है, और यह (वपा—) पाचन उसे अग्नि में अर्पित करने के लिए ही होता होगा।[3]

ऋ० ८।१७।८ के आधार पर कुन्हन राजा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि "अपने उदर में वपा लिये हुए शक्तिशाली भुजाओंवाला इन्द्र सब भयों को नष्ट करता है।" निष्कर्षतः इन्द्र के उदर में वपा या मांस केवल तभी हो सकता है यदि वह यज्ञों में अर्पित मांस को खाता हो।[4]

कुन्हन राजा द्वारा अपने निष्कर्षों को आधार बनाये गये उपर्युक्त तीनों मन्त्रों के सायण-भाष्य में कहीं भी वपा का अर्थ चर्बी अथवा मांस नहीं किया गया है, जब कि उसमें ऐसे अर्थ की सम्भावना थी। ऋ० ६।१।३ में "वपावन्तम्" अग्नि का विशेषण है, वहाँ सायण ने इसका कोई भाष्य नहीं किया। परन्तु ऋ० ५।४३।७ में कुन्हन राजा ने जो "वपावन्तम्" को पात्र का विशेषण माना है, वह अन्वय के अनुकूल नहीं है। अन्वय के अनुसार यह शब्द उपमान-रूप में है। तदनुसार, अर्थ होगा, "जैसे वपा से युक्त को अग्नि से तपाते हैं।" सायण के अनुसार "वपावन्तम्" का अर्थ है प्रवृद्धं पशुम् (बढ़े हुए पशु को)। दूसरे शब्दों में वपा वृद्धि है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार वपन किया गया, बोया गया पौधा बढ़ता है, उस प्रकार बढ़ा हुआ। ऋ० ८।१७।८ में भी "वपोदरः" शब्द का भाष्य सायण ने "पीवरोदरः"

---

१. In the case of eating of meat also, the references are very few in the Ṛgveda.... yet there is no doubt that animal food was offered to the gods and that men also ate animal food. —द क्विंटिसेंस ऑफ द ऋग्वेद, पृ० १२०

२. If fire is spoken of as Vapāvan (owner of Vapā), Vapā or flesh must have been offered to him at the rituals. (वही)

३. A vessel for cooking is spoken of as having Vapā in it and this cooking must be for offering it to the fire. (वही)
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः।

४. Indra......with Vapā in his stomach, with strong arms, destroys all dangers....... There can be vapā or flesh in his stomach only if Indra eats flesh as offered at the rituals.
—दि क्विंटिसेंस ऑफ द ऋग्वेद, पृ० १२०

(बड़े पेटवाला) किया है।

मै० सं० में उल्लेख है कि वेदि बनाते समय दीमक द्वारा पृथिवी के अन्दर से लाई गई बांबी की गीली मिट्टी वेदि के स्थान पर बिछाता है।[1] यहाँ इस मिट्टी के लिए "वल्मीकवपा" शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वपा शब्द किसी वस्तु के गीले अंश के अर्थ में प्रयुक्त होता है। तदनुसार उपर्युक्त मन्त्रों में वपा का अर्थ घृत अथवा घी बनाकर बचा हुआ छाछ का अंश भी हो सकता है।

वप् (वपन करना, बोना) धातु के आधार पर वपा का अर्थ वपन-योग्य अथवा अन्न उपजाने योग्य भूमि अथवा बीज-वपन की क्रिया भी किया गया है।[2] तदनुसार महर्षि दयानन्द ने ऋ० ६।१।३ में वपावन्तम् का अर्थ किया है—"वह विद्यादिरूप अग्नि (ज्ञान) जिसमें विद्यारूपी बीज बोने के अनेक आधार हैं।"[3] ऋ० ५।४३।७ में उन्होंने इस शब्द को "विद्यारूपी बीज का विस्तार करनेवाले" विद्यार्थी के प्रसंग में बताया है।[4]

इसके अतिरिक्त कुन्हन राजा ने पशुबलि के प्रमाण में एक अन्य मन्त्र (ऋ० ८।४३।११) का अर्थ इस प्रकार किया है—"हम उस स्रष्टा अग्नि को ये स्तुतियाँ अर्पित करते हैं जिसका भोजन साँड है और जिसका भोजन गाय है।"[5] तदनुसार "इससे यह सिद्ध होता है कि साँड और गाय को मारकर उनके मांस की आहुतियाँ दी जाती थीं।"[6] उसके अनुसार ऋ० १०।९४।३ में कहा गया है कि "अभिषवण पाषाण गाते हैं, वे मधुर मधु को जानते हैं, वे पकाये जाते हुए मांस को देखकर शब्द करते हैं।"[7]

ऋ० ८।४३।११ में अग्नि के दो विशेषण "उक्षान्न" और "वशान्न" हैं। उक्षा का मूल अर्थ उक्ष् (सिंचनार्थक) धातु से सिंचन करनेवाला अर्थात् बलिष्ठ है

---

१. यद् वल्मीकवपामुत्कीर्याग्निमाधत्ते।
—मै० सं० १।६।३ (वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, पृ० ७६)

२. वपाम् वपनयोग्यां भूमिम्। —प्रियरत्न आर्ष, यम-पितृ परिचय, पृ० २८८

३. बहूनि वपनाधिकरणानि विद्यन्ते यस्मिस्तम् अग्नि विद्यादिरूपम्।

४. विद्याबीजं विस्तारयन्तं विद्यार्थिजनम्।

५. To the fire who has the bull as food, who has the cow as food...the creator, we offer these songs. —किंव ऋ०, पृ० १२१
—उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे स्तोमैर्विधेमाग्नये॥

६. This shows that the animal which is killed and whose flesh is offered is both a cow and a bull. —वही, पृ० १२१

७. They sing, they know the sweet honey; they make a noise at the sight of flesh that is cooked.
—एते वदन्सविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधिपक्व आमिषि।

और वशा गाय है। अतः उक्षान्न का सेचन योग्य बनानेवाला अथवा "शक्तिवर्धक अन्न है जिसका" अर्थ सम्भव है। यहाँ सायण का भाष्य "उक्षान्नमदनीयं हविर्यस्य" और "वशान्नं यस्य" स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं करता। ऋ० २।१५।५ में इन्द्र के विशेषण "वृषभान्न" के भाष्य में सायण ने स्पष्टीकरण किया है—"बलवर्षक अन्न वाला इन्द्र।"[1] जहाँ तक वशान्न का प्रश्न है वशा के मूल में वश् (कामना करना) धातु है। तदनुसार वशान्न का अर्थ "कमनीय अन्नवाला" होगा। अन्यथा भी जैसा कि यास्क ने गौः शब्द के प्रसंग में स्पष्ट किया है।[2] वशा शब्द का प्रयोग वशा के तद्धितार्थ में भी सम्भव है। तदनुसार "गो-घृत रूपी अन्नवाला" अर्थ भी हो सकता है। दूसरी ओर अग्नि की स्तुति अन्नोत्पादक अथवा अन्नप्रदाता के रूप में अनेक बार हुई है।[3] अतः अग्नि के लिए यह कहना सर्वथा ऋग्वेद की भावना के अधिक अनुकूल है कि उसके द्वारा प्रदत्त अन्न शक्तिवर्धक तथा कमनीय है।

ऋ० १०।९४।३ में जो पकाये गये मांस को देखकर अभिषवण पाषाणों के शब्द करने का उल्लेख है, सायण ने उसे उपमा के रूप में माना है, यज्ञगत आहुति के प्रसंग में नहीं। तदनुसार अर्थ है—"जिस प्रकार मांसभक्षक पके हुए मांस के प्रसंग में विशेष शब्द करते हैं, उसी प्रकारअभिषवण पाषाण शब्द करते हैं।"[4] इससे यज्ञ में मांस की आहुति की पुष्टि नहीं होती। दूसरी ओर यह भी स्पष्ट नहीं है कि यह शब्द कैसा है। ऊँख धातु पाणिनीय धातुपाठ में पठित नहीं है। समस्त ऋग्वेद में इसका प्रयोग केवल एक बार प्रस्तुत स्थल पर ही हुआ है। यह शब्द चिल्लाने, दुःखी होने का भी हो सकता है। आमिष् शब्द के मूल में अम् (रोगी होना) धातु है। तदनुसार मांस क्योंकि रोगोत्पादक है, अतः उसे देखकर रोने का भी भाव सम्भव है।[5] इसके अतिरिक्त यदि आमिष् का अर्थ मांस ही किया जाए तो अधिषवण पाषाणों के प्रसंग में यह कहना अधिक उचित होगा कि सोमलता पीसने पर उसका गूदा बन जाने पर वे विशेष शब्द करते हैं, क्योंकि मांस शब्द का अर्थ गूदा भी होता है।[6] मांस का अर्थ खीर भी है, क्योंकि श०ब्रा०में मांस को परमान्न

---

१. बलवर्षकाणि अन्नानि यस्य स तथोक्तः।
२. अथाप्यस्यां तद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति "गोभिः श्रीणीत मत्सरम्" इति पयसः—निः २।५
३. द्र० पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि।—ऋ० ५।८।५
४. यथा पक्वे आमिषि अधि आमिषे क्रव्यादो मांसभक्षकाश्च मांसविषये यथा न्यूंखयन्ते शब्दविशेषं कुर्वन्ति तद्वत् एते ग्रावाणः वदन्ति।
५. अमन्ति रोगिणो भवन्ति येनेति विग्रहे, अम रोगे धातोः टिषच् (उ० १।४६)
६. मोनियर विलियम्स, संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी।

कहा गया है और अमरकोश के अनुसार यह परमान्न खीर है।[1]

कुन्हन राजा के अनुसार ऋ० १०.१६.४ में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह अपनी उष्णता से अंशों के रूप में आहुत बकरे को पकाये। अगले मन्त्र में ही अग्नि से उसे मृत पूर्वजों के पास ले-जाने की प्रार्थना की गई है। यहाँ स्पष्ट ही बकरे का मांस ले-जाना अभिप्रेत होगा।[2]

सायण-भाष्य के अनुसार ऋ० १०. १६. ४ का अनुवाद इस प्रकार होगा—हे अग्नि, इस मृत व्यक्ति का जो भाग जन्मरहित, शरीर के इन्द्रियादि भाग से भिन्न है तथा जिसे अन्तर्-पुरुष अथवा जीवात्मा कहा जाता है उसे अपने ताप से तृप्त करो।[3] इससे अगले मन्त्र को सायण ने मृत व्यक्ति से सम्बद्ध मानते हुए (बकरे से नहीं) अर्थ किया है—"हे अग्नि, जो यह मृत व्यक्ति मन्त्रों आदि के द्वारा तुझे समर्पित किया गया है उसे पूर्वज मृतकों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करो।"[4]

यदि एक क्षण सायण-भाष्य को न भी स्वीकार किया जाए तो समस्त ऋग्वेद में जहाँ-जहाँ भी यह शब्द आया है, उन स्थलों से "बकरा" अर्थ की पुष्टि नहीं होती। अनेक स्थलों पर यह एकपाद् के साथ आकर "अज एकपाद्" नामक देवता को व्यक्त करता है, जिसका अर्थ यदि "एक पाँव वाला बकरा" किया जाएगा तो हास्यास्पद होगा।[5] जहाँ यह शब्द अकेला है, वहाँ भी या तो यह "अजन्मा" अर्थ-वाला विशेषण है या फिर जन्मरहित जीवात्मा का द्योतक है।[6] यजुर्वेद में भी यह

---

१. एतदु ह वै परममन्नाद्यं यन्मांसम्। —श० ब्रा० ११.७.१३,
परमान्नं तु पायसम्। —अमरकोश : २. ७. २४

२. The fire is asked to cook the goat offered as his portion with his heat. अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः। Later the fire is asked to carry that to the dead ancestors. What is to be carried must be the flesh of the goat mentioned in the previous mantras.—क्विटिसेंस ऑफ द ऋ०, पृ० १२१

३. अजः जननरहितः शरीरेन्द्रियादिभागव्यतिरिक्तोऽन्तर्पुरुषलक्षणो यो भागः अस्ति—हे अग्ने त्वदीयेन तपसा तपनेन तादृशं भागं तपस्व तप्तं कुरु।

४. हे अग्ने यः प्रेतः पुमान् आहुतः चितौ मन्त्रेण समर्पितः सन् स्वधाकार समर्पितैः उदकादिभिः सह चरति तं प्रेतं पितृप्राप्त्यर्थं भूयः प्रेरय।

५. ऋ० २.३१.६, ६ ५०.१४, ७.३५.१३, १०.६४.४, ६५.१३; ६६,११

६. ऋ० १।६७।५ (अजो न क्षां दाधार पृथिवीम्); १।१६२।२ (सुप्राङ्जो मेम्यद् विश्वरूपः), १०।१६२।४ (अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदन्नजः), १।१६३।१२ (अजः पुरो नीयते—यह अजन्मा सबसे आगे ले-जाया जाता है, अर्थात् सबसे पहले उसका ध्यान करते हैं), ३.४५.२ (पुरां दर्मो अपामजः), ८।४१।१ (अज द्यामधारयत्)

शब्द प्रायः "अजन्मा (परमेश्वर) अथवा जीवात्मा" के अर्थ में आया है।[1] अथर्ववेद के प्रसिद्ध स्कम्भ सूक्त में भी इसी अर्थ को लेकर कहा गया है कि "जब अजन्मा सबसे पहले सत्ता में आया तो वह स्वराज्य अर्थात् अपने एकमात्र शासन को प्राप्त हुआ जिससे परे और कोई प्राणी नहीं है।"[2] अथर्व० ९.५.१८ में भी पके हुए बकरे से बलि की भ्रान्ति होती है, परन्तु इसके आगे एक मन्त्र छोड़कर अज का वर्णन परमेश्वर (स्कम्भ) जैसा है।[3]

कुन्हन राजा पुनः इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस बात के प्रमाण हैं कि यज्ञों में अग्नि को पशुओं की आहुति दी जाती थी। यज्ञ में एक लकड़ी का स्तम्भ (यूप) गाड़ा जाता था। वह केवल उन पशुओं को बाँधने के लिए हो सकता है जिनका वध करके उनका मांस देवताओं को अग्नि में अर्पित किया जाता था। शुनःशेप तीन यूपों से बाँधे जाने पर अपनी शोचनीय अवस्था का वर्णन करता है। एक अन्य स्थान पर शुनःशेप के एक सहस्र खूँटों से बाँधे जाने का उल्लेख है।[4]

जहाँ तक शुनःशेप के तीन यूपों से बाँधे जाने के उल्लेख का सम्बन्ध है, मन्त्रगत शब्दों से यह बात सिद्ध नहीं होती। मन्त्र में "त्रिषु द्रुपदेषु बद्धः" शब्द हैं जिनका सामान्य अर्थ है "वृक्ष के तीन स्थानों पर बँधा हुआ।" समस्त सूक्त की भावना को देखते हुए इसका बलि से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता और न ही कहीं बलि का उल्लेख है। बार-बार वरुण से बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना की गई है।[5] बार-बार

---

१. वा० सं० २६।२३ (अजः पुरो नीयते); २५.२५ (द्र० ऋ० १।१६२।२), २५. २७ (द्र० ऋ० १।१६२।४)

२. यदजः प्रथमं सम्बभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥
—अ० १०।७।३१

३. अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति। परन्तु—अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम्।

४. There is evidence to show that animals were offered to the fire at the rituals. At the ritual a wooden post was erected, that can be only for tying the animals which were to be killed and whose flesh was to be offered in the fire for the gods. Shunahshepa speaks about his precarious condition when he was tied to the three wooden posts—शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः। ऋ० १।२४।१३। Elsewhere Shunahshepa is spoken of as having been tied on to a thousand stakes.—शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद् यूपादमुंचो अशमिष्ट हि षः। ऋ० ५।२।७
—दि क्वि० ऑफ ऋ०, पृ० १२२

५. सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु (१२); विद्वान् अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् (१३); उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। (१५)

पाप अथवा कष्ट से मुक्ति की प्रार्थना की गई है।[1] सूक्त की समस्त भावना इसका प्रतीकार्थ जानने को प्रेरित करती है। द्रु संसाररूपी अथवा शरीररूपी वृक्ष है क्योंकि वह गतिशील (द्रु गतौ) अथवा नश्वर (दृ विदारणे) है। जिनके तीन स्थानों से वह मनुष्य (इन्द्रियसुखलोलुप) बँधा हुआ है उसकी वे तीन एषणाएँ वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा हैं अथवा भौतिक, पारिवारिक और सामाजिक मोह हैं जिनसे मुक्ति की कामना की गई है। ब्रह्ममुनि परिव्राजक के अनुसार यह शुनःशेप इन्द्रिय-सुखलोलुप जीवात्मा है जो वासनाओं से जकड़ा हुआ है और जो कारण, सूक्ष्म, स्थूल शरीररूप तीन खूँटों से बँधा हुआ, आदित्य अर्थात् अखण्ड सुख-सम्पत्तिरूप मुक्ति के स्वामी परमात्मा को मुक्ति के लिए पुकारता है।[2]

सायणभाष्य भी शुनःशेप के बलि के निमित्त तीन खूँटों पर बाँधे जाने की पुष्टि नहीं करता है। सायणभाष्य के अनुसार "लकड़ी के स्तम्भ के तीन स्थानों पर बँधे हुए शुनःशेप ने अदिति के पुत्र वरुण का आह्वान किया।"[3] प्रस्तुत सूक्त की भूमिका में भी सायण ने बलि का कोई उल्लेख नहीं किया। तदनुसार "राजसूय में अभिषेक के दिन मरुत्वतीय शस्त्र के समाप्त होने पर होता को इस सूक्त से आगे सात सूक्तों का उच्चारण पुत्रादि से परिवृत अभिषिक्त राजा के सम्मुख करना चाहिए।"[4]

जहाँ तक शुनःशेप के सहस्र खूँटों से बँधे होने का प्रश्न है, उस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य है कि मन्त्र में यूप शब्द एकवचन में है, अतः सहस्र संख्या का वाचक नहीं हो सकता। इसी कारण सायणभाष्य में इसकी व्याख्या "अनेक रूपों वाले यूप से युक्त किया" की गई है।[5] यह भी ध्यान देने की बात है कि बँधे हुए शुनःशेप को मुक्त करने का उल्लेख इस मन्त्र में है। यदि शुनःशेप को बलि के पशु के रूप में बाँधा गया था, तो उसके इस प्रकार मुक्त किये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता और वह भी (अग्नि) देवता द्वारा जिसको उस बलि का लाभ होनेवाला था। वस्तुतः यहाँ भी आध्यात्मिक अर्थ ही अभिप्रेत प्रतीत होता है। हमारे जीवन में अनेकों विषयोपभोग इच्छाएँ हैं जिनसे हम खूँटे के साथ पशु के समान बंधे रहते हैं। परम सुख प्राप्त करने के लिए उनसे मुक्ति की कामना मन्त्र में की गई है। सायण

---

१. कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् (९), राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि (१४)
२. वैदिक वन्दन, पृ० २५
३. बन्धनाय गृहीतः त्रिसंख्याकेषु द्रुपदेषु द्रोः काष्ठस्य यूपस्य पदे प्रदेशविशेषेषु बद्धः।
४. राजसूयेऽभिषेचनीयेऽहनि मरुत्वतीय परिसमाप्ते सति एतदादिकं सूक्तसप्तकम् अभिषिक्तस्य पुत्रादिभिः परिवृतस्य राज्ञः पुरस्तात् होत्राख्यातव्यम्।
५. अग्ने, नितराबद्धं शुनःशेपमृषिं सहस्रात् अनेकरूपात् यूपात् अमोचयः।

द्वारा मन्त्र की भूमिका में उल्लिखित विनियोग में भी आहवनीय की उपासना का निर्देश है, बलि का नहीं।[1]

यही महाशय एक अन्य मन्त्रांश (ऋ० १०।२७।१७) का अर्थ करते हैं—"वीरों ने एक मोटे बकरे को पकाया।"[2] यहाँ सायणभाष्य से भी उनके अर्थ की पुष्टि होती है।[3] परन्तु महाभारत में निर्देश है कि वेद में जहाँ अज या बकरे की बलि का उल्लेख है वहाँ वस्तुतः अज नामक बीजों से यज्ञ अभिप्रेत है। वहाँ बकरे की बलि नहीं दी जानी चाहिए।[4] अज नामक बीजों की विशेषता बताते हुए वायु-पुराण में कहा गया है कि ये वे बीज हैं जो तीन वर्ष पुराने हों और जो अंकुरित न हो सकते हों।[5] इसी प्रकार महाभारत में अन्यत्र बताया गया है कि यह सुना जाता है कि पुराने समय में व्रीहि का पशु (अर्थात् चावल के आटे का पशु) बनाया जाता था और उससे पुण्य लोकों के इच्छुक यजमान यज्ञ करते थे।[6] अतः उपर्युक्त मन्त्र में बकरे के पकाने का उल्लेख न मानकर, व्रीहिमय पशु मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। समस्त सूक्त की भावना भी उसके ही अनुकूल है।

एक अन्य मन्त्र में[7] पशुबलि का उल्लेख मानते हुए कुन्हन राजा ने उसका अर्थ इस प्रकार दिया है—"जिसे घोड़ों, भैंसों, साँडों, गौओं और बकरे की आहुति दी गई थी, उस अग्नि में।"[8] एक अन्य मन्त्र में[9] उल्लेख है कि उसने इन्द्र के लिए सौ भैंसों को पकाया।[10]

---

१. अंजसवे आहवनीयोपस्थाने शुनश्चिच्छेपमित्येषा।

२. The heroes cooked a fat goat. पीवानं मेषमपचन्त वीराः।
—क्वि० ऋ०, पृ० १२२

३. प्रजापतेः पुत्राः अंगिरसः स्थूलं मेदोमांसादियुक्तमित्यर्थः मेषम् अजम् अपचन्त।

४. अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि छागान्नो हन्तुमर्हथ॥ —महा० शान्ति० ३३७-४

५. यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते।
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः॥ —वा० पु० ५७-१००-१०१

६. श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः॥ —महा० अनु० ११५-४६

७. यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः॥
—ऋ० १०।९१।१४

८. For whom horses, buffaloes, oxen, cows and goats were brought and offered in that fire. —क्वि० ऋ०, पृ० १२२

९. शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्॥ —ऋ० ८।७७।१०

१०. He cooked a hundred buffaloes for Indra. —वही, पृ० १२२

ऋ० १।१६४।४३ में वीरों द्वारा धब्बोंवाले साँड के पकाये जाने का उल्लेख है[1] और एक पूर्ण सूक्त (ऋ० १।१६२) अश्वबलि से सम्बद्ध है।[2]

यहाँ सभी पशुओं के सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण की उक्ति स्मरणीय है जिसके अनुसार, पशु पुरोडाश ही है।[3] यजुर्वेद में अग्नि, वायु और सूर्य को पशु बताया गया है और उनके द्वारा यज्ञ करने का उल्लेख है। वस्तुतः ये उक्तियाँ सृष्टियज्ञ से सम्बद्ध हैं। अथर्ववेद में भी भिन्न-भिन्न पशुओं को भिन्न प्रकार की ओषधियाँ बताया गया है।[4] इसके अनुसार अश्व से अभिप्राय चावल के कण हैं, गौ (साँड) चावल हैं, मशक भूसी हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी अश्व को राष्ट्र तथा वीर्य बताया गया है।[5]

शतपथ ब्राह्मण की इस उक्ति से ही ऋ० १।१६२ की अश्वबलि का स्पष्टीकरण हो जाता है—"अश्वमेध का अर्थ देशवासियों के वीर्य तथा बल की वृद्धि करना तथा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास करना ही शास्त्रानुमोदित है।" यजुर्वेद (२३।१९-४०) के जिन मन्त्रों का अश्वमेध में विनियोग करके महीधरादि ने उनके अत्यन्त अश्लील अर्थ करके वेदों को कलंकित किया है, उनमें कहीं भी अश्व की हत्या का उल्लेख नहीं है। वस्तुतः इन मन्त्रों के देवता गणपति, राजप्रजे, प्रजापति, प्रजा, श्री, विद्वांसः, सभासदः आदि हैं। इससे स्पष्ट है कि इन मन्त्रों का वर्ण्य विषय राष्ट्र और उसकी शासन-व्यवस्था है।[6]

ऋ० १।१६२ के प्रसंग में भी प्रथम मन्त्र के भाष्य में सायण ने बताया है कि जिस अश्व का वर्णन इस सूक्त में है वह बहुत देवताओं के रूप में उत्पन्न वेगवान् या बहुत अन्न से युक्त आदितत्त्व है जिसका उषा आदि सिर आदि अवयव बताया गया है। अथवा, गन्धर्वों के कुल में उत्पन्न होने के कारण इसे देवताओं से उत्पन्न (देवजातस्य) कहा गया है।[7] इसी सूक्त के तृतीय मन्त्र में जिस बलि योग्य बकरे का

---

१. उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीराः—The heroes cooked the spotted bull. वही, पृ० १२२

२. There is whole song relating to the horse to be sacrificed. वही

३. पशवो वै पुरोडाशः। —तै० ब्रा० १।८।३।३

४. अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः। —अथर्व० ११।३।५
तथा—धाना धेनुरभवद्वत्सोऽस्यास्तिलोऽभवत्। —वही, १८।४।३२

५. राष्ट्रं वा अश्वमेधः। वीर्यं वा अश्वः। —श० ब्रा० १३।१।६।३

६. स्वा० विद्यानन्द, भूमिकाभास्कर, पृ० ३९

७. वाजिनः वेजनवतो बह्वन्नवतो वा देवजातस्य बहुदेवतास्वरूपेणोत्पन्नस्य। उषा आदीनामस्य शिर आद्यवयवत्वादिति भावः। उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः(बृ० ३।१।१।१) इत्यादि श्रुतेः यद्वा देवेभ्यो जातस्य गन्धर्वकुले उत्पन्नत्वात्।

वर्णन है उसे देवताओं का प्रिय पुरोडाश बताया गया है।[1] चतुर्थ मन्त्र में बकरे को पूषा का प्रथम भाग अर्थात् सूर्योदय से पूर्व रात्रि का अन्धकार बताया गया है। इस देवमार्गवाले सूर्यरूप दिव्य अश्व को मनुष्य ऋतुओं के अनुसार तीन बार चारों ओर ले-जाते हैं अर्थात् एक वर्ष में तीन रूपों में (ग्रीष्म, वर्षा, सरदी) इसे जानते हैं।[2] सप्तम मन्त्र में भी जहाँ अश्व को देवताओं के पोषण के लिए अच्छा बन्धु तथा देवताओं की आशा पूर्ण करनेवाला, सुन्दर पृष्ठवाला या दीप्तिमान् बताया गया है, वहाँ भी सम्भवतया सूर्य ही अभिप्रेत है।[3] इसमें कोई सन्देह नहीं कि नवम से द्वादश मन्त्र तक अश्व को वध करनेवाले, उसके अवयवों, रक्तादि तथा मांसादि का उल्लेख दिखाई देता है, परन्तु वास्तव में अश्व के अवयवों से किन तत्त्वों का अभिप्राय है, यह बात बृहदारण्यकोपनिषद् में स्पष्ट की गई है। तदनुसार, मेध्य अश्व का सिर उषा है, सूर्य उसकी दृष्टि है, वायु प्राण है, खुला हुआ मुख वैश्वानर अग्नि है, वर्ष घोड़े की आत्मा है, द्युलोक उसकी पीठ है, अन्तरिक्ष उदर है, पृथिवी पैर रखने का स्थान है, दिशाएँ उसके पार्श्व हैं, मध्य दिशाएँ पसलियाँ है, ऋतुएँ अंग हैं, मांस और पक्ष जोड़ हैं, रात्रि और दिन प्रतिष्ठा (पाँव) हैं, नक्षत्र अस्थियाँ और आकाश उसका मांस है, रेत उसका ऊवध्य अर्थात् पेट में अधपचा अन्न है, नदियाँ गुदा हैं, पर्वत यकृत् और तिल्ली हैं, ओषधियाँ और वनस्पतियाँ उसके लोम हैं, उदय होता हुआ दिन का पूर्वार्ध नाभि से ऊपर का भाग, नीचे जाता हुआ दिन का उत्तरार्ध कटि से नीचे का भाग है। जो बिजली का चमकना है, वह अश्व का जम्हाई लेना है। जो मेघ-गर्जन है, वह अश्व का शरीर हिलाना है। जो वर्षा है वह उसका मूत्र-विसर्जन है और वाणी ही उसकी वाणी है।[4] इस अवयव-समीकरण से अश्व का सूर्य होना स्पष्ट है।

---

१. एष छागः······अभिप्रियं यत्पुरोडाशं······जिन्वति।

२. यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः॥

३. उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उपवीतपृष्ठः।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम्॥

४. उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः। सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः संवत्सर आत्माश्वस्य मेध्यस्य। द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथिवी पाजस्यं दिशः पार्श्वे अवान्तरदिशः पर्शवः ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाण्यहोरात्राणि प्रतिष्ठा नक्षत्राण्यस्थीनि नभो मांसानि। ऊवध्यं सिकताः सिन्धवो गुदा यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतयश्च लोमानुद्यन्पूर्वार्धो निम्लोचनं जघनार्धो यद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनुते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक्॥—बृ० उप० १।१।१

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत सूक्त के उन्नीसवें मन्त्र[1] की व्याख्या करते हुए सायण ने भी इसे सूर्य मानकर इसका वध करनेवाला एक ऋतु अथवा काल बताया है और वध के समय उसे पकड़कर रखनेवाले दो रात और दिन हैं अथवा द्युलोक और पृथिवी हैं।[2] इसी सूक्त की इक्कीसवीं ऋचा में अश्व को सम्बोधित करके कहा गया है कि तू मरता नहीं है, तुझे कष्ट नहीं होता है, तू सुगम मार्गों से देवों के पास पहुँचता है।[3] परन्तु अश्वमेध में जिसका वध किया जाता है, वह अश्व मरता है। दूसरी ओर इस ऋचा में घोड़े की मृत्यु का अभाव बताया गया है। वस्तुतः इस ऋचा में सूर्यरूपी अश्व का वर्णन है, क्योंकि वह अस्त होने पर भी न तो अपना स्वरूप छोड़ता है और न ही नष्ट होता है; दूसरे दिन उदय होता हुआ वह प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। यही भाव दूसरे शब्दों में ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रकट किया गया है, जैसे कि ऐ०ब्रा० में कहा गया है कि "यह कभी अस्त नहीं होता, न उदय होता है⋯वह यह कभी नीचे भी नहीं गिरता है।"[4] स्वामी दयानन्द के अनुसार इस सूक्त में अश्वपालन का उपदेश और बिजली के प्रयोग का उपदेश दिया गया है।

देवप्रकाश पातंजल ने भी अपनी पुस्तक "ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ ऋग्वेद १।१३७-१६३" में इस सूक्त में पशुबलि का प्रबल निराकरण किया है। तदनुसार इस सूक्त का अश्व भौतिक-पार्थिव अश्व—पशु नहीं है, परन्तु ऋभुओं द्वारा अश्व से बनाया गया अश्व (अश्वादश्वम् अतक्षत ऋ० १।१६१।७) अर्थात् 'किरणें' हैं। हिरण्यगर्भ के निर्माण के पश्चात् ऋभुओं ने उसके चार भाग अर्थात् द्युलोक, पृथिवी, सूर्य और चन्द्रमा किये। इन चारों में चार प्रकार की किरणें थीं। वेद-मन्त्रों में कहीं भी अश्वपशु को काटने का विधान नहीं है। अश्व तथा उसके अवयवों के माध्यम से प्राकृतिक क्रियाओं का वर्णन किया गया है। प्रायः वेदमन्त्रों में इस

---

१. एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तन्य ऋतुः।

२. त्वष्टुः अस्य दीपस्य अश्वस्य विशस्ता विशसनकर्त्ता एक एव। स कः ? ऋतुः एतदुपलक्षितः कालात्मा तस्यैव सर्वेषामपि पर्यवसितृत्वात्। तथा द्वा यन्तारा नियमयितारौ अहोरात्रे देवौ द्यावापृथिव्यौ वा।

३. न वा उ एतन् म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।

४. अश्वमेधे आलभ्यमानोऽश्वो म्रियते। अस्यामृचि तु न वा उ एतन् म्रियसे इति पदैः स्पष्टमेवाश्वस्य मृत्योरभाव उक्तः। वस्तुतस्त्वस्यामृचि सूर्यरूपस्याश्व-स्यैव वर्णनं विद्यते। यतो हि सोऽस्तंगतोऽपि न स्वरूपं जहाति, न च रिष्यति। अपरदिने स एव पुनरुदीयमानः प्रत्यक्षमुपलभ्यते। अयमेवाभिप्रायः प्रकारा-न्तरेण ब्राह्मणग्रन्थेषु प्रकटीकृतः। तथा हि—स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति⋯स वा एष न कदाचन निम्लोचति।

—(ऐ० ब्रा० १४।६) श्रौतयज्ञमीमांसा, पृ० ८१

प्रकार के आलकारिक रूपक-मूलक वर्णन हैं अथवा इसके विपरीत प्राकृतिक क्रियाओं को पशुओं आदि का प्रतिरूप बनाया गया है। दुर्भाग्यवश इन रूपकों को तथा वेद की मूल भावना को न समझने के कारण परवर्ती अश्वमेध को प्रचलित कर दिया गया।[1] इस सूक्त के नवम मन्त्र में आये क्रविष् शब्द की व्याख्या के सन्दर्भ में पातंजल ने ऋ० १।१६१।१० में आये मांस शब्द के प्रति संकेत किया है, जिसका अर्थ उनके अनुसार मेघ अथवा जल की गूदे या मांस जैसी व्यवस्था है। तदनुसार क्रविष् मेघ-निर्माण की पूर्वावस्था होगा। मांस का निर्वचन यास्क द्वारा मन् धातु से किया गया है, क्योंकि वह (अपना मांस) सबके द्वारा सम्मानित होता है। एक अन्य निर्वचन के अनुसार मांस मानस अथवा मन है, क्योंकि मन उसे चाहता है अथवा मन उसके प्रति जाता है (मनस्+सद्) अर्थात् सब अपने मांस को चाहते हैं, उससे स्नेह करते हैं और इसीलिए उसकी रक्षा के ही उपाय नहीं करते अपितु उसकी वृद्धि के उपाय भी करते हैं।[2] □

(क्रमशः)

---

१. As a matter of fact Aśva is not an animal but the one that was fashioned by the Ṛbhus from Aśva (i.e. rays). After the formation of Hiraṇyagarbha, the Ṛbhus divided it into four parts (heaven, earth, sun and moon). In these four parts there were four kinds of rays (Aśva)......There is not injunction in the vedic texts for the actual cutting of the horse into pieces—not even in the present hymn (R.V. I. 162). The natural phenomena are described in terms of an earthly horse and his limbs. It is a natural practice of the poets to describe natural phenomena in terms of earthly objects and vice versa. Unfortunately this comparison led to the later institution of horse-sacrifice evolved by those who failed to appreciate the simile and the spirit of the poets. —क्रिटि० स्टडी० ऋ०, पृ० ४०३

२. मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन्त्सीदतीति वा। —निरुक्त ४।३

हमारे विशिष्ट प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	१५.००
प्रभु-मिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	६.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	५.००
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	४.००
आनन्द गायत्री-कथा	५.००
शंकर और दयानन्द	४.००
सुखी गृहस्थ	३.५०
सत्यनारायण कथा	३.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महातमा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	२५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	३.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शन	१००.००
चाणक्य नीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	८.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्तिसुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्तिसुधा	१५.००
सामवेद सूक्तिसुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंच महायज्ञ विधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्य रत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

श्रीकृष्ण चरित २५.००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४.००
आर्यसमाज विषयक
साहित्य परिचय २५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(सम्पादित) ग्यारह खण्ड ६६०.००

By Swami Satya Prakash Sarasvati

Founders of Sciences in
Ancient India
Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India
Two Volumes 600.00
Critical Study of
Brahmagupta and
His works 350.00
Geomatry in Ancient
India 350.00
God and His Divine Love 5.00

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली
चार खण्ड २४०.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय ४५.००
सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा ५०.००
मैं ब्रह्म हूँ ४.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा ६.००
ईशोपनिषद् ४.५०

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० विष्णदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की
साधना व संघर्ष ६.००

सुरेशचन्द वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप ५.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ८.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	४.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००

घर का वैद्य
लेखक : सुनील शर्मा

प्याज	३.५०
लहसुन	३.५०
गन्ना	३.५०
नीम	३.५०
सिरस	३.५०
तुलसी	३.५०
आँवला	३.५०
नींबू	३.५०
पीपल	३.५०
आक	३.५०
गाजर	३.५०
मूली	३.५०
अदरक	३.५०
हल्दी	३.५०
बरगद	३.५०
दूध-घी	३.५०
दही-मट्ठा	३.५०
हींग	३.५०
नमक	३.५०
बेल	३.५०
अनाज	३.५०
साग सब्जी	३.५०
फिटकरी	३.५०
शहद	३.५०

बाल साहित्य

बाल शिक्षा दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.५०
स्वामी श्रद्धानन्द	२.५०
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	०.७५
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	२.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	२.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	२.५०
नैतिक शिक्षा	सप्तम	२.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम	२.५०
नैतिक शिक्षा	नवम	३.००
नैतिक शिक्षा	दशम	३.००

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	६.००

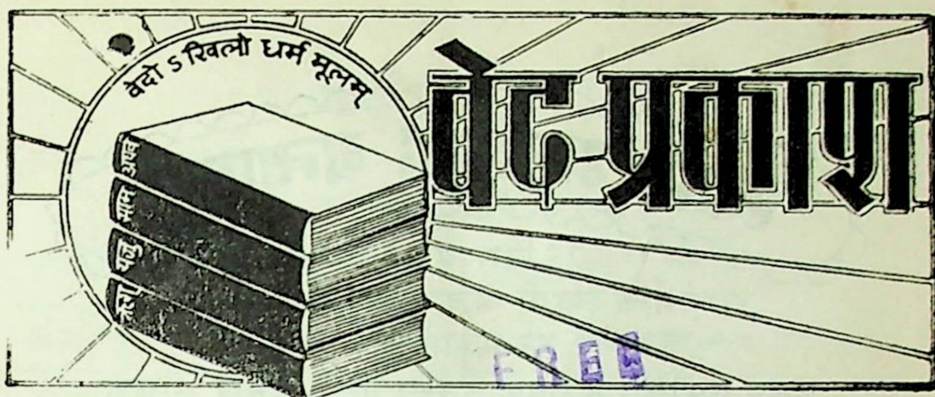
राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

डॉ० मनोहरलाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सडक, दिल्ली से प्रसारित किया।



उसे भक्त ही पाते हैं

अग्ने मृड महाँ अस्यय आ देवयुं जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ।। सामवेद २३ ।।

पदार्थः—(अग्ने) पूजनीय ईश्वर ! हमको (मृड) सुख दो (महान् असि) तुम महान् हो और (देवयुम्, जनम्) देवयजन चाहनेवाले मनुष्य को (अयः) प्राप्त होनेवाले हो । (बर्हिः) यज्ञस्थल में (आ सदम्) विराजने को (आ-इयेथ) प्राप्त होते हो ।

भावार्थः—परमात्मा अपने भक्त उपासकों को सुख देता है और प्राप्त होता है, अतः परमानन्ददायक है। परन्तु देवयुं अर्थात् देव परमात्मा का यजन-पूजन चाहनेवाले को ही, न कि अभक्त, अनुपासक, नास्तिक आदि को। वह महान् है। यद्यपि वह सर्वान्तर्यामी होने और सर्वगत होने से सब ही के हृदय में विराजता है, परन्तु देवयुं पुरुष के ही हृदय में उसको मिलता है, अन्य साधारण को नहीं।

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

23 दिसम्बर 1987

राष्ट्रभक्त स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर प्रकाशित।

इसमें संकलित हैं उनके समस्त ग्रन्थ, प्रमुख भाषण, आत्मकथा तथा नवलिखित सचित्र जीवन चरित।



हर राष्ट्र-भक्त के लिए संग्रहणीय

- मैकाले की दूषित शिक्षाप्रणाली के स्थान पर प्राचीन ऋषि अनुमोदित शिक्षा प्रणाली के समर्थक **स्वामी श्रद्धानन्द** शिक्षा के क्षेत्र में अनन्य प्रयोगी तथा टैगोर की समकक्षता में शिक्षा शास्त्री थे। उन्होंने राष्ट्रीय महत्व के गुरुकल कांगड़ी की स्थापना की।
- अंग्रेजों की संगीनों के सामने छाती खोलकर खड़ा होने वाला **वीर राष्ट्र-भक्त संन्यासी श्रद्धानन्द** का एक तेजस्वी रूप था। कर्मवीर गांधी को महात्मा गांधी बनाने वाला व्यक्ति **देशभक्त स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- दिसम्बर 1919 में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष **स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- 1883 से 1926 बलिदान होते समय तक **श्रद्धानन्द** का इतिहास आर्य समाज का राष्ट्र का इतिहास है।
- अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, शुद्धि आन्दोलन, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में रत रहते हुए **स्वामी श्रद्धानन्द** भारतीय एवं विदेशी नेताओं शिक्षा-शास्त्रियों और जन-मानस के हृदय-सम्राट् बन गए।

गोविन्दराम हासानन्द

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ७]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [फरवरी १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीशवरानन्द सरस्वती

गतांक से आगे—

वैदिक यज्ञों का स्वरूप

(पशुबलि के विशेष सन्दर्भ में)

लेखक—**डॉ० कृष्ण लाल**
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस सम्बन्ध में विश्व के क्रमिक विकास को भी ध्यान में रखना होगा। तदनुसार आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी और पृथिवी से ओषधियाँ उत्पन्न हुईं—'आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः'—इससे प्रकट है कि अग्नि (अश्व) के जन्म के पश्चात् जल अस्तित्व में आया। यह जल पृथिवी पर सहस्रों वर्षों तक गिरता रहा और उससे समुद्र बना। इस आदि-मेघ की प्रक्रिया को वेद में अश्वमेध यज्ञ के रूपक द्वारा समझाया गया है।[1]

१. Now as regards the word Kraviṣ, which is usually translated as amam, mansam (raw flesh), we refer to the word mānsa, which means 'a cloud' (cf R.V. I. 161.10). Therefore Kraviṣ must denote the early stage of cloud-formation. In this connection the gradual evolution of the universe, is also to be considered. This shows that waters (āpaḥ) came into being after the birth of Agni (aśva). These waters fell on this earth for thousands of years and created the ocean. This phenomena of primeval cloud is explained in the Veda by the allegory of horse-sacrifice.

—क्रिटि० स्टडी० ऋ०, पृ० ४०४

कुन्हन राजा ने स्वयं आगे चलकर यह स्वीकार किया है कि देवों को सोम और मधु तो प्रिय बताया गया है, परन्तु ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं है कि देव पशु-मांस खाकर आनन्दित होते हों। तथापि इस विद्वान् का निष्कर्ष यही है कि देवों को पशुओं की आहुति अवश्य दी जाती थी।[1] इसको पूर्वाग्रह अथवा पाश्चात्य भाष्यों का अनुकरण ही कहा जायेगा।

ऊपर दिये गए अनेक उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि इन महोदय ने बहुत बार सायण की भी अवहेलना की है। जहाँ सायण ने भी पशुबलि का समर्थन नहीं किया, वहाँ भी इन्होंने पशुबलि मान ली है। परन्तु वेदों की पूर्ण भावना पशु-बलि का समर्थन नहीं करती।

के० आर० पोतदार ने भी सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया है कि निश्चयपूर्वक ऋग्वेद में सामान्य पशुयज्ञ की स्थापना नहीं की जा सकती। उनके अनुसार यह ध्यान देने योग्य है कि यज्ञीय पशु के अत्यन्त विरले उल्लेख हैं और पशु-सम्बन्धी आहुतिद्रव्य का उतना विस्तृत सांगोपांग वर्णन उपलब्ध नहीं होता जितना घृत और सोम की आहुतियों का प्राप्त होता है।[2] उनका यह भी कहना है कि केवल एक अश्वमेध सूक्त (१।१६२) के आधार पर ऋग्वेद-काल में पशु-यज्ञ की सामान्य प्रवृत्ति का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।[3]

फिर भी उन्होंने कुन्हन राजा द्वारा प्रदत्त पशु-यज्ञ के सन्दर्भ तो दिये ही हैं जिनका ऊपर खण्डन किया जा चुका है, इसके अतिरिक्त दो नये सन्दर्भ भी दिये हैं। एक सन्दर्भ के अनुसार अग्नि के द्वारा रोगरहित अनमीव भोजन की स्वीकृति

---

१. Gods are spoken of as fond of Soma and honey. But there is no such reference to the delight which the gods take in eating the flesh of animals. Yet it is certain that animals were offered to the gods. —क्वि० ऋ०, पृ० १२२

२. The existence of a common animal sacrifice cannot be said to have been conclusively established. It may be noted that the sacrificial beast is very rarely referred to and the details of animal offering are not available to the same extent as those of the offerings of ghṛta and soma.

—सेक्रीफ़ाइस इन द ऋग्वेद, पृ० ११७

३. Merely on the basis of the Aśvamedha hymn (1.162) inference cannot be drawn about the common prevalence of the animal sacrifice in the days of the Ṛgveda. (वही)

के द्वारा सम्भवतया पशु आहुति संकेतित होती है।[1] दूसरे सन्दर्भ में आहुति के रूप में पशु की चर्बी का उल्लेख है।[2]

प्रथम सन्दर्भ में सायण के अनुसार अग्नि से स्तोताओं को रोगादि से रहित महान् ऊर्जा अन्न को प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।[3]

यदि अनमीवा का सम्बन्ध जुषन्ताम् के साथ भी माना जाये तो भी यहाँ ऐसा अन्न अभिप्रेत है जो रोगजनक न हो, अर्थात् अग्नि को जिस व्रीहि आदि अन्न की आहुति दी जाये वह सड़ा-गला रोगजनक नहीं होना चाहिए। वही महान् है। अग्नि उसे स्वीकार कर वायु शुद्ध करके रोगों को दूर करता है। द्वितीय सन्दर्भ में यद्यपि सायण के भाष्य से पशुबलि सिद्ध होती है क्योंकि उसके अनुसार यह पशुयाग में चर्बी की आहुति के लिए अग्नि का आह्वान है।[4] परन्तु यह ध्यान देने की बात है कि मेदसः शब्द से अगला ही शब्द मन्त्र में घृतस्य है। अतः यह स्पष्ट है कि घृत का वर्णन यहाँ स्निग्ध पदार्थ के रूप में है। सम्पूर्ण सूक्त में घृत का ही वर्णन है—पशुबलि का कोई संकेत नहीं। इसके विपरीत मेदस् के बिन्दुओं को घृतवाले (घृतवन्तः) कहा गया है।[5] बूंदों को घृत में से टपकनेवाली (घृतश्चुतः) कहा गया है।[6] अतः यहाँ चर्बी के स्थान पर घृत का अर्थ लेना ही सम्पूर्ण सूक्त की भावना के

---

१. At III-22.4 (Juṣantām anamīvā iṣo mahīḥ) the acceptance of the undiseased(anamīvāḥ)food by fires very possibly indicates the animal offering. Pressing-stones are said to be associated with the cooked flesh at X-94.3 (nyūṅkhayante adḥ pakva āmiṣi. —वही, पृ० ११८

२. III. 21. also refers to the drops of animal fat as offering. —(cf. IV. 2.5) वही, पृ० ११८

३. पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः। जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः॥ अद्रोग्धारो यूयम् अनमीवाः रोगादिवर्जिताः महीः महत्यः इषः ऊर्जाः रोगादिरहितान्यन्नान्यस्मभ्यं प्रयच्छत।

४. हे अग्ने, इमं यज्ञं पशुयागं देवेषु समर्पय (१), मेदसः वपाख्यस्य हविषः घृतस्य च बिन्दून् भक्षय (१), घृतोपेताः मेदोरूपस्थ हविषः बिन्दवः क्षरन्ति (२), घृतयुक्तमेदोबिन्दुभिःप्रज्वाल्यसे (३), मेदोरूपस्य हविषः घृतस्य बिन्दवः स्रुवन्ति (४), मेदः वपाख्यं हविः मध्यतः पशोर्मध्यभागात् उद्धृतम् ते तुभ्यं प्रयच्छामः (५)।

५. ऋ० ३।२१।२—घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः।

६. तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।—ऋ० ३।२१।४

अधिक अनुकूल है। पोतदार द्वारा संकेतित एक अन्य मन्त्र[1] में भी "गोमान्, अविमान्, अश्वी" विशेषणों से यज्ञ के गौओं, भेड़ों और अश्वों की आहुतियों से युक्त होने की भ्रान्ति होती है, परन्तु ध्यान देने की बात है कि इसी मन्त्र में यज्ञ को इडावान् (अन्न से युक्त अथवा अन्न की वृद्धि करनेवाला) भी कहा गया है। यदि गोमान्, अविमान् और अश्वी का अर्थ इन पशुओं की आहुतियों से युक्त किया जाये तो क्या मन्त्र के "प्रजावान्" का अर्थ प्रजा की आहुतियों से युक्त और "सभावान्" का अर्थ सभा की आहुतियों से युक्त करेंगे? वस्तुतः यहाँ मतुप् प्रत्यय के दो भाव हैं। एक भाव के अनुसार यज्ञ का गौओं, भेड़ों, घोड़ों, इडा से युक्त होने का अर्थ है, परिणाम में इनसे युक्त होना अर्थात् यज्ञ इन सबका प्रदाता है। यज्ञ से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्राणी—यह सर्वमान्य क्रम है। दूसरे भाव के अनुसार प्रजा और सभा से युक्त होने का अर्थ है प्रजा अर्थात् बन्धु-बान्धवों तथा सभा अर्थात् जनसामान्य का वहाँ उपस्थित होना। सम्पद्यमान यज्ञ को देखने के लिए सब आएँगे तो उन्हें एक ओर मानसिक शान्ति प्राप्त होगी तो दूसरी ओर यज्ञ की प्रेरणा भी मिलेगी।

सम्भवतया पशुयाग के अत्यल्प उदाहरणों और उनकी अनिश्चितता के कारण पोतदार महोदय को यह कहने को बाध्य होना पड़ा कि इन (पशुयाग के) अत्यल्प सन्दर्भों से पशु-याग की सामान्य प्रवृत्ति का आभास नहीं होता। यदि पशुयागों की सामान्य प्रवृत्ति होती तो अपने आस-पास प्रवर्तमान यज्ञानुष्ठानों के अवलोकन करते हुए तथा अभिनव रचनाओं के लिए उनसे प्रेरणा ग्रहण करनेवाले कवियों ने पशुयागों का और अधिक बार उल्लेख किया होता।[2]

पोतदार महोदय ने आगे चलकर प्राचीन काल में पशुयाग का अभाव मानने के निम्नलिखित सात कारणों का परिगणन किया है—

(क) बन्धनार्थ यूप के उल्लेख विरले हैं।

(ख) देवस्तुतियों में घी और सोम की आहुतियों का प्रायः उल्लेख है परन्तु पशुओं की आहुतियों का नहीं है।

(ग) ब्राह्मण ग्रन्थों में पशुयाग में आप्ती सूक्तों का बलात् विनियोग किया

---

१. गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान्॥ —ऋ० ४।२।५

२. These few references do not give an impression of the animal offerings being prevalent commonly. The poets observing the sacrificial performances going on round about and deriving inspiration from them for fresh compositions, would certainly have referred to the animal offerings more frequently if they were in vogue. —सेक्रि० इन ऋग्वेद, पृ० ११८

गया है क्योंकि अर्थ को देखते हुए उनके मन्त्र पशुयाग से सम्बद्ध नहीं हैं।

(घ) जिस प्रकार सोम की आहुति तैयार करने का उल्लेख है, उस प्रकार पशु-हवि तैयार करने की विधि नहीं बताई गई।

(ङ) अन्य आहुतियों के आधार पर देवताओं के विरुद हैं, परन्तु पशु-बलि के आधार पर नहीं हैं।

(च) यज्ञ में जिस पवित्रता का ध्यान रखा जाता है, वह पशुयाग में सम्भव नहीं है।

(छ) सोम के साथ पशुयाग के ब्राह्मणगत उल्लेख से विद्वानों को पशुयाग के अस्तित्व के विषय में भ्रान्ति हुई। परन्तु ऋग्वेद में सोम के साथ कहीं भी पशुबलि का उल्लेख नहीं है।[1]

इस विद्वान् ने आगे चलकर ऋग्वेद में पशुयाग का खण्डन करते हुए यह भी कहा है कि पुरोहितों द्वारा आहुतियों में इन्द्र अथवा वायु को समर्पित सोम के साथ जिन गौओं का उल्लेख है उनसे केवल दूध, स्तुतियाँ और पवित्र पेय तैयार करने के लिए प्रयुक्त जल अभिप्रेत है। यही बात उन पत्नियों (गौओं) के विषय में भी संगत है जिनके साथ पुरोहित पुरुष सोम का संयोग कराता है।[2]

समस्त वैदिक यज्ञों को सृष्टियज्ञ बताते हुए पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने पशुओं को आसुरयज्ञ अथवा सृष्टिपूर्व का विनाशक पक्ष माना है। तदनुसार "सृष्टि-प्रक्रिया में सर्जन भी और पूर्व-वस्तुओं का विनाश भी होता है। अतः सृष्टियज्ञ के क्रिया-कलाप के वर्णन में सर्जन और विनाश, दोनों का निर्देश होना आवश्यक है।"[3]

जहाँ पुरुषसूक्त में यज्ञ द्वारा यज्ञ किये जाने का उल्लेख है (यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः—वा० सं० ३१।१६) वहाँ यज्ञ अग्नि का वाचक है। अन्यत्र अग्नि को पशु बताया गया है (वा० सं० २३।१७)। यह अग्नि वस्तुतः हिरण्यगर्भरूपी महदण्ड है।[4] इसी अग्नि को तीन भागों में बाँटकर देवों ने द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी में

---

१. वही, पृ० १३५

२. The cows which accompany soma, offered by the priests of Indra, VIII. 3.1–13, 14; 81.3; 82.6 or to vāyu, 1.134.2, can only be milk, prayers and also the waters used for the preparation of the holy-drink. The same observation holds good in the case of wines with whom the priest brings about a union of the "male" Soma IX. 6.6.

—सेक्रि० इन ऋ०, पृ० १३६

३. वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, पृ० ३६२

४. आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—ऋ० १०।१२१।७

स्थापित किया।[1] यही अग्निरूपी पशु का आलम्भन अथवा उसकी बलि है। इसी प्रकार वायु नामक पशु भी अनेक रूपों में विभक्त ग्रहोपग्रहों के निर्माण में सहायक होता है।[2] इसी वायु का कार्य-भेद या स्थान-भेद से उनचास मरुतों के रूप में विभाजन होता है।[3] आदित्य-पशु की बलि की कथा बहुत रोचक है। जब अपने सर्जन के पश्चात् सूर्य अपने स्थान पर स्थिर हो गया तो सूर्य के जाज्वल्यमान भाग पर उसी प्रकार मैल जम गया जैसे पिघले हुए लोहे पर कुछ समय पश्चात् मैल जम जाता है। उससे सूर्य का प्रकाश अवरुद्ध हो गया। इसे तै० सं० में स्वर्भानु असुर द्वारा सूर्य का तम से बींधना कहा गया है।[4] सूर्य के इस दोष का निवारण दैवी शक्तियों ने चार चरणों में पूर्ण किया। प्रथम बार जिस आवरण को दूर किया वह कृष्णवर्ण की भेड़ बनी, दूसरी बार वह आवरण लाल वर्ण का था, तीसरी बार जिस आवरण को हटाया वह श्वेत वर्ण की अवि थी और अन्त में अस्थि के ऊपर अर्थात् अन्तभाग के जिस आवरण को हटाया वह वशा अवि हुई।[5] अब उस वशा अवि का आदित्यों की कामना के लिए आलभन किया। उससे पृथिवी फैली, उसपर ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। वशा (वन्ध्या) का अर्थ है कि उस समय पृथिवी पर घास, तृण कुछ भी पैदा नहीं हुए थे। पृथिवी को अवि (भेड़) कहने का अभिप्राय यह है कि वह अवि के समान पिलपिली अथवा नरम थी। इसे ही वा० सं० २०।१२ "अविरासीत् पिलिप्पिला" शब्दों से कहा है।[6]

---

१. स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनन् शक्तिभिः रोदसिप्राम्।
तमू अकृण्वंस्त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः॥
—द्र० वै० सि० मी०, पृ० ३७०; ऋ० १०।८८।१०

२. जैसे इस शरीर में गर्भावस्था में एक ही प्राणवायु दशधा विभक्त होकर शरीर-अवयवों के निर्माण में सहयोग देता है, वैसे ही ग्रहोपग्रहों के निर्माण में एक ही वायुतत्त्व अनेकधा विभक्त होकर सहायक होता है—वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥ (ऋ० १।२।१) —वही, पृ० ३७१

३. वही

४. स्वर्भानुरसुरः सूर्यं तमसाविध्यत्। (तै० सं० २।१।२) स्वः सूर्यस्य भां प्रकाशं नुदति अपसारयति इति स्वर्भानुः। (वै० सि० मी०, पृ० ३७२-७४)

५. तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन्, तस्य यत् प्रथमं तमोऽपाघ्नन् सा कृष्णाविरभवत्, यद् द्वितीयं सा फल्गुनी, यत् तृतीयं सा वलक्षी, यद्ध्यस्थाद् अपाकृन्तन् साविर्वशा समभवत्। (तै० सं० २.१.२) द्र० वै० सि० मी० पृ० ३७३

६. साविर्वशाभवत्। ते देवा अब्रुवन् देवपशुर्वा अयं समभूत्। कस्मा इममालप्स्यामहा इति। अथ वै तर्ह्यल्पा पृथिव्यासीत्। अजाता ओषधयः। तामविं वशामादित्येभ्यः कामायालभन्त, ततो वा अप्रथत पृथिवी, अजायन्त ओषधयः।
(तै० सं० २।१।२) द्र० वै० सि० मी०, पृ० ३७६-७७

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक का पशुयज्ञों के सम्बन्ध में निष्कर्ष यह है कि श्रौत-यज्ञ सृष्टियज्ञ के रूपक हैं। प्राचीन घटनाओं के रूपक जो नाटक रूप में प्रस्तुत होते हैं, उनमें और सब घटनाओं का निदर्शन तो यथावत् होता है, परन्तु युद्ध में वध-बन्धन आदि का निदर्शन नहीं कराया जाता। इसी प्रकार श्रौतयज्ञान्तर्गत पशु-याग जो सृष्टिगत आसुर यज्ञ के नाटक रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उसमें भी पशुओं का वध दिखाना ऋषि-मुनि अनुचित मानते थे। अतः उन्होंने पश्वाहुति के स्थान पर पुरोडाश अथवा घृताकृति का विधान करके यज्ञ की पूर्णता सम्पन्न करने का विधान किया था।[1]

पशुयाग के प्रसंग में शुक्ल यजुर्वेद के तेरहवें अध्याय के पाँच मन्त्रों(४७-५१)[2] पर विचार करना भी आवश्यक है।

उवट-महीधर के अनुसार अग्निचयन के अवसर पर पहले यज्ञीय पशुओं, पुरुष, अश्व, गौ, भेड़ और बकरे के सिरों को उखा (हाँडियों) पर टिकाया जाता है। फिर एक-एक करके इन पाँचों मन्त्रों द्वारा उन्हें मुक्त कराया जाता हैं और उनके स्थान पर अन्य किन्नर अथवा कृष्णमृग, गौर (गौरवर्ण के मृग), गवय (नीलगाय), जंगली ऊँट और अष्टपद शरभ नामक जंगली पशुओं को अर्पित किया जाता है जिससे अग्नि उनके द्वारा अपना शरीर पोषण करे और उसका शोक या सन्ताप इन

---

१. वही, पृ० ३८०

२. इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुं सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। मयुं मे शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ (४७)

इमं मा हिंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु। गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥(४८)

इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्यमध्ये। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्। गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गवयं ते शुगृच्छतु......॥(४९)

इममूर्णायं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्। त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्। उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। उष्ट्रं ते शुगृच्छतु......॥(५०)

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे। तेन देवा देवतामग्रमायंस्तेन रोहमायन्नुपमेध्यासः। शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। शरभं ते शुगृच्छतु........॥ (५१)

जंगली पशुओं को तथा उन व्यक्तियों को प्राप्त हो जिनसे हम द्वेष करते हैं ।'

इन पाँच मन्त्रों में से दो मन्त्रों के "मा हिंसीः परमे व्योमन्"(सर्वोच्च आकाश में हिंसित न करो) और इसी अध्याय के बयालीसवें और चवालीसवें मन्त्रों में भी इन्हीं शब्दों की उपस्थिति से सहज ही यह अनुमान हो जाता है कि यहाँ किन्हीं आकाशीय पदार्थों की क्षति न करने की प्रार्थना की जा रही है। दूसरी ओर जो अग्नि इन मन्त्रों में सम्बोधित है वह भी भौतिक जलानेवाला अग्नि नहीं हो सकता जिसमें आहुतियाँ डाली जाती हैं । इस अग्नि के विषय में कहा गया है कि "यह वह अग्नि है जो अग्नि से उत्पन्न हुआ और जो द्युलोक में व्याप्त होकर पृथिवी के ऊपर की दीप्ति से उत्पन्न हुआ, जिससे विश्वकर्मा अथवा प्रजापति ने प्रजाओं को उत्पन्न किया, हे अग्नि, तेरा क्रोध उस (प्रजापति) को छोड़ दे ।"[2] यहाँ इस वर्णन से सूर्य अभिप्रेत है, वह स्रष्टारूप अग्नि से उत्पन्न होता है। अगले ही मन्त्र में यह सूर्यरूप अग्नि और भी स्पष्ट है क्योंकि वहाँ उसे सब देवों का मुख तथा मित्र, वरुण और अग्नि का नेत्र कहा गया है। वह सूर्य उदय होते ही द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से पूर्ण कर देता है, वही स्थावर-जंगम दोनों का आत्मा है ।[3] हिरण्यगर्भरूपी अग्नि के मध्य यह सूर्य सुवर्णमय बैंत अथवा पुरुष के रूप में है। उसमें घृत अर्थात् दीप्ति और गति की अनेक धाराएँ दिखाई देती हैं । जैसे हृदय के भीतर मन से पवित्र की जाती हुई अन्न की धाराएँ हों उसी प्रकार उसमें सरिताएँ अर्थात् गति की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं क्योंकि सूर्य सभी ग्रहोपग्रहों तथा गतियों, क्रियाओं

---

१ अग्नेरुत्तीर्य वेदेर्बहिर्दक्षिणे उदङ्मुखस्तिष्ठन्निमं मेत्युत्सर्गसंज्ञैः पंचमन्त्रैः पुरुषादिशिरांस्युपतिष्ठतेऽध्वर्युः । हे अग्ने, सहस्राक्षः सहस्रमक्षीणि यस्य सः हिरण्यशकलरूपसहस्रनेत्रो मेधाय यज्ञाय चीयमानः चयनेन संस्क्रियमाणः सन् त्वमिमं द्विपादं पशुं पुरुषरूपं मा हिंसीः मा दह । यदि वादनेच्छा तर्हि मेधं शुद्धं मयुं पशुं तुरंगवदनं किं पुरुषं पशुं जुषस्व सेवस्व भक्षयेत्यर्थः । तेन मयुभक्षणेन तन्वः ज्वालारूपास्तनूः चिन्वानः पोषयन्निह निषीद । ते तव शुक् शोकः सन्तापो मयुम् ऋच्छतु प्राप्नोतु । किं च यं पुरुषं प्रति वयं द्वेषं कुर्मः तं ते शुक्ऋच्छतु ।। (महीधर)

२. यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ।।
—वा० सं० १३।४५

३. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।।
—वा० सं० १३।४६

का केन्द्र है।[1] इस अध्याय के अन्य अनेक मन्त्रों में भी सूर्य का, और अग्निरूप सूर्य का उल्लेख है।[2] एक मन्त्र (१४) में इस सूर्यरूपी अग्नि को मूर्धा अर्थात् उच्चस्थ, द्युलोक का कूबड़ तथा पृथिवी का पति या पालनकर्त्ता बताया गया है।[3]

प्रस्तुत मन्त्रों में इसी सूर्य को अग्नि कहकर सम्बोधित किया गया है। यह आदिसूर्य जब अपने स्थान पर मेघ अथवा सृष्टियज्ञ हेतु निश्चित किया जा रहा था तब यह अपने स्रष्टा से अभिन्न था। इसीलिए इसे पुरुष के ही समान (ऋग्वेद १०।९०।१) सहस्राक्ष कहा गया है। उससे प्रार्थना की गई है कि दो पाँववाले पशु अर्थात् पुरुष की हिंसा न करो। इस पशु के दो पाँव वस्तुतः समस्त सृष्टि के द्वन्द्वों अथवा युगलों के प्रतीक हैं। इसी को सम्भवतया द्विपदी गौ के नाम से (ऋग्वेद १।१६४।४१)अभिहित किया गया है। अमृत और मृत्यु, दिन और रात, प्रकाश और अन्धकार, सृष्टि और प्रलय, अमूर्त और मूर्त, अनिरुक्त और निरुक्त, देव और असुर, जन्म और मृत्यु, प्राण और अपान, स्त्री और पुरुष—सब द्विपदीय गौ के रूप हैं। एक का द्वितभाव में आना, यही सृष्टि है। प्राणों(पुराणों ?)में इसे ही हिरण्यांड या सोने के अण्डे के दो शकल वा भाग कहा गया है। एक भाग से द्युलोक और दूसरे भाग से पृथिवी की कल्पना होती है।[4] फिर सूर्य से प्रार्थना की गई है कि तू विकृत मुख वाले पशु के प्रति भी प्रसन्न हो और उसके प्रति भी अपनी दीप्ति फैलाकर अपने तेज की प्रतिष्ठा को बढ़ा। तेरी दीप्ति उस पशु तक जाए, तेरी दीप्ति उस व्यक्ति तक भी जाए जिससे हम द्वेष करते हैं। यहाँ सबके प्रति कल्याण अथवा सुधार की भावना अभिव्यक्त है। वेद प्राकृतिक सन्तुलन के प्रति सजग हैं। इसलिए वन्य पशुओं की भी हिंसा कहीं अभिप्रेत नहीं है। जितने भी अरण्य-पशु मृग, सिंह, व्याघ्र आदि हैं, वे वन में हितकर हैं, उन्हें हम नागरिकों से दूर रख हे पृथिवि ![5] इसी प्रकार वन-भूमि की इसलिए स्तुति की गई है क्योंकि वह अञ्जनानुलेप प्रदान करनेवाले वृक्षों की सुगन्ध से युक्त है। वह बिना किसानों के भी बहुत-से अन्न और

---

१. सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः॥
—वा० सं० १३।३८

२. द्र० मन्त्र सं० ८-१३, १५, १८, २२-२४, ३०, ३३, ३६, ३७, ४०, ४१

३. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति॥

४. वासुदेवशरण अग्रवाल, वेदरश्मि, पृ० ५७

५. ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहाः व्याघ्रा पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अपबाधयास्मत्॥
—अथर्व० १२।१।४९

भोज्यपदार्थ देती है तथा वह मृगों अर्थात् विविध वन्य पशुओं की माता है।[1]

इन मन्त्रों में "शुगृच्छतु" वाक्य भी विचारणीय है। उवट-महीधर तथा अन्य अनेक विद्वानों ने शुक् का अर्थ शुच् (शोके) धातु से शोक अथवा सन्ताप किया है। तदनुसार भाव यह है कि अग्नि द्वारा भक्षित होने का सन्ताप उन पशुओं को प्राप्त हो। परन्तु यहाँ शुच् शब्द की व्युत्पत्ति दीप्त्यर्थक शुच् धातु से भी सम्भव है। शुचि, शुक्र, शोचि आदि शब्दों के मूल में दीप्त्यर्थक शुच् धातु ही विद्यमान है। यास्क ने शुक् और शुचि शब्दों के मूल में ज्वलनार्थक शुच् धातु को माना है।[2] दुर्गाचार्य के मतानुसार यह निघण्टु का धातु ज्वलनार्थक ही है।[3] इसी प्रकार द्वितीय मन्त्र में जिस एक खुर वाले, शब्द करते हुए अश्व पशु को न मारने की प्रार्थना की गई है वह एक अविभक्त प्राण[4] अथवा वाणी[5] का प्रतीक है। उसके स्थान पर गौर का निर्देश है जिससे सूर्य अपनी प्रतिष्ठा का विस्तार करे और अपनी दीप्ति से गौर पशु को प्रदीप्त करके उसे प्रकृति के लिए उपयोगी बनाए। गौर का प्रसिद्ध अर्थ भैंसा है। भैंसा काला है—इसे जल प्रिय है। इसके द्वारा सृष्टि-पूर्व की जल की अवस्था संकेतित है। जलों का अभिप्राय सृष्टि की कारणावस्था से है जिसमें रूपों की पृथक्-पृथक् सत्ता नहीं रहती किन्तु सब रूपों का अन्तर्भाव एक में हो जाता है। यह प्रकृति की "गर्भावस्था या साम्यावस्था है।"[6] सूर्य से प्रार्थना की गई है कि वह अपनी दीप्ति से इस गर्भावस्था को प्रकाशित करे, उसे प्रकट करे। इसी क्रम में अगले मन्त्रों में परमव्योम में कार्य-जगत् के रूप में प्रकट होती हुई सैकड़ों धाराओंवाली, सहस्रों रूपोंवाली सलिल के मध्य से आविर्भूत होती हुई गौ की[7] त्वष्टा की प्रजाओं के प्रथम जनक[8] आवृत (अव्यक्त) वरुण (आवरक प्रकृति) के केन्द्रभूत और दो पाँववाले चार पाँववाले

---

१. अंजनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम्॥ —ऋ० १०।१४६।६.

२. शुचिः शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः। —नि० ६।१

३. यद्यप्ययं शोकार्थ एव गणे पठितस्तथापि शोको दीप्तिरपि। तथा च निगमे पठ्यते अर्कशोकैरिति। वस्तुतस्तु नैघण्टुकोऽयं धातुः।
—(निघं० १।१६।५) शोचति ज्वलतीत्यर्थः।

४. हरिशंकर जोशी, वैदिक विश्वदर्शन, पृ० १९३

५. वासुदेवशरण अग्रवाल, वेदरश्मि, पृ० ५६

६. वही, पृ० ४९

७. वही, पृ० ५०-५२

८. वही, पृ० ५५

पशुओं के त्वचारूप आवरण की, और जिस अजन्मा अर्थात् अव्यक्त तत्त्व ने[1] अग्नि अर्थात् स्रष्टा की दीप्ति से उत्पन्न होकर सबसे पहले उसे देखा उससे ही सब देव-देवता बने और उन्नति को या सृष्टि को प्राप्त हुए, उसकी हिंसा न करने की प्रार्थना है। भाव यह है कि सृष्टि के आरम्भ में सूर्य इन सब सर्जक तत्त्वों की तो रक्षा करता ही है, साथ ही जो कम उपयोगी प्रतीत होनेवाले तत्त्व हैं, उन्हें भी अपनी दीप्ति से प्रकाशित कर समाज के लिए उपयोगी बनाता है। यहाँ कहीं भी पशुहिंसा अभिप्रेत नहीं है।

उपर्युक्त मन्त्रों की आध्यात्मिक व्याख्या के अनुसार उनमें परिगणित पशु मनुष्यों की वृत्तियों के प्रतीक हैं। उनमें से पुरुष (मनुष्य का विवेक, मननशीलता), अश्व (गति और उत्तम वाणी), गौ (सर्वोपकारक बुद्धि), भेड़ (आच्छादन करके सबकी रक्षा करने की भावना) और अज (जीवात्मा तथा परमात्मा का सम्यक्ज्ञान) तो सुरक्षित रहने चाहियें और मयु (दुर्भावना के कारण मुखविकार), गौर (जंगली भैंसे) के समान अपने-आपको बड़ा समझने की श्रेष्ठता-ग्रंथि), गवय (नीलगाय के समान अन्य प्राणियों पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति), जंगली ऊँट (अपनी श्रेष्ठता के द्वारा सबको आतंकित करने की प्रवृत्ति) तथा शरभ (दो पाँवों को भी आठ पाँव समझकर दूसरों को दबाकर आगे निकलने की प्रवृत्ति) का नाश होना चाहिए।

गृह्यसूत्रों के विनियोग[2] के आधार पर उवट-महीधर ने वा०सं० के एक मन्त्र[3] का विनियोग अष्टका कर्म में माना है। तदनुसार गाय का वध करके उसकी चर्बी छोटी नलियों में प्रवाहित की जाती है और अग्नि से प्रार्थना की जाती है कि वह उस चर्बी को मृत पितरों के पास पहुँचाए। ये चर्बी की नालियाँ उन पितरों तक परलोक में पहुँचें जिससे कि हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त हो।[4] परन्तु वा० सं० के इस मन्त्र से पूर्व के मन्त्रों में उत्तम ज्योति प्राप्त करने के लिए सूर्य की स्तुति[5], सौ

---

१. अजस्यरूपे किमपि स्विदेकम्। —वही, पृ० ५६

२. मध्यमा गवा, तस्यै वपां जुहोति वह वपां जातवेदः पितृभ्यः—पा० गृ० ३.३.९, शां० गृ० ३.१३.३, आ० गृ० २.४.१३, द्र० लेखक का 'गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग', पृ० ४८५

३. वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैतान् वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुल्या उप तान्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्नमन्ताम् स्वाहा। —वा० सं० ३५-२०

४. मही०—हे जातवेदः पितृभ्योऽर्थाय त्वं वपां धेनुसम्बन्धि चर्मविशेषं वह प्रापय। पराक्रान्ते दूरेऽपि यत्र यस्मिन् देशे स्थापिता नेनान् पितॄन् त्वं जानासि तत्र वह। तस्याः वपाया निस्सृत्य मेदसः धातुविशेषस्य नद्यः तान् पितॄन् प्रति उपस्रवन्तु।

५. उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्। —वा० सं० ३५-१४

वर्ष जीने की इच्छा[१], अग्नि से वायु को पवित्र करने, अन्न और रस प्रदान करने तथा कष्टों को दूर करने की प्रार्थना[२] एवं अग्नि से सबकी रक्षा उसी प्रकार करने की प्रार्थना की गई है जैसे पिता पुत्रों की करता है।[३] इन मन्त्रों में चर्बी की आहुति की कोई संगति दिखाई नहीं देती। अतः यह सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि पूर्ववर्ती मन्त्रों के क्रम में ही इसमें भी कोई जीवन-रक्षा से सम्बद्ध विचार होना चाहिए।

वपा बीजवपन और व्यापक रूप से कृषि की विद्या है। जो इस विद्या के विशेषज्ञ जातवेदाः हैं उनसे प्रस्तुत मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि आप इस विद्या को उन दूर स्थानों तक पहुँचाइये जहाँ आप अपने पूर्वजों को बसा हुआ जानते हैं अथवा आप उस वपा अर्थात् बीजवपन-योग्य भूमि की ऋतुओं के लिए अर्थात् बीज बोने की ऋतु के अनुसार प्राप्त होइए। स्निग्ध जल की धाराएँ उन पूर्वजों को अथवा उन ऋतुओं को यथोचित रूप में प्राप्त हों। इन पूर्वजों की सज्जनों के प्रति सदिच्छाएँ अथवा आशायुक्त क्रियाएँ ठीक-ठीक प्राप्त होती रहें।[४]

पं० प्रियरत्न आर्ष के शब्दों में, "इस मन्त्र में जनक महानुभावों तथा ऋतुओं के लिए पितर शब्द आया है और उनके लिए आश्रमभूमि अथवा कृषिभूमि को तैयार करके आशीर्वादों और ऋतुफलों के प्राप्त करने का विधान है। यहाँ यज्ञ का लेश भी नहीं है। अन्य विद्वानों ने यज्ञ की कल्पना की है जो ठीक नहीं है।[५]

अन्त्येष्टि के एक मन्त्र[६] के आधार सर मैक्डानेल ने यह निष्कर्ष निकाला है कि "मृतक के दाह-संस्कार में एक गाय का वध अनिवार्य कर्म था क्योंकि उसके मांस का उपयोग शव को लपटने के लिए किया जाता था।"[७]

---

१. शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन।—वही०, १५
२. अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥—वही, १६
३. घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमान्॥ वही०, १७
४. हे जातप्रज्ञान, यत्र पराके दूरस्थाने एतान् पितॄन् निहितान् स्थितान् जानासि तेभ्यः पितृभ्यो जनकेभ्यो विद्याशिक्षादातृभ्यो वा ऋतुभ्यो वा वपां वपनयोग्यां भूमिं वह प्राप्नुहि। स्निग्धा जलप्रवाहधारास्तान् जनान् ऋतून् वा प्राप्नुवन्तु। एषां सत्सु साध्व्य आशिष इच्छा आशंसनीयाः क्रिया वा सम्यक् प्राप्नुवन्तु। (दयानन्दभाष्य)
५. यमपितृपरिचय, पृ० २८९
६. अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च।
नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते॥—ऋ० १०।१६।७
७. The ritual of cremation of the dead required the slaughter of a cow as an essential part, the flesh being used to envelop dead body. —वेदिक इंडेक्स, खं० २

इस भ्रान्त निष्कर्ष का आधार मन्त्रस्थ "गोभिर्व्ययस्व" (गौओं के द्वारा पहुँचाओ) है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि 'गोभिः' शब्द बहुवचन में है और एक मनुष्य के शव को लपेटने के लिए एक ही गाय का मांस पर्याप्त होता है। अतः 'गोभिः' से यहाँ तद्धितार्थ में गौओं से प्राप्य कोई अन्य पदार्थ अभिप्रेत होना चाहिए और वह शवदाह के समय आहुतिरूप में अर्पित तथा शव के अंगों पर लपेटा गया घी ही हो सकता है। इसी क्रम में 'पीवसा मेदसा' भी घी के ही द्योतक हैं—वह घी जो पिघला हुआ नहीं है, अपितु गाढ़ा और मोटा है।[1]

'व्ययस्व' में पुरुषव्यत्यय के द्वारा प्रथम पुरुष का रूप मानकर की गई एक अन्य व्याख्या के अनुसार मन्त्र का अर्थ है—"अग्नि के घर इस चिता को यह मृत शरीर अपनी गौओं अर्थात् इन्द्रियों अथवा नाड़ियों के साथ पहुँच जाए अर्थात् उसमें पूरा समा जाए (चिता छोटी न हो) और अपने मांस और चर्बी के साथ उस जलती हुई चिता में पहुँचे। धर्षक तथा प्रत्येक वस्तु को मिथ्या या नामशेष करनेवाला अति-दृढ़ यह अग्नि उस प्रेत को विशेष रूप से जलाता हुआ कहीं इधर-उधर गिरा (विखेर) न दे।[2]

इससे यह स्पष्ट है कि गाय के मांस से शव को लपेटने की कल्पना निराधार है। इसका आधार केवलमात्र आश्वलायन गृह्यसूत्र (४।३।२०) और तदनुसारी सायण का विनियोग है जिसके अनुसार गाय की चर्बी मृतक के विभिन्न अंगों पर रखी जाती है। परन्तु यह प्रथा अन्त्येष्टि में कहीं देखने में नहीं आती। अतः केवल एक गृह्यसूत्र के विनियोग के आधार पर वेदमन्त्र में गोहिंसा मानना सर्वथा अनुचित है।

प्रसिद्ध विवाहसूक्त अथवा सूर्या सूक्त (ऋ० १०।८५) के तेरहवें मन्त्र[3] के आधार पर भी अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने विवाह के अवसर पर गौओं अथवा साँडों

---

१. "......केवल घी एक ऐसा पदार्थ है कि जो तीन से अधिक गौओं से लेना आवश्यक होगा। मृत शरीर को अग्नि देने के पूर्व उसको घी से लिपटा देना आवश्यक होता है।" —प्राचीन भारत में गोमांस—एक समीक्षा, पृ० २०३

२. अग्नेर्वर्म गृहमग्निस्थानं वेदिम् (चिताम्) वर्मेति गृहनाम (निघं ३-४) गोभि-रिन्द्रियैर्नाडीभिर्वा परिव्ययस्व अयं प्रेतः परितो गच्छेत् सर्वतः प्राप्नुयात्। पुरुषव्यत्ययः(व्यय गतौ भ्वादि०)तथा च पीवसा मांसेन मेदसा वपसा च तामेव ज्वलन्तीं वेदिं प्रोर्णुष्व प्रसरेत्। कुतः, धृष्णुः प्रसह्यकारी, जर्हृषाणोऽतिशयेन वस्तुमात्रमलीककर्तुं शक्तिर्यस्य स दधृक् प्रगल्भोऽतिदृढ़ एषोऽग्निः विशेषं दग्धं करिष्यन् नो चेत् इतस्ततः पातयेत्। —यमपितृपरिचय, पृ० ५७

३. सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते॥ —ऋ० १०।८५।१३

के वध का प्रतिपादन किया है। उनके मतानुसार इन पशुओं को भोजन के निमित्त ही काटा जाता था।[1]

इस मन्त्र के सम्यक् ज्ञान के लिए इससे पूर्व और पश्चात् के मन्त्रों पर दृष्टि-पात करना आवश्यक है। उससे सबसे पहले तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्णन किसी लौकिक विवाह का वर्णन नहीं है, अपितु आकाशीय तत्वों के विवाह का आलंकारिक वर्णन है।

इन मन्त्रों में सूर्य, द्युलोक, भूमि, सोम, अश्विनौ, सविता आदि का उल्लेख है तथा सविता द्वारा सूर्या (उषा) को पति सोम के पास भेजे जाने का वर्णन है। एक मन्त्र (१५) में सूर्या के दो बारातियों (अश्विनौ) के उसके पास आने का वर्णन है और उनके रथ के दो चक्रों में एक के ही विद्यमान होने का तथा दूसरे का गुह्य होने का उल्लेख (१६)। एक मन्त्र (११) में दो कानों को रथ के दो चक्र कहा गया है। इस प्रकार इन मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ भी अभिप्रेत होता है। तदनुसार वधू सूर्या बुद्धि शक्ति है और उसका पिता सूर्य परमपिता परमेश्वर है तथा वर सोम षोडश कलायुक्त आत्मा है। वधू के पास बारात में आनेवाले दोनों अश्विनौ श्वास-उच्छ्वास हैं इत्यादि।[2]

स्वयं सायण और तदनुसारी विल्सन ने भी "गावो हन्यन्ते" का अर्थ "गौएँ मारी जाती हैं" न करके "गौएँ हाँकी जाती हैं" किया है।[3] इस मन्त्र में 'मारने' अर्थ की भ्रान्ति का मूलकारण हन् धातु का अधिक प्रचलित हिंसा अर्थ है। परन्तु प्रायः इस तथ्य को भुला दिया जाता है कि पाणिनीय धातुपाठ में इसके हिंसा और गति दोनों अर्थ दिये गए हैं।[4] यह सर्वसामान्य नियम है कि जहाँ किसी पद के एक से अधिक अर्थ उपलब्ध हों, वहाँ प्रसंगानुसार संगत अर्थ ही ग्रहण किया जाना चाहिए। यह पहले ही देख चुके हैं कि सम्पूर्ण सूक्त की भावना के अनुसार (चाहे उसे पार्थिव विवाह के प्रसंग में क्यों न माना जाए) "मघा नक्षत्र में गौएँ मारी जाती हैं और अर्जुनी अथवा फल्गुनी में वधू ले लाई जाती है" अर्थ की संगति नहीं होती। इस मन्त्र से पहले मन्त्र में सूर्या द्वारा मन के रथ पर आरोहण का वर्णन है।[5] भोजन और मांस का कोई प्रसंग नहीं।

---

१. The marriage ceremony was accompanied by slaying of oxen, clearly for food.

२. प्राचीन भारत में गोमांस—एक समीक्षा, पृ० १९१-१९३

३. मघानक्षत्रेषु गावो हन्यन्ते दण्डैः ताड्यन्ते प्रेरणार्थम्। (सायण) आर ड्रिव्हन एलाँग (विल्सन)

४. हन् हिंसागत्योः।

५. अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम्॥ —ऋ० १०।८५।१२

वस्तुतः इस मन्त्र में वधू के पतिगृहगमन का क्रम बताया गया है, अर्थात् सविता ने सूर्या को जो दहेज आदि स्त्रीधन दिया, पहले वह गया। उस स्त्रीधन के रथों के बैलों को मघा नक्षत्र में हाँका जाता है और फल्गुनी में वधू को ले-जाया जाता है। भाव यह है कि मघा नक्षत्र होते ही पूर्वा और उत्तरा—ये फल्गुनी नक्षत्र आते हैं जो अगले दिन अथवा उससे अगले दिन के द्योतक हैं। अतः जिस दिन वहतु या स्त्रीधन भेजा जाता है उससे अगले दिन या एक दिन छोड़ वधू ले-जाई जाती है।[1] आकाशीय दृष्टि से सूर्या और कुछ नहीं, सूर्य की प्रभा है जो अपने पति चन्द्रमा में जाकर वहाँ रमती है।[2] सविता अर्थात् सूर्य द्वारा दिया गया सूर्या का वहतु उसके प्रकाश का भण्डार है जिसकी गौएँ अथवा किरणें मघा नक्षत्र अथवा माघ मास में क्षीण हो जाती हैं (मारी जाती हैं) और फल्गुनी नक्षत्रों में अर्थात् फाल्गुन मास में फिर वह प्रकाश बढ़ जाता है अथवा उसकी प्रचण्डता बढ़ जाती है।

अश्वमेध यज्ञ में विनियुक्त मन्त्रों के प्रसंग में भ्रान्ति का मुख्य कारण मेध्, आलभ् और सम्-ज्ञप् धातु हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि ऋग्वेद में मेध् और संज्ञप् का तिङन्त प्रयोग नहीं है। आलभ् का भी केवल एक क्तान्त प्रयोग—आलब्धम् ऋ० १०।८७।७ में हुआ है। मेध् (कृदन्त) प्रयोग भी केवल एक मन्त्र में हुआ है जहाँ उवट, महीधर, सायण ने उसका अर्थ मेध्य अश्व करके उसके अंगों को देवताओं की आहुति के योग्य पकाने का उल्लेख किया है।[3]

यहाँ भी अश्वांगों के पकाने का अर्थ सीधा मन्त्रार्थ नहीं है। सीधा मन्त्रार्थ है मेध अर्थात् पवित्र अन्न को ठीक से पकाएँ। इन धातुओं के अर्थों को वेद की भावना के अनुसार समझा नहीं गया। धातुपाठ में मेध् धातु के अर्थ मेधा-संगमन (इकट्ठा होना या इकट्ठा करना) और हिंसा करना दिये गए हैं।[4] परन्तु कर्मकाण्डियों तथा विलासी राजाओं के प्रयोग के कारण इनमें से केवल हिंसा अर्थ ही प्रसिद्ध एवं प्रचलित हो गया। इस सम्बन्ध में महाभारत के अश्वमेधपर्व में विविध पशुओं के इकट्ठा किये जाने और उनकी प्रदर्शनी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यज्ञ-मण्डप में जितने भी स्थल और जल के पशु हैं उन सबको राजाओं ने वहाँ लाया हुआ देखा। वहाँ गौएँ थीं, भैंसें थीं, वृद्ध स्त्रियाँ थी, जलचर जन्तु, पंजोंवाले पशु और पक्षी थे। गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पशु, अण्डों से उत्पन्न होनेवाले जन्तु, स्वेदज कृमियों और उद्भिज्ज वनस्पतियों तथा पर्वतों और अनूपों में उत्पन्न होनेवाले

---

१. प्राचीन भारत में गोमांस—एक समीक्षा, पृ० १९७-१९८
२. प्राचीन भारत में गोमांस—एक समीक्षा, पृ० १९४
३. यद्वध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति। सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु॥ —ऋ० १।१६२।१०, वा० सं० २५-३३
४. मेधृ मेधासंगमनयोर्हिंसायाम्।

जन्तुओं को सबने देखा। इस प्रकार वह यज्ञमण्डप पशुधन, गोधन और धान्यादि को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और राजा यह सब देखकर बहुत आश्चर्यचकित हुए।[1]

इन मन्त्रों के प्रसंग में स्वामी दयानन्द के भाष्य का निम्नलिखित आकलन उद्धरण के योग्य है—"उस (दयानन्द-भाष्य के अश्वमेध के परिकल्प)ने अश्वमेध के एक उदात्त, ग्राह्य, मानव और समाज तथा इतर प्राणिलोक के लिए कल्याणकारक परिकल्प को विद्वानों, चिन्तकों और सामान्य जनों—सभी स्त्रियों, पुरुषों के विचार और परिष्कारपूर्वक अपनाने के लिए प्रस्तुत किया है।" हरिशंकर जोशी के अनुसार योग-प्रक्रिया में सर्वप्रथम इन्हीं बाहरी अश्वों (प्राणों) के मेध (प्राणायाम, प्रत्याहारादि) किये जाते हैं, जिससे बुद्धि में शुद्धता मेध्यता आती है, तब आगे क्रम चलता है। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र में यही बताया गया है—यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये। दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ (ऋ० ५।२७।४) [जिसने प्राणायाम आदि के द्वारा शुद्धि को प्राप्त किया है, ऐसे बुद्धिमान् को जो 'मुझे भी दो' कहकर माँगता है, उसे वह ज्ञान देता है, उस नियमपालक सत्याचरणवाले को वह मेधा देता है।][2]

जहाँ तक सम्पूर्वक ज्ञप् धातु का प्रश्न है, यह सम्पूर्वक ज्ञा (ज्ञानार्थक) का णिजन्त रूप है। सम्-ज्ञा का अर्थ पूर्ण परिचय होता है। इसी अर्थ में इसका प्रयोग संगठन सूक्त (ऋ० १०।१९१) के एक मन्त्र में हुआ है—देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते। अथर्ववेद के एक मन्त्र में[4] संज्ञपनम् तथा संज्ञपयामि शब्दों का प्रयोग 'ज्ञान देना, बताना या एक-दूसरे से मिलाना' अर्थों में हुआ है। इस अर्थ की

---

१. स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन प्रभो।
सर्वानिव समानीतान् अपश्यंस्तत्र वै नृपाः ॥
गाश्चैव महिषीश्चैव तत्र वृद्धस्त्रियोऽपि च।
औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वयांसि च ॥
पर्वतानूपजातानि भूतानि ददृशुश्च ते ॥
एवं प्रमुदितं सर्वं पशुगोधनधान्यतः।
यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा परं विस्मयमागताः ॥ —महा०अश्व० ८५।३२-३५
—द्रष्टव्य : प्राचीन भारत में गोमांस—एक समीक्षा, पृ० १९६

२. सुधीर कुमार गुप्त, 'दयानन्द-भाष्य में अश्वमेध-प्रकरण, वेदव्याख्या और वैदिक विचारधारा', पृ० ७४

३. वैदिक विश्वदर्शन, पृ० १९३

४. संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥ —अथर्व० ६।७४।२

पुष्टि उसके पूर्ववर्ती मन्त्र से भी होती है ।[1] इन दोनों मन्त्रों का अर्थ निम्नलिखित है—

तुम्हारे शरीर मिले हुए हों, मन सम्पृक्त हों, व्रत एक-जैसे हों। ब्रह्मणस्पति कल्याणमय प्रभु ने तुम्हें एकत्र किया है। तुम्हारे मनों में मिलकर ज्ञान उत्पन्न हो; हृदयों में प्रेम हो। प्रभु के नाम पर किये श्रम से मैं तुम्हें उत्तम ज्ञान प्राप्त कराता हूँ।[2]

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में[3] एक आख्यायिका है जिसमें मन और वाणी के बीच बड़प्पन के लिए किये गए झगड़े का उल्लेख है। उसमें अन्त में कहा है—"वाणी ने कहा—तुझसे बड़ी तो मैं ही हूँ। तुझे जो ज्ञान है, उसे प्रकट तो मैं करती हूँ, मैं ही उसे दूसरों को अच्छी प्रकार जतलाती हूँ—संज्ञापयामि।"[4]

इस आधार पर और प्रसंग के अनुसार अग्नीषोम-प्रकरण में भी संज्ञापन का अर्थ बकरे को काटना न होकर उसका सम्यक् ज्ञान कराना ही होगा क्योंकि आगे चरित्र सुधारने की बात वहाँ कही गई है।[5]

इस प्रसंग में तृतीय भ्रमोत्पादक धातु आ पूर्वक लभ् है। "प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते" (वा०सं० २४।२९) आदि वाक्यों को उद्धृत करके सिद्ध किया जाता है कि वेद में पशु-हिंसा विद्यमान है, क्योंकि ऐसे वाक्यों का अर्थ किया जाता है—प्रजापति के लिए पुरुषों और हाथियों को मारता है। पकड़ना, स्पर्श करना अर्थ में आ पूर्वक लभ् के अनेक उदाहरण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। उनमें से कुछ ये हैं—१. अथास्य दक्षिणांसमधि हृदयमालभते। —पा० गृ० २।२।१६

(अब आचार्य इस-[ब्रह्मचारी] के दाएँ कन्धे के ऊपर से हृदयदेश का स्पर्श करता है।)

२. वरो वध्वा दक्षिणांसमधि हृदयमालभते। —पा० गृ० १।८।८

(वर वधू के दायें कन्धे के ऊपर से उसके हृदयदेश का स्पर्श करता है।)

३. कुमारं जातं पुरान्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्येन प्राशयेत्।
—आश्व० गृ० १।१५।१

(दूसरों के द्वारा स्पर्श किये जाने से पूर्व नवजात शिशु को सुवर्ण के द्वारा घी और मधु खिलाए।)

---

१. सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत्॥ वही, १

२. भूमिका भास्कर, पृ० ३७

३. अथ ह वागुवाच—अहमेव त्वच्छ्रेयस्यस्मि यद्वै त्वं वेत्थाहं तद्विज्ञापयाम्यहं संज्ञपयामीति।—श० ब्रा० १।४।५

४. भूमिका भास्कर, पृ० ३८

५. वही।

४. वत्सस्य समीपानयनार्थमालम्भः स्पर्शो भवति ।

—मीमांसा दर्शन २।२।७० पर सुबोधिनी टीका

(बछड़े को समीप लाने के लिए आलम्भ-स्पर्श होता है ।)

५. नामधेयप्रतिलम्भमेकेषाम् । —निरुक्त १।१४

(कुछेक का नाम ग्रहण होता है ।)

६. न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः । —कठोप० १।१।२५

(ऐसी मनुष्यों द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकतीं ।)

अतः वेदवाक्यों में भी आलभ् का अर्थ स्पर्श होगा, मारना नहीं।[1] पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने आ पूर्वक लभ् के इस अर्थ की पुष्टि में एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण खोज निकाला है।[2] चरकसंहिता में उल्लेख है कि आरम्भ में यज्ञों में पशुओं का स्पर्श किया जाता था (समालभनीयाः)। उनका आलम्भन अर्थात् हिंसा नहीं की जाती थी।[3]

चरक के इस वचन से दो बातें स्पष्ट हैं। एक तो यह कि आरम्भ में अर्थात् संहिताकाल में पशुओं का वध नहीं किया जाता था, केवल स्पर्श किया जाता था। दूसरी यह कि चरक के समय तक लभ् और लम्भ् पृथक् अर्थों में दो पृथक् धातु माने जाते थे।[4]

परन्तु हम ऊपर वैदिक साहित्य के उदाहरणों में लभ् और लम्भ् दोनों का समान प्राप्ति के अर्थ में प्रयोग देख चुके हैं। वस्तुतः लोभी नास्तिकों ने यज्ञों में हिंसा की प्रवृत्ति आरम्भ की। वेदवाक्यों को समझे बिना उन्होंने मिथ्या बातों को सत्य के समान प्रसारित कर दिया।[5]

चरक के समय में लभ् और लम्भ् दो पृथक् धातु होते हुए भी जब लम्भ् धातु के अधिकतर प्रयोग लुप्त हो गए तो कुछ बचे हुए प्रयोगों का साधुत्व दिखाने के लिए पाणिनि इत्यादि वैयाकरणों ने लभ् धातु में नुम् आगम का विधान कर दिया। इस प्रकार एक ही धातु मान लिये जाने के कारण आलम्भ धातु का हिंसा-अर्थ आलभ् धातु के प्रयोगों में भी प्रविष्ट हो गया। अतः आलभते और आलभेत पदों

---

१. स्वा० विद्यानन्द सरस्वती, भूमिका भास्कर, पृ० ३८

२. श्रौतयज्ञमीमांसा, पृ० ३२

३. आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीया बभूवुः, नालम्भाय प्रक्रियन्ते स्म ।
……पशूनामेवाभ्यनुज्ञानात् पशवः प्रोक्षणमापुः । —चिकित्सा, १९।४

४. डुलभष् प्राप्तौ (१।५६४); लभि (लम्भ्) धारणे (१।३६२)
—काशकृत्स्न धातुपाठ

५. लुब्धैर्वित्तपरैर्ब्रह्मन् नास्तिकैः सम्प्रवर्तितम् ।
वेदवादानविज्ञाय सत्याभासमिवानृतम् ।। —महा० शान्ति० २६३-६

का अर्थ व्याख्याकारों ने 'आलम्भन' करें (काटें) कर दिया।[1]

लभ् धातु के इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यजुर्वेद (अ०२३-२४) के अश्वमेध में विनियुक्त मन्त्रों में भी जहाँ इस धातु का प्रयोग हुआ वहाँ उसका अर्थ काटना न होकर स्पर्श करना ही होगा। "वसन्त के लिए कपिंजल पक्षियों का आलम्भन करता है, प्रजापति के लिए पुरुषों, हाथियों का आलम्भन करता है।" इत्यादि मन्त्रों[2] के प्रसंग में कात्यायन श्रौतसूत्र का विधान है कि इन कपिंजल आदि पशु-पक्षियों के चारों ओर जलती हुई लकड़ी घुमाकर इन्हें छोड़ देते हैं।[3] उवट-महीधर आदि भाष्यकारों ने भी इस विषय में लिखा है कि इन पशु-पक्षियों में से सभी वन्य पशुओं को छोड़ देना चाहिए, उनकी हिंसा नहीं करनी चाहिए।[4] इसी प्रकार जहाँ (वा० सं०—३०।५–२२) पुरुषमेध-प्रकरण में "ब्रह्मणे···ब्राह्मणम्" (ब्रह्मा के लिए ब्राह्मण का आलम्भन करता है) इत्यादि विधानों में भी इन पुरुषों को पर्यग्निकरण के पश्चात् कपिंजल आदि के समान छोड़ दिया जाता है।[5] इससे स्पष्ट है कि जिन पशु-पक्षियों को यूपान्तरालों में बाँधे जाने का विधान है, उनके द्वारा राष्ट्र के सभी पशु-पक्षियों की प्रदर्शनी की जाती थी।

इसी कारण अश्वमेध को राष्ट्र कहा गया है (राष्ट्रं वा अश्वमेधः)। वास्तव में अश्वमेध का अश्व भी सूर्य का प्रतीक है। इस अश्व के द्वारा राजा 'सार्वभौम राजा' की पदवी प्राप्त करता है। उधर आकाश में भी सूर्य सार्वभौम राजा है। वही अश्व है। ऊपर ऋ० १।१६२ के प्रसंग में भी यह तथ्य उस सूक्त के अनेक मन्त्रों में प्रकट हुआ है कि अश्व सूर्य ही है। अश्वमेधीय अश्व के जो भी लक्षण बताए गए हैं वे सूर्य के ही हैं। सूर्योदय से डेढ़ घण्टा पूर्व रात्रि का अन्धकार होता है और पूर्व दिशा में ऊपर आकाश में सूर्य की किरणें व्याप्त होती हैं।

यही अश्व का अगला भाग काला होने और माथे पर श्वेत चिह्न होने का

---

१. उत्तरकाले यदा लम्भधातोर्भूयांसः प्रयोगा विलुप्ताः, तदा केषांचिदेवावशिष्टानां प्रयोगाणां साधुत्वनिदर्शनाय पाणिनिप्रभृतिभिर्वैयाकरणैः लभ धातावेव नुमागस्य विधानं कृतम्। इत्थं च धात्वेककल्पनायाः कारणाद् आलम्भ धातोर्यो हिंसार्थ आसीत् स आलभधातोः प्रयोगेष्वपि संक्रान्तः। अत-एव आलभते-आलभे तयदयोः आलम्भनं कुर्यादित्यर्थो व्याख्याकारैः कृतः।

—श्रौ० मी० पृ० ५७

२. वसन्ताय कपिंजलानालभते, प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते।

—वा० सं० २४।२०, २९

३. कपिंजलादीन् उत्सृजन्ति पर्यग्निकृतान्। —का० श्रौ० २०।६।१९

४. तेष्वरण्याः सर्वे उत्स्रष्टव्याः, न तु हिंस्याः। —वा० सं० २४।४० पर भाष्य

५. कपिंजलादिवत् उत्सृजन्ति ब्राह्मणादीन्। —का० श्रौ० २१।१।१२

रूपक है। उषा के पश्चात् सूर्योदय होने पर प्रकाश हो जाता है। यही अश्व का दूसरा आधा श्वेत भाग है। राजा की चार पत्नियाँ—वस्तुतः चार प्रमुख दिशाएँ हैं। राम ने अश्वमेध यज्ञ किया, परन्तु उनकी चार पत्नियाँ नहीं थीं। वस्तुतः आधिदैविक अश्वमेध की सारी क्रियाओं का अनुकरण भौतिक द्रव्यमय यज्ञ में उसी सीमा तक किया जाता है, जितना सम्भव हो। इसी प्रकार अश्वमेध के घोड़े का एक वर्ष तक घूमना सूर्य की वार्षिक गति का रूपक है। इसी प्रकार घोड़े के साथ जिन कवचधारी रक्षकों के चलने का वर्णन है, वे सूर्य की किरणें ही हैं। घोड़े के सभी अंगों का रस्सियों से बाँधा जाना सूर्यमण्डल के सब ओर फैली हुई उसकी किरणों का प्रतीक है।[1]

स्वयं यजुर्वेद में इस बात के प्रमाण हैं कि यह अश्व सूर्य ही है। एक मन्त्र में बताया गया है कि अश्व महान् प्रजननात्मक तत्त्व था।[2] वही दधिक्रावा नाम का जगत् का धारण-पोषण करते हुए चलते रहनेवाला, विजयी, वेगवान् तथा अन्न से युक्त सूर्यरूपी घोड़ा है। हम उसकी स्तुति करते हैं। वह उत्तम अन्न के द्वारा हमारे मुखों को सुरभित करे और हमारी आयु को दीर्घ करे।[3] इसी प्रसंग में अश्व के विषय में कहा गया है कि ऋतुएँ और पर्व उसे विभाजित करके शान्त करें। संवत्सर के तेज से अपने-अपने यथोचित कर्मों के द्वारा ये सब उसे शान्त करें। (शमी=कर्म, निघण्टु) आधे मास(पक्ष) और मास तुझे शान्त करते हुए तुझे तीक्ष्ण करें और दिन-

---

१. अश्वमेधीयाश्वस्य यानि लक्षणानि निरूपितानि तानि आधिदैविकस्य जगतः सूर्यस्यैव सन्ति। सूर्योदयात् सार्धघण्टापूर्वं रात्रेस्तमो भवति, पूर्वस्यां दिशि ऊर्ध्वमाकाशे व्याप्ताः सूर्यरश्मयः। इदमश्वस्य पूर्वतनः कृष्णभागो ललाटे च श्वेतं लक्ष्मः। उषसोऽनन्तरं सूर्योदये सति प्रकाशो भवति। अयमश्वस्यापरोऽर्ध-श्वेत भागः। चतस्रः पत्न्यः पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिणरूपाश्चतस्रो दिशः। रामोऽश्वमेधं चकार, परन्तु तस्य चतस्रः पत्न्यो नासन्। अस्मन्मते तु आधिदैवि-कस्याश्वमेधस्य कृत्स्नं कर्म द्रव्यमयेऽश्वमेधे तावन्मात्रमेवानुक्रियते यावत्तत् सम्भवति। अश्वस्यैकवर्षमितं परिभ्रमणं सूर्यस्य वार्षिकगतेरुपलक्षकम्। कवचिनो रक्षकाः सूर्यरश्मय एव। अश्वस्य सर्वांगाणां रज्जुभिर्बन्धनम् सूर्य-मण्डलं सर्वतः सूर्यरश्मयः प्रसृता भवन्ति।

—युधिष्ठिर मीमांसक, श्रौ० मी० पृ० ७८-७९

२. अश्व आसीद् बृहद्वयः। —वा० सं० २३।१२

३. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ —वा० सं० २३।३२

रात तथा मरुत् तेरे थोड़े-से दोष को भी दूर कर दें (स्वा० द० विलिष्ट=व्यसनम्, सूदयन्तु=दूरीकुर्वन्तु)।[1] इसी प्रसंग में आगे अश्व के लिए प्रार्थना की गई है कि आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष और वायु तेरे छिद्र को पूर्ण कर दें, नक्षत्रों के साथ सूर्य तेरे लोक को साधु अर्थात् ठीक बना दे।[2]

निश्चित ही इन सब सन्दर्भों में अश्व भौतिक अश्वनामक पशु नहीं हो सकता। उसका वर्णन सूर्य अथवा इस सूर्य से भी बड़े सूर्य को लक्षित करता है। उवट-महीधर ने कात्यायन श्रौतसूत्र (२०।५।११) के विनियोग के आधार पर अश्वमेध के जिस घोड़े को रथ में जोतने का विधान किया है, उसकी स्तुति सूर्य के समान की जा रही है, ऐसा उन दोनों ने स्वीकार किया है।[3] वस्तुतः वा० सं० के विनियुक्त मन्त्र में सूर्य का ही वर्णन है जिस देदीप्यमान विचरणशील को उसकी देदीप्यमान, सब ओर रहनेवाली किरणें आकाश में मानो जोतती हैं।[4]

अश्वमेध के प्रसंग में जो मन्त्र (वा० सं० २३।१८) दिया गया है उसके तीन खण्ड करके विनियोग किया गया है। 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि तीन मन्त्रों के द्वारा तीन आहुतियाँ अश्ववध के पश्चात् अर्पित की जाती हैं[5]—

१. प्राणाय स्वाहा,

२. अपानाय स्वाहा,

३. व्यानाय स्वाहा।

तत्पश्चात् राजा की पत्नियाँ परस्पर कहती हैं कि मुझे कोई पुरुष घोड़े के पास नहीं ले जाता है।

महीधर ने अम्बे, अम्बिके, अम्बालिके को तीन पत्नियों के नाम माना है।[6] तदनुसार घोड़ा काम्पील देश की रहनेवाली सुन्दरी ईर्ष्याग्रस्त स्त्री (चौथी रानी)

---

१. ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा॥
अर्धमासाः परूँषि ते मासा आच्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते॥ —वा० सं० २३।४०,४१

२. द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया॥ —वा० सं० २३-४३

३. अश्व आदित्यत्वेन स्तूयते। (तु० श० ब्रा० १३।२।६।१—असौ वा आदित्यो ब्रध्नोऽरुषोऽमुनेवास्या आदित्यं—युनक्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै।)

४. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि। (२३।५)

५. प्राणायेत्याद्यास्तिस्र आहुती र्जुहोति······अश्वसंज्ञपनान्ते। (महीधर)

६. पत्न्यः परस्परं वदन्ति हे अम्बे, अम्बिके, अम्बालिके, नामान्येतानि। कश्चन नरो माम् अश्वं प्रति न प्रापयति।

के साथ सो रहा है (मरा पड़ा है)। प्रश्न यह है कि यह सुन्दरी कहाँ से आ गई? क्योंकि उसके घोड़े के साथ लेटने का विधान पहले किसी मन्त्र में नहीं बताया गया। अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका किनके नाम हैं—यह भी मन्त्र में स्पष्ट नहीं।

वस्तुतः इस मन्त्र की सम्यक् व्याख्या के लिए पूर्ववर्ती मन्त्रों का ध्यान रखना आवश्यक है जिनके अनुसार अश्व सूर्य है। इससे ठीक पूर्व के मन्त्र (२३।१७) में अग्नि, वायु, सूर्यरूपी पशुओं के द्वारा यज्ञ करने के उल्लेख द्वारा सृष्टियज्ञ का संकेत है। अतः यहाँ "प्राणाय स्वाहा" आदि मन्त्रों के द्वारा मृत अश्व को प्राणवान् बनाने जैसी निराधार कल्पना असम्भव है। इस मन्त्र में गृह्यसूत्रों में यज्ञ-विधि में उल्लिखित अग्नि, वायु और सूर्य के साथ प्राण, अपान, व्यान के सम्बन्ध को प्रतिपादित किया गया है।[1] ये अग्नि, वायु, सूर्य ही अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका (माता, पितामही, प्रपितामही) हैं जिनसे निवेदन करता है कि मुझे कोई परमात्मा या परमात्मज्ञान के निकट नहीं ले जाता, मेरा अज्ञानरूपी अश्व=सूर्य, ज्ञान का प्रकाश, अतः कुत्सित अश्व=अज्ञान, मोहजाल फैलानीवाली, ऊपर से अच्छी लगनेवाली भौतिक सुखरूपी लक्ष्मी के पास सोया हुआ है।[2]

हरिशंकर जोशी ने अश्वमेध में विनियुक्त इस मन्त्र के प्रसंग में अश्व को चतुष्पाद ब्रह्म बताया है। तदनुसार "वही अश्वक पति है, उसी की चार पत्नियाँ हैं। चतुर्थ पत्नी सुभद्रिका काम्पीलवासिनी या भौतिक शरीरिणी है।……यह अश्वक नामक अग्नि से उत्पन्न ब्रह्म अब प्रथम आत्माओं—अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका में रत न रहकर उन्हें छोड़कर भौतिकात्ममयी सुभद्रिका के साथ सोता है अर्थात् आध्यात्मिकता से विरत है।……अतः उनका उलाहना है कि हमें कोई उस ब्रह्म के पास नहीं ले जाता, सब भौतिकात्मा रूपी स्त्री के वशंगत हो गए हैं।[3]

अश्वमेध के प्रमाणरूप में अन्य मन्त्रों में से एक वह भी है जिसमें उवट, महीधर, सायण के अनुसार मारे गए घोड़े के अग्नि में पकाए जाते हुए शरीर अथवा उसके अवयव में से जो द्रव निकलकर नीचे गिरता है, उसके नीचे न गिरकर

---

१. प्राणाय, अपानाय, व्यानाय आभिराहुतिभिरश्वं प्रापवन्तं करोति। (महीधर)

२. कं सुखं पीलति बध्नाति गृह्णातीति कम्पीलः, स्वार्थेऽण्प्रत्यये काम्पीलः तं वासयितुं शीलमस्यास्तां लक्ष्मीम्। (स्वा० दयानन्द) तु भावार्थ—धनस्य स्वभावोऽस्ति, यत्रेदं संचीयते तान् निद्रालून् अलसान् कर्महीनान् करोति। अतो धनं प्राप्यापि पुरुषार्थ एव कर्त्तव्यः।

अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससत्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥ —वा० सं० २३।१८

कुत्सिता सुभद्रा सुभद्रिका (महीधर)

३. वैदिक विश्वदर्शन, पृ० १९७

देवताओं के पास जाने की प्रार्थना की गई है।[1] परन्तु मरे हुए अश्व के अवयव के सुआ चुभोने पर अथवा अग्नि में पकाने पर अंगरस के टपकने की बात काल्पनिक है, क्योंकि मरे हुए प्राणी के मांस में से इस प्रकार रस टपकना सम्भव ही नहीं है। अतः जिस द्रव के टपकने की बात मन्त्र में कही गई है वह सूर्यरूपी अग्नि में परिश्रान्त अथवा बहुत चले हुए प्राणी का पसीना हो सकता है। उसके लिए मन्त्र में प्रार्थना है कि वह निरुद्देश्य ही भूमि पर या घास पर न गिरे, अपितु वह उत्कृष्ट उद्देश्य के लिए, विद्वानों, पूज्यजनों के सत्कारार्थ, प्राकृतिक पदार्थों के ज्ञान तथा शिल्पादि में उनके समुचित प्रयोग के लिए अथवा इन्द्रियों के पोषण के लिए अर्पित हो।[2]

अश्वमेध में मन्त्र-विनियोग के प्रसंग में यह भी विचारणीय है कि जब कर्मकाण्डीय भाष्यकार पौर्णमास याग में जिन गौओं का दूध निकाला जाना है, उनके बछड़ों के अपाकरण के लिए प्रयुक्त शाखा को काटने और उसके स्वच्छीकरण जैसी सूक्ष्म क्रियाओं के लिए पृथक्-पृथक् मन्त्रों का विनियोग करते हैं, तो अश्व-वध की क्रिया के लिए, तदर्थ शस्त्र हाथ में लेने के लिए और उसे काटने के लिए उन्हें कोई मन्त्र क्यों नहीं मिला?

अश्वमेध के प्रसंग में उवट-महीधर द्वारा यह भी उल्लेख किया गया है कि वा० सं० २३।३३-३८ मन्त्रों के उच्चारण के साथ चारों राजपत्नियाँ मृत घोड़े के अंगों को लोहे, चाँदी और सोने की सूइयों से छेद-छेदकर जर्जर करती हैं जिससे कि त्वचा को सुविधापूर्वक काटकर घोड़े का मांस-चर्बी आदि आहुतियों के निमित्त निकाली जा सके। इस प्रसंग में केवल प्रथम मन्त्र पर विचार करना पर्याप्त है।[3] इस मन्त्र में गायत्री, त्रिष्टुप् आदि छन्दों का उल्लेख है। उवट-महीधर के अनुसार इसका भाव यह है कि रानियों द्वारा इन छन्दों के साथ चुभाई जाती हुई सूइयाँ तेरा संस्कार करें अर्थात् खड्ग के मार्ग के लिए त्वचा का भेदन करें।[4] मन्त्र में इस क्रिया

---

१. यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूलं निहतस्यावधावती।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु॥
—ऋ० १।१६२।११, वा० सं० २५।३४

२. निहतस्य—निश्चयेन कृतश्रमस्य (मनुष्यस्य), नितरां चलितस्य (जनस्य)।
—स्वा० दयानन्द

३. गायत्री त्रिष्टुब् जगत्यनुष्टुप् पंक्त्या सह।
बृहत्युष्णिहा ककुप् सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ —वा० सं० २३।३३

४. हे अश्व, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, पंक्त्या-सह बृहती, उष्णिहा-सह ककुप् एतानि छन्दांसि सूचीभिरेताभिः त्वां शम्यन्तु संस्कुर्वन्तु। असिपथार्थं त्वग्भेदनं संस्कारः।

के लिए 'शम्यन्तु' शब्द आया है जिसका सीधा-स्पष्ट अर्थ "शान्त करें" है। छन्दों के साहचर्य में सूइयों द्वारा भेदन की अन्यथा संगति नहीं है। छन्द तो छादक हैं, रक्षक हैं; भेदक नहीं। अतः इन मन्त्रों की भावना यह प्रतीत होती है कि अमुक-अमुक छन्दवाले मन्त्र और उनमें वर्णित विचार तुझ मनुष्य को उसी प्रकार सीकर, मिलाकर आच्छादित अथवा सुरक्षित करें (या शान्त करें) जैसे सूई वस्त्रों को सीकर मिला देती है और आच्छादन योग्य बना देती है।[1]

इन मन्त्रों से अगले मन्त्र[2] द्वारा यह विधान माना जाता है कि इसका उच्चारण करते हुए चर्बी निकालने के लिए घोड़े का पेट काटा जाता है। तदनुसार उवट का अर्थ है—

"हे अश्व, प्रजापति तेरी त्वचा को काट रहा है। प्रजापति तेरी त्वचा को अलग कर रहा है। प्रजापति तेरे शरीरों (शरीर के अवयवों) को काटकर उन्हें हविरूप प्रदान कर रहा है और मेधावी प्रजापति ही तेरा काटनेवाला है। अथवा कः प्रश्नवाचक शब्द भी हो सकता है। तदनुसार "कौन काट रहा है?" इत्यादि प्रश्न होंगे। इन प्रश्नों का अभिप्राय यह है कि कोई भी व्यक्ति यह कार्य नहीं कर रहा।"[3] परन्तु यह बात स्पष्ट है कि अश्व को काटा ही जा रहा है। इसी प्रकार आगे के तीन मन्त्रों (२३।४०–४२) में भी ऋतुओं, वर्ष, पक्षों, मासों, रात-दिन दिव्य-अध्वर्युओं को भी अश्व के अंगों को काटनेवाले बताया है।

निस्सन्देह इन मन्त्रों में आच्छ्यति आदि रूप छेदनार्थक छो धातु से निष्पन्न होते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि छेदन किसका अभिप्रेत है? इन मन्त्रों में घोड़े का उल्लेख नहीं है। अतः घोड़े के साथ इनका सम्बन्ध मन्त्रों के आधार पर संदिग्ध है। स्वामी दयानन्द के अनुसार यह क्रिया इन मन्त्रों में विद्यार्थी के अध्ययन में बाधा को व्यक्त करती है। इसकी पुष्टि इन्हीं मन्त्रों में विद्यमान विशास्ति (शासु अनुशिष्टौ) अर्थात् उपदेश करता है और शम्यति (शम उपशमे) अर्थात् ज्ञान के द्वारा

---

१. तु० स्वा० दयानन्द—ये विद्वांसो गायत्र्यादिच्छन्दोऽर्थविज्ञापनेन मनुष्यान् विदुषः कुर्वन्ति, सूच्याच्छिन्नं वस्त्रमिव भिन्नमतान्यनुसन्दधति, ऐकमत्ये स्थापयन्ति, ते जगत्कल्याणकारका भवन्ति।

२. कस्त्वाऽऽच्छ्यति कस्त्वा विशास्ति। कस्ते गात्राणि शम्यति। क उ ते शमिता कविः। —वा० सं० २३-३९

३. अश्वोदरं पाटयति मेदस उद्धरणाय।...हे अश्व, कः प्रजापतिः त्वामाच्छ्यति छिनत्ति। हे अश्व, कः प्रजापतिः त्वां विशास्ति त्वचा वियोजयति। कश्च प्रजापतिः ते शरीराणि शमनेन हविर्भावमापादयति। प्रजापतिरेव ते शमिता मेधावी क्रान्तदर्शनः। यद्वा प्रश्नरूपोऽयं मन्त्रः। कोऽयं मनुष्यस्त्वामाच्छ्यति, कश्च त्वां विशास्ति, न कश्चिदपीत्यभिप्रायः।

शान्त करता है जैसी क्रियाओं से होती है। प्रस्तुत मन्त्र के अनुसार विद्यार्थी से पूछा जाता है कि तेरे अध्ययन को कौन काटता है अर्थात् कौन बाधक होता है? कौन तुझे विशेष उपदेश देता है? कौन तेरे अवयवों को शान्त करता है? तुझे शान्तचित्त बनानेवाला क्रान्तदर्शी कौन-सा अध्यापक है?[1]

इससे अगले मन्त्र[2] में भी उवट ने वही विषय माना है और भाष्य किया है कि ऋतुएँ समय-समय पर वर्ष के तेज से कर्मों द्वारा तेरी हड्डियों के जोड़ों को काटकर उनकी आहुतियाँ बनाएँ।[3] परन्तु यहाँ भी शास् धातु का अनुचित अर्थ ही मुख्य आधार बना है। वास्तव में मन्त्र में अभिलाषा व्यक्त की गई है कि हे विद्यार्थी, वसन्तादि ऋतुएँ अपने क्रम से तुम्हें उपदेश दें, अर्थात् भिन्न समयों में ऋतुओं की जो विशेषताएँ होती हैं उसी प्रकार तुझे जीवन के चारों आश्रमों में यथोचित व्यवहार करना चाहिए। परन्तु साथ ही वर्ष-भर प्राप्य जल के समान तू शान्त भी बना रह तथा अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णधर्म का भी पालन कर।[4]

जैसे इस मन्त्र में ऋतुओं द्वारा अश्व के अवयवों को काटे जाने का उल्लेख उवट-महीधर ने किया है, उसी प्रकार अगले मन्त्र[5] में भी उनके अनुसार पक्षों और मासों से अश्व के जोड़े को काटने की, तथा रात-दिन और मरुतों से उसके कटे अंगों को जोड़ने की अभिलाषा व्यक्त की गई है।[6] यहाँ ध्यान देने की बात है कि ऋतुओं तथा अन्य कालावयवों का सम्बन्ध सूर्य से है। तदनुसार अश्व सूर्य भी हो सकता है। सूर्य द्वारा निर्मित काल का ये कालावयव विभाजन करते हैं। दूसरी ओर शिक्षा के

---

१. अध्यापका अध्येतॄन् प्रत्येकं परीक्षायां पृच्छेयुः। के युष्माकमध्ययनं छिन्दन्ति? के युष्मानध्ययनाय उपदिशन्ति? केऽङ्गानां शुद्धियोग्यां चेष्टां च ज्ञापयन्ति? कोऽध्यापकोऽस्ति? किमधीतम्, किमध्येतव्यमित्यादि पृष्ट्वा विद्यामुन्नयेयुः?

२. ऋतवस्त्वा ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा॥ —वा० सं० २३।४०

३. ऋतवश्च तव शमितारः काले-काले पर्वणि संवत्सरस्य च तेजसा शमीभिः कर्मभिः शम्यन्तु शमनेन हविर्भावमापादयन्तु त्वाम्।

४. यथा ऋतवः पर्यायेण स्वानि-स्वानि लिंगान्यभिपद्यन्ते तथैव स्त्रीपुरुषाः पर्यायेण ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासाश्रमान् कृत्वा ब्राह्मण ब्राह्मण्यश्चाध्यापयेयुः। क्षत्रियाः प्रजा रक्षन्तु, वैश्याः कृष्यादिमुन्नयन्तु शूद्राश्चैतान् सेवन्ताम्।
—स्वामी दयानन्द, भावार्थ

५. अर्धमासाः परूंषि ते मासा आच्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते॥ —वा० सं० २३।४१

६. पक्षा मासाश्च तव परूंषि पर्वाणि आच्छिन्दन्तु। शम्यन्तः शमनेन हविर्भावमापादयन्तः। अहोरात्राणि मरुतश्च विलिष्टं दुःश्लिष्टं सूदयन्तु सन्दधतु।

प्रसंग में यह भाव भी हो सकता है कि समय के सभी अवयव निरन्तर विद्यार्थी का चरित्र निर्माण करते हुए "तेरे कठोर भाषणादि व्यवहार तथा अन्य किसी भी स्वल्प अवगुण को नष्ट करके उसे शान्त बना दें।"[1]

उवट-महीधर के अनुसार इससे अगले मन्त्र में[2] यह अभिलाषा व्यक्त की गई है कि अश्विन् आदि दिव्य अध्वर्यु घोड़े को और उसके अंगों को टुकड़ों (जोड़ों) में काटकर उन्हें हवि के योग्य मर्यादाओं में सीमित करें।[3]

सीधा भाव सूर्य के प्रसंग में यह है कि दिव्ययज्ञ सम्पादन करनेवाली प्राकृतिक शक्तियाँ ग्रह-नक्षत्र आदि सूर्य की ऊष्मा को यथोचित रूप से विभाजित करें और उसे अनुशासित करें। वे सूर्य द्वारा निर्मित सभी कालावयवों को सारी प्रजाओं के लिए उपयोगी बनाकर उन्हें शान्त करते हुए मर्यादित करें। शिक्षा के प्रसंग में महर्षि दयानन्द के अनुसार दिव्य अध्वर्यु विद्वान् अध्यापक और उपदेशक हैं क्योंकि वे निरन्तर अहिंसक यज्ञ की इच्छा करते हैं। ये विद्यार्थियों के दुर्गुणों को नष्ट कर उन्हें विद्या प्राप्त कराएँ। ये वैद्यकशास्त्र की विधि से शरीर के अवयवों की परीक्षा करके उन्हें मर्यादित करके औषधों द्वारा शान्त करें।[4]

यह कितना हास्यास्पद है कि पहले घोड़े का वध कर, उसके अंग-प्रत्यंग को काटकर फिर उवट-महीधर अगले दो मन्त्रों[5] में स्वर्ग, पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य आदि के सम्मुख अभिलाषा व्यक्त करते हैं कि वे उसकी कमी (क्षति) को पूर्ण कर दें और

---

१. हे विद्यार्थिन्, अहोरात्राणि अर्धमासा मासाश्च आयूंषीव तव परूँषि कठोर-वचनानि शम्यन्तः शान्तिं प्रापयन्तः मरुतो दुर्व्यसनात् आ समन्तात् छ्यन्तु छिन्दन्तु। मरुतः मनुष्यास्ते विलिष्टमल्पमपि व्यसनं दूरीकारयन्तु।

—स्वा० दयानन्द

२. दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः॥ —वा० सं० २३-४२

३. हे अश्व अश्विप्रभृतयो देवसम्बन्धिनोऽध्वर्यवः त्वामाच्छ्यन्तु आच्छिन्दन्तु विशासतु च। किं च गात्राणि पर्वशः तव सिमाः मर्यादाः कुर्वन्तु। शम्यन्तीः मर्यादादर्शनेन शमनं कुर्वाणाः।

४. विद्वत्सु कुशला आत्मनोऽहिंसाख्ययज्ञमिच्छन्तः अध्यापकोपदेशकातिथयो यदा बालकान् शिक्षयेयुस्तदा दुर्गुणान् विनाश्य विद्यां प्रापयेयुः। वैद्यकशास्त्ररीत्या शरीरावयवान् सम्यक् परीक्ष्यौषधानि प्रदद्युः॥ —भावार्थ

५. द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया॥
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव॥ —वा० सं० २३।४३-४४

उसे उत्तम लोक प्राप्त कराएँ। यह मिथ्या विश्वास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। साथ ही उस घोड़े के कटे हुए सभी अंगों, अस्थि-मज्जा आदि के कल्याण की कामना की गई है।[1]

इनमें से प्रथम मन्त्र में सामान्य मनुष्यमात्र के लिए अभिलाषा व्यक्त की गई कि सभी प्राकृतिक शक्तियाँ उसके शरीर की सब प्रकार की न्यूनता को पूर्ण कर दें। स्वामी दयानन्द ने इसमें लुप्तोपमा मानकर इस अर्थ का विस्तार इस प्रकार किया है कि जैसे ये शक्तियाँ सुखप्रद हैं, उसी प्रकार अध्यापक और उपदेशक भी सबके चारित्रिक और इन्द्रिय-सम्बन्धी दोषों को दूर करके उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त करें तथा उनमें विद्या का प्रकाश उत्पन्न करें।[2]

इसी प्रकार द्वितीय मन्त्र में भी अभिलाषा व्यक्त की गई है कि सब मनुष्यों के सब अंगों का कल्याण हो। अध्यापक और उपदेशक अपने उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव से सबके लिए सुखकारक हों।[3]

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों में अश्व के वध का और उसके अंगों के काटे जाने का मिथ्या आरोप कर्मकाण्डीय परम्परा ने किया है। यहाँ शतपथ ब्राह्मण की इस उक्ति को भी विस्मृत कर दिया गया कि अश्व वीर्य है अथवा वीर्यवान् ब्रह्मचारी है।[4] एक अन्य स्थान पर अश्व को क्षत्र अथवा क्षात्र तेज या क्षत्रिय बताया गया है।[5] इससे यह स्पष्ट है कि अश्व वेद में सर्वत्र अश्व नामक पशु का वाचक न होकर अन्य तत्त्वों का वाचक भी है और उस पशु का वध वेद में अभीष्ट नहीं है।

---

१. द्यौः स्वर्गः पृथिवी अन्तरिक्षं लोकत्रयाभिमाननो देवाः अग्निवायुसूर्याः वायुरन्योऽपि प्राणादिः, हे अश्व तव छिद्रं पूरयन्तु, यत् न्यूनं तत् पूरयन्तु। किंच नक्षत्रयुक्तः सूर्यः तव समीचीनं लोकं करोतु।

हे अश्व, तव परेभ्योऽवयवेभ्यो उच्चेभ्यः शिरआदिभ्यः सुखमस्तु। तवास्थिभ्यश्च सुखमस्तु। मज्जभ्यः पृष्ठधातुभ्योऽपि शमस्तु। किं बहुना, तव तन्वाः सर्वस्यापि शरीरस्य सुखमेवास्तु।

२. यथा पृथिव्यादयः सुखप्रदाः सूर्योदयप्रकाशकाः पदार्थाः सन्ति तथैवाध्यापका उपदेशकाश्च सर्वान् सन्मार्गस्थान् कृत्वा विद्याप्रकाशं जनयन्तु। —भावार्थ

३. हे विद्यामिच्छो, यथा पृथिव्यादितत्त्वं तव तन्वै शरीरस्य शम् सुखम् अस्तु, परेभ्यः गात्रेभ्यः शम्, अवरेभ्यः गात्रेभ्यश्च शमस्तु, अस्थिभ्यः मज्जभ्यः शमस्तु तथा स्वकीयैरुत्तमगुणकर्मस्वभावैः अध्यापकाः शंकरा भवन्तु।

४. वीर्यं वा अश्वः। —श० ब्रा० २।१।४।२३

५. क्षत्रं वा अश्वः। —श० ब्रा० १३।२।२।१५

जिन वेदों में यजमान के पशुओं की रक्षा की प्रार्थना की गई है[1], जिन वेदों में अनेक स्थानों पर पशुओं की हिंसा का निषेध है[2], जिन वेदों में गाय का नाम ही अघ्न्या अर्थात् हिंसा के अयोग्य, अहिंसनीय है, जिन वेदों में इहलोक और परलोक में भी गौओं की गुणोत्तर श्रेणी में वृद्धि की अभिलाषा की गई है[3] और जिन वेदों में पशुओं, विशेष रूप से गौ के घातक को मृत्युदण्ड देने, मृत्यु के पास पहुँचाने का, उसका सिर काट देने का विधान है[4], उन वेदों में पशुबलि का विधान असम्भव है।

परन्तु दूसरी ओर पशुहिंसा के समर्थक यह कह सकते हैं कि उपर्युक्त जिन सन्दर्भों में पशुहिंसा का निषेध है वह यज्ञ से बाहर सामान्य जनजीवन के प्रसंग में है। यज्ञों में तो हिंसा का विधान है ही और उस हिंसा को हिंसा नहीं माना जाता (वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति)। परन्तु ऐसे याज्ञिक स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि वेदों की प्रवृत्ति यज्ञ के लिए ही हुई है।[5] इस आधार पर वेदमन्त्रों में जो पशु-हिंसा-निषेध है वह यज्ञों के सन्दर्भ में ही किया गया निषेध सिद्ध होता है।

---

१. यजमानस्य पशून् पाहि। —वा० सं० १।१
पशूंस्त्रायेथाम्। —वा० सं० ६।११
द्विपादव चतुष्पात् पाहि। —१४।८

२. गां मा हिंसीरदितिं विराजम्। —वा० सं० १३।४३
मा गामनागामदितिं वधिष्ट। —ऋ० ८।१०१।१५
अश्वं जज्ञानं ⋯ मा हिंसीः परमे व्योमन्। —वा० सं० १३।४२
अविं जज्ञानां ⋯ मा हिंसीः परमे व्योमन्। —वही, ४४
इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम् (पुरुषम्)। —वही, ४७
इमं मा हिंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु। —वही, ४८

३. इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च, शतं च शतं च, सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके।
—वा० सं० १७।२

४. अन्तकाय गोघातम्। —वा० सं० ३०।१८
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥ —अथर्व० १।१६।४
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
योऽघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥
—ऋ० १०।८७।१६

५. वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः। —वेदांगज्योतिष के अन्त में
आम्नायस्य क्रियार्थत्वात्। —मीमांसा १।२।१

निम्नलिखित मन्त्र में सृष्टिरूपी यज्ञ का व्यापक रूप वर्णित है—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ।। (वा० सं० २३।६२) यह यज्ञवेदि पृथिवी की अन्तिम सीमा है। यह यज्ञ सारे संसार की नाभि अथवा केन्द्र है। यह सोम-(वृष्टिजल) वर्षक अश्व (सूर्य) का रेतस् (वीर्य-सार) है और यह ब्रह्म-(वेद) वाणी का परम (सर्वोच्च) आकाश (विस्तार) है।

यज्ञ त्याग की उदात्त भावना है, जिसपर सारी सृष्टि टिकी है। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारी आयु, प्राण, नेत्र-कर्णादि इन्द्रियाँ और पीठ अर्थात् रीढ़ या शरीर के नाड़ी-तन्त्र का आधार यज्ञ से अर्चना करके समर्पण में अपना सामर्थ्य सिद्ध करें—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन
कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् ।।

—वा० सं० ६।२१

इस प्रार्थना की चरम सीमा यज्ञ-भावना का इतना विस्तार है कि स्वयं यज्ञ को स्वार्थरहित त्याग-भावना से युक्त कर समर्पण की अभिलाषा व्यक्त की गई है—यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। (वा० सं० ६।११)

यज्ञ की इस उदात्त भावना में पशुबलि के लिए कोई स्थान नहीं है। विद्वानों का यह मन्तव्य है कि मांसभक्षण का प्रचलन था, अतः आराध्य को भी मांस की आहुति देना युक्तिसंगत है। परन्तु उन विद्वानों को कौषीतकि ब्राह्मण (११.३) का यह वचन ध्यान में रखना चाहिए—तद्यथा ह वा अस्मिल्लोके मनुष्याः पशूनश्नन्ति यथैभिर्भुंजते। एवमेवामुष्मिल्लोके पशवो मनुष्यानश्नन्ति एवमेभिर्भुंजते।" जैसे इस लोक में मनुष्य पशुओं को खाते हैं, उसी प्रकार उस लोक में पशु मनुष्यों को खाते हैं।।

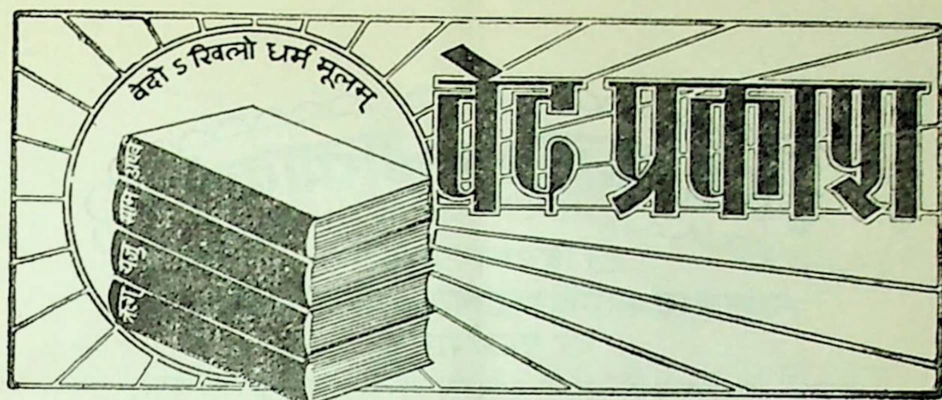
ओम् यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ।।

—अथर्व० १९।३।२

हे ईश्वर, आपकी जो महिमा जल में, वनों में, ओषधियों में और पशुओं में है, आप (उसके द्वारा) सभी शरीरों को मिलाइए (किसी की क्षति न कीजिए) और निरन्तर धन देनेवाले आप हमें प्राप्त होइए।



प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



जागृति

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।

—सामवेद १८५६

पदार्थः—(यः) जो मनुष्य (जागार) जागता है (तम्) उसको (ऋचः) ऋग्वेदमन्त्र (कामयन्ते) चाहते हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम्) उसको (उ) ही (सामानि) सामवेद-वचन (यन्ति) प्राप्त होते हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) सोमादि ओषधिगण (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (न्योकाः) नियत स्थानवाले (तव) तेरी (सख्ये) मैत्री में (अस्मि) हूँ ।

भावार्थः—जो पुरुष आलसी, निद्रालु, बहुत सोनेवाले, पुरुषार्थ-रहित हैं, उनको न तो ऋग्वेदादि से ज्ञान प्राप्त होता है, न सोमादि ओषधियाँ काम देती हैं, परन्तु जो निरालस्य, पुरुषार्थी, जागरूक पुरुष हैं, उनको वेद फलीभूत होते हैं और सोमादि ओषधिगण हितार्थ सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं कि हम तुम्हारे ही लिए हैं और तुम्हारे ही हैं। इस वेदाज्ञा के पालनार्थ मनुष्य-मात्र को पुरुषार्थी, आलस्यरहित होना योग्य है ।

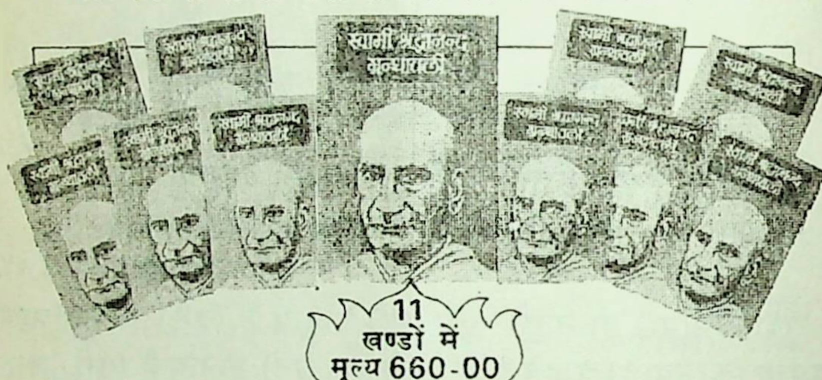
गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

23 दिसम्बर 1987

राष्ट्रभक्त स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर प्रकाशित।

इसमें संकलित हैं उनके समस्त ग्रन्थ, प्रमुख भाषण, आत्मकथा तथा नवलिखित सचित्र जीवन चरित।



हर राष्ट्र-भक्त के लिए संग्रहणीय

- ☐ मैकाले की दूषित शिक्षाप्रणाली के स्थान पर प्राचीन ऋषि अनुमोदित शिक्षा प्रणाली के समर्थक **स्वामी श्रद्धानन्द** शिक्षा के क्षेत्र में अनन्य प्रयोगी तथा टैगोर की समकक्षता में शिक्षा शास्त्री थे। उन्होंने राष्ट्रीय महत्व के गुरुकुल कांगडी की स्थापना की।
- ☐ अंग्रेजों की संगीनों के सामने छाती खोलकर खडा होने वाला **वीर राष्ट्र-भक्त संन्यासी श्रद्धानन्द** का एक तेजस्वी रूप था। कर्मवीर गांधी को महात्मा गांधी बनाने वाला व्यक्ति देशभक्त **स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- ☐ दिसम्बर 1919 में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष **स्वामी श्रद्धानन्द** था।
- ☐ 1883 से 1926 बलिदान होते समय तक **श्रद्धानन्द** का इतिहास आर्य समाज का राष्ट्र का इतिहास है।
- ☐ अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, शुद्धि आन्दोलन, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में रत रहते हुए **स्वामी श्रद्धानन्द** भारतीय एवं विदेशी नेताओं शिक्षा-शास्त्रियों और जन-मानस के हृदय-सम्राट् बन गए।

गोविन्दराम हासानन्द

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ८]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [मार्च १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

सर्वश्री वंशीधर रमेश कुमार, गोखले मार्ग, कोटद्वार के द्वारा एक लेख-प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। लेख का शीर्षक था—'महर्षि दयानन्द की मान्यताएँ'। इसमें प्रथम पुरस्कार-विजेता रहीं श्रीमती अर्चना गोयल, किरतपुर, बिजनौर, द्वितीय स्थान पर शुभश्री ऋचा निझावन तलवाड़ा रहीं और तृतीय स्थान प्राप्त किया ब्रह्मचारी नचिकेताः गुरुकुल लिंगश्री, महाराष्ट्र ने। हम यहाँ शिवरात्रि के अवसर पर प्रथम लेख को पाठकों के ज्ञानवर्धनार्थ छाप रहे हैं।

यह लिखते हुए लेखनी काँपती है कि इस प्रतियोगिता का आयोजन करनेवाले श्री रमेशकुमार जी गोयल पुरस्कार-वितरण (१२।२।८९) से अगले दिन ही १३।२।८९ को दुर्घटनाग्रस्त होकर परलोक सिधार गए। अपने व्यापार-कार्य के लिए जाते हुए उनकी वैन ६०० फुट गहरी खाई में गिर गई जिसमें श्री गोयल जी, उनका ड्राइवर और सेल्समैन—तीनों ही चल बसे। श्री रमेशकुमारजी एक निष्ठावान युवक थे, कर्मठ कार्यकर्ता थे, अपने साथियों में अति लोकप्रिय थे। वह आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में बढ़-चढ़कर भाग लेते थे। अपने नाम को गुप्त रखते थे परन्तु दान बहुत देते थे, विशेषरूप से साहित्य-प्रचार में। प्रभु सभी प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार सद्गति प्रदान करते हैं, हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि पारिवारिक जनों को धैर्य, शक्ति और साहस प्रदान करें जिससे वे इस कष्ट को सहन कर सकें।

—जगदीश्वरानन्द

ऋषि दयानन्द की मान्यताएँ

—**श्रीमती अर्चना गोयल**

वेद के मन्तव्य ही ऋषि दयानन्द के मन्तव्य हैं। उन्होंने ब्रह्मा से लेकर मनु और जैमिनिपर्यन्त ऋषियों तथा वेदप्रतिपादित मन्तव्यों को ही अपना मन्तव्य स्वीकार किया है। किसी नये मत-पन्थ का प्रवर्तन उन्हें इष्ट न था। इस सचाई को उन्होंने "**स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश**' के निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है—"**मैं अपना मन्तव्य उसीको** जानता हूँ कि जो तीन काल में **सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना, और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।**" [स्वमन्तव्यामन्तव्य २०] [**सत्यार्थ-प्रकाश**]

ऋषि दयानन्द की ईश्वर-विषयक मान्यता

ईश्वर एक, नाम अनेक

महर्षि ने अपने प्रधान ग्रन्थ '**सत्यार्थप्रकाश**' के प्रथम समुल्लास में बड़े विशद रूप में इस सचाई का उद्‌घाटन किया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, महादेव, गणेश, नारायण आदि अलग-अलग ईश्वर नहीं हैं। एक ही ईश्वर, जिसका निज तथा मुख्य नाम '**ओ३म्**' है, के गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर असंख्य नाम हैं। उनमें से १०८ नामों की विवेचना करते हुए महर्षि ने बताया है—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'

अर्थात् एक ही ईश्वर को विद्वान् अनेक नामों से पुकारते हैं जैसे—संसार का रचयिता होने से उसी एक ईश्वर का नाम 'ब्रह्मा' है, सभी में व्यापक होने से तथा सभी का पालन करनेवाला होने से उसी ओंकार प्रभु को 'विष्णु' कहते हैं। वह सबका कल्याण करता है इसलिए उसका नाम 'शिव' है। माता-पिता, अतिथि-आचार्य आदि देव हैं और इन देवों के देव होने से परमात्मा का नाम 'महादेव' है। वह पापियों को रुलाता है तथा दण्डित करता है इसलिए उसका नाम 'रुद्र' है।

इस प्रकार युगों के पश्चात् आचार्य दयानन्द ने अध्यात्म के क्षेत्र में वैदिक एकेश्वरवाद का उद्घोष किया।

महर्षि ने पवित्र वेदों के आधार पर इस भ्रान्ति का पूरे बल से प्रतिवाद किया कि सूर्य (सविता), अग्नि, वायु, जल, इन्द्र, मरुत्, आदि विभिन्न देवता हैं और कि आर्यजन बहुदेवों के उपासक थे। उन्होंने बताया कि वेद के शब्द यौगिक हैं। एक ही शब्द के प्रकरण के अनुसार अनेक अर्थ हो सकते हैं, जैसे अग्नि शब्द का, महर्षि निरुक्ताचार्य के अनुसार अर्थ है—

'अग्रे अग्रे नयति स अग्निः'

अर्थात् जो आगे-आगे चले अथवा आगे-आगे ले चलता है उसे अग्नि कहते हैं। यह भौतिक अग्नि भी आगे-आगे या ऊपर-ऊपर को जाती है, अतः यह भी 'अग्नि' है। आचार्य शिष्य को आगे-आगे ले चलता है इसलिए आचार्य 'अग्नि' है। राजा प्रजा को आगे बढ़ाता है इसलिए राजा भी 'अग्नि' है। आत्मा शरीर को गति देती है इसलिए आत्मा भी 'अग्नि' है, और परम-पिता परमात्मा सारे विश्व-ब्रह्माण्ड को गति देता है इसलिए परमात्मा भी 'अग्नि' है। अब प्रकरण के अनुसार यह देखना होगा—जहाँ अग्नि के साथ जडत्वादि विशेषण हैं वहाँ उसका अर्थ भौतिक अग्नि होगा, जहाँ अल्पज्ञादि विशेषण हैं वहाँ अग्नि का अर्थ जीवात्मा, राजा या आचार्य होगा। जहाँ अग्नि के साथ सर्वज्ञादि विशेषण हों वहाँ उसका अर्थ परमेश्वर होगा। इस तत्त्व के आधार पर महर्षि दयानन्द ने बताया कि आर्यजन जड़-अग्नि, जड़-वायु, या जड़-सूर्य के उपासक नहीं थे किन्तु एक सर्वज्ञ परम-पिता परमात्मा, जिसका निज तथा मुख्य नाम 'ओ३म्' है, के ही उपासक थे।

"रोगों में 'ज्वर' प्रमुख है। तुलसी और पीपल को शास्त्र में ज्वर की प्रमुख ओषधि माना है। परन्तु उनसे लाभ उठाना तो रहा दूर, हम उनकी परिक्रमा करते हैं, सूत लपेटते हैं और उन्हें तुलसी भगवती तथा पीपल महादेव कहते हुए नमस्कार करते हैं। ऋषि की मान्यता के अनुसार यह घोर अज्ञानता है।"

वैदिक भक्तिवाद में ज्ञान, कर्म और उपासना का समन्वय है अर्थात् ज्ञानपूर्वक सत्कर्म की साधना और प्राप्त उपलब्धि को ईश्वरार्पित करना ही सच्ची उपासना है। पवित्र वेदों के आधार पर ईश्वर के लक्षण करते हुए महर्षि दयानन्द ने बताया —**"ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है।" [आर्यसमाज का दूसरा नियम]**

"वह सभी जीवों का कर्मानुसार सत्य न्याय से फल-दाता आदि लक्षणयुक्त है। उसी को मैं ईश्वर मानता हूं।" [स्वमन्तव्यामन्तव्य]

इन लक्षणों के आधार पर न ईश्वर जन्म लेता है, न ईश्वर मां के गर्भ में

आता है और न अन्य जीवों की भाँति सुख-दुःख भोगता और अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है। महर्षि ने अवतारवाद की मान्यता का वेदों के आधार पर प्रतिवाद किया है—

"न तस्य प्रतिमा ऽ अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ ऽ इत्येष मा मा हिँ सीदित्येषा यस्मान्न जात ऽ इत्येषः।"
—यजु० ३२-३

"स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः ॥८॥
—यजु० ४०-८

आदि अनेक मन्त्रों के आधार पर ऋषि दयानन्द ने बताया कि ईश्वर निराकार है, उसकी कोई मूर्ति नहीं है, ईश्वर की विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ बनाकर उसके नाम पर मानव-समाज को जिस प्रकार खण्ड-खण्ड किया गया और ईश्वर-भक्ति को एक दम्भपूर्ण व्यवसाय बना दिया गया, यह सब ऋषि दयानन्द को सर्वथा असहनीय था। इसलिए उन्होंने मूर्तिपूजा का कबीर, दादू, नानक आदि की अपेक्षा भी तीव्रतम खण्डन किया। ईश्वर के स्थान में देवी-देवताओं की कल्पित मूर्तियों की पूजा वेदानुकूल नहीं, मूर्तिपूजा में भावना की युक्ति ठीक नहीं, भावना सीधे ही सत्, चित्, आनन्द ईश्वर में होना ईश्वरभक्त को शीघ्रातिशीघ्र सफलता प्राप्त कराती है।

ऋषि दयानन्द ने ईश्वर का सगुण व निर्गुण भेद स्वीकार किया है, अर्थात् ईश्वर दयालु, न्यायकारी, परोपकारी होने से सगुण है और अजन्मा, अनन्त आदि होने से निर्गुण है। अतः ईश्वर सगुण है, निर्गुण भी है, किन्तु सगुण का अभिप्राय साकार और निर्गुण का अभिप्राय निराकार मानना भ्रान्तिमूलक है और असत्य है। ईश्वर निराकार ही है, साकार नहीं।

महर्षि दयानन्द का मन्तव्य था कि ईश्वर-भक्ति ईश्वर-ईश्वर चिल्लाने में नहीं है, किन्तु ईश्वर की आज्ञा जिसका विधान वेदों में किया है उसका पालन करने में है। वे यह नहीं मानते कि ईश्वर-भक्ति करने से किये हुए पापों के फल नष्ट हो जायेंगे। ईश्वर-भक्ति जिसे उन्होंने 'स्तुति, प्रार्थना व उपासना' के रूप में प्रस्तुत किया है उसका लाभ कृतज्ञता-प्रकाशन, निष्पापता, निरभिमानता, दयालुता, न्याय-कारिता, परोपकार आदि ईश्वरीय गुणों का विकास है। ईश्वर-भक्ति कठिन-से-कठिन परिस्थितियों का सामना करने और पहाड़ जैसे कष्टों को धैर्यपूर्वक सहन करने की शक्ति प्रदान करती है।

सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है (**आर्यसमाज का पहला नियम**) अर्थात् ईश्वर ही वेदज्ञान का दाता तथा

समस्त ज्ञान-विज्ञान का मूल स्रोत है।

महर्षि दयानन्द की वेद-विषयक मान्यताएँ

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥

—[यजु० ३१/७]

आदि अनेक वेदमन्त्रों के आधार पर ऋषि दयानन्द ने वेदों की अपौरुषेयता को स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में विचार करते हुए महर्षि की मान्यता है कि नैमित्तिक ज्ञान की धारा को प्रवाहित करने के लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है जैसा कि महर्षि कणाद ने माना है—

"स एव पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।"

अर्थात् ईश्वर मानव का प्रथम गुरु है, जहाँ से ज्ञान की धारा बही है। कर्मफल की सम्यक् व्यवस्था के लिए भी ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वरीय कानून-संहिता या संविधान की आवश्यकता है और जैसे भौतिक नेत्रों की सहायता के लिए ईश्वर ने प्रकाश के केन्द्र भौतिक सूर्य को दिया, वैसे ही बुद्धि या ज्ञान-चक्षु की सहायता के लिए ज्ञान के सूर्य या ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है।

ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता सुसिद्ध होने पर यह विचारणीय हो जाता है कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों है?

ईश्वरीय ज्ञान मानव-सृष्टि के आरम्भ में होना चाहिए। वह पूर्ण होना चाहिए। उसमें सृष्टि-नियम के प्रतिकूल कुछ नहीं होना चाहिए। ईश्वरीय ज्ञान विज्ञान के अनुकूल होना चाहिए। उसमें देश-विदेश का इतिहास व भूगोल नहीं होना चाहिए—वह सार्वकालिक, सत्यशाश्वत, सार्वभौमिक होना चाहिए। इन सब आधारों पर वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है, ऐसी ऋषि की मान्यता है।

जैसे ईश्वरप्रदत्त सूर्य, वायु, जल आदि सबके लिए हैं, वैसे ही ईश्वरीय ज्ञान भी सबके लिए हैं।

'यथेमां वाचं कल्याणो।'

आदि मन्त्रों के आधार पर ऋषि दयानन्द ने बताया कि पवित्र वेद का ज्ञान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र और स्त्रियों आदि सभी के लिए समान रूप से है। बीच के कालखण्ड में यह अवैदिक मान्यता बन गई थी—

'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम् इति श्रुतेः'।

अर्थात् स्त्री और शूद्रों को वेद के अध्ययन का अधिकार नहीं है। ऋषि दयानन्द ने वेदमन्त्रों के आधार पर तथा अनेक ऐतिहासिक उदाहरण देते हुए इस अवैदिक मान्यता का तीव्रतम प्रतिवाद किया है—

'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'
तथा 'युवानं कन्या विन्दते पतिम्' ।।

आदि उदाहरण देते हुए महर्षि ने स्त्रियों का वेदाधिकार सिद्ध किया है।

चारों वेदों में किसी कालविशेष या देश-विशेष का कोई इतिहास या भूगोल नहीं है। पवित्र वेदों में राम, कृष्ण, अर्जुन, गंगा, यमुना, सरस्वती आदि शब्दों को देखकर कई बार भ्रम होता है कि वेद में दशरथ-पुत्र राम, वसुदेव-पुत्र कृष्ण, कुन्ती-पुत्र अर्जुन आदि का इतिहास और गंगा, यमुना आदि भौगोलिक नदियों का वर्णन है। किन्तु जैसा कि महर्षि मनु ने स्पष्ट किया है वेदों में इन लौकिक पुरुषों व नदियों का वर्णन नहीं है, किन्तु वेद से नाम लेकर लोक में नाम रखे गए हैं।

महर्षि दयानन्द वेदों को ईश्वरप्रणीत मानते हैं, वे संहिता अर्थात् मन्त्रभाग को निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानते हैं। वे लिखते हैं कि 'वेद स्वयं प्रमाणरूप हैं, जिनका प्रमाण होने से किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं है; जैसे सूर्य व प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिवी आदि के प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं।' और वेदों के ब्राह्मण, शतपथ आदि ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद आदि को परतःप्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जिनमें वेद-विरुद्ध वचन हैं उनको महर्षि दयानन्द अप्रमाण मानते हैं।

महर्षि दयानन्द और धर्म-सम्बन्धी मान्यता

कोरे पूजा-पाठमात्र को ही महर्षि धर्म की संज्ञा नहीं देते, वरन् महर्षि मनु के शब्दों में—

'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्थ च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम् ।।'

वेद, वेदानुकूल स्मृतियाँ, महापुरुषों का सदाचरण और सभी के साथ आत्मवत् व्यवहार ही महर्षि के निकट धर्म की कसौटी है। महर्षि व्यास के अनुसार—

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'

धर्म के इस आदर्श को भी मानते हैं। अर्थात् हम दूसरों के साथ वही व्यवहार करें, जो हम अपने लिए दूसरों से चाहते हैं। महर्षि के निकट न अति आध्यात्मिकता धर्म है और न अति भौतिकता। वे महर्षि कणाद के अनुसार—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः'

अभ्युदय और निःश्रेयस् अर्थात् ऐहिक और पारलौकिक (लोक या परलोक) या भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय को 'धर्म' मानते हैं। धर्म चमत्कारों और अन्धविश्वास के पिटारे का नाम नहीं है। धर्म और विज्ञान में विरोध नहीं है। वे दोनों हाथ में हाथ मिलाकर चलते हैं।

'यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतरः'

जो तर्क या बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा उतरे वही धर्म है। **'धर्मो धारयते प्रजा'**—वे नियम जो व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व-जीवन को धारण करते हैं,'धर्म' हैं। **'धारणात् धर्म इत्याहुः'**—केवल सुनने और पढ़ने से नहीं, धारण करने से ही धर्म 'धर्म' है। जैसे आग का धर्म अग्नित्व है और जल का धर्म शीतलता है, वैसे ही मानव का धर्म 'मानवता' है। यह मानव-धर्म ही सार्वभौमिक, सार्वकालिक धर्म है, यही सनातन धर्म या वैदिक धर्म है। यह धर्म मानवमात्र का एक ही है, मजहब-सम्प्रदाय अनेक हैं; जैसे सूर्य एक है, दीपक व लालटेन अनेक हैं। धर्म सृष्टि के आरम्भ से है और ईश्वर उपदिष्ट है, किन्तु मत-पन्थ मनुष्यरचित हैं तथा बहुत बाद में बने हैं, जैसे सूर्य ईश्वरनिर्मित और सृष्टि के आरम्भ से है, किन्तु दीपक आदि मनुष्यरचित और बहुत बाद में बने हैं। सार्वभौमिक मानवधर्म के महर्षि मनु-उपदिष्ट निम्न १० लक्षण ऋषि दयानन्द को मान्य हैं—

"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयशौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥"

धर्म का बड़ा सरल और व्यापक अर्थ है—कर्त्तव्य-पालन। वर्णाश्रम धर्म का प्रयोग इन्हीं अर्थों में है। अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार निहित कर्त्तव्य का अनुष्ठान ही धर्म है, ऐसी ऋषि की मान्यता है।.........धर्म हमें शरीर और आत्मा तथा श्रद्धा और मेधा का समन्वय भी सिखाता है।

धर्मरूपी पक्षी के दो पंख हैं—आस्तिकता और नैतिकता। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक अथवा अन्योन्याश्रित हैं। अंग्रेजी के एक विद्वान् के अनुसार—"Morality is the fruit of religion while religion is the root of morality" अर्थात् आस्तिकता की फल-श्री नैतिकता है जबकि नैतिकता का मूल आस्तिकता है। इस प्रकार वह आस्तिकता दो कौड़ी की है जो मानव को नैतिक नहीं बनाती है, पर हम याद रखें सच्ची वेदोक्त आस्तिकता ही नैतिकता का आधार है।

महर्षि दयानन्द की दार्शनिक मान्यताएँ

महर्षि दयानन्द गौतममुनि-कृत 'न्याय-दर्शन', कपिलमुनि-कृत 'सांख्यदर्शन', महर्षि कणादविरचित वैशेषिक दर्शन, महामुनि पंतजलि-कृत योगदर्शन, महर्षि व्यासरचित वेदान्तदर्शन और जैमिनीकृत मीमांसादर्शन को वेदानुकूल होने से प्रामाणिक मानते हैं। कई अन्य आचार्य इन दर्शनों में परस्पर विरोध मानते हैं, किन्तु ऋषि दयानन्द इन दर्शनों में समन्वय करते हुए इन्हें विभिन्न प्रकरणों के परिचायक मानते हैं। षड्दर्शनों में परस्पर विरोध नहीं है, वे एक-दूसरे के पूरक हैं। कुछ विद्वान् कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी मानते हैं, किन्तु महर्षि दयानन्द

ऐसा नहीं मानते। उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया है कि सांख्यदर्शन में भी ईश्वर का प्रतिपादन है। महर्षि लिखते हैं—"**जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है, जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य नहीं।**"

महर्षि दयानन्द ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीन पदार्थों को अनादि मानते हैं; वे इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानते हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार प्रकृति साधन, जीवात्मा साधक और परमात्मा साध्य है।

जीव और ईश्वर

"स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य-व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं। अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ।"

[स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः ५]

जीव

"जो इच्छा-द्वेष सुख-दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ नित्य है, उसी को 'जीव' मानता हूँ।" [स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः ४]

महर्षि दयानन्द की सृष्टि-विषयक मान्यताएँ

ऋषि दयानन्द के सृष्टि-विषयक विचार इस प्रकार हैं—

"**सृष्टि** उसको कहते हैं—जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युतिक्पूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना।" [स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः ८]

"**सृष्टि का प्रयोजन** यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टि-निमित्त गुण-कर्म-स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि—नेत्र किसलिए हैं? उसने कहा—देखने के लिए। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी।"

[स्वमन्तव्यामन्तव्य ९]

"**सृष्टि सकर्तृक है**, इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है। क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने-आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से 'सृष्टि का कर्त्ता' अवश्य है।" [स्वमन्तव्यामन्तव्य १०]

बन्ध और मोक्ष के विषय में ऋषि दयानन्द के विचार

"बन्ध सनिमित्तक अर्थात् अविद्या-निमित्त से है। जो-जो पापकर्म ईश्वर-

भिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःखफल करनेवाले हैं। इसलिए यह बन्ध है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।" [स्वमन्तव्यामन्तव्य ११]

"**मुक्ति** अर्थात् सर्व दुःखों से छुटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोगके पुनः संसार में आना।" [स्वमन्तव्यामन्तव्य १२]

"**मुक्ति के साधन** ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।" [स्वमन्तव्यामन्तव्य १३]

यहाँ यह स्मरणीय है कि जिन सत्कर्मों की साधना से मुक्ति प्राप्त होती है, वह सान्त है; अतः उनका फल अनन्त नहीं हो सकता। मुक्ति का अर्थ जीवात्मा का परमात्मा में विलय नहीं है। मुक्ति से पुनरावृत्ति होती है, इस वैदिक मान्यता को महर्षि स्वीकार करते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फलचतुष्टय की प्राप्ति को ऋषि दयानन्द मानव-जीवन का लक्ष्य बताते हैं। '**अर्थ**' की प्राप्ति भी वैदिक चिन्तन-धारा में आवश्यक है। अर्थ या धन की उपेक्षा नहीं है—

'वयं स्याम पतयो रयीणाम्।'
'वयं भगवन्तः स्याम॥'

आदि अनेक वेदमन्त्रों में भक्त भगवान् से ऐश्वर्य-(अर्थ)-प्राप्ति की कामना करता है। किन्तु महर्षि के शब्दों में 'अर्थ' वह है "**जो धर्म ही से प्राप्त किया जाए, और जो अधर्म से प्राप्त किया जाए उसको 'अनर्थ' कहते हैं। 'अर्थ' के साथ ही काम, उसका उपभोग भी आवश्यक है। किन्तु 'अर्थ' और 'काम' दोनों को बीच में रखकर नियन्त्रित कर दिया गया है, अर्थात् अर्थ और काम दोनों के मूल में धर्म हो और लक्ष्य मोक्षप्राप्ति हो।**" जैसा कि पहले बता चुके हैं—'**अहं ब्रह्मास्मि**', '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**', '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन**'—ऐसा कहकर जो संसार और संसार के व्यवहारों को झूठा बताते हैं, स्वयं झूठे हैं।

नवीन वेदान्तियों के इस विचार को ऋषि दयानन्द नहीं मानते। कर्म और पुरुषार्थवाद पर चौका फेरनेवाला यह विचार ऋषि को मान्य नहीं। अद्वैतवाद की व्याख्या ऋषि दयानन्द के अनुसार यह नहीं है कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, किन्तु ऋषि मानते हैं ईश्वर के तुल्य कोई नहीं है इसलिए परमात्मा अद्वितीय है। '**द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः**' इत्यादि वेदमन्त्रों के आधार पर महर्षि दयानन्द अद्वैतवाद का खण्डन और वैदिक त्रैतवाद की स्थापना करते हैं। '**एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**' का भी यह अर्थ नहीं है कि मात्र ईश्वर ही है, उसके अतिरिक्त और दूसरा पदार्थ नहीं है, वरन् इसका सत्यार्थ है—ईश्वर एक है, दूसरा ईश्वर नहीं है। एक से अधिक ईश्वर नहीं हैं।

ऋषि दयानन्द की अन्य मान्यताएँ

आश्रम-व्यवस्था

आश्रम-व्यवस्था को महर्षि मानवजीवन की सफलता के लिए तथा समाज एवं राष्ट्र की सुख-शान्ति के लिए अति आवश्यक मानते हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास का विभाग मानवजीवन की शतवर्षीय सफलतम योजना है। इसमें अनेक समस्याओं का समाधान छिपा है।

वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था को महर्षि दयानन्द जन्म के आधार पर न मानकर गुण, कर्म, और स्वभाव के आधार पर मानते हैं। इसके लिए वे वेदों, शास्त्रों और मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों के अनेक उदाहरण देते हैं। साथ ही वैदिक काल, रामायणकाल, महाभारतकाल तक वर्ण-व्यवस्था के इसी स्वरूप की मान्यता थी, ऐसा बताते हैं। महर्षि की मान्यता है कि जब से [महाभारतकाल के पश्चात् से] वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत माना जाने लगा तभी से भारत के पतन, पराभव, दीनता और दासता का का मार्ग खुला। जन्मगत जाति-व्यवस्था तो वर्ण-व्यवस्था नहीं वरन् मरण-व्यवस्था है, ऐसा महर्षि का विचार है। ऋषि के अनुसार वर्ण व जाति एक वस्तु नहीं हैं। **'आकृतिर्जाति लिंगाख्या'**, 'समान प्रसवात्मिका जातिः; जाति आकृति से पहचानी जाती है अथवा समान प्रसव से। इस प्रकार मनुष्य-जाति एक है, यह ईश्वरकृत है, किन्तु 'वृणोतीति वर्णः' वर्ण वह है जिसका गुण-कर्म-स्वभावानुसार चयन होता है। वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। ये मनुष्यकृत होने पर बदले जा सकते हैं—**'शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्'** [मनु०]

ऋषि दयानन्द पुरुषार्थ को प्रारब्ध से बड़ा मानते हैं। वे लिखते हैं कि **"जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते, और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।"**

[स्वमन्तव्यामन्तव्य २५]

संस्कार-महत्त्व

वे मानते हैं कि सुख-दुःख, हानि-लाभ में आत्मवत् ही **'मनुष्य'** है। मानव को मानव बनाने के लिए ऋषि दयानन्द १६ संस्कारों का महत्त्व प्रतिपादन करते हैं।

महर्षि के शब्दों में संस्कारों की व्याख्या इस प्रकार है—

संस्कार

संस्कार उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें।

वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इसको कर्तव्य समझता हूँ। और दाह के पश्चात् मृतक के लिए कुछ भी न करना चाहिए।

बीच के कालखण्ड में मानव-निर्माणमूलक वेदोक्त संस्कारों की प्रक्रिया लुप्त-प्राय हो गई थी, महर्षि ने उसका पुनरुद्धार किया और इसके लिए उन्होंने 'संस्कार-विधि:' का प्रणयन किया।

वैदिक कर्मकाण्ड

वैदिक कर्मकाण्ड का स्वरूप भी मध्यकाल में विकृत हो गया था। महर्षि दयानन्द ने पंच महायज्ञों का विधान मानव-धर्मशास्त्र-प्रणेता महर्षि मनु के इन शब्दों में प्रतिपादित किया है—

"ब्रह्मयज्ञं देवयज्ञं पितृयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं भूतयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्।"

प्राचीन वैदिक युग में राजा-महाराजा तथा सर्वसाधारण जन यज्ञों को कितना अधिक महत्व देते थे, महर्षि ने इसका उल्लेख विस्तार से किया है। महर्षि दयानन्द ने 'यज्ञ' शब्द को बड़े व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया है। उनके अनुसार— **"यज्ञ उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग, और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु-वृष्टि-जल-ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है उसको उत्तम समझता हूँ।"** [स्वमन्तव्यामन्तव्य २८]

निरुक्तकार के अनुसार—यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से बना है, इसका अर्थ है—(१) देव-पूजा, (२) संगतिकरण और (३) दान। ऋषि के शब्दों में—देवपूजा का अर्थ है—**"विद्वानों का सत्कार करना, माता-पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत-पति का सत्कार करना 'देवपूजा' कहाती है। इससे विपरीत 'अदेवपूजा'; इनकी मूर्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जनमूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ।'** (स्वमन्तव्यामन्तव्य २१]

जीवित माता, पिता, आचार्य, अतिथि और परमेश्वर का यथायोग्य सत्कार करने को ऋषि ने 'पंचायतन पूजा' माना है। इनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम 'श्रद्धा' है। और ऐसे कार्य करने जिससे इन्हें तृप्ति या प्रसन्नता हो 'तर्पण' कहलाता है। यह श्रद्धा और तर्पण माता-पिता और गुरुजनों (पितरों) के जीवनकाल में ही सम्भव है, मृत्यु के पश्चात् नहीं। 'पितर' रक्षा करनेवाले को कहते हैं, यह जीवन-काल में ही सम्भव है। अतः मृतक श्राद्ध को महर्षि दयानन्द मान्यता नहीं देते, वे इसे अवैदिक मानते हैं।

महर्षि दयानन्द और राजनीति

वे राजनीति की उपेक्षा नहीं करते वरन् राजनीति को भी धर्म का अंग मानते हैं। राजनीति को उन्होंने 'राजधर्म' कहा है और इसके लिए उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में एक पूरा प्रकरण—छठा समुल्लास—लिखा है। वे एकतन्त्र निरंकुश शासन को अमान्यता देते हैं—

'त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।।'

[षष्ठ समुल्लास ऋ० म० ३। सू० ३८। म० ६।। पृष्ठ २२०]

आदि वेदमन्त्रों को उद्धृत करते हुए वे तीन सभाएं अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा, राजार्यसभा, नियत करने की प्रेरणा करते हैं। उनकी मान्यता है कि राजा जो सभापति, तदाधीन सभा, सभाधीन राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे। इस प्रकार महर्षि द्वारा प्रस्तुत राज्यव्यवस्था में प्रजातन्त्र के दोषों की सम्भावना नहीं है। मनुस्मृति के आधार पर महर्षि ने राज-परिषद्, मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की योग्यता, दण्ड-व्यवस्था का स्वरूप, राजा और सभासदों की जितेन्द्रियता, मन्त्रियों की योग्यता एवं सदाचरण आदि का बड़ा विशद निरूपण किया है। वे लिखते हैं—

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ।।५।।

[षष्ठ समुल्लास, पृष्ठ २२६]

अर्थात् यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे, वही श्रेष्ठ धर्म है। क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, करोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिए।

महर्षि के शब्दों में राजा और प्रजा की परिभाषा इस प्रकार है—**'प्रजा उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण-कर्म-स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित, न्यायधर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोहरहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते।'** [स्वमन्तव्यामन्तव्य १८] **'राजा उसको कहते हैं जो शुभ गुण-कर्म-स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित, न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।''** [स्वमन्तव्यामन्तव्य १७]

महर्षि दयानन्द और शिक्षा

वे वर्तमान युग के प्रथम महान् शिक्षा-शास्त्री थे। शिक्षा-विषयक उनके क्रान्तिकारी विचार सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय व तृतीय समुल्लास में विस्तार से वर्णित हैं। महर्षि के अनुसार शिक्षा उसको कहते हैं—**'जिससे विद्या, सभ्यता,**

धर्मात्मता, जितेन्द्रियता आदि की वृद्धि हो और अविद्या आदि दोष छूटें। वे माता और पिता को आचार्य से भी पहला शिक्षक मानते हैं।" "मातृमान्, पितृमान्, आचार्यमान् पुरुषो वेद।" [शतपथ]

अनिवार्य शिक्षा का विचार सर्वप्रथम महर्षि ने ही प्रस्तुत किया। गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली जिसमें बालक और बालिकाओं के लिए पृथक् शिक्षा की व्यवस्था हो यह चिन्तन ऋषि दयानन्द की देन है। वे मानते थे कि राजा से रंक तक खान-पान और वस्त्रादि की समानता गुरुकुलों में हो। चरित्र-निर्माण शिक्षा का मूलाधार है और शिक्षा आस्तिकता एवं नैतिकता से अनुप्राणित हो। यह गुरुकुल की शिक्षा से ही सम्भव है। **'विद्या धर्मेण शोभते'** यह सूत्र ऋषिराज ने हमें दिया।

ऋषि दयानन्द और नारी

नारी के विषय में ऋषि दयानन्द के विचार बहुत ऊँचे हैं। वे एक २½ वर्षीय बालिका को मातृ-शक्ति कहकर नमन करते हैं। वैदिक युग में नारी का जो गौरवमय स्वरूप था उसे उलटकर बीच के काल-खण्ड में नारी की छवि अत्यधिक विकृत कर दी गई थी। किसी ने उसे 'नरक' का दरवाजा कहा तो किसी ने सर्पिणी से भी अधिक विषैली बताया। किसी ने नारी को **'अधम से अधम अति नारी'** कह-कर स्मरण किया तो किसी ने उसे 'सहज अपावन' माना। महर्षि दयानन्द ने युगों के पश्चात् **'पुरन्धिर्योषाम् आजायताम्'** तथा **'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ'** आदि वैदिक सूक्तियों के प्रकाश में नारियों को राष्ट्र-जीवन का आधार तथा गृहस्थ-यज्ञ की ब्रह्मा के रूप में पुनः गौरवान्वित किया। महर्षि ने नारी को यज्ञ करने, यज्ञोपवीत धारण करने, गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान करने तथा ओंकार-जप करने आदि का पुनः अधिकार प्रदान किया। महर्षि मनु को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा है—

यन्त्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तन्त्र देवताः।

अर्थात् जहाँ नारियों का सम्मान होता है वहाँ देव लोग निवास करते हैं। नारियों की शिक्षा का द्वार महर्षि ने खोला और उन्हें वेदादि का अधिकार दिलाया। गृहस्थ आश्रम को 'स्वर्ग' बताते हुए इस स्वर्ग की अधिष्ठात्री नारी को उन्होंने पूज्या बताया; बहु-विवाह और बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह या अनमेल-विवाह का निषेध किया और विधवा-विवाह का समर्थन किया। सती-प्रथा अथवा स्त्री के आत्मदाह का उन्होंने विरोध किया।

महर्षि दयानन्द और राष्ट्रभाषा हिन्दी

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का स्वप्न सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने लिया। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए तथा मातृभाषा गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपने प्रायः सभी ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखे, जिसे उन्होंने 'आर्यभाषा' का नाम

दिया। आर्यसमाज के उपनियमों में हिन्दी के अध्ययन को उन्होंने प्रमुखता दी। आज से सवा सौ वर्ष पूर्व उन्होंने जिस प्रकार की हिन्दी का प्रयोग किया, संस्कृत-निष्ठ किन्तु सरल हिन्दी का प्रयोग किया, उससे ऋषि दयानन्द को हिन्दी-गद्य के निर्माताओं में स्वीकार किया गया है।

उन्होंने कहा था—"मेरी आँखें वह दिन देखना चाहती हैं जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक सम्पूर्ण देश में आर्यभाषा (हिन्दी) प्रतिष्ठित होगी।"

"**तिस्रो देवी मयोभुवः इडा सरस्वती मही**" पवित्र वेद की यह सूक्ति मानो उनका प्रेरणा-स्रोत थी, जिसमें मातृसंस्कृति, मातृभाषा और मातृभूमि—इन तीन देवियों की पूजा का विधान किया गया है।

ऋषि दयानन्द और गौ-रक्षा

गौ माता को महर्षि दयासन्द मानवता का मानबिन्दु और वैदिक 'भारतीय' संस्कृति का मूक प्रतिनिधि मानते हैं। गो-पालन के अर्थशास्त्र को एक सच्चे अर्थ-शास्त्री के रूप में उन्होंने अपनी 'गोकरुणानिधि' नामक पुस्तिका में सविवेचन समझाया है। इस प्रकार वे महान् अर्थशास्त्री भी थे। गो-रक्षा (गो-हत्याबन्दी) के लिए उन्होंने हस्ताक्षर-अभियान भी चलाया था तथा रिवाड़ी में सबसे पहली 'गोशाला' भी उन्होंने स्थापित की थी। पवित्र वेद में प्रश्नोत्तर की शैली में बताया है—'**कोऽस्तु मात्रा न विद्यते**' अर्थात् ऐसी कौन वस्तु है जिसकी तुलना की अन्य वस्तु न हो? उत्तर में कहा है—'**गोऽस्तु मात्रा न विद्यते**'—गाय की तुलना में कोई वस्तु नहीं है। गाय के इस अतुलनीय महत्त्व को महर्षि मान्यता देते हैं।

ऋषि दयानन्द और श्रीराम एवं श्रीकृष्ण

वे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और श्री कृष्ण को वैदिक 'भारतीय' संस्कृति के आधारस्तम्भ के रूप में युगपुरुष, राष्ट्रपुरुष, महापुरुष के रूप में मानते हैं। श्री कृष्ण को उन्होंने 'आप्त' कहा है।

आप्त की परिभाषा महर्षि के शब्दों में इस प्रकार है, '**जो यथार्थ वक्ता, धर्मात्माओं के सुख के लिए प्रयत्न करता है, उसी को आप्त कहता हूँ।**' वे श्रीराम और श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्तित्व मानते हैं और महान् पूर्वज के रूप में मानते हैं। वे उन्हें ईश्वर का अवतार नहीं मानते हैं। अवतारवाद की मान्यता सर्वथा अवैदिक और राष्ट्रीय चरित्र के पतन के मूल कारणों में से है। ऐसी महर्षि की मान्यता है। अवतारवाद ही मूर्तिपूजा जैसे घोर दुरित का आधार है, इससे राम और कृष्ण आदि की अवमानना होती है। न ईश्वर कभी किसी सुअर-कच्छ-मच्छ आदि की देह धारण करता है। वह निराकार और सर्वव्यापक है। वह नस-नाड़ी,

शोक-हर्ष, काल और कर्म के बन्धन से रहित है। श्रीराम और श्रीकृष्ण हमारे प्रेरणा-स्रोत महामानव हैं। महर्षि दयानन्द ने भूत-प्रेत, फलित ज्योतिष, झाड़-फूंक, तागा-तावीज, जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र आदि बाह्य-आडम्बरों का विरोध किया है। 'भूत' बीते समय का नाम है, 'प्रेत' मृतक या शव की संज्ञा है। 'जन्मपत्र' को ऋषि ने 'शोक-पत्र' कहा है। फलित ज्योतिष को वे अमान्यता देते हैं और गणित ज्योतिष को स्वीकारते हैं। सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण छाया-मात्र हैं, उन्हें राहु-केतु से ग्रसा जाना मानना ठीक नहीं। उन्होंने ग्रहों या सितारों की गुलामी छोड़कर एकमात्र ईश्वर पर विश्वास करने को मान्यता दी है।

तीर्थ

महर्षि दयानन्द ने पुण्य, दान, ईश्वरोपासना, स्वाध्याय, सत्संग, सदाचार, माता-पिता, गुरुजनों तथा दीन-दुःखी की सेवा, ब्रह्मचर्यपालन, मांस-मदिरा और विषय-विलासिता का त्याग देवकर्म माना है। यही तीर्थ है **'जनाः येन तरन्ति तानि तीर्थानि'** जिन सत्कर्मों की साधना से मनुष्य तर जाते हैं वही 'तीर्थ' हैं। अतः ये 'देवकर्म' ही सच्चे तीर्थ हैं।

पुनर्जन्म और कर्मफल का सिद्धान्त

ऋषि दयानन्द को वेदोक्त होने से सर्वथा मान्य है। ईसाई और मुसलमानों के मत में इस प्रश्न का कोई युक्तियुक्त उत्तर नहीं कि क्यों कोई अंगहीन, अस्वस्थ या दरिद्री के घर पैदा होता है, और कोई सुन्दर, स्वस्थ, धनी घराने में। केवल वैदिक धर्म में इसका उत्तर मिलता है कि पूर्वजन्म के पुण्य-पाप के आधार पर यह भेद निर्भर है। ईसाई, मुसलमान 'खुदा की मर्जी' कहकर अपने खुदा को अन्यायी और निष्ठुर सिद्ध कर देते हैं। अतः कर्मफल और पुनर्जन्म का सिद्धान्त अकाट्य है। ईश्वर कर्मों का फलदाता है, और उसके न्याय-नियम से कर्मों का फल अवश्य मिलता है। कोई ईश्वर का अवतार, 'खुदा का पैगम्बर' या 'खुदा का बेटा' दुष्कर्मों के फल-भोग से किसी को बचा नहीं सकता। ऐसी मान्यता हजरत मुहम्मद के सम्बन्ध में मुसलमानों की है। इसी प्रकार मन्दिरों में भोग-प्रसाद चढ़ाकर या गंगा-यमुना आदि में स्नान करने से पापों के फल से छूटने की बात है। ऐसी अमानवीय मान्यताएँ मनुष्य को मनुष्यत्व से दूर ले जाती हैं।

महर्षि दयानन्द ने ऐसी ही अवैदिक और अमानवीय मान्यताओं का सत्यार्थ-प्रकाश के ११ से १४वें समुल्लास तक में प्रतिवाद किया है। ११ से १२वें समुल्लास में पौराणिक तथा बौद्ध-जैन मतों से सम्बन्धित तथा १३-१४वें समुल्लास में क्रमशः ईसाई और इस्लाम मत की ऐसी ही पाप-पोषक मान्यताओं का खण्डन महर्षि ने किया है—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्'
के सिद्धान्त में उनकी दृढ़ आस्था थी। वे **'आचारः परमो धर्मः'** तथा **'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'** अर्थात् आचरणरहित को वेद भी पवित्र नहीं कर सकने की मान्यता में विश्वास रखते थे।

स्वर्ग-नरक

पवित्र वेदों के अनुसार स्वर्ग-नरक का कोई विशेष स्थान नहीं है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है वह स्वर्ग कहलाता है। और लिखते हैं कि **जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है उसको 'नरक' कहते हैं।**

पशुबलि

पशुओं के बलिदान से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता। धर्म या यज्ञ के नाम पर मंदिर आदि में पशुहिंसा करना घोर पाप है। अपने बच्चों की कामना के लिए, दूसरों (गूंगे पशुओं) के गले काटना, अपनी और देवी-देवताओं की बुद्धि का अपमान करना है। इन्द्रियों का दमन, परोपकार, अग्निहोत्रादि अनुष्ठान, भले कार्यों में दान, विद्वानों का सत्संग, स्वाध्याय आदि 'यज्ञ' कहलाते हैं। अश्वमेध में घोड़ों की आहुति नहीं, अलंकार से अश्व (इन्द्रियों) के विषय-विकारों की आहुति देना ही अभिप्रेत है; अथवा **अशवं वै राष्ट्रं** अर्थात् राष्ट्रहित के लिए अपने निजी हितों का बलिदान कर देना ही 'अश्वमेध यज्ञ' है और पशु अर्थात् पाशविक वृत्तियों का बलिदान या त्याग ही पशुबलि है।

आहार-शुद्धि

शूद्रों या अपने से भिन्न जाति के साफ-सुथरे स्त्री-पुरुष द्वारा पकाये हुए भोजन से धर्म भ्रष्ट नहीं होता, परन्तु अधर्म, अन्याय, घूस, ब्लैक मार्केट, मिलावट आदि पापकर्मों से प्राप्त होनेवाले धन से खरीदे हुए अन्न के खाने से अवश्य धर्म भ्रष्ट होता है। [जात्यभिमानी जन हृदय पर हाथ धरकर अपनी-अपनी कमाई और जीवनी को इस कसौटी पर परखें]।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज

आर्यसमाज की स्थापना ऋषि दयानन्द ने किसी नये मत या सम्प्रदाय के रूप में नहीं की, वरन् जब उनके कुछ भक्तों ने आर्यसमाज की स्थापना के लिए आग्रह किया तो उन्होंने अपना यह भय प्रकट किया था—कहीं आगे चलकर आर्यसमाज भी

एक नया सम्प्रदाय न बन जाय !

आर्यसमाज के दस नियम ऋषि दयानन्द की मान्यताओं का दर्पण हैं। इन दस नियमों में एक भी स्थल पर 'दयानन्द' शब्द नहीं है। आर्यसमाज के तृतीय नियम में महर्षि ने 'वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म बताया है' न कि सत्यार्थप्रकाश आदि। आर्यसमाज के दस नियम पूर्णतः सार्वभौमिक मानवधर्म के दस सुनहरे सूत्र हैं।

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज में व्यक्ति-पूजा और गुरुडम के लिए कोई स्थान या अवसर नहीं रखा है। जब उन्हें एक बार आर्यसमाज के 'परम सहायक' सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा तो उन्होंने यह कहते हुए स्वीकार नहीं किया कि यदि 'परम सहायक' हमें कहेंगे तो परमपिता परमात्मा के लिए क्या कहेंगे ?

उन्होंने अपनी मृत्यु के पश्चात् अपनी राख भी किसी किसान के खेत में डालने को कहा तथा उनके नाम से 'समाधि' आदि बनाने का निषेध किया। प्रकट है आर्य-समाज 'दयानन्द-पन्थ' नहीं है। ऋषि ने आर्यसमाज को 'चरित्रनिर्माण आन्दोलन या 'मानवनिर्माण' आन्दोलन' के रूप में प्रस्थापित किया। उनके निकट वैदिक धर्म सार्वभौमिक मानवधर्म का पर्याय है। आर्यसमाज के दस नियम इसी सार्वभौमिक मानवधर्म की आधारशिला हैं। यही ऋषि दयानन्द का मन्तव्य है।

ऋषि दयानन्द को 'सत्य' सर्वाधिक प्रिय है उनका दृढ़ विश्वास है—'सत्यमेव जयते नाऽनृतम्'। आर्यसमाज के प्रथम पाँच सिद्धान्तमूलक नियमों में से प्रत्येक में 'सत्य' शब्द आया है। उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ का नाम 'सत्यार्थप्रकाश' रखा। जब उन्हें विरोध-भय के कारण जोधपुर जाने से भक्तगण रोकने लगे तो उन्होंने कहा था—'यदि लोग हमारी अंगुलियों को बत्तियाँ बनाकर जला दें, तो भी हम सत्योपदेश से मुख नहीं मोड़ेंगे।''

ऋषि दयानन्द सच्चे समाजवादी थे। आर्यसमाज का नवाँ और दसवाँ नियम इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहकर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना ही उन्हें अभीष्ट है। वह रूसी साम्यवाद से भिन्न है। 'अज्ञान' 'अन्याय' एवं 'अभाव' रूप समाज के इन तीन प्रबलतम शत्रुओं में से कम-से-कम किसी एक को मिटाने के लिए संघर्षरत रहने हेतु 'व्रती' बनकर पूर्ण उत्साह और पुरुषार्थपूर्वक विद्या, बल और धन का अर्जन कर स्वेच्छया इन उप-लब्धियों को **'इदन्न मम'** की भावना से समाज या राष्ट्र के समर्पण ही वैदिक समाजवाद है। यही देव दयानन्द का काम्य है।

आर्यसमाज के संगठन में उन्होंने 'गुरुगद्दी' आदि की परम्परा को नहीं रखा। धार्मिक क्षेत्र में प्रजातान्त्रिक पद्धति का सर्वाधिक सुन्दर प्रयोग ऋषि दयानन्द की महती देन है। यह दूसरी बात है कि आगे के आर्यजनों ने उसका सदुपयोग नहीं किया; इतना ही नहीं, दुरुपयोग भी किया। पर ऋषि दयानन्द की भावना उसके

पीछे, झोंपड़ी-झोंपड़ी तक में वेदज्ञान का दीपक जलाने की ही थी ।

आर्यसमाज की संरचना में ऋषि की मूल-भावना थी "अपने अतीत को हम फिर वर्तमान कर दें।" कभी जो हम थे, आज नहीं रहे, उस गत गौरव को पुनः वापस लाना है । पर ऐसा करते हुए हमें आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति तथा अन्य उपयोगी तत्त्वों को प्राचीनता के व्यामोह में नकारना नहीं है । अतः 'पुरानी नींव नया निर्माण' यह सूत्र उन्होंने हमें दिया । इसके लिए उपयोगितावाद और बुद्धिवाद का आश्रय लेने की बात नहीं ।

हाँ, हमें कविवर रंग जी के शब्दों में इतना ध्यान भी अवश्य रखना है—

"वह नहीं नूतन कि जो प्राचीन की जड़ तक हिला दे ।
जो पुरातन को नया कर दे, उसे नूतन कहूँगा ।"

गुरुमन्त्र गायत्री के चिन्तन के प्रकाश में हम शाश्वत वैदिक सत्यों के धरातल पर बुद्धिवाद और उपयोगितावाद का प्रयोग करें और **"अनृतात् सत्यं उपैमि"** की वैदिक सूक्ति से व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व को सजाएँ । इस क्रम में ही हम अपने पर्व (त्यौहार), संस्कार मनाएँ, साधु-ब्राह्मणों और विद्वानों की पूजा करें, दान-पुण्य करें, तीर्थ-सेवन करें, श्राद्ध-तर्पण करें, जप-तप-साधना करें, समाज व राष्ट्र की सेवा करें, आश्रम-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था को अपनाएँ आदि । अन्त में इतना और कि ऋषि दयानन्द की सम्पूर्ण मान्यताओं का प्राणतत्त्व है उनका सर्वाधिक प्रिय मन्त्र—

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव यद् भद्रन्तन्न आसुव" ॥

अर्थात् हमारे वैयक्तिक जीवन में, पारिवारिक जीवन में, सामाजिक जीवन में, राष्ट्रीय जीवन में और वैश्व जीवन में, वहाँ भी जो 'दुरित' है, प्रभु, हमें उससे आप दूर कीजिए और जो भद्र है उसे प्रतिष्ठित कीजिए । हमें इस पंचधा जीवन से 'दुरितानि' सभी प्रकार के दुर्गुणों और दोषों को दूर करना ही होगा, तभी इस प्रकार की भद्रताओं के ज्योतिकेन्द्र 'भद्र' रूप परमदेव की प्राप्ति हो सकेगी ।

महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों को इस छोटे-से लेख में प्रस्तुत करना वस्तुतः तो 'सागर को गागर' में भरने के तुल्य है । उनके मन्तव्यों को विस्तार से जानने के लिए महर्षि के वेदभाष्य, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्याभिविनय, पूना-प्रवचन, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि का परायण आवश्यक है । महर्षि के साहित्यामृत को पियें और सुख से जियें ।

ओ३म् शम् !



बाल एवं प्रौढ़ साहित्य

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक -1	6.00
आदर्श बालक -2	6.00

सन्तराम वत्स्य

लोक व्यवहर	5.00
संविधान की कहानी	10.00
भीष्म पितामह	6.00
वीर अर्जुन	6.00
महाबली भीम	6.00

यशपाल जैन

बोध कथाएँ	5.00
प्रेरक कथाएँ	5.00

श्यामचन्द्र कपूर

प्रत्येक का मूल्य 6.00

सच्चा सपूत	(जातक कथाएँ)
नंदिनी का वरदान	(रामायण की कथाएँ)
शरणागत की रक्षा	(वेद की कथाएँ)
कीर्ति का मार्ग	(महाभारत की कथाएँ)
सबसे बड़ा ज्ञानी	(उपनिषद् की कथाएँ)
फूलों की वर्षा	(पुराण की कथाएँ)
विश्वास का फल	(कुरान की कथाएँ)
जनता का प्यारा	(भागवत की कथाएँ)
सपने देखने वाला	(बाइबिल की कथाएँ)
आशा की ज्योति	(जैनग्रन्थों की कथाएँ)

पं० आनन्दकुमार

दो सूतरी पॉलटिक	25.00

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

इक्यावन कहानियाँ	110.00
एक और श्रीगणेश	22.00
अपने-अपने दायरे	30.00

सुमेधा

हमारी एकता के प्रतीक त्योहार	6.00

विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद'

ऋतुगीत		6.00
पितृभक्त बालक	**शरण**	6.00
तपस्वी बालक	**लक्ष्मी**	6.00
ज्ञानी बालक	**प्रभात कुमार**	6.00
भक्त बालक	**संगीता**	6.00
ईमानदार बालक	**सुदेश शरण**	6.00

शिवकुमार गोयल

क्रांतिकारी सावरकर	6.00

शान्ति भट्टाचार्य

बलिदान की कहानियाँ	6.00

स्कूल, कॉलेज में खेले जाने योग्य

चिरंजीत के नाटक

हास्यमंच—हम-तुम	20.00
हास्यमंच—घर-दफ्तर	22.00
हास्यमंच—देश-विदेश	25.00
पाँच प्रहसन	25.00
मन्दिर की जोत	18.00
दादी माँ जागी	25.00
महाश्वेता (उपन्यास)	45.00
रतजगा	20.00

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

आर्यसमाज के मनस्वी विद्वान् श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने आर्य-वैदिक साहित्य लिखकर बड़ी सेवा की है। अभी हाल ही में उनकी कृतियों का संकलन करते हुए **श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी** को उनके लिखे **हिन्दी-शेक्सपियर** प्राप्त हुए।

'शेक्सपियर के नाटक'

३७ नाटकों के कथानक तीन भागों में मूल्य १५०.००

सुबोध पब्लिकेशन्स

२/३ बी, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महाबली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	५.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	५.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों ,,)	६.००
कीर्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणोंकी कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रंथों ,,)	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली	८.००
राजा-रानी की कहानी	८.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

हास्य-व्यंग्य

हँसो हँसाओ	५.००
हास परिहास	५.००

विविध लेखक

भक्त बालक	६.००
पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हम सब राम-रहीम के बेटे	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००
सफलता की राह	५.००
उन्नति की राह	५.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें	६.००
अवसर को पहचानो	६.००
अपने आपको पहचानिये	६.००
आप सफल कैसे हों	६.००
उन्नति कैसे करें	६.००
धन कुबेर कैसे बनें	६.००

स्वास्थ्य और योग

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

डॉ० जायसवाल

कैंसर : कारण निवारण	१०.००

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	१०.००
सौ वर्ष कैसे जियें	१०.००
आहार चिकित्सा	१०.००

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डाक्टर (होम्योपैथी)	१२.००
मानसिक रोग कारण निवारण	१०.००

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग एक वरदान	१०.००

श्यामजी गोकुल वर्मा

योग-साधना और प्राणायाम	१०.००

महिला-उपयोगी

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक कला	६.००
आधुनिक मिष्ठान्न कला	६.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	६.००
अचार मुरब्बे चटनी	६.००

जीवनियाँ

इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	१०.००

सन्तराय वत्स्य

स्वामी विवेकानन्द	१०.००
स्वामी रामतीर्थ	१०.००
रामकृष्ण परमहंस	१०.००

तकनीकी

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	१२.००
ट्रांजिस्टर गाइड	१२.००
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	१०.००
टेलिविजन गाइड	१०.००

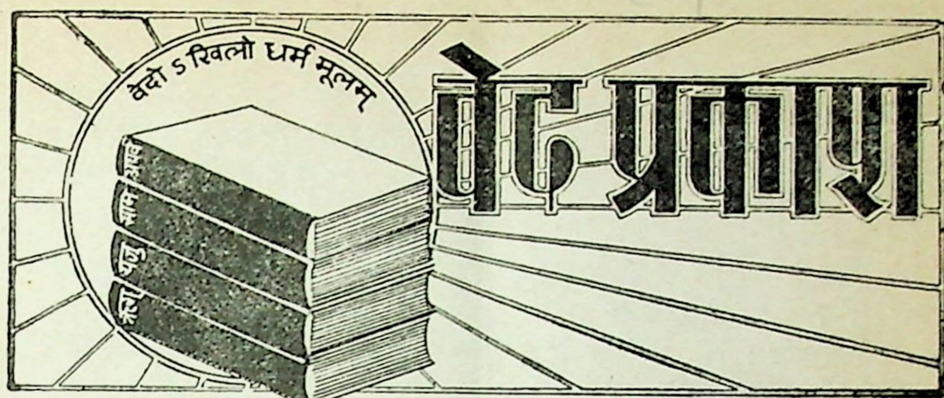
विविध

अमृत वाणी		१०.००
महाभारत		६.००
रामायण		६.००
पंचतन्त्र		६.००
हितोपदेश		६.००
चाणक्य नीति	संस्कृत-हिन्दी	१०.००
भर्तृहरिशतकम्	"	१५.००
विक्रम बेताल	हिन्दी	६.००
सिंहासन बत्तीसी		६.००
एशियाई खेल		१२.००
जूडो आत्मरक्षा के लिए		१०.००
जूडो कुंग्फू कराटे		६.००
सफल व्यापारी कैसे बनें		१०.००

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

अपने पराये		४.००
अकेली		४.००
चन्द्रनाथ		४.००
अनुराधा		४.००
परिणीता		४.००
बिन्दु का बेटा		४.००
बैकुण्ठ का दानपत्र		४.००
बड़ी दीदी		४.००
विराज बहू		४.००
ब्राह्मण की बेटी		४.००
पंडित मोशाय		४.००
मँझली दीदी		४.००
देवदास		६.००
नया विधान		६.००
देहाती समाज		६.००
शुभदा		४.००
श्रीकान्त	(दो भाग)	३०.००
विप्रदास		१०.००
देना पावना		१५.००
गृहदाह		१५.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



पुरुषार्थी को ही सुख

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः॥ (यजुर्वेद ३/४७)

पदार्थ—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मंगल करनेवाली (वाचा) वेदवाणी व अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर संगी होकर (कर्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते हैं, वे (देवेभ्यः) विद्वान् वा उत्तम-उत्तम गुण, सुखों के लिए (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्ण सूखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़कर पुरुषार्थ ही में निरन्तर रहकर, मूर्खपन को छोड़कर वेद-विद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्तें और परस्पर प्रीति करके एक-दूसरे का सहाय करें। जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वे ही अच्छे-अच्छे सुखयुक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं। अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ६]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [अप्रैल १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

ओ३म्

'अग्निहोत्र का महत्त्व'

(अग्निहोत्र से रोग व दुःख दूर)

लेखक—**आचार्य दिनेशचन्द्र शास्त्री**

(वेद-व्याख्याता, व्याख्यान-वाचस्पति)

संसार में राजाधिराजेश्वर परमात्मा हमारा अमर पिता, अमर माता है और प्रभु की अमर वाणी वेद है। वह ईश्वर वेद के द्वारा जीवों को उपदेश करता है—

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँऽआ सादयादि ॥

(यजुः० २२।१७)

अर्थात् "अग्निहोत्र करनेवाला मनुष्य ऐसी इच्छा करे कि मैं प्राणियों के उपकार करनेवाले पदार्थों को पवन=हवा और मेघमण्डल में पहुँचाने के लिए अग्नि को सेवक की नाईं अपने सामने स्थापन करता हूँ। क्योंकि वह अग्नि हव्य अर्थात् होम करने के योग्य वस्तुओं को अन्य देश में पहुँचानेवाला है, इसीसे उसका नाम 'हव्यवाट' है। जो उस अग्निहोम को जानना चाहें, उनको मैं उपदेश करता हूँ कि वह अग्नि उस अग्निहोत्र कर्म से पवन और वर्षाजल की शुद्धि से इस संसार में श्रेष्ठ गुणों को पहुँचाता है।" हे मनुष्यो ! तुम लोग वायु, ओषधि और वर्षा-जल की शुद्धि से सबके उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम व ढाक आदि काष्ठों से **अतिथिरूप अग्नि** को नित्य प्रकाशमान करो। फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट, मधुर, सुगन्धित अर्थात् दुग्ध, घृत, शर्करा, गुड़, केशर, कस्तूरी आदि, एवं रोगनाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं, उनका अच्छी प्रकार नित्य अग्निहोत्र करके सबका उपकार करो।

अग्निहोत्रकरणार्थं ताम्रस्य मृत्तिकाया वैकां वेदिं सम्पाद्य, काष्ठस्य रजत-सुवर्णयोर्वा चमसमाज्यस्थालीं च संगृह्य, तत्र वेद्यां पलाशाम्रादिसमिधः संस्थाप्याग्निं प्रज्वाल्य, तत्र पूर्वोक्तद्रव्यस्य प्रातःसायङ्कालयोः प्रातरेव वोक्तमन्त्रैर्नित्यं होमं कुर्यात् ।।

अर्थात् 'अग्निहोत्र करने के लिए ताम्र वा मिट्टी की वेदी बनाके काष्ठ, चाँदी वा सोने का चमसा अर्थात् अग्नि में पदार्थ डालने का पात्र और आज्यस्थाली अर्थात् घृतादि पदार्थ रखने का पात्र लेके, उस वेदी में ढाक वा आम्र आदि वृक्षों की समिधा स्थापन करके, अग्नि को प्रज्वलित करके, पूर्वोक्त पदार्थों का प्रातःकाल और सायंकाल अथवा प्रातःकाल ही नित्य होम करें।

अग्नये परमेश्वराय जल-वायु-शुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं दानं यस्मिन् कर्मणि क्रियते तदग्निहोत्रम्, ईश्वराज्ञापालनार्थं वा। सुगन्धिपुष्टिमिष्ट बुद्धिवृद्धि-शौर्य-धैर्य-बल-रोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणां होमकरणेन वा वायु-वृष्टि-जलयोः शुद्धया पृथिवीस्थ पदार्थानां सर्वेषां शुद्धवायुजलयोगात् सर्वेषां जीवानां परमसुख भवत्येव। अतस्तत् कर्मकर्त्तॄणां जनानां तदुपकारेणात्यन्तसुखमीश्वरानुग्रहश्च भवत्ये तदाद्यर्थमग्निहोत्रकरणम् ।।

अर्थात् 'जिस कर्म में अग्नि वा परमेश्वर के लिए, जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञापालन के अर्थ होत्र-हवन अर्थात् दान करते हैं, उसे अग्निहोत्र कहते हैं। जो-जो केशर-कस्तूरी आदि सुगन्धि, घृत-दुग्ध आदि पुष्ट, गुड़-शर्करा आदि मिष्ट, बुद्धिबल तथा धैर्यवर्धक और सोमबल्यादि रोगनाशक पदार्थ हैं, उनका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है, उसीसे सब जीवों को परमसुख होता है। इस कारण अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्यों को उस उपकार से अत्यन्त सुख का लाभ होता है, और ईश्वर उनपर अनुग्रह करता है। ऐसे-ऐसे लाभों के अर्थ अग्निहोत्र का करना अवश्य उचित है।'

एवमग्निहोत्रमीश्वरोपासनं च कुर्वन्तः सन्तः। शतहिमाः=शतं हिमा हेमन्तर्त्तवो गच्छन्ति येषु संवत्सरेषु ते शतहिमा यावत् स्युस्तावत् ऋधेम=वर्धेमहि।

अर्थात् 'अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हम लोग सौ हेमन्त ऋतु व्यतीत हो जाने पर्यन्त अर्थात् सौ वर्षों तक धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हों।'

(ऋ० भा० भू०)

कर्मकाण्ड में याज्ञिक प्रक्रियानुसारी अर्थ का विषय होने पर भी कर्मकाण्ड के साथ अध्यात्म-चिन्तन आवश्यक है। उसके बिना शुष्क कर्मकाण्ड निष्प्रयोजन ही रहता है। कर्मकाण्ड और पदार्थज्ञानकाण्ड की समाप्ति भी अध्यात्मज्ञान में ही होती है। यही वेद का चरम लक्ष्य है। अतः अग्निहोत्र प्रकरण (ऋ० भा० भू०) में अध्यात्मपरक अर्थ 'अग्निं दूतं पुरो दधे०' मन्त्र का द्वितीय अर्थ महर्षि ने लिखा

है—'हे सब प्राणियों को सत्य उपदेशकारक परमेश्वर ! जो कि आप अग्नि नाम से प्रसिद्ध हैं, मैं इच्छापूर्वक आपको उपासना करने योग्य मानता हूँ। ऐसी कृपा करो कि आपको जानने की इच्छा करनेवालों के लिए भी मैं आपका शुभगुणयुक्त विशेष ज्ञानदायक उपदेश करूँ तथा आप भी कृपा करके इस संसार में श्रेष्ठगुणों को पहुँचावें।' इस प्रकार सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र का विधान महर्षि दयानन्द जी महाराज ने दर्शाया है। वेदाध्ययन, नित्यप्रति ईश्वर का ध्यान और हवन करना परमावश्यक है जिससे नीरोग रहें, शान्ति पा सकें।

प्रश्न—यज्ञ किसे कहते हैं ?

उत्तर—अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध-पर्यन्त जो शिल्प-व्यवहार और जो पदार्थ-विज्ञान है, जोकि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं। (आर्योद्देश्य०)

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज यज्ञ की प्रशंसा करते हुए स्वग्रन्थों में लिखते हैं—"जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपभोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको यज्ञ कहते हैं।"

"जो अग्नि में प्रातःप्रातःकाल में होम किया जाता है, वह-वह हुत द्रव्य सायंकालपर्यन्त वायु की शुद्धि द्वारा बल-बुद्धि और आरोग्यकारक होता है।"

(स० प्र० समुल्लास चार)

यज्ञोऽपि तस्य जनतायै कल्पते यत्रैव विद्वान् होता भवति।

(ऐ० ब्रा० १।१)

अर्थात् 'जनता नाम जो मनुष्यों का समूह है (और प्रत्येक प्राणियों, जीवों के) सुख के लिए यज्ञ होता है।' यज्ञ अनर्थ दोषों को हटा जगत् में आनन्द को बढ़ाता है। यज्ञ के माध्यम से वायु का शोधन होता है। यज्ञ द्वारा वर्षा से पवित्र जल मिलता है और आकाशीय तत्त्व के शोधन होने से पृथिवी के निवासी स्वस्थ-सुन्दर बनते हैं। दुर्गन्धि का निवारण, रोगाणुओं का विनाश होकर स्वस्थ वातावरण का निर्माण होता है; पवित्र स्वास्थ्यवर्धक अन्न-ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जीवों की बुद्धि का उत्तम विकास हो जाता है। सम्पूर्ण जगत् के निवासी आनन्दित होते हैं। विद्वानों का सत्कार होता है; उनसे उत्तमोत्तम ज्ञानप्रद शिक्षाएँ मिलती हैं; मनुष्यों के व्यवहार श्रेष्ठ बनते हैं और परिवारों में सुख व शान्ति का आनन्द व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार '**विद्वाँसो हि देवाः।**'' उत्तम यज्ञ से देवपूजा सम्पन्न होने से अनेक लाभ होते हैं। महान् तत्त्ववेत्ता महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—'**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**' (शत० ब्रा०)—यज्ञ संसार में सबसे श्रेष्ठ कर्म है।

इस भूमण्डल पर भी प्राकृतिक यज्ञ होता रहता है। वेदमन्त्र ने उपदेश दिया—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः॥ (यजुः० ३१)

अर्थात् 'देवतागण जिस पुरुष के साथ मिलकर यज्ञीय हवि से यज्ञ करते हैं उस यज्ञ में वसन्त ऋतु घृत है, ग्रीष्म ऋतु समिधा है तथा शरद् ऋतु हवि है।' ग्रीष्म यज्ञ को तपाता है, वसन्त रस देता है। यदि इस प्राकृतिक यज्ञ में घृत न होवे तो यज्ञ शुष्क रहेगा। शरद् ऋतु फल-फूल-पत्ते झाड़कर यज्ञ के अर्पण कर देता है और इस प्रकार संसार का चक्र चालू रहता है। ग्रीष्म के तीव्र ताप से रेगिस्तान की बालू तपती है और सम्पूर्ण वायुमण्डल को शुद्ध कर देती है। इस प्रकार सारे विश्व में सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देव ऋतुओं का निर्माण करके परमेश्वर के ब्रह्मा वा आचार्यत्व में नित्य प्राकृतिक यज्ञों का विश्व-कल्याण के लिए संचालन किया करते हैं। इन देवों की शक्तियाँ नित्ययज्ञों में कार्यरत रहती हैं, इसलिए वेद ने प्रत्येक जन को आदेश दिया है—

'**देवाः यजमानश्च सीदतः** !' अर्थात् 'हे पुरुषो ! विद्वान् देवो ! आप लोग बैठकर यज्ञ करो।' यज्ञ के लिए पूर्ण श्रद्धा तथा सत्यविधि का होना आवश्यक है। ऐसा होने से ही यज्ञ लाभकारी बनता है। शास्त्रकारों ने कहा—

नास्ति यज्ञसमं दानं, नास्ति यज्ञसमो निधिः।
सर्वधर्मसमुद्देशो देवि यज्ञे समाहितः॥
(महा० अ० १४५)

अर्थात् 'यज्ञ के समान कोई दान नहीं है और यज्ञ के समान कोई निधि=खजाना नहीं है। [श्री महेश्वर जी उमा से कहते हैं—] हे देवि ! सम्पूर्ण धर्मों का उद्देश्य यज्ञ में प्रतिष्ठित है।' इसीलिए कहा—

नाग्निं परित्यजेज्जातु न च वेदान् परित्यजेत्।
न च ब्राह्मणानाक्रोशेत् समेतद् ब्रह्महत्यया॥
(महा० अनु० २३)

अर्थात् 'अग्निहोत्र का कभी त्याग न करे, वेदों का स्वाध्याय न छोड़े और (वेदों व ब्रह्म को जाननेवाले) तपस्वी ब्राह्मण की निन्दा न करे, क्योंकि ये तीनों दोष ब्रह्महत्या के समान हैं।' अतः ऋषि लोग जब अग्नि में घी की आहुति देते थे, उस समय उनके धूम से प्रकट हुई सुगन्धि सारे तपोवन में फैल जाती थी। उसके कारण जनता का चित्त प्रसन्न रहता था। भीष्म जी युधिष्ठिर से कहते हैं—

इष्टं दत्तं च मन्येथा आत्मानं दानकर्मणा।
पूजयेथा यायजूकाँस्तवाप्यंशो भवेद् यथा॥ (महा० अनु० ६१)

अर्थात् 'याज्ञिक पुरुषों को दान करके ही तुम अपने 'को यज्ञ और दान के पुण्य का भागी समझ लो। यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों का सदा सम्मान करो। इससे तुम्हें भी यज्ञ का आंशिक फल प्राप्त होगा।' भीष्म जी युधिष्ठिर से यह भी कहते हैं—

ब्राह्मणाँस्तर्पयन् द्रव्यैस्ततो यज्ञे यतव्रतः।
मैत्रान् साधून् वेदविदः शीलवृत्ततपोर्जितान्॥ (महा० अ० ६१)

अर्थात् 'तुम विनयपूर्वक यज्ञ में सुशील, सदाचारी, तपस्वी, वेदवेत्ता, सबसे मैत्री रखनेवाले तथा साधु-स्वभाववाले ब्राह्मणों को धन देकर सन्तुष्ट करो।'

यज्ञान् साधय साधुभ्यः स्वाद्वन्नान् दक्षिणावतः॥
(महा० अनु० ६१)

भीष्म जी कहते हैं—'श्रेष्ठ पुरुषों के लिए स्वादिष्ट अन्न और दक्षिणा से युक्त यज्ञों का अनुष्ठान करो।'

अनिमन्त्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेत दर्शकः॥ (अनु० १०४)

भीष्म जी यह भी कहते हैं—'बिना बुलाए कहीं भी न जाए, परन्तु यज्ञ देखने के लिए मनुष्य बिना बुलाए भी जा सकता है।' प्रत्येक नर-नारी को चाहिए अपने घरों में यज्ञ अवश्य करें तथा अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणावाले यज्ञों का भी अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए।

तुष्टेव सर्वदेवेषु यज्वा यज्ञफलं लभेत्।
देवाः सन्तोषिता यज्ञैर्लोकान् संवर्धयन्त्युत॥ (महा० अनु० १४५)

'सम्पूर्ण वायु आदि देवताओं और विद्वानों के सन्तुष्ट होने पर यजमान को यज्ञ का पूरा-पूरा फल मिलता है। यज्ञों द्वारा सन्तुष्ट किये हुए देवता सम्पूर्ण लोकों की वृद्धि करते हैं।'

किसी ने किसी से पूछा कि 'जो यज्ञ को छोड़ देता है उसके लिए क्या होता है?' उत्तर मिला कि 'ईश्वर भी उसको छोड़ देता है।' फिर पूछा कि 'ईश्वर उसको किसलिए छोड़ देता है?' उत्तर देनेवाला कहता है कि 'दुःख भोगने के लिए। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है।' (यजुः० २) यज्ञ के अनुष्ठान से उत्साह, उत्तम बुद्धि, सत्यवाणी, धर्माचरण की रीति, तप, धर्म का अनुष्ठान तथा विद्या की पुष्टि का सम्भव होता है, अतः यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें। [यज्ञार्थ हव्य-पदार्थों में घृत का होना परमावश्यक है और शुद्ध घी की सहज और दैनन्दिन प्राप्ति तभी सम्भव है जब घर-घर में गो-पालन की आर्य-परम्परा का निर्वाह हो। स्वतन्त्रता से पहले प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ दुधारू पशु अवश्य होता था, किन्तु जनसंख्या के विस्फोट ने पशु-पालन ही असम्भव बना दिया है। इस विमूढ़ता के

कारण कुछ लोग यज्ञ को भी पाखण्ड कहने लगे हैं। वस्तुतः यज्ञ तो वायु-प्रदूषण से बचने का अमोघ साधन है।] यज्ञ के लिए घृतादि पदार्थ चाहनेवाले मनुष्यों को गाय आदि पशु अवश्य रखने चाहिएँ। (यजुः० ६) जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं। (यजु० १८, मं ४२) यज्ञ-कर्म के करनेवाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कारयुक्त होते हैं। (यजुः० २३) मनुष्यों को चाहिए कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु-ऋतु में होम किया करें जिससे वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि, सूर्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सबका उपकारी होवे। (यजुः० २९) 'अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर, वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का श्वास-स्पर्श, खान-पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना, इससे इसको 'देवयज्ञ' कहते हैं।'

(स० प्र० चतुर्थ समु०)

'सुगन्धादि युक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके अग्नि में होम करने से जगत् का अत्यन्त उपकार होता है। जैसे दाल और शाक आदि में सुगन्ध-द्रव्य और घी, इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपाके उनमें छौंक देने से वे सुगन्धित हो जाते हैं, क्योंकि उस सुगन्ध-द्रव्य और घी के अणु उनको सुगन्धित करके दाल आदि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ानेवाले कर देते हैं, वैसे ही यज्ञ से जो भाप उठता है वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है। इससे वह यज्ञ परोपकार के लिए ही होता है। जब होम से वायु, जल और ओषधि आदि शुद्ध होते हैं, तब सब जगत् को सुख और अशुद्ध होने से सबको दुःख होता है। इससे इनकी शुद्धि अवश्य करनी चाहिए।'

(ऋ० भू० वेदवि०)

'आर्यवरशिरोमणि महाशय, ऋषि-महर्षि, राजे-महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और कराते थे। जब तक होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो, तो वैसा ही हो जाय।'

(स० प्र०)

यज्ञ से बढ़कर संसार में कोई उपकारक कर्म दूसरा नहीं, क्योंकि जल-वायु की शुद्धि बिना कि जिससे प्राणियों को कष्ट होता है, उससे ही बचाने का नाम यज्ञ है। जब भारतवर्ष में यज्ञ होते थे तब कभी विशूचिका-हैज़ा आदि रोगों का पता भी न था, परन्तु जब से वाममार्गियों के हिंसक यज्ञों ने यज्ञ-जैसे उत्तम कर्म को कलंकित कर दिया, तभी से यहाँ अकाल, विशूचिका, हैज़ा और प्लेग = महामारी आदिक नाना प्रकार के संक्रामक रोग आ गए जिससे प्राणीमात्र को दुःख हो रहा है। जब तक भारतवर्ष में यज्ञ का प्रचार था, तब तक अग्नि, वायु और जल आदिक प्रत्येक पदार्थ मनुष्यों के अनुकूल बना रहता था। भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं

की पूर्ति के लिए यज्ञ के भिन्न-भिन्न नाम हैं, जैसे पुत्रेष्टि यज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ, वर्षायज्ञ, पूर्णिमा, अमावास्या, पाक्षिक यज्ञ, राजसूय यज्ञ आदिक नाना प्रकार के यज्ञों के बहुत-से लाभ समझे गए हैं, जैसे किसी के पुत्र उत्पन्न न हुआ तो उसके लिए 'पुत्रेष्टियज्ञ' की आवश्यकता है। प्रत्येक यज्ञ के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री नियत है, जिस प्रकार कि प्रत्येक रोग के लिए भिन्न-भिन्न ओषधियाँ होती हैं। जिस समय महाराजा दशरथ के सन्तान नहीं होती थी, उस समय पुत्रेष्टियज्ञ किया और उस यज्ञशेष=यज्ञ का प्रसाद राजा की रानियों ने खाया तो चार पुत्र हुए। यह कोई जादुई चमत्कार नहीं, सर्वथा वैज्ञानिक तथ्य है, और प्राकृतिक नियम के ठीक अनुकूल है, क्योंकि यदि पुरुष में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति नहीं तो उसको यज्ञ में बैठाया जाता है, और यदि स्त्री-पुरुष दोनों में शक्ति नहीं हो तो दोनों मिलकर विशेष ओषधियों से घृतसहित यज्ञ करते हैं और ग्यारह दिन तक उन ओषधियों के परमाणु जिनसे यज्ञ किया जाता है, सूक्ष्म होकर प्राणवायु के द्वारा उनके शरीर में प्रवेश करते हैं; अग्नि के सम्मुख बैठने से बुरे परमाणु पसीने की राह निकलते रहते हैं एवं शरीर में ऊर्जा और ऊष्मा के स्रोत फूट पड़ते हैं। हमारे शरीर-विज्ञानी उस युग में कैसी विलक्षण पूर्णता को प्राप्त कर चुके थे, इसका ज्वलन्त प्रमाण है निस्सन्तान दशरथ का ग्यारह दिन में वीर्यवान् हो जाना। इसी प्रकार वर्षा आदिक के निमित्त यज्ञ किये जाते थे। मूर्खों ने यज्ञ की विद्या को न जानकर आक्षेप तो किये हैं, परन्तु उनमें से यथार्थ तथा ज्ञानपूर्वक एक भी नहीं। भारतवर्ष में जितने विद्वान् हुए, प्रत्येक ने यज्ञ के ऊपर जोर दिया था। एक समय था समस्त भूमण्डल यज्ञ को अपना धर्म समझता था, परन्तु जिस समय से वाम-मार्ग चला और उन्होंने हिंसक यज्ञ आरम्भ किये, तब से संसार में यज्ञों की निन्दा फैल गई और मनुष्य इस सर्वोपयोगी कार्य से पृथक् हो गए।

भारत के जन-जन के मानस में योगिराज श्रीकृष्ण भगवान् की तरह प्रतिष्ठित हैं। स्वयं श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्म समुद्भवः॥ (अ० ३)

अर्थात् 'सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि (वर्षा) से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है तथा यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होनेवाला है।' कर्म किससे उत्पन्न होते हैं? गीता में कहा—

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥

(गी० अ० ३)

अर्थात् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—'कर्म को ब्रह्म (वेद) से उत्पन्न हुआ जानो

और वेद अक्षर (जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है, इसलिए सब वैदिक कर्मों में उपयोगी होने से वेद नित्य यज्ञ में प्रतिष्ठित माना जाता है।' कदाचित् कोई एक क्षणभर भी कर्म के बिना नहीं रह सकता। प्रकृति से उत्पन्न हुए जो सत्त्व, रज, तम आदि कर्म के गुण हैं, उनसे कर्म अवश्य कराया जाता है। इसलिए पुरुष निष्कर्म कदापि नहीं हो सकता—

नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ (गी० अ० ३)

अर्थात् 'हे अर्जुन! तुम निश्चय करके कर्मों को नियमपूर्वक करो। कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ है, क्योंकि कर्म न करने से तेरी शरीरयात्रा भी सिद्ध न होगी।' यहाँ कर्मयोग को ज्ञाननिष्ठा से अधिक बोधन करने के लिए कथन किया गया है कि यदि सब कर्म छोड़कर केवल ज्ञाननिष्ठा ही श्रेष्ठ होती तो उसी से मनुष्य की शरीरयात्रा भी सिद्ध हो जाती, पर ऐसा नहीं होता; इसलिए कर्मों का करना आवश्यक है। कर्म भी बन्धन का हेतु यज्ञादि कर्मों से अन्यत्र होते हैं; जो यज्ञार्थ कर्म किये जाते हैं वे बन्धन का हेतु नहीं होते। इसी भाव को आगे कहा—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥

अर्थात् 'यज्ञ के निमित्त जो कर्म किये जाते हैं उनसे भिन्न यह कर्मों का अधिकारी-जन कर्मों के बन्धनवाला होता है। हे अर्जुन! यज्ञ के अर्थ कर्मों का संग छोड़कर निष्काम कर्म कर!' किस कारण से श्रीकृष्ण महाराज ऐसा कहते हैं?—

सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वाः पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ (गी० अ० ३)

अर्थात् 'यज्ञ के साथ प्रजा को रचकर पूर्वकाल में प्रजापति बोला कि इस यज्ञ से तुम बढ़ो (फैलो), यह यज्ञ तुमको इष्ट कामों के देनेवाला हो।' प्रजापति से आशय यहाँ ईश्वर का है। जब ईश्वर ने सृष्टि रची तो यज्ञ के साथ रची और उस सृष्टि को रचकर यह कहा कि तुम इस यज्ञ से बढ़ो, यह कहना उपचार से है। इससे आशय उसकी आज्ञापालन का है, जैसाकि श्रीकृष्ण जी महाराज गीता में कहते हैं—

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥ (गी० अ० ३)

अर्थात् 'यज्ञ से प्रसन्न किये हुए देव (विद्वान् लोग) तुमको इष्ट भोगों को देंगे। उनके दिये हुए भोगों को उनको न देकर जो भोगता है वह स्तेन-एव (चौर ही) है।' तात्पर्य यह है कि विद्वानों की कृपा से ही मनुष्यों को इष्ट (उत्तम भोग) मिलते हैं और वे देव निष्काम (शुभ कर्मादि) यज्ञों से प्रसन्न होते हैं; जो लोग उनकी

प्रसन्नता के बिना, अर्थात् देव-ऋण चुकाने के बिना स्वयं भोग करते हैं वे चोर हैं। वेद कहता है—'बाँटकर खाओ ! अकेले ही न खाओ; केवल अकेला खानेवाला पाप खाता है।' अतः यज्ञ के द्वारा सब प्राणियों को प्रसाद मिल जाता है। इसलिए यज्ञ करना अनिवार्य है—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गी० अ० ३)

'यज्ञशेष का भोजन करनेवाले सत्पुरुष सब पापों से छूट जाते हैं। वे लोग पाप का भोजन करते हैं जो अपने ही लिए पकाते हैं।' जो लोग देव-ऋण को नहीं उतारते उनको पापी कहा है, अर्थात् जो केवल अपने लिए ही द्रव्योपार्जन करते हैं। जो देवों (विद्वानों) की सेवा नहीं करते, वे पाप का अन्न खाते हैं। यज्ञशेष क्या है?—यह कि 'विद्वानों को भोजन कराने के पश्चात् जो शेष बच जाता है।' इसीलिए कहा कि इस यज्ञ से विद्वानों को बढ़ाओ और वे विद्वान् तुमको बढ़ावें, इस प्रकार एक-दूसरे को बढ़ाते हुए तुम परम श्रेय (कल्याण) को प्राप्त होगे। **'दीव्यतीति देवः'**—जो हमें ज्ञान से चमकाते हैं वे देव हैं। माता, पिता, आचार्य, विद्वान् अतिथि आदि हमारे जीवन के मार्ग प्रशस्त करते हैं, अतः ये देव हैं। तभी तो हमारे शास्त्रों में पहला पाठ यही पढ़ाया जाता है कि 'मातृदेवो भव ! पितृदेवो भव ! आचार्य-देवो भव !' जड़ पदार्थों में भी देवत्व तो है, जैसे सूर्य और ओषधियाँ हमें रोगमुक्त करने के साधन हैं, किन्तु इन जड़ पदार्थों से लाभ तभी सम्भव है, जब इनका समुचित प्रयोग हो; इनकी पूजा से कोई लाभ नहीं। देवत्व उन्हीं से मिलेगा जो स्वयं देव और दिव्य हैं। इसीलिए कहा कि 'यज्ञ से तुम आचार्यादि विद्वान् देवों की प्रसन्नता उपलब्ध करो और वे प्रसन्न होकर तुमको बढ़ावें।' मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य भी तो देवत्व को प्राप्त करके अन्त में मोक्षानन्द को प्राप्त करना है। ज्ञानवान् तथा क्रियावान् (प्रयत्नवान्) होना सबको अनिवार्य है। ज्ञान और क्रिया के लिए धर्म के तीन स्कन्धों का आश्रय लेना पड़ता है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा है—**'त्रयो धर्मस्कन्धाः**—यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।' अर्थात् धर्म के तीन भाग हैं—यज्ञ, अध्ययन, दान।

महर्षि पाणिनि महाराज कहते हैं—'यज्ञ' यज् धातु से बना है। **'यजयाचयतविच्छप्रच्छ रक्षो नङ्'**(अष्टा० ३।३।९०) इस पाणिनीय सूत्र से नङ्प्रत्यय होकर, न को ञ होकर (यज्+नङ्, न को ञ्, ज्+ञ्=ज्ञ, य+ज्ञ)'यज्ञ' शब्द सिद्ध होता है। यज्ञ वह है जिसमें यज्ञ-कर्म पाए जावें और वे तीन कर्म हैं—'देवपूजा, संगतिकरण, दान'। यज्ञ में जिन देवों को आहुति दी जाती है, वे यज्ञदेव ही देव हैं। यज्ञ के देव आहुति-प्रदान से तृप्त होते हैं और मनुष्यदेव दक्षिणा एवं सात्त्विक आहार से संतुष्ट होते हैं जिनसे हमें सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है; मनुष्य अकेला रहकर जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसका मूल्य-निर्धारण

भी समाज ही कर सकता है। इस संगतिकरण में उसकी व्यक्तिगत विषमताएँ दूर हो जाती हैं। संगतिकरण का अर्थ है संगठन, सम्मिलित रहना, आपस में मिलकर रहना। सबका रक्षक, पालक, धारक होने से परमेश्वर सब देवों का देव होने से 'महादेव' कहाता है।' **देवो दानाद्वा दीपाद्वा द्योतनाद्वा द्युः स्थानो भवतीति वा'** अर्थात् दान देने से देव नाम पड़ा है। दान कहते हैं 'अपनी वस्तु दूसरे के अर्थ देना।' इनमें दान का दाता मुख्य रूप से परमेश्वर ही है जिसने कि संसार को सब पदार्थ दे रक्खे हैं। विद्वान् मनुष्य भी विद्यादि पदार्थों के देनेवाले होने से 'देव' कहलाते हैं। माता-पिता, आचार्य भी पालन-पोषण और सत्योपदेश करने से 'देव' कहलाते हैं। मनुष्यदेवों की पूजा, दक्षिणा एवं सात्त्विक आहार देने से होती है। उसी प्रकार भौतिक देवों की पूजा, अग्नि में दी गई आहुतियों से होती है अर्थात् अग्नि में आहुति देने से अग्नि, वायु आदि की शुद्धि होती है। यज्ञ से हमारा परिवार स्वस्थ, सुखी, प्रसन्न रहता है, यज्ञ से दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है। वस्तुतः यज्ञ ही जीवन है। यज्ञ करनेवाला स्वयं भी नीरोग रहता है और उसके द्वारा किये गए यज्ञ के धूम से संक्रामकादि रोगकीटाणु नष्ट हो जाते हैं, दुर्गन्धि-का नाश होकर सुगन्धित वातावरण बन जाता है जिससे हमारी बुद्धि पवित्र, धन-धान्य की वृद्धि एवं शुभोन्नतियुक्त जीवन हो जाता है। वेदों में यज्ञों के करने का महान् विधान है। महर्षि दयानन्द जी महाराज 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखते हैं—'दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख, और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य, और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।' देखो, जहाँ होम होता है, वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है; वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैलके, वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है। अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके (घर में विद्यमान अपवित्र वायु को) बाहर निकालकर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है।

प्रश्न हुआ—मन्त्र पढ़के होम करने का क्या प्रयोजन है? उत्तर यह है कि मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएँ, और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें जिससे वेद-पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न होता है—क्या इस होम करने के बिना पाप होता है? उत्तर—हाँ, क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए। और खिलाने-पिलाने से उसी

एक व्यक्ति को सुखविशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें, तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके। इससे अच्छे पदार्थ खिलाना-पिलाना भी चाहिए, परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है, इसलिए होम का करना आवश्यक है।... प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और छः-छः मासे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए, और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है।

(स० प्र० तृ० समु०)

आर्य संस्कृति के पोषक सभी राजे-महाराजे यज्ञ करते-कराते थे। गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी, सुलभा, सीता, उर्मिला, रुक्मणि आदि विदुषी नारियाँ नित्य-प्रति सन्ध्या-यज्ञ करती थीं। महर्षि वसिष्ठ, विश्वामित्र, नारद, श्रीरामचन्द्र जी महाराज, योगिराज श्रीकृष्ण जी महाराजादि भी सन्ध्या-यज्ञ करते थे। भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य, पाण्डव-पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि सभी सन्ध्या-यज्ञ करते थे। ऋषि-महर्षि लोगों ने सभी को यज्ञ एवं वेद-स्वाध्याय का उपदेश किया है। यज्ञ से ही जीवन का महत्त्व है। 'यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्' (यजुः०)—'यज्ञ से यज्ञ को समर्थ करो अर्थात् यज्ञ के द्वारा शुभ कर्म, सत्यव्यवहार से यज्ञ को बढ़ाओ।'

यज्ञ को बढ़ाया कैसे जाय?– उत्तर है 'श्रद्धा' से। श्रद्धा से शून्य यज्ञ भी पाखण्ड है। इस विषय में जनक-याज्ञवल्क्य-संवाद विशेष रूप से ध्यातव्य है। एक बार राजर्षि जनक ने ऋषियों की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया—'हे याज्ञवल्क्य! क्या तुम अग्निहोत्र को जानते हो?' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—'हाँ सम्राट्, जानता हूँ।' जनक जी ने पूछा—'वह क्या है? अर्थात् यज्ञ का स्वरूप क्या है?' याज्ञवल्क्य बोले—'दुग्ध से उत्पन्न घृतादि यज्ञ का साधन है।' जनक ने पूछा—'यदि दूध न हो तो किसकी आहुति दोगे?' याज्ञवल्क्य बोले—'चावल या जौ से ही यज्ञ कर लेंगे।' जनक जी ने शंका उठाई—'यदि दैवयोग से चावल या जौ भी न हो तो किसकी आहुति दोगे?' याज्ञवल्क्य ने कहा—'जो भी अन्य ओषधियाँ हैं उनसे यज्ञ कर लेंगे।' जनक ने कहा—'यदि अन्य ओषधियाँ भी न हों तो किसकी आहुति दोगे?' याज्ञवल्क्य ने कहा—'वन में उत्पन्न होनेवाली ओषधियों से यज्ञ कर लेंगे।' जनक ने कहा—'यदि जंगली ओषधियाँ भी न हों तो किसकी आहुति दोगे?' याज्ञवल्क्य बोले—'वनस्पति अर्थात् केवल समिधाओं से यज्ञ कर लेंगे।' जनक ने पूछा—'यदि वनस्पति न हो तो किसकी आहुति दोगे?' याज्ञवल्क्य बोले—'जल की, अर्थात् मन्त्रों को बोलता हुआ स्वाहा बोलकर जल ही पृथिवी पर छोड़ता जाये।' जनक ने कहा—'यदि जल भी न हो तो किसकी आहुति दोगे?' याज्ञवल्क्य बोले—'अगर कुछ भी न हो तो सत्य की श्रद्धा में आहुति देंगे।' तब राजा जनक ने कहा—'**वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य धेनुशतं ददामीति होवाच।**' (शत० ब्रा०,

का० ११, अ० ३) 'हे याज्ञवल्क्य ! तुम अग्निहोत्र को जानते हो। मैं तुम्हें सौ गायें दान में देता हूँ।'

इस कथा का अभिप्राय यह है कि यदि किसी विशेष अवसर पर कुछ भी न हो तो श्रद्धापूर्वक यज्ञमंत्रों का पाठ ही कर ले। साथ ही, यदि घृत-सामग्री आदि सब-कुछ अग्निहोत्र के लिए उपस्थित तो है किन्तु सत्य और श्रद्धा न हो, तब भी यज्ञकर्म निरर्थक होगा। अतः यज्ञकर्म में श्रद्धा की नितान्त आवश्यकता है। यह भी ध्यान में रहे कि घृतादि पदार्थ अग्नि में जलने से नष्ट नहीं होते, अपितु सूक्ष्म होकर वायु में मिलकर फैल जाते हैं। इस सन्दर्भ में भगवान् वेद ने कहा है—

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतम्॥ (सामवेद १।१।३)

अर्थात् 'सबको जाननेवाले, देवों को बुलानेवाले, इस यज्ञ के सुधारनेवाले अग्नि-दूत को हम स्वीकार करते हैं।' तात्पर्य यह है कि यज्ञ के माध्यम से हम वायु आदि देवताओं को बुलाते हैं अर्थात् शुद्ध करते हैं। अग्नि किसी पदार्थ को नष्ट नहीं करता, अपितु आहुति में दी हुई वस्तु को उसके पूर्ण गुणों के साथ विकसित कर देता है। विश्वास न आए तो किसी सुगन्धित पदार्थ को अग्नि में डालकर देख लें। तुरन्त उसका प्रभाव वायु द्वारा समीपवर्ती स्थान में सर्वत्र पड़ेगा। एक लाल मिर्च को अग्नि में डालें, फिर देखें उसका प्रभाव! छींकते-छींकते परेशान हो उठेंगे। इसी प्रकार यदि सुगन्धित ओषधि तथा घृत, शक्कर, मेवा आदि का अग्नि में होम किया जाएगा तो उसका प्रभाव सुन्दर क्यों नहीं पड़ेगा? महाराज मनु ने कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥ (मनु० ३)

'अग्नि में डाली हुई आहुति, सूर्यकिरणों में रहती है, वहाँ से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है।' तभी तो कहा है "**तस्मान्मनुष्येभ्यो यज्ञं प्राह।**" (गो० २।१३)—'यह यज्ञ ही मनुष्यों के लिए सब कर्मों में श्रेष्ठ कर्म है। इसीलिए सब मनुष्यों को यज्ञ करने को कहा है।' शतपथ ब्रा०४।३।२ में कहा है—

सर्वेषां वै एष भूतानां, सर्वेषां देवानामात्मा यद्यज्ञः।
तस्य समृद्धिमनुयजमानः प्रजया पशुभि ऋध्यते॥

अर्थात् 'निश्चय करके यह यज्ञ सब प्राणियों का एवं देवताओं का जीवन है। इसकी समृद्धि से यजमान, प्रजा और पशुओं से समृद्धि को प्राप्त होता है।' जिस प्रकार भूमि में डाला हुआ बीज हजारों गुणा होकर हमको मिलता है, इसी प्रकार यज्ञ में अर्पित पदार्थ हमें सैकड़ों-हजारों धाराओं से शुद्ध-समृद्ध जीवनवाला बनाते हैं। भगवान् वेद ने कहा है—

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पविमसि सहस्रधारम् । (यजुः० १)

'हे यज्ञ ! तू सैकड़ों और हजारों धाराओं से शुद्ध-पवित्र करके धनादि ऐश्वर्य को देनेवाला है ।"

महाराज मनु ने कहा—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञमितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ (मनु० २)

अर्थात् 'सूर्योदय में, सूर्यास्त में और सूर्य और नक्षत्र के न होने में,—इन तीनों समयों में हवन करने को वेद की आज्ञा है ।' प्रातः का यज्ञ सूर्य उदय होने पर, सायं का यज्ञ सूर्यास्त अर्थात् जब सूर्य अस्त होने जा रहा हो; यदि विलम्ब हो जावे तो नक्षत्र-उदय से पूर्व ही करना चाहिए। महर्षि दयानन्द के शब्दों में—'सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र का समय है ।'(स०प्र० तृ० समु०) सूर्योदय होने पर सूर्य के लिए आहुति देना ठीक है, जैसे बच्चे के उत्पन्न होने पर ही उसके मुख में स्तन दिया जा सकता है । उत्पन्न होने से पूर्व बच्चे के मुख में स्तन देना सर्वथा असम्भव है । इसी प्रकार सूर्य के उदय हुए बिना 'सूर्यो ज्योतिः' मन्त्र से आहुति देना असंगत है ।

सूर्योदय के बिना जो लोग हवन करने लग जाते हैं उनके सम्बन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण ने कहा है कि **'प्रातःप्रातस्ते अनृतं वदन्ति ये पुरोदयात् जुह्वत्यग्निहोत्रम् । दिवाकीर्त्यमदिवा कीर्तयन्तः सूर्यो ज्योतिर्नवदा ज्योतिरेषाम् ॥** (ऐतरेय ब्रा० २५।३१) अर्थात् 'जो लोग सूर्योदय से पूर्व ही 'सूर्यो ज्योतिः' आदि मन्त्र बोलकर आहुति देते हैं वे प्रातः-प्रातः असत्य बोलते हैं, क्योंकि सूर्य अभी उदय हुआ ही नहीं है ।

प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है कि वह नैत्यिक यज्ञों के अतिरिक्त नित्य, नैमित्तिक यज्ञों को भी समय-समय पर करता रहे । अमावास्या के दिन जो यज्ञ किया जाता है उसे 'दर्श' कहते हैं । प्रत्येक मास की पूर्णिमा को जो यज्ञ किया जाता है उसका नाम 'पौर्णमास' यज्ञ है । वर्षा ऋतु में किये जानेवाले यज्ञ का नाम 'चातुर्मास्य' है । 'आग्रयण' वह यज्ञ है जो शीत ऋतु में किया जाता है । दर्श, पौर्णमासादि ये यज्ञ भी बड़े महत्त्व के हैं, इसलिए विधिपूर्वक श्रद्धा से करने चाहिएँ । यज्ञरहित प्राणी के सम्बन्ध में शास्त्रोक्त कथन है कि जिस लोक में जाएगा वहाँ उसे शान्ति नहीं मिलेगी, क्योंकि वह देव और ऋषि-ऋण से युक्त होता है, मुक्त नहीं होता है । ब्रह्मलोक में तो अशुभ कर्म करनेवाला प्राणी जा ही नहीं सकता । इसी प्रकार गोमेध, अश्वमेध, नरमेध, अजमेध और अविमेध को जानना चाहिए ।

गोमेध—गोमेध का अर्थ है पृथिवी को उर्वरा बनाना, नई भूमि तैयार करना । निघण्टु (अ० १) में गौ का अर्थ वाणी है एवं मेध का अर्थ बुद्धि, अतः गोमेध का

अर्थ हुआ वाणी का बुद्धि के साथ संयोजन। सबको शास्त्र का ज्ञान देना ही गोमेध कहलाता है। पौराणिक विचारवाले वाममार्गी लोग गोमेध का अर्थ गोयज्ञ करते हैं जो कि अशुद्ध एवं अवैदिक है। गौ के सम्बन्ध में अथर्ववेदीय अमृतवाणी यह है कि गौएँ मनुष्य-जाति का कल्याण करनेवाली हैं और जीवन को सुखमय बनानेवाली हैं; गौओं का कार्य दूध देना है, न कि मांस देना। राजा को चाहिए कि वह यज्ञशील, उपदेष्टा, अध्यापक तथा विद्यार्थियों को गोदान करे। गो-स्वामी अपनी गायों के दूध से यज्ञ करता है, राजा उनकी गायों की पूर्ण रक्षा करे। राजा का नियम हो कि घातक हिंसक लोग अपने पास गौएँ न रख सकें। गौओं का दुग्ध, घृत, मक्खन, तक्र (छाछ) अन्नरूप है, महा अन्न है। गायों का वध करनेवाले को राजनियम से प्राणदण्ड दिया जाए। इस प्रकार गोमेध यज्ञ का तात्पर्य जानना चाहिए। वेद में गौ की महानता स्पष्ट दर्शायी है।

अश्वमेध—'शतपथ ब्राह्मण' में कहा है—

श्री वै राष्ट्रम् राष्ट्रं वै अश्वमेधः। तस्माद् राष्ट्री अश्वमेधेन यजेत्॥

अर्थात् 'ऐश्वर्य ही राज्य है, राष्ट्र ही अश्वमेध है। इसलिए सम्राट् अश्वमेध करे।' अश्वो दि ज्ञानम्=ज्ञान ही अश्व है; अश्वमेध का अर्थ हुआ सब संसार को ब्रह्म=परमात्मा की रचना जानना। अश्वमेध करनेवाला सब दिशाओं को जीतनेवाला होता है। (शतपथ ब्रा० १३।१।२); अश्वमेधा=ज्ञान और क्रिया यज्ञ। वेद में कहा है—**'अश्वमेधाय सूरये'** (ऋ०५।२७।४)—शीघ्र मेधा पाने के इच्छुक शूरवीर पराक्रमी के लिए।

नरमेध या पुरुषमेध—वेद में नर या पुरुष को यज्ञ में डालने का कहीं पर विधान नहीं है। यह सोलह संस्कारों में 'अन्त्येष्टि संस्कार' अन्तिम पाया जाता है। यह मृत शरीर का होता है। संसार का आश्रयरूप जो परमात्मा है, उसे 'नर' कहते हैं। यह सब-कुछ परमात्मा के ही आश्रय में है, इस प्रकार का बोध ही नरमेध है।

अजमेध और अविमेध—महाभारत शान्ति पर्व अ० ३३७ में कहा है—

"अजं संज्ञानि बीजानि"

बीजों का नाम अज है। अतः अश्वमेध का अर्थ यज्ञ में बकरा मारना नहीं है। पशु-वध करना सत्पुरुषों का धर्म नहीं है। अज शब्द का अर्थ है, 'सात वर्ष पुराने धान' न कि पशुविशेष—**अजा ब्रीह्यस्तावत्सप्तवार्षिकाः कथ्यन्ते न पुनः पशुविशेषः।** (पञ्चतन्त्र कथा २)—अज का अर्थ है जो नवीन अंकुर पैदा न कर सके ऐसा सात वर्ष पुराना धान। सात वर्ष पुराने धानों में उगने की शक्ति नहीं रहती, अतः वे अज हैं। दही, मधु, घृत, जल, भुने हुए जौ, ये निश्चय से पशुओं के रूप हैं। इन रूपों के द्वारा ही पशुओं का अवरोध (ग्रहण) करता हूँ। (यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता कां० २, अ० २, खं० ८)।

स्कन्दपुराण में लिखा है—

अन्नैर्व्रीह्यादिभिर्यज्ञः पयोदधि घृतादिभिः ।
रसैश्च क्रियतां तेन तृप्तिं यास्यन्ति देवताः ।।

अर्थात् 'धान यवादि, अन्न, दूध, दही, घृतादि तथा रसों द्वारा ही यज्ञ करो। इसीसे देवता तृप्त होंगे।' अभिप्राय यह है कि यज्ञ में अन्न, दूध, घृत आदि उत्तम पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। उत्तम पदार्थों का प्रयोग करने पर ही यज्ञ लाभप्रद होते हैं। मनु महाराज ने कहा है—'संकल्प' इच्छा-सिद्धि का मूल है, संकल्प से यज्ञ होते हैं। व्रत, यम और नियम भी संकल्पजन्य हैं। अतः जड़ पदार्थों पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर है। यदि जड़ पदार्थ प्रसन्न न हों तो मनुष्य का जीवन एक भार हो जावे। जिस नगर का जल उत्तम न हो, वहाँ रहने में प्रत्येक मनुष्य को कठिनाई होती है। जहाँ की वायु में रोग हो, वहाँ तो कोई रहना ही नहीं चाहता। जल-वायु आदि जड़ पदार्थों को प्रसन्न किये बिना हम सुख प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा कोई नहीं कह सकता। आप कहेंगे कि जड़ पदार्थ प्रसन्न और अप्रसन्न कैसे हो सकते हैं? परन्तु क्या जड़ का अर्थ अप्रसन्न रहने का है? जब कोई वस्तु हमारे अनुकूल होती है तब हम उसे प्रसन्न कहते हैं, जैसे सुगन्धि। क्या गन्ध में प्रसन्नता का गुण है? नितान्त नहीं, वरन् हमारे अनुकूल होने से प्रसन्न कहाती है। यज्ञ ही परम उपकार है!

किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

होता है सारे विश्व का कल्याण यज्ञ से।
जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान् यज्ञ से।।
ऋषियों ने ऊँचा माना है, स्थान यज्ञ का।
करते हैं दुनियावाले सब सम्मान यज्ञ का।।
दर्जा है तीन लोक में महान् यज्ञ का।
जाता है देवलोक को, इन्सान यज्ञ से।।

यज्ञ ही से विश्व का कल्याण होता है, अतः यज्ञ का प्रचार-प्रसार करें और अखिल विश्व को यज्ञशील बनने की प्रेरणा करें।



बाल एवं प्रौढ़ साहित्य

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक -1	6.00
आदर्श बालक -2	6.00

सन्तराम वत्स्य

लोक व्यवहर	5.00
संविधान की कहानी	10.00
भीष्म पितामह	6.00
वीर अर्जुन	6.00
महाबली भीम	6.00

यशपाल जैन

बोध कथाएँ	5.00
प्रेरक कथाएँ	5.00

श्यामचन्द्र कपूर

प्रत्येक का मूल्य 6.00

सच्चा सपूत	(जातक कथाएँ)
नंदिनी का वरदान	(रामायण की कथाएँ)
शरणागत की रक्षा	(वेद की कथाएँ)
कीर्ति का मार्ग	(महाभारत की कथाएँ)
सबसे बड़ा ज्ञानी	(उपनिषद् की कथाएँ)
फूलों की वर्षा	(पुराण की कथाएँ)
विश्वास का फल	(कुरान की कथाएँ)
जनता का प्यारा	(भागवत की कथाएँ)
सपने देखने वाला	(बाइबिल की कथाएँ)
आशा की ज्योति	(जैनग्रन्थों की कथाएँ)

पं० आनन्दकुमार

दो सूतरी पॉलटिक	25.00

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

इक्यावन कहानियाँ	110.00
एक और श्रीगणेश	22.00
अपने-अपने दायरे	30.00

सुमेधा

हमारी एकता के प्रतीक त्योहार	6.00

विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद'

ऋतुगीत		6.00
पितृभक्त बालक	**शरण**	6.00
तपस्वी बालक	**लक्ष्मी**	6.00
ज्ञानी बालक	**प्रभात कुमार**	6.00
भक्त बालक	**संगीता**	6.00
ईमानदार बालक	**सुदेश शरण**	6.00

शिवकुमार गोयल

क्रांतिकारी सावरकर	6.00

शान्ति भट्टाचार्य

बलिदान की कहानियाँ	6.00

स्कूल, कॉलेज में खेले जाने योग्य
चिरंजीत के नाटक

हास्यमंच—हम-तुम	20.00
हास्यमंच—घर-दफ्तर	22.00
हास्यमंच—देश-विदेश	25.00
पाँच प्रहसन	25.00
मन्दिर की जोत	18.00
दादी माँ जागी	25.00
महाश्वेता (उपन्यास)	45.00
रतजगा	20.00

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

आर्यसमाज के मनस्वी विद्वान् श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने आर्य-वैदिक साहित्य लिखकर बड़ी सेवा की है। अभी हाल ही में उनकी कृतियों का संकलन करते हुए **श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी** को उनके लिखे **हिन्दी-शेक्सपियर** प्राप्त हुए।

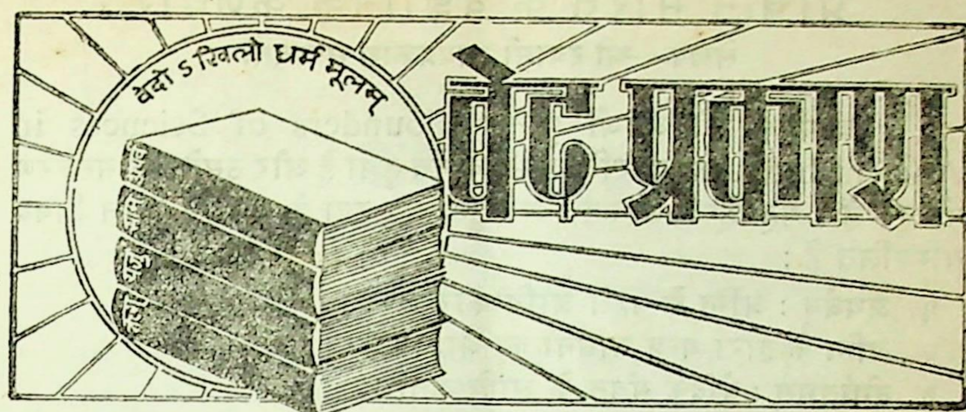
'शेक्सपियर के नाटक'

३७ नाटकों के कथानक तीन भागों में मूल्य १५०.००

सुबोध पब्लिकेशन्स

२/३ बी, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



ईशोपासना से कामना-पूर्ति

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ।। ऋग्० १-४-१

पदार्थ—(सुदुघामिव) जैसे दूध की इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध दोहने के लिए सुलभ दुहानेवाली गौओं को दोह के अपनी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है वैसे ही हम लोग (द्यवि द्यवि) सब दिन अपने निकट स्थित मनुष्यों को (ऊतये) विद्या की प्राप्ति के लिए (सुरूपकृत्नुं) परमेश्वर जो कि अपने प्रकाश से सब पदार्थों को उत्तम उपयुक्त करनेवाला है उसकी (जुहूमसि) स्तुति करते हैं।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य गाय के दूध को प्राप्त होके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष भी परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ विद्या आदि गुणों को प्राप्त होकर अपने-अपने कार्यों को पूर्ण करते हैं।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक १०] वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये [मई १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

पुनर्जन्म-सिद्धान्त

लेखक : **मूलचन्द गौतम**
१२२२, पापोलियान, नरेला, दिल्ली

कभी-कभी देखने में आता है कि बालक अपने जन्म के पश्चात् जब बोलने लगता है तो वह अपने पिछले जन्म का विवरण देने लगता है। परीक्षा करने पर ऐसे सभी मामलों में बालकों ने न केवल अपना ग्राम/नगर और पिछले जन्म से सम्बन्धित परिवार के सभी मनुष्यों को पहचान लिया, वरन् कुछ ने घर की ऐसी बातें भी बताईं जिनका उस ग्राम/नगर के वासियों को भी उस परिवार के अतिरिक्त पता न था।

योगदर्शन के अनुसार जीवात्मा को उसके पिछले जन्म के कर्मों के अनुसार योनि, भोग और आयु मिलती है। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों के कारण ही वासना का उद्भव होता है। यह वासना ही प्राणी को कर्म में प्रवृत्त करती है। भले-बुरे संस्कार मन पर पड़े प्रभाव से बनते हैं। अतः मन ही मूल है इन संस्कारों का। यदि मन ठीक है तो सब-कुछ ठीक है। यदि मन में विकार है तो सभी कर्म विकारमय होंगे। अतः मन को सदैव शुभ संकल्पोंवाला बनाने की ओर ध्यान दिया जाना अनिवार्य है। पुनर्जन्म के सम्बन्ध में प्रमाण देखिये।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी विख्यात पुस्तक 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' में पुनर्जन्म के विषय में निम्न प्रमाण दिये हैं—

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्य्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति॥

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौ देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां३ या स्वस्तिः ।।

(ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ५९, मंत्र ६, ७)

इन मंत्रों में प्रार्थना की गई है कि "हे सुखदायक परमेश्वर ! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हमारे बीच में उत्तम नेत्रादि सब इन्द्रियाँ स्थापन कीजिये । तथा प्राण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, बल, पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में दीजिये । हे जगदीश्वर ! इस संसार में अर्थात् इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम-उत्तम भोगों को प्राप्त हों तथा हे भगवन् ! आपकी कृपा से सूर्य्यलोक, प्राण और आपको विज्ञान तथा प्रेम से सदा देखते रहें । हे सबको मान देनेहारे ! सब जन्मों में हम लोगों को सुखी रखिये, जिससे हम लोगों का स्वस्ति अर्थात् कल्याण हो" ।। ६ ।।

"हे सर्वशक्तिमान् ! आपके अनुग्रह से हमारे लिए वारंवार पृथिवी प्राण को, प्रकाश चक्षु को, और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें । पुनर्जन्म में सोम अर्थात् ओषधियों का रस हमको उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे, तथा पुष्टि करने-वाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हमको सब दुःख निवारण करनेवाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवे" ।।७।।

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् । वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निः पातु दुरितादवद्यात् ।।

(यजुर्वेद अ० ४, मंत्र १५)

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ।।

(अथर्व० कां ७/अनु० ६/व० ६७/मं १)

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ।।

(अथर्व कां ५ । अनु० १ । व० १ । मं० २)

प्रार्थना है—"हे सर्वज्ञ ईश्वर ! जब-जब हम जन्म लेवें, तब-तब हमको शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, कुशलतायुक्त जीवात्मा, उत्तम चक्षु और श्रोत्र प्राप्त हों । जो विश्व में विराजमान ईश्वर है, वह सब जन्मों में हमारे शरीरों का पालन करे । सब पापों के नाश करनेवाले आप हमको बुरे कामों और सब दुःखों से पुनर्जन्म में अलग रक्खें ।"

"हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से पुनर्जन्म में मन आदि ग्यारह इन्द्रियाँ मुझको प्राप्त हों, अर्थात् सर्वदा मनुष्य-देह ही प्राप्त होता रहे । अर्थात् प्राणों को धारण करनेहारा सामर्थ्य मुझको प्राप्त होता रहे, जिससे दूसरे जन्म में भी हम लोग सौ वर्ष वा अच्छे आचरण से अधिक भी जीवें, तथा सत्यविद्यादि श्रेष्ठ धन भी पुनर्जन्म

में प्राप्त होते रहें, और सदा के लिए ब्रह्म जो वेद है, उसका व्याख्यानसहित विज्ञान तथा आप ही में हमारी निष्ठा बनी रहे। तथा सब जगत् के उपकार के अर्थ हम लोग अग्निहोत्रादि यज्ञों को करते रहें। हे जगदीश्वर! हम लोग जैसे पूर्वजन्मों में शुभगुण धारण करनेवाली बुद्धि से उत्तम शरीर और इन्द्रियसहित थे, वैसे ही इस संसार में पुनर्जन्म में भी बुद्धि के साथ मनुष्यदेह के कृत्य करने में समर्थ हों। ये सब शुद्ध बुद्धि के साथ मुझको यथावत् प्राप्त हों, जिनसे हम लोग इस संसार में मनुष्यजन्म को धारण करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सदा सिद्ध करें और इस सामग्री से आपकी भक्ति को प्रेम से सदा किया करें जिस करके किसी जन्म में हमको कभी दुःख प्राप्त न हो।"

"जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करता है, उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता, और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता है। जो पूर्वजन्म में किये हुए पाप-पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभावयुक्त जीवात्मा है, वह पूर्व-शरीर को छोड़के वायु के साथ रहता है, पुनः जल, ओषधि वा प्राणादि में प्रवेश करके वीर्य्य में प्रवेश करता है, तदनन्तर योनि अर्थात् गर्भाशय में स्थिर होके पुनः जन्म लेता है। जो जीव अनुदित वाणी, अर्थात् जैसी ईश्वर ने वेदों में सत्यभाषण करने की आज्ञा दी है, वैसा ही यथावत् जानके बोलता है और धर्म ही में यथावत् स्थित रहता है, वह मनुष्ययोनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है। और जो अधर्माचरण करता है, वह अनेक नीच शरीर अर्थात् कीट-पतंग-पशु आदि के शरीर को धारण करके अनेक दुःखों को भोगता है।"

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥

(यजुर्वेद अ० १९, मं० ४७)

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥ १॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा॥ २॥
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः॥ ३॥

(निरुक्त अध्याय १३, खण्ड १९)

"इस संसार में हम दो प्रकार के जन्मों को सुनते हैं। एक मनुष्यशरीर का धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्षादि का होना। इसमें मनुष्यशरीर के तीन भेद हैं—एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना, दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़के विद्वान् होना, तीसरा मर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्यशरीर का धारण करना। इनमें प्रथम गति अर्थात् मनुष्यशरीर पुण्यात्माओं और पुण्य-पाप तुल्यवालों को होता है; और दूसरा, जो जीव अधिक पाप करते हैं उनके लिए है।

इन्हीं भेदों से सब जगत् के जीव अपने-अपने पुण्य और पापों के फल भोग रहे हैं। जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्म धारण करना, पुनः शरीर का छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना, वारंवार होता है।''

जैसा वेदों में पूर्वापर-जन्म के धारण करने का विधान किया है, वैसा ही निरुक्तकार ने भी प्रतिपादन किया है—

''जब मनुष्य को ज्ञान होता है तब वह ठीक-ठीक जानता है कि मैंने अनेक वार जन्म-मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के सहस्रों गर्भाशियों का सेवन किया है ॥ १ ॥ अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता-पिता और सुहृदों को देखा ॥ २ ॥ मैंने गर्भ में नीचे मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके अनेक जन्म धारण किये। परन्तु अब इन महादुःखों से तभी छूटूँगा कि जब परमेश्वर में पूर्ण प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करूँगा, नहीं तो इस जन्म-मरणरूप दुःखसागर के पार जाना कभी नहीं हो सकता'' ॥ ३ ॥

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथाऽभिरूढोऽभिनिवेशः।

(पातंजल योगशास्त्र पाद २, सूत्र ९)

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः। (न्यायशास्त्र १/१/१९)

योगशास्त्र में भी पुनर्जन्म का विधान किया है—'हरएक प्राणियों की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि 'भूपासमिति' अर्थात् 'मैं सदा सुखी बना रहूँ, मरूँ नहीं।' यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि 'मा न भूवं' अर्थात् 'मैं न होऊँ।' ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव से कभी नहीं हो सकती। यह 'अभिनिवेश' क्लेश कहलाता है, जो कि कृमि-पर्य्यन्त को भी मरण का भय बराबर होता है। यह व्यवहार पूर्वजन्म की सिद्धि को जनाता है।''

तथा न्यायशास्त्र के उक्त सूत्र और उसी के वात्स्यायन-भाष्य में भी कहा है कि—''जो उत्पन्न अर्थात् किसी शरीर को धारण करता है, वह मरण अर्थात् शरीर को छोड़के पुनरुत्पन्न दूसरे शरीर को भी अवश्य प्राप्त होता है। इस प्रकार मरके पुनर्जन्म लेने को 'प्रेत्यभाव' कहते हैं।''

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज आगे इसी प्रकरण में प्रश्नोत्तर से विषय को और स्पष्ट करते हैं—

प्रश्न : जो पूर्वजन्म होता है तो हमको उसका ज्ञान इस जन्म में क्यों नहीं होता?

उत्तर : आँख खोलके देखो कि जब इसी जन्म में जो-जो सुख-दुःख तुमने बाल्यावस्था में अर्थात् जन्म से पाँच वर्ष पर्य्यन्त पाये हैं, उनका ज्ञान नहीं रहता, अथवा जोकि नित्य पठन-पाठन और व्यवहार करते हैं उनमें से भी कितनी ही बातें भूल जाते हैं, तथा निद्रा में भी यही हाल हो जाता है कि अब के किये का भी ज्ञान नहीं रहता। जब इसी जन्म के व्यवहारों को इसी

शरीर में भूल जाते हैं, तो पूर्व-शरीर के व्यवहारों का कब ज्ञान रह सकता है?

प्रश्न : जब हमको पूर्व-जन्म के पाप-पुण्य का ज्ञान नहीं होता, और ईश्वर उनका फल सुख वा दुःख देता है, इससे ईश्वर का न्याय वा जीवों का सुधार कभी नहीं हो सकता।

उत्तर : ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमानादि से। जैसे एक वैद्य और दूसरा अवैद्य, इन दोनों को ज्वर आने से वैद्य तो इसका पूर्व-निदान जान लेता है, और दूसरा नहीं जान सकता। परन्तु उसे पूर्व-कुपथ्य का कार्य जो ज्वर है, वह दोनों को प्रत्यक्ष होने से वे जान लेते हैं कि किसी कुपथ्य से ही यह ज्वर हुआ है, अन्यथा नहीं। इसमें इतना विशेष है कि विद्वान् ठीक-ठीक रोग के कारण और कार्य को निश्चय करके जानता है और वह अविद्वान् कार्य को तो ठीक-ठीक जानता है, परन्तु कारण में उसको यथावत् निश्चय नहीं होता। वैसे ही ईश्वर न्यायकारी होने से किसी को विना कारण से सुख वा दुःख कभी नहीं देता। जब हमको पुण्य-पाप का कार्य सुख और दुःख प्रत्यक्ष है, तब हमको ठीक निश्चय होता है कि पूर्व-जन्म के पाप-पुण्यों के विना उत्तम, मध्यम और नीच शरीर तथा बुद्धि-आदि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते। इससे हम लोग निश्चय करके जानते हैं कि ईश्वर का न्याय और हमारा सुधार ये दोनों काम यथावत् बनते हैं।

इस विषय में जो और प्रमाण पाये गये हैं वे आगे दिये जाते हैं—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च॥ (ऋग्वेद १/२४/१)

भाषार्थ : हम लोग कैसे गुण-कर्म-स्वभावयुक्त, किस बहुतों के उत्पत्ति-विनाश-रहित अनादि मोक्षप्राप्त जीवों और जो जगत् के कारण नित्य के मध्य में व्यापक अमृतरूप अनादि तथा एक पदार्थ प्रकाशमान सर्वोत्तम सुखों को देनेवाले देव का निश्चय के साथ सुन्दर प्रसिद्ध नाम को जानें कि जो निश्चय करके कौन सुखस्वरूप देव मोक्ष को प्राप्त हुए भी हम लोगों को बड़ी कारणरूप नाशरहित पृथिवी के वीच में पुनर्जन्म देता है जिससे कि हम लोग पिता और माता और स्त्री-पुत्र-बन्धु आदि को देखने की इच्छा करें।

भावार्थ : इस मंत्र में प्रश्न का विषय है कौन ऐसा पदार्थ है जो सनातन अर्थात् अविनाशी पदार्थों में भी सनातन अविनाशी है कि जिसका अत्यन्त उत्कर्षयुक्त नाम का स्मरण करें वा जानें, और कौन देव हम लोगों के लिए किस-किस हेतु से एक जन्म से दूसरे जन्म का सम्पादन करता है और अमृत वा आनन्द के करानेवाली मुक्ति को प्राप्त होकर भी फिर हम लोगों को माता-पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण कराता है।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥

(ऋग्वेद १/२४/२)

भाषार्थ : हम लोग जिस ज्ञानस्वरूप विनाश-धर्मरहित पदार्थ वा मोक्षप्राप्त जीवों में अनादि विस्तृत अद्वितीय स्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने वा संसार में सब पदार्थों के देनेवाले परमेश्वर के पवित्र गुणों का गान करना जानते हैं, वही हमको बड़े-बड़े गुणवाला पृथिवी के बीच में फिर जन्म देता है जिससे हम लोग फिर पिता और माता और स्त्री-पुत्र-बन्धु आदि को देखते हैं।

भावार्थ : हे मनुष्यो ! हम लोग जिस अनादिस्वरूप, सदा अमर रहनेवाले, जो हम सब लोगों के किये हुए पाप और पुण्यों के अनुसार यथायोग्य सुख-दुःख-फल देनेवाले जगदीश्वर देव को निश्चय करते और जिसकी न्याययुक्त व्यवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं, तुम लोग भी उस देव को जानो; किन्तु इससे और कोई उक्त कर्म करनेवाला नहीं है ऐसा निश्चय हम लोगों को है कि वही मोक्ष पदवी को पहुँचे हुए जीवों का भी महाकल्प के अन्त में फिर पाप-पुण्य की तुल्यता से पिता-माता और स्त्री आदि के बीच में मनुष्यजन्म धारण कराता है।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥

(ऋग्वेद १/५८/१)

अर्थ : हे मनुष्यो ! जो विद्युत् के समान स्वप्रकाशस्वरूप के नाशरहित बल को उत्पन्न करनेहारा, कर्मफल का भोक्ता, सब मन और शरीरादि का धर्ता, सब को चलानेहारा होता है, दिव्य पदार्थों के मध्य में दिव्यस्वरूप अधिष्ठानों से सह-वर्तमान मार्गों से पृथिवी लोकों को शीघ्र बनानेहारे स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर के मध्य में वर्तमान होकर ग्रहण किये हुए शरीर से सहित निरन्तर जन्म-मरण आदि में पीड़ित होता और अपने कर्मों से सब प्रकार से वर्तता है, सो जीवात्मा है ऐसा जानो।

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥

(ऋग्वेद १/५८/६)

अर्थ : हे अग्नि के सदृश स्वप्रकाशस्वरूप जीव ! तू जिस तुझको परिपक्व ज्ञानवाले विद्वान् मनुष्यों में विद्वानों से विद्या को प्राप्त होके सुन्दर स्वरूप सुखों के देनेहारे धन के समान दानशील अनियत स्थिति अर्थात् अतिथि के सदृश देह-देहान्तर और स्थान-स्थानान्तर में जानेहारा ग्रहण करने योग्य सुखस्वरूप जीव को प्राप्त होके शुद्ध जन्म के लिए मित्र के सदृश तुझको सब प्रकार धारण करते हैं, उसी को जीव जानो।

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीती अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ।।

(ऋग्वेद १/१६४/३२)

अर्थ : जो जीव क्रियामात्र करता है वह इस अपने रूप को नहीं जानता है। जो समस्त क्रिया को देखता और अपने रूप को जानता है वह इससे अलग होते हुए माता के गर्भाशय के बीच सब ओर ढँपा हुआ बहुत बार जन्म लेनेवाला भूमि को ही शीघ्र प्रवेश करता है।

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे ।
गर्भे सन् जायसे पुनः ।। (यजुर्वेद १२/३६)

अर्थ : हे अग्नि के तुल्य विद्वान् जीव ! जो सहनशील तू जन्मों में सोमलतादि ओषधियों को प्राप्त होता है, वह गर्भ में स्थित होकर फिर-फिर जन्म-मरण तेरे हैं, ऐसा जान।

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
सँसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ।। (यजुर्वेद १२/३८)

अर्थ : हे प्रकाशमान पुरुष सूर्य के समान प्रशंसित प्रकाश से युक्त जीव ! तू शरीर-दाह के पीछे पृथिवी, अग्नि आदि और जलों के बीच देहधारण के कारण को प्राप्त हो और माताओं के उदर में वास करके फिर शरीर को प्राप्त होता है।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।।

(ऋग्वेद १/१६४/३०)

अर्थ : परमात्मा जीव के जल्दी-जल्दी शरीर-परिवर्तन को सँभालता है। जीव इस शरीर में अनादि, मृत्युरहित, मरणधर्मा अनादि वस्तुओं से अपना निर्वाह करता है।

एता ते अग्ने जनिमा सनानि । (ऋग्वेद ३/१/२०)

अर्थ : परमातमा मानव के अनेक जन्मों को जानता है।

जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः । (ऋग्वेद ३/१/२१)

अर्थ : परमातमा जीवात्मा को उसके कर्मों के अनुसार उसे जन्म प्रदान करता है।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ।।

(ऋग्वेद १०/१४/८)

अर्थ : मनुष्य अपने माता-पिता से सत्संग करके अपने निर्माता प्रभु की शरण में रहे। निन्दनीय कर्म छोड़े, क्योंकि प्रभु बारम्बार शरीर व संसार में आने को पुनर्जन्म देता है।

गर्भे सञ्जायसे पुनः । (यजुर्वेद १२/३६)

अर्थ : हे जीव ! तू गर्भ में होकर बार-बार जन्म लेता है ।

पुनर्गर्भे त्वमेरिरे । (अथर्ववेद २०/४०/३)

अर्थ : जीव बार-बार गर्भत्व को प्राप्त हुए और होते हैं ।

अथ यत्र सप्त्वा पुनर्नाविद्रास्यन् भवति । तद्वाचयति—पुनर्मनः पुनरायुर्म ऽ आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म ऽ आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्निति । (यजुर्वेद ४/१५)

सर्वे ह वा ऽ ऐत स्वपतोऽपक्रमन्ति प्राण एव न ।
तैरेवैतत्सुप्त्वा पुनः संगच्छते । तस्मादाह पुनर्मनः.........

(शतपथ ब्राह्मण ३/२/२/२३)

अर्थ : अब जब (यजमान) सोकर पुनः सोने की इच्छा नहीं करता, तब (अध्वर्यु) उससे अगला मंत्र बुलवाता है—फिर मन, फिर आयु मुझे प्राप्त हो । फिर प्राण, फिर आत्मा मुझे प्राप्त हो । फिर चक्षु, फिर श्रोत्र मुझे प्राप्त हो । यह सब ही सोते हुए से परे चले जाते हैं, प्राण ही नहीं जाता । उन सबके साथ सोने के पश्चात् फिर युक्त हो जाता है ।

यह मंत्र वस्तुतः पुनर्जन्म का प्रतिपादन करता है ।

ब्राह्मणों के प्रवक्ता यह आवश्यक समझते थे कि उनके प्रत्येक कर्म के साथ यथाशक्य कोई मंत्र विनियुक्त हो जावे तो अच्छा है । इसीलिये उन्होंने यजमान के सोकर उठने के पश्चात् की क्रिया में इस मंत्र का विनियोग कर दिया । ब्राह्मण मंत्र-समाप्ति के आगे स्वयं कहता है कि—"यह सब ही सोते हुए से परे चले जाते हैं, प्राण ही नहीं जाता ।" परन्तु मंत्र में तो यह भी प्रार्थना है कि—"फिर प्राण मुझे प्राप्त हों ।" यदि यह प्राण निरन्तर काम कर रहा था, तो इसके पुनः प्राप्त करने की इच्छा निरर्थक है ।

यह सत्य है कि सोते समय प्राणों के सिवाय सब इन्द्रियगण सो जाते हैं, आत्मा भी आवरणयुक्त हो जाता है । यजुर्वेद ३४/५५ में कहा है—"तत्र जागृतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ" अर्थात् सब इन्द्रियों के सोने पर, न सोनेवाले प्राण और अपानरूपी दो देव जागते हैं ।

इसलिये मंत्र का अभिप्राय ऐसी अवस्था से है जबकि प्राण भी फिर प्राप्त हो । यह अवस्था तो पुनर्जन्म की है । उसी अवस्था में आत्मा पुनः अहंभाव को प्राप्त होता है । इस मंत्र का विनियोग करने से प्रकट है कि शतपथ ब्राह्मण में आत्मा का अस्तित्व और उसका पुनर्जन्म में आना माना है :

स यत्सायमस्तभिते द्वे ऽ आहूति जुहोति । तदेताभ्यां पूर्वाभ्यां पद्भ्यासे तस्मिन्मृत्यौ प्रतिष्ठत्यथ यत्प्रातरनुदिते द्वे आहूति जुहोति तदेताभ्याम-पराभ्यां पद्भ्यानि तस्मिन्मृत्यौ प्रतिष्ठति स एनमेष उद्यन्नेवादायोदेति

तदेवं मृत्युमतिमुच्यते शेषाग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्तिरति ह वै पुनर्मृत्युमुच्यते य एवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरति मुक्तिं वेद ।।

(शतपथ ब्राह्मण २/३/३/६)

अर्थ : वह जब सायं को सूर्यास्त होने पर दो आहुति देता है तो इन अगले पाद से उस मृत्यु पर ठहरता है। जब प्रातः सूर्योदय से पूर्व दो आहुति देता है, तो इन पिछले पाद से उस मृत्यु पर ठहरता है। वह (सूर्य) इस (अग्निहोत्री) को ऊपर लेता हुआ चढ़ता है। ऐसे वह मौत से छूट जाता है। यही अग्निहोत्र में मृत्यु से अतिमुक्ति है। **वह बार-बार की मौत से छूटता है,** जो इस अग्निहोत्र में मृत्यु से अतिमुक्ति को जानता है।

तदाहुः—किं तदग्नौ क्रियते येन यजमानः
पुनर्मृत्युमजयति इत्यग्निर्वाऽ एष देवता भवति
योऽग्निं चिनुतेऽमृतम् वा ऽ अग्नि । श्री देवा।
श्रियं गच्छति, यशो देवा यशो ह भवति य एवं वेद ।।

(शतपथ ब्रा० १०/१/४/१४)

अर्थ : तब कहते हैं, अग्निचयन में कौन-सी ऐसी बात की जाती है, जिससे यजमान **बार-बार की मौत को जीत लेता है** ? अग्निरूप देवता ही (तेजोमय दिव्य-गुणयुक्त) वह हो जाता है जो अग्नि का चयन करता है। अग्नि (ब्रह्म और उसकी विभूति-कारण अग्नि) ही अमृत है। दिव्यगुणवाले पदार्थ इसकी विभूतियाँ हैं। वह विभूतिवाला हो जाता है। दिव्यगुणवाले पदार्थ यशरूप हैं। वह यशस्वी हो जाता है जो ऐसा जानता है।

ता ँ हैतां गोतमो राहुगणाः । विदां चकार सा ह जनकं
वैदेहं प्रत्युत्ससाद । ता ँ द्राङ्गजिट्ब्राह्मणोष्वन्वियेष।
तामु हा याज्ञवल्क्ये विवेद। स होवाच—सहस्त्रं भो याज्ञवल्क्य
दद्मोमस्मिन्वये त्वार्थं मित्रविन्दामन्वविदामेति। विन्दते
मित्र ँ राष्ट्रमस्य भवत्यय पुनर्मृत्युं जयति सर्वमायुरेति
य एवं विद्वानेतपेष्टया यजते यो वै तदेवं वेद ।।

(शतपथ ब्रा० ११/४/३/२०)

अर्थ : जो निश्चय (मित्रविन्दा यज्ञ को) गोतम राहुगण ने जाना था वह (मित्रविन्दा) विदेह के राजा जनक के पास चली गई। उससे इसे अंग=वेदांग के जाननेवाले ब्राह्मणों में ढूंढा। उसे याज्ञवल्क्य ने पाया। वह (राजा) बोला—हे याज्ञवल्क्य ! सहस्र (सुवर्ण-मुद्रा) हम तुम्हें देते हैं जिस तुझमें मित्रविन्दा को हमने पाया। प्राप्त करता है मित्र को, साम्राज्य उसी का होता है, **बार-बार की मौत को जीत लेता है**। सारी आयु अर्थात् सौ वर्ष प्राप्त करता है। ऐसा जानता हुआ, इस दृष्टि से यज्ञ करता है, अथवा जो ऐसा जानता है।

तस्य वा ऽ एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य। चत्वारो वषट्कारा भवदातो वाति यद्विद्यतते यत्स्तनयासि यदवस्फूर्जति तस्मादवे विद्वातेवाति ने विद्योतमाने स्तनयत्यव-स्फूर्जत्यधीमा तैव वषट्काराणामच्छस्वबट्कारायति ह वै पुनर्मृत्युमुच्यते गच्छति ब्राह्मणः सात्मता ऎ। (शतपथ ब्रा० ११/५/६/९)

अर्थ : वह जो ब्रह्मयज्ञ (वेद का स्वाध्याय) है उसके चार वषट्कार हैं। जो वायु चलता है, जो बिजली चमकती है, जो गर्जता है, जो भड़कता है। इसलिये, जो यह जानता है (कि वायुचलनादि स्वाध्याय के वषट्कार हैं) वह वायु के चलने पर, बिजली चमकने पर, गर्जने पर, स्वाध्याय अवश्य करे, ताकि उसके वषट्कार नष्ट न हो जावें। वह बार-बार की मौत से छूट जाता है। परमात्मा के समीप जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

स षण्मासानुङेति षडावृत्ताँस्तस्मातरन त्रिणः
षडकोर्ध्वान्मासो यन्ति षडल्वृत्तानन्तरेणो ह वा
एतमरानाया च पुनर्मृत्युश्च पाशनायाँ च
पुनर्मृत्युं च जयन्ति ये वैषुवमहरूपयन्ति ॥

(कौशिक सूत्र २५/१)

अर्थ : वह सूर्य छः मास उत्तर को जाता है और छः मास उलटे। इसके विना भूख और पुनः मृत्यु है। भूख और बार-बार की मौत को जीतते हैं जो विपुवन्त दिन की इष्टि करते हैं।

इन प्रमाणों के सम्बन्ध में कीथ (The Philosophy of the Veda, pp. 572-73 में) कहते हैं कि "नचिकेता इस वर की प्रार्थना करता है कि उसके पुण्य कर्म नष्ट हो जावें (तै०ब्रा० ३/११/८/५)। क्योंकि कहा गया है कि दिन और रात अगले लोक में उस पुरुष के पुण्यकर्मों को समाप्त कर देते हैं, जो-जो इष्टिविशेषों को नहीं जानता (तै०ब्रा० ३/१०/११/२)। इसीलिये भय बन जाता है कि अगले लोक में इष्ट अमृतत्व के स्थान पर बार-बार मृत्यु होगी। इसलिये अनेक कर्म इससे बचानेवाले कहे गये हैं।"

कीथ का यह भी अभिप्राय है कि पूर्वोक्त प्रमाणों में जो बार-बार की मौत का जीतना लिखा है, वह अगले लोक की बार-बार मृत्यु का जीतना है, इस लोक की पुनर्जन्म के पश्चात् बार-बार की मौत का नहीं।

कीथ ने शतपथ (१२/९/३/१२) का प्रमाण भी दिया है—

पितॄनेव तन्मात्यान्त्सितोऽभूत यौनौ दधाति
मर्त्यान्त्सितोऽमृतयोनेः प्रजन्यत्यय ह वै पितॄणां पुनर्मृत्युं जयति।……

कीथ का सम्भावित अर्थ—मरणधर्मा होते हुए पितरों को अमृतरूप गर्भ में रखता है और उस मरणधर्मा को अमृतरूप गर्भ से उत्पन्न कराता है। पितरों की बार-बार की मौत को जीत लेता है, जो ऐसा जानता है।

यदि स्थूल दृष्टि से देखा जाये तो कीथ का पूर्वोक्त वचन कुछ ठीक प्रतीत होता है, परन्तु थोड़ा-सा भी सूक्ष्म विचार करने पर कीथ की भारी भूल सामने आ जाती है।

कीथ का दिया हुआ प्रमाण शतपथ ब्रा० १२/९/३ की बारहवीं कण्डिका में है। इससे पहले ग्यारहवीं कण्डिका भी कीथ को देखनी चाहिये थी। वह इस प्रकार है—

पशूनेव तन्मार्त्यान्त्सतोऽमृतयौनौ दधाति मर्त्यान्त्सतो-
ऽमृतयोनेः प्रजनयत्यय ह वै। पशूनां पुनर्मृत्युं जयति।

कीथ के ढंग का अर्थ : मरणधर्मा होते हुए पशुओं को अमृतरूप गर्भ में रखता है और उन मरणधर्मा को अमृतरूप गर्भ से उत्पन्न कराता है। **पशुओं की बार-बार की मौत को जीत लेता है** जो ऐसा जानता है।

यदि बारहवीं कण्डिका से यह अभिप्राय लिया गया था कि ब्राह्मणों में जहाँ-जहाँ पर पुनर्मृत्यु का जीतना वा उससे छूटना लिखा है, तो पितरों का अगले लोक में पुनर्मृत्यु से बचना है। ग्यारहवीं कण्डिका से उन्हें यही अभिप्राय लेना चाहिए था कि पुनर्मृत्यु-सम्बन्धी प्रकरणों में पशुओं की मृत्यु का वर्णन है। ऐसा उन्होंने नहीं किया। इससे प्रतीत होता है कि या तो उन्होंने इन सारी कण्डिकाओं को देखा नहीं, और यदि देखा है तो इस ग्यारहवीं कण्डिका को अपने पक्ष में आपत्तिजनक जान उसे जानते-बूझते छोड़ दिया है।

हमारे विचार में इन दोनों कण्डिकाओं में पशु और पितर शब्द अपने साधारण अर्थों को नहीं देते। हाँ, यदि कीथ ऐसा मानते हैं, तो उन्हें पशुओं की भी पुनर्मृत्यु माननी पड़ेगी। सम्भव है यहाँ पशु का अर्थ प्राण, तथा पितर का अर्थ ऋतु हो।

ब्राह्मणग्रंथ क्यों न पुनर्जन्म को मानें, जबकि वेद स्वयं इस सिद्धान्त का पोषक है! यजुर्वेद के केवल एक प्रसिद्ध मंत्र को देकर ही हम संतुष्ट होंगे :

असुर्य्या नाम ते लोका ऽ अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(यजुर्वेद ४०/३)

मैत्रायणी संहिता १/६/३ में 'असुर्य्या वा एता यदोषधयः' लिखा है। इस प्रमाण से मंत्र का यह अर्थ बनता है : अंधकार और तमोगुण से आवृत ओषधिसमूह में वे मरकर जन्म लेते हैं, जो आत्मघाती होते हैं।

इससे पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि वेद में भी पुनर्जन्म को वैसा ही माना है, जैसा कि ब्राह्मणों और उपनिषदों में, और जैसा आजतक आर्य लोग मानते चले आये हैं।

स मृत्युर्देवानब्रवीत्—इत्थमेव सर्वे मनुष्या अमृता
भविष्तीति ते होचुर्नातो परः कश्चन सह शरीरेणामृतो

ऽसद्योऽमृतोऽसद्विद्यया वा कर्मणा वेति यद्वै तदब्रुवन्वियथा वा कर्मणा वेत्येषा हैव सा विद्या यदग्निरेतद् हैव तत्कर्म यदग्नि ।

(शतपथ ब्रा० १०/४/३/९)

जब सृष्टि बन रही थी, तब परमाणुओं के यथार्थ योग के कारण अग्नि आदि दिव्य पदार्थ अमर हो गये, अर्थात् प्रलयकाल तक ऐसे ही रहेंगे। यह जो अग्निचयन है, उसके द्वारा यज्ञकर्ता सृष्टि बनते समय में उस वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करता है और अब भी सृष्टि स्थिर रहने के जो नियम हैं, उन्हें जानता है। आकाशमण्डल में जो कोई त्रुटि वायु आदि में हो जाती है, उसे दूर करता है। उसके फलस्वरूप वह अमरत्व को प्राप्त करता है। इस भाव को अलंकाररूप से ब्राह्मण कहता है :

मृत्यु देवों को बोला—इसी प्रकार (अग्निचयन करके) मनुष्य अमृत हो जायेंगे। (मृत्यु ने पूछा) और मेरा क्या भाग होगा ? वे (देवगण) बोले—अब क्योंकि सृष्टि बन गई है और हमारा अमर होना, हमारे शरीर को धारण करना, अर्थात् परमाणुओं का यथार्थ योग ही था, परन्तु अब से लेकर कोई शरीरसहित अमर न होगा (अब सब शरीर कार्यशरीर होंगे), इसलिये उन शरीरों का नाश अवश्य होगा। जब तू उस अपने भोग (शरीर) को हर लेगा, तब शरीर से पृथक् होकर अमर होगा। जो अमर रहेगा वह विद्या से व कर्म से, तो वह वही विद्या है जो अग्नि (चयन) है, और वह यही (श्रेष्ठतम) कर्म है, जो अग्नि (चयन) है।

ते य ऽ एवमेतद्विदुः ये वैतत्कर्म कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्त्यथ य ऽ एवं न विदुर्मेवैतत्कर्म न कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति त ऽ एतस्यैवान्न पुनः पुनर्भवन्ति ॥

(शतपथ ब्रा० १०/४/३/१०)

अर्थात् वे जो इसको ऐसा जानते हैं, अथवा वे जो यह कर्म करते हैं, **मरकर फिर उत्पन्न होते हैं**। वे उत्पन्न होते हुए ही जीवन्मुक्तों के रूप में उत्पन्न होते हैं (जहाँ से सीधे मुक्त हो जाते हैं)। जो ऐसा नहीं जानते और जो यह काम नहीं करते, मर-मरकर फिर साधारण रूप में ही उत्पन्न होते हैं। **वे इसी (मृत्यु) का अन्न बार-बनते हैं, अर्थात् पुनर्जन्म के चक्र में पड़ते हैं।**

अथर्ववेद में भी पुनर्जन्म को माना गया है, यथा :

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥

(अथर्ववेद ११/४/१४)

अर्थात् मनुष्य गर्भ के अन्दर श्वास लेता है और उच्छ्वास छोड़ता है। जब तू प्रेरणा—अनुमोदन देता है, तब ही वह **फिर उत्पन्न होता है**।

गर्भ के अन्दर भी यह प्राणी जीवन लेता है, अर्थात् इसको गर्भ में भी प्राण मिलता है, और इससे अपान दूर होता है। इस मंत्र में 'सः पुनः जायते' अर्थात् 'वह पुनर्जन्म लेता है' ये शब्द स्पष्टतया पुनर्जन्म की व्यवस्था बता रहे हैं।

इस विषय में दर्शनों में भी प्रमाण मिलते हैं, यथा :

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।

(योगदर्शन, द्वितीय साधन पाद, सूत्र १२)

पदानुवाद : इस जन्म तथा जन्मान्तर में फल देनेवाले शुभाशुभ कर्मजन्य धर्माधर्म का अविद्यादि क्लेश मूल कारण है।

भाष्य : वर्तमान जन्म को 'दृष्टजन्म' और भावी जन्म को 'अदृष्टजन्म' कहते हैं और सुख-दुख के हेतु शुभाशुभ कर्मजन्य धर्माधर्म का नाम 'कर्माशय' है। जिस धर्माधर्म का फल भोगा जाये (उसका नाम 'अदृष्टजन्मवेदनीय' है। उक्त धर्माधर्म का मूल कारण अविद्यादि पाँच क्लेश हैं), अतएव वह निवृत्त करने योग्य हैं।

तात्पर्य यह है कि उक्त क्लेशों के विद्यमान रहने से सुख-दुःख के हेतु धर्माधर्म का प्रवाह निरन्तर बना रहता है, और निवृत्त हो जाने से निवृत्त हो जाता है। इसलिये उक्त धर्माधर्म की निवृत्ति ही क्लेश-निवृत्ति का प्रयोजन है।

यहाँ यह भी ध्यान रहे कि प्रयत्न द्वारा मंत्र, तप, समाधि और महानुभाव पुरुषों की सेवा से उत्पन्न हुए धर्म का और भीत (डरे हुए), रोगी, अनाथ से विश्वासघात और महानुभाव तपस्वियों के प्रति किये गये अपकार से उत्पन्न हुए अधर्म का फल 'दृष्टजन्मवेदनीय' ही होता है, अदृष्टजन्मवेदनीय नहीं।

क्लेशों की निवृत्ति होने पर भी तन्मूलक कर्माशय अपने फल होने से निवृत्त नहीं हो सकते, क्योंकि वे अनेक जन्मों में सञ्चित होने के कारण अनन्त हैं।

सतिमूले तद्विपाके जात्यायुर्भोगाः।

(योगदर्शन द्वितीय साधन पाद, सूत्र १३)

पदार्थ : मूल कारण के विद्यमान होने पर ही धर्माधर्म-रूप कर्माशय का फल जन्म, आयु तथा भोग होता है।

भाष्य : जन्म का नाम 'जाति', जीवनकाल का नाम 'आयु' और सुख-दुःख के हेतु शब्दादि विषयों की प्राप्ति का नाम 'भोग' है।

कर्माशय तबतक ही जाति आदि विपाक का आरंभक होता है जबतक इनके मूल कारण अविद्यादि क्लेशों का नाश नहीं होता। विवेक-ज्ञान के द्वारा उक्त क्लेशों का नाश हो जाने से नष्टमूल हुआ कर्माशय अनन्त होने पर भी उक्त फल का आरंभक नहीं हो सकता, क्योंकि मूल के कट जाने से शाखा का फलीभूत होना असम्भव है। अतएव अपने मूलभूत अविद्यादि क्लेशों के विद्यमान होने पर ही धर्माधर्मरूप कर्माशय जाति आदि फल के जनक हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

तात्पर्य यह है कि जैसे तण्डुल अपने तुषों के विद्यमान होने पर ही अंकुर देने में समर्थ होते हैं, वैसे ही अविद्यादि क्लेशों के विद्यमान होने पर ही कर्माशय उक्त फल के उत्पादन करने में समर्थ होते हैं, अन्यथा नहीं। इसलिये क्लेशों के निवृत्त होने पर कदापि कर्माशय फल का आरम्भ नहीं कर सकता।

धर्माधर्मरूप कर्माशय का मूल कारण अविद्यादि क्लेश त्याज्य हैं, परन्तु जाति, आयु, भोग तीनों क्यों त्याज्य हैं, इसका उत्तर अगले सूत्र में देखें :

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥

(योगदर्शन द्वितीय साधन पाद, सूत्र १४)

पदानुवाद : धर्म तथा अधर्म का कार्य होने से वे तीनों सुख-दुःख का हेतु हैं।

भाष्य : जाति, आयु, भोग--ये तीनों धर्माधर्म से उत्पन्न होते हैं। जिनकी धर्म से उत्पत्ति होती है उनका फल सुख और जिनकी अधर्म से उत्पत्ति होती है उनका फल दुःख है, अर्थात् धर्मजन्य जाति आदिकों से सुख और अधर्मजन्य से दुःख की प्राप्ति होती है। इसलिये विवेकी पुरुषों को अविद्यादि क्लेशों की भाँति सर्वथा त्याज्य हैं।

न्यायदर्शन प्रथम अध्याय, प्रथम आह्निक का सूत्र १९ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा भी प्रमाणों में उद्धृत किया गया है। विशद व्याख्या देना ठीक समझकर इस सूत्र को पुनः दिया जा रहा है।

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥

पदार्थ : मरकर पुनः जन्म लेने का नाम प्रेत्यभाव है।

भाष्य : 'उत्पन्नस्य क्वचित्सत्त्वनिकाये या मृत्वा पुनरुत्पत्तिः सः प्रेत्यभावः (न्या० भा०)—"एक शरीर में उत्पन्न हुए जीव का मरकर दूसरे शरीर में उत्पन्न होने का नाम 'प्रेत्यभाव' है।" प्रेत्यभाव तथा पुनरुत्पत्ति, ये दोनों पर्य्याय शब्द हैं। यह प्रेत्यभाव प्रागभाव की भाँति अनादि-सान्त होने से अपवर्ग-पर्य्यन्त स्थायी है, अर्थात् मोक्ष के अनन्तर प्रेत्यभाव नहीं रहता, और जो वैदिक सिद्धान्त में मोक्ष से जीव की पुनः आवृत्ति कथन की है, वह प्रेत्यभाव-पद का वाच्यार्थ नहीं हो सकती, क्योंकि अज्ञानियों की भाँति अल्पकाल में ही उससे जीव का आगमन नहीं होता।

भाव यह है कि अज्ञानावस्था में वर्तमान जीवों के पुनः-पुनः जन्म-मरण को 'प्रत्यभाव' कहते हैं। यहाँ प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पुनरुत्पत्ति आत्मा की होती है अथवा शरीर की ? प्रथम पक्ष आत्मा के नित्य होने से नहीं बन सकता, अर्थात् जब कूटस्थ नित्यात्मा की उत्पत्ति ही युक्ति-विरुद्ध है तो उसकी पुनरुत्पत्ति का कथन अत्यन्त असंगत है ; दूसरा पक्ष इसलिए ठीक नहीं कि शरीर की एक बार उत्पत्ति होती है अनेक बार नहीं, क्योंकि एक शरीर एक बार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है तो फिर उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, किन्तु नवीन शरीर उत्पन्न होकर पुनः नष्ट हो जाता है और फिर शरीरान्तर की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार पुनः-

उत्पत्ति का नाम 'प्रेत्यभाव' नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि 'पुनः शब्दार्थस्य यत्रत उपदिष्टस्य परिहन्तुमशक्यत्वादात्मानश्च स्थापित्वेन क्रियाभ्या-वृत्तिसम्भवात् तस्यैव पुनः पुनरुत्पत्ति ब्रूयः उत्पत्तिवन्मरणमपि सोयमात्मन एव मृत्वा पुनर्जन्म प्रेत्यभाव इति(न्याय-मं)स्थायी, स्थिर वस्तु में क्रिया की आवृत्ति = बार-बार होना पाया जाता है, अस्थायी में नहीं; इस नियम के अनुसार स्थिर आत्मा में जन्म-मरणरूप क्रिया की आवृत्ति पाए जाने से उसी का प्रेत्यभाव होता है, शरीर का नहीं; और जन्म-मरण आत्मा के स्वरूप में नहीं माने गये किन्तु 'मरणमात्मनो भोगायतन देहेन्द्रियादिवियोग उच्यते जन्म तु सत्सम्बन्धः (न्याय-मं०) = सुख-दुःख के साक्षात्काररूप भोग का अधिष्ठान जो देह, इन्द्रिय आदि का संघात है, उनके साथ आत्मा के वियोग का नाम 'मरण' है तथा संयोग का 'जन्म' है। इस रीति से आत्मा के पुनर्जन्म में कोई दोष नहीं; और पूर्वापर-काल-सम्बन्धी नियम के न पाये जाने से यह प्रेत्यभाव अनादि है।

तात्पर्य यह है कि—

यदि पूर्वं दुःखं तज्जन्मना विना न युक्तम्, अथ पूर्वं जन्म तदा धर्म्माधर्म्मावन्तरेण न युक्तम्, अथ पूर्वंधर्म्माधर्म्मौ तावपि विना राग-द्वेषाभ्यां न युक्तौ, अथ पूर्वं रागद्वेषौ न मिथ्याज्ञानादृते तयोः प्रादुर्भाव इति, मिथ्याज्ञानं तर्ह्यादिः, तदपि शरीरादीनन्तरेण न युक्तं सोऽयं दुःखादीनां मिथ्याज्ञानपर्य्यन्तानां कार्य्यकारणभावोऽ-विच्छिन्नः संसार इति, आजरञ्जरीभाव इति चोच्यते।"

(न्या० वा०)

जन्म के बिना दुःख-धर्माधर्म नहीं हो सकते, और यदि सबसे प्रथम रागद्वेष को मानें तो उनका मिथ्याज्ञान के बिना होना तथा मिथ्याज्ञान का शरीरादि के बिना होना सर्वथा असम्भव है। इसलिये, मिथ्याज्ञान-पर्य्यन्त दुःखादिकों का बीजांकुरवत् अनवरत अनादि कार्य-कारणरूप संसार ही 'प्रेत्यभाव' कहलाता है और इसको न्याय की परिभाषा में 'आजरञ्जरी भाव' कहते हैं; प्रेत्यभाव, संसार, आजरञ्जरी-भाव, ये तीनों पर्य्याय शब्द हैं।

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य
हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः ॥

(न्यायदर्शन अ० ३, आह्निक १, सूत्र १९)

पदार्थ—पूर्वानुभूत पदार्थ-विषयक स्मृति के संस्कार द्वारा उत्पन्न हुए बालक में हर्ष, भय, और शोक पाए जाने के कारण आत्मा नित्य है, अर्थात् केवल शरीर नया मिलता है।

भाष्य—"अभिप्रेत विषय प्रार्थनाप्राप्तौ सुखानुभवो हर्षः"—वाञ्छित वस्तु के संकल्पोत्तर वस्तुप्राप्ति द्वारा होनेवाले सुखानुभव का नाम 'हर्ष', "अनिष्टविषय-

साधनोपनिपाते तज्जिहासोर्हानाशक्यता भयम्''—अनिष्ट साधनों के प्राप्त होने पर उसकी निबृत्ति में अशक्यता का नाम 'भय', और ''इष्टविषयवियोगे सति तत्प्राप्त्यशक्यप्रार्थना शोक:''—इष्ट वस्तु का वियोग होने पर उनकी प्राप्ति के लिए निरर्थक प्रार्थना का नाम 'शोक' है। बालक के उत्पन्न होते ही उसमें हर्ष, भय तथा शोक पाये जाने से अनुमान होता है कि इसने अवश्य हर्षादि साधनों का अनुभव किया है, जिससे उद्‌बोधक संस्कार द्वारा हर्ष-भयादि की स्मृति से कभी प्रसन्न होकर हँसता और कभी म्लान होकर रुदन करता है। वर्तमान जन्म में बालक को तत्काल हर्षादि हेतुओं का अनुभव हो नहीं सकता, क्योकि उत्पत्तिकालीन बालक में उक्त सामर्थ्य का अभाव है, इस प्रकार उक्त स्मृति का हेतु 'अनुभव' पुनर्जन्म के बिना न होने से सिद्ध है कि जो पूर्वजन्म में हर्षादि विषयों का अनुभव करनेवाला है, वही नित्य आत्मा है। यदि आत्मा नित्य न होता किन्तु शरीर के साथ ही उत्पत्ति-विनाशवाला होता, तो जन्मकालीन बालक में हर्ष, भय तथा शोक कदापि न पाये जाते; परन्तु पाये जाते हैं, इसलिये उसकी नित्यता में कोई सन्देह नहीं।

प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ॥

(न्यायदर्शन अ० ३, आ० १, सूत्र २२)

पदार्थ : पूर्वजन्म होते ही आहार के अभ्यास द्वारा होनेवाली स्तन्यपान की इच्छा पाये जाने से आत्मा नित्य है।

भाष्य : जन्म होते ही बालक की स्तन्यपान में प्रवृत्ति पाये जाने से अनुमान होता है कि इसको स्तन्य—दूध पीने की अभिलाषा है, क्योंकि इच्छा के बिना कोई प्रवृत्ति नहीं होती और उक्त इच्छा आहार (भोजन) के अभ्यास से होती है, अन्यथा नहीं। यदि पूर्वजन्म में जीवात्मा को स्तन्यपानादि आहार का अभ्यास न होता तो उत्पत्त्यनन्तर तत्काल ही उसकी स्तनपान में प्रवृत्ति न पाई जाती; परन्तु उक्त प्रवृत्ति में किसी वादी की विप्रतिपत्ति नहीं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जिसको पूर्वजन्मों में बारम्बार स्तनपानादि क्रिया का अभ्यास हुआ है, वही उक्त इच्छा का अधिकरण आत्मा अनादि है, इस प्रकार अनादिभावरूप होने से आत्मा के नित्य होने में कोई सन्देह नहीं।

पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ॥ (न्यायदर्शन ३-२-६२)

पदार्थ : पूर्वजन्मकृत कर्मजन्य अदृष्ट के सम्बन्ध से शरीर की उत्पत्ति होती है।

भाष्य : ''पूर्वशरीरे या प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भलक्षण तत्पूर्वकृतं तस्य फलम् तज्जनितौ धर्म्माधर्म्मौ तयोरनुबन्ध आत्मसमवेतस्यावस्थान तेन प्रयुक्तेभ्यो भूतेभ्यस्तस्योत्पत्तिः शरीरस्य न स्वतन्त्रेभ्य इति'' (न्या० भा०)—जो पीछे वागारम्भ, बुद्ध्यारम्भ, शरीरारम्भ-भेद से तीन प्रकार की प्रवृत्ति कथन की है, उससे उत्पन्न

होनेवाले आत्मसमवेत धर्माधर्मरूप अदृष्ट के अनुसार यथायोग्य पञ्चभूतों से शरीर की उत्पत्ति होती है, स्वतंत्र नहीं, अर्थात् पूर्वजन्म में जिस जीव का जैसा कर्म होता है वैसा ही अनेक प्रकार की योनियों में भूतों के विलक्षण परिणाम से जीवों के शरीर उत्पन्न होते हैं, इसलिये अदृष्ट ही शरीरोत्पत्ति की विचित्रता में कारण हैं।

आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ॥ (न्या० द० ४-१-१०)

पदार्थ : आत्मा के नित्य होने से प्रेत्यभाव की सिद्धि होती है।

भाष्य : "पुनरुत्पत्ति प्रेत्यभावः" (न्यायदर्शन १/१/१९) में जो नष्ट पदार्थ की पुनः उत्पत्ति का नाम 'प्रेत्यभाव' कथन किया है, उसमें यह संशय होता है कि पुनरुत्पत्ति शरीर, बुद्धि, अथवा आत्मा की है, परन्तु 'उत्पत्ति' विनाश का विषय न होने से नित्य आत्मा का प्रेत्यभाव नहीं हो सकता और न ही शरीर अथवा बुद्धि का प्रेत्यभाव माना जा सकता है, क्योंकि नष्टबुद्धि तथा शरीर की पुनरुत्पत्ति में कोई प्रमाण नहीं, इसलिए प्रेत्यभावरूप प्रमेय का मानना सर्वथा असंगत है। इस पूर्व-पक्ष के अभिप्राय से यह सिद्धान्त कथन किया गया है कि आत्मा का नित्य होना प्रेत्यभाव का साधक है, बाधक नहीं, अर्थात् "यदापूर्वोत्पन्नाभिः शरीरेन्द्रियबुद्धि-वेदनाभिर्वियुज्यते, म्रियत इति चोच्यते, यदा अपूर्वोत्पन्नाभिर्निकायविशिष्टाभिः शरीरेन्द्रियबुद्धिवेदनाभिः सम्बद्ध्यते, जायत इति चोच्यते"—नित्य आत्मा के प्रथम शरीरेन्द्रियादि-संघात के वियोग का नाम 'मृत्यु' और नये शरीरेन्द्रियादि-संघात के साथ संयोग का नाम 'जन्म' है और इसी जन्म-मृत्यु-प्रवाह को 'प्रेत्यभाव' कहते हैं। वस्तुतः स्वरूप से आत्मा का जन्म 'मृत्यु' अभिप्रेत नहीं, क्योंकि वह 'उत्पत्ति' विनाश से रहित है।

आगे इस विषय पर उपनिषदों से प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं —

स यत्रायमणिमानं न्येति जरया वोपतपता
वाऽणिमानं निगच्छति, यद्यथाऽऽम्रं वोदुम्बरं वा
पिप्पलं वा बन्धनात् प्रमुच्यत एवमेवायं पुरुष
एभ्योऽङ्गेभ्यः संप्रमुच्य पुनः प्रतिन्यायं
प्रतियोन्याऽऽद्रवति प्राणायैव ॥ (बृहद्०आ०उ० ४/३/३६)

अनुवाद—सो यह पुरुष जिस काल में जरावस्था से कृशता को प्राप्त होता है, अथवा किसी उपतापी रोग से कृशता को प्राप्त होता है, उस काल में जैसे अपने बन्धन से छूटकर आम्रफल व उदुम्बरफल अथवा पिप्पलफल गिरता है, वैसे ही यह पुरुष इन अवयवों से छूटकर गिरता है और जैसा आया था वैसे ही प्राण के लिए **योनि-योनि के प्रति दौड़ता है** (पुनर्जन्म पाने के लिए)।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ (श्वेता० ४/५)

एक अनादि और उत्पन्न न होनेवाली प्रकृति है जिसमें से समस्त रंग, आकृति और स्वरूप प्रकट होते हैं। दूसरा अनादि और प्रकृति के पदार्थों को भोगनेवाला जीव है, वही इसे भोगता है और इसके जाल में फँसता हुआ जन्म-मरण के बन्धन में आता है।

तीसरा अनादि परमात्मा है, वह न प्रकृति के जाल में फँसता है, न उसका भोग्य कर्म करता है, किन्तु सब जीवों के कर्मों का फलदाता और सबका स्वामी तथा अधिष्ठाता है।

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां
योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा
वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह
यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं
वा चाण्डालयोनिं वा ।। (छान्दोग्य० ५/१०/७)

अर्थात् जिनका आचरण यहाँ अच्छा रहा था, वे शीघ्र ही अच्छी योनि में पहुँचते हैं—ब्राह्मण-योनि में, क्षत्रिय-योनि में। जिनका आचरण यहाँ बुरा रहा वे शीघ्र बुरी योनि में पहुँच जाते हैं—कुत्ते की योनि में या चाण्डाल की योनि में।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ।।
(मुण्डकोपनिषद् ३/२)

अर्थात् जो व्यक्ति कामनाओं को ही सब-कुछ मान बैठा है, उन्हीं की आराधना करता है, वह उन कामनाओं से भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता है।

स यत्रायमात्माऽबल्यं नेत्य संमोहमिव नेत्यथैनमेते प्राणा
अभिसमायन्ति स एतास्तेजोमात्राः समभ्याददानो
हृदयमेवान्ववक्रामति । स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः
पराङ् पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो भवति ।।
(बृहदारण्यक० ४/४/१)

अर्थात् जब शरीर दुर्बल हो जाता है, मन बेखबरी की हालत में आ जाता है, तब इन्द्रियाँ इकट्ठी होकर आत्मा के पास पहुँचती हैं। वह इनमें से तेज की मात्रा को, जिसके कारण ये काम करती थीं, खींच लेता है और उस तेज को, जो वास्तव में इसी का था, अपने साथ लेकर हृदय-प्रदेश में उतर आता है। चक्षु में बैठा हुआ पुरुष जब अन्दर से बाहर जाता है तब देखता-सुनता है, परन्तु जब बाहर से अन्दर को लौटता है तब देखता-सुनता नहीं; किसी रूप का इसे ज्ञान नहीं रहता, तब यह अरूपज्ञ हो जाता है।

तद्यथा पेशस्करी पेशसो मात्रामपादायान्यन्नवतरं
कल्याणतरं रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्या-

ऽविद्यां गमयित्वाऽन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते, पित्र्यं वा गान्धर्वं वा, दैवं वा प्राजापत्यं वा, ब्राह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम् ।।

(बृहदारण्यक० ४/४/४)

अर्थात् जैसे सुनार सोने की एक मात्रा लेकर उसी से नवतर और सुन्दरतर रूप बना देता है, इसी प्रकार यह आतमा इस शरीर को परे फेंककर, अविद्या को दूर कर, दूसरा नवतर और सुन्दरतर रूप बना देता है—पितर, गन्धर्व, देव, प्रजापति, ब्रह्म वा अन्य भूतों में से किसी रूप को अपनी 'विद्या'—'कर्म'—'पूर्व प्रज्ञा' के अनुसार धारण करता है (अर्थात् पुनर्जन्म प्राप्त करता है)।

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।।

(कठोप० २/६)

अर्थात् जो बड़ा होकर भी बुद्धि में बच्चा ही है, धन के मोह से जो दूसरी कोई बात सोच ही नहीं सकता, ऐसे प्रमादी को 'साम्पराय'—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान, तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (यम-नियम)पसन्द नहीं आते। वह मान बैठा है कि यही लोक है, परलोक नहीं है। ऐसा व्यक्ति बार-बार जन्म-मृत्यु के चंगुल में आ फँसता है; **बार-बार मरता है, बार-बार पैदा होता है।**

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ।।

(कठोपनिषद् ३/७)

अर्थात् जो विज्ञानरहित है, जिसका मन आतमा से युक्त नहीं, जो सदा अपवित्र विचारों को ही सोचता है, वह उस उच्च पद को, जिसमें आतमा मालिक बनकर रथ (शरीर) को चलाये, नहीं प्राप्त कर सकता। घोड़े (इन्द्रियाँ) ही उसके रथ (शरीर) के मालिक बन जाते हैं और उसे संसार में भटकाते फिरते हैं। वह जन्म-मरण के चक्र में उलझा फिरता है।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।।

(कठोपनिषद् ५/७)

अर्थात् जिसका जैसा 'कर्म' होता है, जिसका जैसा 'ज्ञान' होता है, उसके अनुसार कोई जीव किसी योनि में जाकर शरीर धारण कर लेता है, कोई 'स्थाणु' योनि में चला जाता है।

अब आगे मनुस्मृति, महाभारत, स्कन्ध पुराण और गीता से इस विषय (पुनर्जन्म) पर प्रमाण दिये जाते हैं :

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥

(मनु १२/६)

अर्थात् शरीर के कर्मदोषों से मनुष्य वृक्षादि योनि और वाणी के कर्मदोषों से पक्षी और मृग की योनि, तथा मन के कर्मदोषों से चाण्डालादि (नीच) कुल में उत्पत्ति पाता है।

असंख्यामूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥
पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम्।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥

(मनु १२/१५, १६)

अर्थात् उस (परमात्मा) के शरीरतुल्य पञ्चभूत-समुदाय से असंख्य शरीर निकलते हैं जोकि उत्कृष्ट-निकृष्ट प्राणियों को निरन्तर कर्म कराते हैं ॥ दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्यों का मरकर पञ्चतन्मात्रा से दुःख सहन करने के लिए दूसरा शरीर अवश्य उत्पन्न होता है ॥

सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों के आधार पर जिस गति को जीव प्राप्त होता है और योनियाँ भोगता है, उनका 'मनुस्मृति' के बारहवें अध्याय में श्लोक ३९ से श्लोक ८२ तक विशद वर्णन है। वहाँ स्पष्ट किया गया है कि जब-जब जीव जैसा गुण धारण कर कर्म करता है, उसे उसी आधार पर मरने पर योनियाँ मिलती हैं, अर्थात् पुनर्जन्म प्राप्त होता है—शरीर मिलता है।

पुनः पुनश्च मरणं जन्म चैव पुनः पुनः।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ॥
मातरो विविधा दृष्टाः पितरश्च विविधाः पुनः।
सुखानि च विचित्राणि दुःखानि च मयानघ ॥२॥

(महाभारत पर्व १४, अध्याय १६, श्लोक ३२-३३)

अर्थात् बार-बार मरना और बार-बार जन्म लेना, बहुत प्रकार के आहार खाना, बहुत-सी माताओं का स्तनपान करना, बहुत प्रकार की(भिन्न-भिन्न योनि की)माताओं को देखना और भिन्न-भिन्न पिताओं का सम्बन्ध होना, विचित्र सुखों का भोगना और इसी प्रकार दुःखों का भोगना—यह सब कर्मों का फल है।

येषां यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिवेदिरे।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥

(म० भा० शान्तिपर्व)

अर्थात् पूर्वसृष्टि में प्रत्येक प्राणी ने जो-जो कर्म किये होंगे, वे ही कर्म उसे पुनः-पुनः यथापूर्व प्राप्त होते हैं।

कर्मणैव समुत्पतिः सर्वेषां नात्र संशयः।
अनादिनिधारा जीवा कर्मबीजसमुद्भवाः॥१॥
नाना योनिषु जायन्ते म्रियन्ते च पुनः पुनः।
कर्मणा रहितो देहा संयोगो न कदाचन॥२॥
शुभाशुभैस्तथा मिश्रैः कर्मभिर्वेष्टितैस्त्विवदम्।
त्रिविधानि हि जन्मान्याहुर्बुधास्तत्त्वविदश्च ये॥३॥
संचितानि भविष्याणि प्रारब्धानि तथा पुनः।
वर्तमानि देहेऽस्मिंस्त्रैविध्यं कर्मणा किल॥४॥
ब्रह्मयीनां सर्वेषां तद्वरात्वं नराधिप।
सुख-दुःख-जरा-मृत्यु-हर्ष-शोक-भयस्तथा॥५॥
कामक्रोधौ च लोभश्च सर्वे देहगता गुणाः।
देवा दानाच्च सर्वेषां प्रभवन्ति नराधिप॥६॥
रागद्वेषादयो भावाः स्वर्गेऽपि प्रभवन्ति हि।
देवानां मानवानां च विशश्चां च तथा पुनः॥७॥
कपाली च तथा रुद्रः कर्मणैवा न संशय।
अनादिनिधनं चैव तत्कारणं कर्मसंभवे॥८॥
तेनेह शश्वत सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्।
नित्यानित्य-विचारेऽत्र निमग्ना मुनयः सदा॥९॥
न जानन्ति किमेद्वै नित्यं वाऽनित्यमेव च।
मायां च विमानायां जगन्नित्यं प्रतीयते॥१०॥
ऋतुं कर्मविपाकेन प्राप्नुवन्ति सुखासुखे।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥११॥
तपसा ज्ञानयज्ञैश्च मानवश्चेन्द्रतां व्रजेत्।
क्षीणे पुण्येऽथ शक्रोपि पतत्येव न संशयः॥१२॥

(स्कंध पुराण)

अर्थात् कर्मों के द्वारा ही समस्त जीवों की उत्पत्ति होती है। बीजरूपी कर्म सनातन जीव को शरीर धारण कराते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं॥१॥ विभिन्न योनियों अर्थात् शरीरों में उत्पन्न होते और मरते हैं। कर्मों के बिना जीव किसी शरीर में नहीं जाता॥ २॥ शुभाशुभ मिश्रित कर्मों से यह सम्पूर्ण तीन प्रकार के अण्डज, जरायुज और स्वेदज के सत्त्वगुण, रजस्गुण और तमस्गुणयुक्त शरीर-धारी होते हैं, ऐसा ही तत्त्ववेत्ता महात्माओं का वचन है॥ ३॥ जो पूर्वजन्मों में कर्म किये हैं उनका नाम संचित और प्रारब्ध है, और जो भविष्य में कर्म करेंगे और जो वर्तमान काल में (क्रियमाण) कर रहे हैं, तीन प्रकार से कर्मों का विभाग अथवा गणना है॥४॥ हे नराधिप=राजन्! ब्रह्मा से=आदि से लेकर समस्त जीव कर्मों

के वश में हैं, और कर्मों से ही सुख, दुःख, यश, मृत्यु, हर्ष और शोक को प्राप्त होते हैं ।। ५ ।। हे राजन् ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, जो देहान्तर्गत गुण हैं, कर्मानुसार ईश्वरीयादेश से सबको प्राप्त होते हैं ।। ६ ।। राग-द्वेषादि का उदय बहुत सुखमय काल में भी होता है—बड़े-बड़े विद्वानों, साधारण मनुष्यों और उनके अतिरिक्त अन्य शरीरधारियों को भी ।। ७ ।। **निःसन्देह कपाली तथा महादेवादि पद भी कर्मों से जीवों को मिलते हैं**, यह सब सनातन काल से कर्मानुसार गति चली आती है। ।। ८ ।। इस कर्म पर जगत् दो प्रकार का, अर्थात् चर और अचर, अथवा जड़ या चेतन, प्रवाह से अनादि है। मुनि लोग इन नित्य अर्थात् जीव और ब्रह्म, तथा अनित्य अर्थात् संसार के विचार में संलग्न रहते हैं ।। ९ ।। मनुष्य को ऐसा प्रतीत होता है कि जगत् सदैव रहेगा, अतः उसके मोह से पृथक् होकर नित्य और अनित्य को जानना चाहिए, अर्थात् प्रकृति को नित्य और जगत् को नित्य मानना चाहिए ।। १० ।। जीव कर्म के विपाक से ही सुख और दुःख को पाता है। शुभाशुभ कृतकर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है ।। ११ ।। तप, दान और यज्ञ से मनुष्य राजादि अथवा इन्द्र-(चक्रवर्ती सम्राट्)-पद को प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार बड़े-बड़े राजा भी पुण्य के क्षीण होने से पतित हो जाते हैं ।। १२ ।।

महाभारत-युद्ध में जब अर्जुन मोहवश युद्ध करने से कतराने लगे, तब महाराज श्री कृष्ण ने उपदेश दिया :

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना ।।

(गीता २/२७-२८)

अर्थात् क्योंकि **उत्पन्न हुए की मृत्यु अवश्यम्भावी है और मरे हुए का जन्म अटल है** इसलिए जिसको हटा नहीं सकते उस विषय में तू शोक नहीं कर सकता। ।।१।। हे भरतवंशी ! सब जीव पहले अव्यक्त (अप्रकट) थे, बीच में प्रकट हो गये हैं, अन्त में भी छिप जानेवाले ही हैं। इसमें शोक कैसा ? ।।२।।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।।

(गीता ४/५)

अर्थात् 'अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म व्यतीत हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूँ, तू नहीं जानता।' यहाँ स्पष्टतया पुनर्जन्म का प्रतिपादन है।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति ।
एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्ना, गतागतं कामकामा लभन्ते ।।

(गीता ९/२१)

अर्थात् 'वे (याज्ञिक लोग) उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्यक्षीण होने पर मनुष्यलोक में प्रवेश करते (जन्म लेते) हैं। इस प्रकार काम की इच्छा करनेवाले वेदोक्त धर्म के अनुयायी जाने-आने (आवागमन—बार-बार मरना और बार-बार जन्म लेना) को पाते हैं।' यहाँ पुनर्जन्म स्पष्ट है।

वासाँसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २/२१)

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतारकर दूसरे नवीन वस्त्रों को ग्रहण कर लेता है, ऐसे ही देहधारी पुराने देहों को त्यागकर अन्य नये (देहों) को पा लेता है। (अर्थात् मरने के पश्चात् पुनर्जन्म को प्राप्त होता है)।

यहाँ सिद्ध है कि जीव कर्मानुसार फल पाता है और इसी प्रकार फलरूप में पुनर्जन्म पाता है। कर्म की महिमा गहन है।

इण्डोनेशिया देश में कर्म की इतनी मान्यता है कि जब भी कभी दो व्यक्तियों की अनजाने में अथवा उनके वाहनों की अकस्मात् परस्पर भिड़न्त (टक्कर) हो जाये तो वे एक-दूसरे को दोष नहीं देते, वरन् एक-दूसरे को 'ओ३म् स्वस्ति' कहकर अपनी-अपनी राह लेते हैं। वे इसे भी कर्मफल मान शान्त रहते हैं।

हमारे साथ यदि कोई दुर्घटना हो जावे तो है वह भी कर्मफल का परिणाम ही, परन्तु उसके कारणों को जान, आगे सावधान रह, उन कारणों को विद्यमान न होने देना हमारा कर्त्तव्य है।

इसी विषय पर साप्ताहिक 'सार्वदेशिक' दिल्ली के अंक दिनांक ३०-१२-८४ के पृष्ठ ४ पर जो जानकारी दी गई है, वह साभार पाठकों के ज्ञानवर्धनार्थ अविकल रूप में यहाँ दे रहे हैं—

"विज्ञान का अपना महत्त्व है और क्षेत्र भी है। विज्ञान प्रकृति से सम्बद्ध है अतः उसका क्षेत्र प्रकृति तक ही सीमित रहता है। उसका कार्य सृष्टि के नियमों का अवगाहन करना ही है। यह 'क्या' का उत्तर दे सकता है, 'क्यों' का नहीं। उदाहरणार्थ ऐसे कई चमत्कार ठीक रूप में ईमानदारी के साथ इंगित किये जाते हैं जिनका कारण विज्ञान नहीं बता सका है और न बता सकता है, क्योंकि वे अध्यात्म से सम्बद्ध होते हैं। उन्हीं में से एक है "पुनर्जन्म"।

'बेंगलूर विज्ञान सम्मेलन' (१-२-१९८४) में भाषण देते हुए 'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मैटल' और 'न्योरो साईंसिज' के डॉ० सतवन्त पसरीचा के अनुसार संसार-भर में पुनर्जन्म के अनेक मामलों की जाँच-पड़ताल हुई है, परन्तु अभी तक पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर किसी और मान्य परिणाम पर नहीं पहुँचा जा सका है। उत्तरप्रदेश और राजस्थान में पिछले कुछ वर्षों में तीन सौ से ऊपर पुनर्जन्म के मामलों की जाँच-पड़ताल की गई है। बच्चों ने अपने पिछले जन्म की जो बातें बताई हैं. वे

प्रायशः ठीक प्रमाणित हुई हैं। सत्तासी प्रतिशत बच्चे अपने पूर्वजन्म का नाम बताने में असमर्थ रहे, छियासठ प्रतिशत ने पूर्वजन्म की अपनी मृत्यु का विवरण दिया, चालीस प्रतिशत अस्वाभाविक मृत्यु का शिकार हुए।"

"डॉक्टर महोदय के अनुसार साधारणतः दो से पाँच वर्ष आयु-वर्ग का बच्चा पूर्वजन्म की बातें बताता है और अनेक मामलों में बड़ा होते रहने पर यह स्मृति जाती रहती है। ब्रह्म देश में पूर्वजन्म का हाल बतानेवाले बच्चों की सर्वाधिक संख्या प्रकाश में आई जो तीन सौ सत्तर थी। इसके बाद भारत का नम्बर है—दो सौ इक्यासी; वहाँ तीन सौ मामले प्रकाश में आये। एशिया, उत्तर अमरीका, योरुप और अफ्रीका के देशों में लगभग दो हजार मामलों की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई है।" डॉ० महोदय ने यह भी कहा कि इन मामलों में विज्ञान किंकर्त्तव्यविमूढ़ रहा। उन्होंने प्रश्न किया कि वैज्ञानिकों में से कोई परम्परागत भारतीय स्पष्टीकरण को अस्त्रीकार करने का प्रामाणिक तथ्य बता सकता है?

दिल्ली के एक कायस्थ-परिवार में पर्याप्त समय पूर्व शान्ति नामक कन्या ने जन्म लिया। इस कन्या को अपने पिछले जन्म का सब हाल याद था। इस मामले में स्वर्गीय लाला देशबन्धु, जो दिल्ली के विख्यात नेता रहे, ने स्वयं रुचि ली थी और वह कन्या के साथ मथुरा गये थे। शान्ति ने मथुरा में जाकर अपना घर एवं सारे परिवार को पहचान लिया था। हिन्दु विद्वान् और मुस्लिम उलेमा भी साथ गये थे और सब आश्चर्यचकित रह गये थे। यहाँ तक कहा जाता है मुस्लिम विद्वानों ने न केवल आवागमन के सिद्धान्त का ही समर्थन किया, अपितु उसकी पुष्टि में किताबें भी लिखीं और प्रकाशित कराईं।

दिल्ली के समाचारपत्र 'नवभारत' दिनांक ६-९-१९८५ के पृष्ठ ९ पर कालम द्वितीय में एक घटना दी गई है कि भागुजा ग्राम, जो राजस्थान में नाथद्वारा तीर्थ से केवल सत्तर किलोमीटर दूर है, श्री लक्ष्मण पालीवाल के पुत्र विजयशंकर ने, जो उस समय पाँच साल का था, अपने पूर्वजन्म का हाल बताया। पुष्टि के लिए उसे तेलीपुरा ग्राम ले गये जहाँ बस-स्टैंड पर उतरकर विजय ने अपने को श्री छगनलाल तेली के घर ले चलने को कहा और स्वयं ही मार्ग का भी निर्देशन किया। वहाँ उसने छगनलाल को पिता कहकर पहचाना और अपने को उसका पुत्र बताया जिसकी मृत्यु सन् १९७४ में साधारण बीमारी में हुई थी। विजय ने अपनी मृतक पत्नी का ब्यौरा दिया और अपने पूर्वजन्म के बालकों को अपने बताकर सबके नाम लिये तथा आयु बताई, जो सही पाये गये। वह अपने साथी शंकर सोहनी को भी नहीं भूला था। ग्राम में वह उस सोहनी को उसके घर से पकड़ लाया।

साप्ताहिक 'सार्वदेशिक' दिल्ली, दिनांक १-२-१९८७ में श्री सेठी का एक लेख पृष्ठ ८ तथा १० पर छपा है जिसमें एक घटना दी है। बताया गया है कि श्रीमती सिम्मी को अपने पिछले तीन जन्मों में से दो जीवनों की स्मृति थी जिसके

आधार पर दोनों स्थानों पर उसने अपने परिवार-जनों को पहचान लिया और उसने अपने दोनों पिछले जन्मों की पुष्टि कर दी।

'मनोहर कहानियाँ' मार्च १९८८ से अंक में पृष्ठ ४५ पर नॉर्थ हम्बर्टलैंड की एक घटना दी है। ५-७-१९५७ को इतवार के दिन ग्यारह-वर्षीय जोआना अपनी छः वर्षीया बहिन जैकी के साथ 'सेंट मेरी रोमन केथोलिक चर्च' की प्रार्थनासभा में भाग लेने प्रातः नौ बजे घर से बाहर निकली। अचानक एक कार द्वारा टकराकर घटनास्थल पर ही दम तोड़ गईं। परन्तु स्वप्न में उसने अपनी माता को बताया कि वे दोनों उसीकी कोख से जन्म लेंगी। उनकी माता ने समय पाकर दो जुड़वाँ बहनों को जन्म दिया। दोनों बहनों के चेहरे वैसे ही थे जैसे दुर्घटना में मरी दोनों लड़कियों के थे। बच्चियाँ बड़ी हो गईं। एक दिन दोनों के साथ माता-पिता जा रहे थे। मार्ग में वह दुर्घटना-स्थल पड़ा जहाँ दोनों बहिनों ने कार से टकराकर दम तोड़ा था। दोनों चीखने लगीं—"वह कार आई ! बचो! खून-खून !" यह अजीब घटना पूर्वजन्म को दर्शाती है और पुनर्जन्म की पुष्टि करती है।

'कादम्बिनी' दिल्ली, जून १९८८ के अंक में पृष्ठ ५० से ५४ पर श्री रणजीत-सिंह का लेख है जिसमें बताया गया है कि श्री मनसुखलाल दामोदर ठाकुर द्वारका-निवासी (द्वारकाधीश मन्दिर के पास) का पुत्र हितेन्द्र ५-२-१९७७ को खारा मन्दिर हनुमान जी के दर्शन कर लौटते समय एक ट्रक से कुचला जाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसका पुनर्जन्म श्री अरुण प्रसाद नाइक, कर्मचारी 'एसोसिएटेड सीमेंट कम्पनी, ग्वालियर' के घर २०-९-१९७७ को हुआ और उसका नाम अभिषेक रखा गया। प्यार से उसे सोनू कहा जाने लगा। उसे अपना पहला जन्म याद आया तो अपने पूर्वजन्म के घर पर जाने की ज़िद करने लगा। जब वहाँ उसे ले-जाया गया तो उसने अपने माता, पिता, भाई तथा बहिन को पहचान लिया। अपने पूर्वजन्म के मित्र को भी पहचाना, जो फेर-बदल गली में उसके मरने के पश्चात् हुआ था। उसे देख उसने बताया कि पहले-जैसा नहीं रहा है। उसने दुर्घटनास्थल भी ठीक प्रकार से पहचानकर बता दिया। उसे याद था कि वह ट्रक से कुचलकर मरा था। पुनर्जन्म की इससे अधिक और क्या पुष्टि होगी !

पं० लेखराम 'आर्य मुसाफिर' ने भी कितनी ही घटनाएँ पुनर्जन्म की अपनी पुस्तक में दी हैं जो दो भागों में 'कुलयात आर्य मुसाफ़िर' में छपी हैं। पण्डित जी तो यह भी लिखते हैं कि पारसी मत, बुद्ध मत, ईसाई मत तथा इस्लाम मत, सभी पुनर्जन्म को मानते हैं। उन्होंने वहाँ इस विषय में सम्बन्धित मतों की मान्य पुस्तकों से प्रमाण दिये हैं।

अल्लामा सर मुहम्मद इकबाल का सम्बन्ध कश्मीरी कौल ब्राह्मणों के परिवार से था। सम्भवतः उनके दादाजी ने अपना आर्य धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म अपनाया था। इन्होंने एक प्रसिद्ध कविता "शिकवा" नाम से मुसलमानों की ओर से लिखी है

और जो भी शिकायतें हो सकती थीं, की हैं। इकबाल अविभाजित भारत के प्रसिद्ध और विख्यात (उर्दू भाषा के) कवि माने गये हैं। वह लिखते हैं—

(१) मौत इक जिन्दगी की मंजिल है।
यानि आगे चलेंगे दम लेकर ॥

(२) खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले,
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है?

इन दोनों पदों में पुनर्जन्म की झलक स्पष्ट है।

नीचे के दो पदों को भी देखें जो उर्दू कवियों के ही लिखे हैं—

(१) मुख्तलिफ[1] हैं हयात[2] के पहलू[3]।
मौत इक जिन्दगी की मंजिल है॥

(२) रूह[4] अर्श[5] पे है जिस्म[6] है नीचे मज़ार[7] के।
कश्ती हमारी डूब गई पार उतार के॥

यहाँ उर्दू भाषा के कवियों पर वैदिक सिद्धान्त पुनर्जन्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। पहले दो में से प्रथम पद में मृत्यु को एक पड़ाव कहा गया है तो दूसरे में जन्म से प्रथम तकदीर की बात की गई है। पिछले दो में से प्रथम में जीवन की भिन्न-भिन्न दिशाएँ बताई गई हैं तो दूसरे में स्पष्टतया शरीर और आत्मा को अलग-अलग माना है। यहाँ शरीर को किश्ती कहा है तो कठोपनिषद् में शरीर को रथ कहा है, बुद्धि सारथी, आत्मा सवारी और इन्द्रियों को घोड़े कहा गया है।

फारसी के सुविख्यात कवि मौलाना रूमी ने लिखा है —

हम चूं सब्जा बारहा रोईदा अम।
हफ्तसद हफ्ता कि कालिब दीदा अम॥

अर्थात् मैं पृथिवी की घास की भाँति असंख्य बार उत्पन्न हुआ हूँ और शरीर की असंख्य योनियों को मैंने पूर्वजन्म के रूप में प्राप्त किया है।

आशा है पाठकगण पुनर्जन्म के सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए सुकर्मरत होंगे, क्योंकि कर्मों के संस्कार ही भावी जीवन के शुभ-अशुभ का आधार हैं।



---

(१) भिन्न, (२) जीवन, (३) पक्ष, (४) आत्मा, (५) आकाश, (६) शरीर, (७) कब्र।

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महावली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	५.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	५.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों ,,)	६.००
कीर्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणोंकी कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रंथों ,,)	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली	८.००
राजा-रानी की कहानी	८.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

हास्य-व्यंग्य

हँसो हँसाओ	५.००
हास परिहास	५.००

विविध लेखक

भक्त बालक	६.००
पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हम सब राम-रहीम के बेटे	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००
सफलता की राह	५.००
उन्नति की राह	५.००

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें	६.००
अवसर को पहचानो	६.००
अपने आपको पहचानिये	६.००
आप सफल कैसे हों	६.००
उन्नति कैसे करें	६.००
धन कुबेर कैसे बनें	६.००

स्वास्थ्य और योग

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

डॉ० जायसवाल

कैंसर : कारण निवारण	१०.००

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	१०.००
सौ वर्ष कैसे जियें	१०.००
आहार चिकित्सा	१०.००

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डाक्टर (होम्योपैथी)	१२.००
मानसिक रोग कारण निवारण	१०.००

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग एक वरदान	१० ००

श्यामजी गोकुल वर्मा

योग-साधना और प्राणायाम	१०.००

महिला-उपयोगी

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक कला	६.००
आधुनिक मिष्ठान्न कला	६.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	६.००
अचार मुरब्बे चटनी	६.००

जीवनियाँ

इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	१०.००

सन्तराय वत्स्य

स्वामी विवेकानन्द	१०.००
स्वामी रामतीर्थ	१०.००
रामकृष्ण परमहंस	१०.००

तकनीकी

रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	१२.००
ट्रांजिस्टर गाइड	१२.००
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	१०.००
टेलिविजन गाइड	१०.००

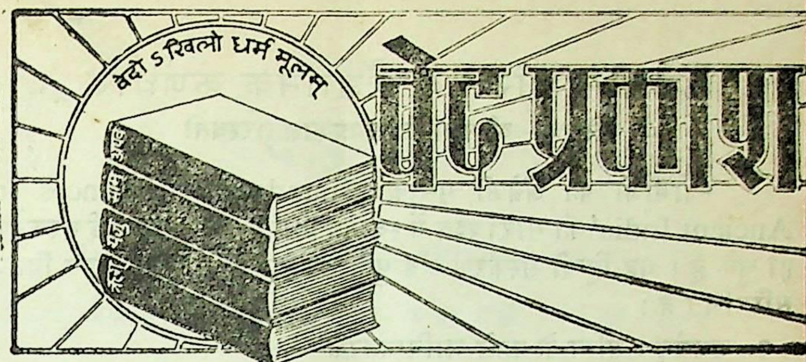
विविध

अमृत वाणी		१०.००
महाभारत		६.००
रामायण		६.००
पंचतन्त्र		६.००
हितोपदेश		६.००
चाणक्य नीति	संस्कृत-हिन्दी	१०.००
भर्तृहरिशतकम्	,,	१५.००
विक्रम बेताल	हिन्दी	६.००
सिंहासन बत्तीसी		६.००
एशियाई खेल		१२.००
जूडो आत्मरक्षा के लिए		१०.००
जूडो कुंग्फू कराटे		६.००
सफल व्यापारी कैसे बनें		१०.००

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

अपने पराये		४.००
अकेली		४.००
चन्द्रनाथ		४.००
अनुराधा		४.००
परिणीता		४.००
विन्दु का बेटा		४.००
बैकुण्ठ का दानपत्र		४.००
बड़ी दीदी		४.००
विराज बहू		४.००
ब्राह्मण की बेटी		४.००
पंडित मोशाय		४.००
मँझली दीदी		४.००
देवदास		६.००
नया विधान		६.००
देहाती समाज		६.००
शुभदा		४.००
श्रीकान्त	(दो भाग)	३०.००
विप्रदास		१०.००
देना पावना		१५.००
गृहदाह		१५.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।



सत्य मार्ग पर चलो

सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥

—ऋग्वेद २।२७।६

पदार्थः—हे (आदित्याः) विद्वान् लोगो ! हे (अर्यमन्) श्रेष्ठ सत्कारयुक्त ! हे (मित्र) मित्र ! हे (वरुण) प्रतिष्ठित सज्जन ! जो (वः) तुम लोगों का (अनुक्षरः) कण्टकादि-रहित (सुगः) जिसमें निर्विघ्न चल सकें (साधुः) जिसमें धर्म की सिद्धि करते ऐसा (पन्थाः) मार्ग (अस्ति) है (तेन, हि) उसी मार्ग से चलने के लिए (नः) हमको (अधि वोचत) अधिकार उपदेश करो, और जो यह (दुष्परिहन्तु) बड़ी कठिनता से टूटे-फूटे ऐसे विद्याभ्यास आदि के लिए बना हुआ (शर्म) घर है वह (नः) हमारे लिए (यच्छत्) देओ ।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि धर्मात्मा विद्वानों के स्वभाव को ग्रहण कर वेदोक्त सत्यमार्ग में चलें; जिससे सत्यशास्त्र के पढ़ने-पढ़ाने की वृद्धि होवे, वही कर्म सदा सेवने योग्य है ।

विद्वत्सङ्ग से द्वेष-नाश

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः ।
अति द्वेषांसि तरेम ॥

——ऋग्वेद ३।२७।३

पदार्थः—हे (अग्नि) अग्नि के सदृश पवित्र पुरुषार्थी पुरुष ! आप जैसे (वयम्) हम लोग (वाजिनः) विज्ञानयुक्त (देवस्य) विद्वान् (ते) आपके (यमम्) उत्तम नियम को प्राप्त होने के लिए (शकेम) समर्थ हों और (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों के (अति तरेम) पार पहुँचें, ऐसा यत्न करें ।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । मोक्षादि जिज्ञासाकारक पुरुषों को चाहिए कि विद्वान् पुरुषों की ऐसी प्रार्थना करें कि जिस प्रकार हम लोग उत्तम नियमों को प्राप्त होकर द्वेष आदि दुष्ट व्यसनों के पार जायें, ऐसी हम लोगों के ऊपर कृपा करिये ।

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार

लेखक—**श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती**

स्वामीजी की अँग्रेजी पुस्तक 'Founders of Sciences in Ancient India' का सारे विश्व में स्वागत हुआ है और उसके कई संस्करण हो चुके हैं। यह हिन्दी संस्करण अब पुनः छप रहा है। इसमें निम्न विषय सम्मिलित हैं :

१. **अथर्वन्** : अग्नि के पहले आविष्कारक
२. **अग्नि के** द्वारा यन्त्र साधनों का आविष्कार
३. **दीर्घतमस्** : वैदिक संवत् के आविष्कर्ता
४. **गार्ग्य** द्वारा नक्षत्रों का पहली बार संख्यान
५. **भरद्वाज** द्वारा प्रथम वनस्पति गोष्ठी का सभापतित्व
६. **आत्रेय पुनर्वसु** और उनकी चिकित्सापीठ
७. **सुश्रुत** : शल्य चिकित्सा के पिता
८. **कणाद** : यथार्थवाद, कारणवाद और परमाणु सिद्धान्त के पहले प्रतिपादक
९. **मेधातिथि** : अंकों को पहले-पहल परार्ध तक पहुँचाने वाले
१०. **आर्यभट्** द्वारा बीजगणित का शिलारोपण
११. **लगध** : ज्योतिष को युक्ति संगत करने वाले प्रथम ऋषि
१२. **लाटदेव और श्रीषेण** द्वारा भारत में ग्रीक ज्योतिष का सूत्रपात
१३. **बौधायन** : सबसे पहला महान् ज्यामितिज्ञ

यह महान् ग्रन्थ 'वेदप्रकाश साइज' में छपकर तैयार बढ़िया कागज, आफसैट की छपाई, कपड़े की पक्की जिल्द मूल्य ३२५-०० ।

षड्दर्शनम्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

इस ग्रन्थ में छहों भारतीय दर्शनों को एक ही जिल्द में मूल सूत्र तथा हिन्दी अनुवाद सहित संकलित कर दिया गया है। अन्त में सूत्रों की अकारादिक्रम से अनुक्रमणिका इसकी एक अतिरिक्त विशेषता है।

भारतीय दर्शनों की विशेषताओं में उनका व्यावहारिक पक्ष, आशावाद, नैतिक व्यवस्था में विश्वास, कर्मसिद्धान्त, तथा मोक्षमार्ग का निर्देश आदि प्रमुख विशेषताएँ हैं।

मूल्य १००-००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-११०००६

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक ११]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [जून १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

धर्म और उसका स्वरूप

लेखक---मूलचन्द गौतम
१२२२, पापोलियान, नरेला, दिल्ली

धर्म शब्द संस्कृत में 'धृ' (धृञ् धारणे) धातु में 'मन्' प्रत्यय लगाने से बनता है। अतः जिससे लोक-कल्याण हो अथवा जो लोक को धारण करे, वही धर्म है; अर्थात् धारण करना, सहायता करना वा पोषण करना आदि धर्म की परिधि में आते हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ७७ में धर्म-अधर्म के विषय में परमात्मा के उपदेश को दर्शाया है, जो निम्न प्रकार से है---

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

पदार्थ—जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक परमेश्वर (ऋतेन) यथार्थ, अपने सत्य विज्ञान से (सत्यानृते) सत्य और झूठ को (रूपे) निरूपण किये हुए हैं उनको (दृष्ट्वा) ज्ञानदृष्टि से देखकर (व्याकरोत) विविध प्रकार से उपदेश करता है, जो (अनृतं) मिथ्या भाषणादि में (अश्रद्धाम्) अप्रीति को (अदधात्) धारण कराता और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम्) प्रीति को धारण कराता और जो (अन्धसः) अधर्म-आचरण के निवर्त्तक (शुक्रम्) शुद्धि करनेहारे (विपानम्) विविध रक्षा के साधन (सत्यम्) सत्य-स्वरूप (इन्द्रियम्) चित्त को और जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त कर्म के प्रापक (इदम्) इस (पया) अमृतरूप सुखदाता (अमृतम्) मृत्युरोग-निवारक (मधु) मानने योग्य (इन्द्रियम्) विज्ञान के साधन को धारण करे, वह (प्रजापतिः) परमेश्वर सबका उपासनीय है।

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के आज्ञा किये धर्म का आचरण करते और निषेध किये हुए अधर्म का सेवन नहीं करते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं। जो ईश्वर, धर्म-अधर्म को न जनावे तो धर्म-अधर्म के स्वरूप का ज्ञान किसी को भी न हो। जो आत्मा के अनुकूल आचरण करते और प्रतिकूल आचरण को छोड़ देते हैं, वे ही धर्म-अधर्म के बोध से युक्त होते हैं, इतर जन नहीं।

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ् शुक्र-मन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥ यजु० १९/७८

पदार्थ—जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करनेवाला, जीव (ऋतेन) सत्य विज्ञानयुक्त (वेदेन) ईश्वर-प्रकाशित चारों वेदों से (सुतासुतौ) प्रेरित-अप्रेरित धर्माधर्म (रूपे) स्वरूपों को (व्यपिबत्) ग्रहण करे सो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त जीव के (अन्धसः) अन्नादि के (विपानम्) विविध पान के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम देनेहारे (सत्यम्) सत्य धर्माचरण में उत्तम (इन्द्रियम्) धन और (इदम्) जलादि (पयः) दुग्धादि (अमृतम्) मृत्युधर्म-रहित विज्ञान (मधु) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ और (इन्द्रियम्) ईश्वर के दिये हुए ज्ञान को प्राप्त होवें।

भावार्थ—वेदों के जाननेवाले ही धर्माधर्म के जानने तथा धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग से सुखी होने को समर्थ होते हैं।

तैत्तिरीयारण्यक में कहा है कि सत्य ही श्रेष्ठ और महान् है। धर्म से ही जगत् स्थिर है। धर्म से बढ़कर कठिनाई से आचरण की जानेवाली दूसरी वस्तु नहीं है। इसलिए बुद्धिमान् लोग धर्माचरण में आनन्द अनुभव करते हैं। धर्म सारे जगत् का आधार है और सब ओर से इसे थामे हुए है।

छान्दोग्य उपनिषद् में विहित कर्मों के पालन को ही धर्म कहा है। कर्तव्य को भी धर्म कहा है।

नारायणोपनिषद् में कहा है कि धर्म ही समग्र जगत् का आधार है। धर्म से पापों व दुःखों को दूर करते हैं। धर्म से ही सब प्रतिष्ठित है, अतः धर्म उत्तम और महान् है।

मानवधर्मशास्त्र (मनुस्मृति) में धर्म के सम्बन्ध में कहा है—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मना।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ —मनु० २/१२

वेद-श्रुति, स्मृति (धर्मशास्त्र), सदाचार-शील आदि और अपना सन्तोष—ये चार प्रकार से साक्षात् धर्म के लक्षण कहे जाते हैं।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥ —मनु० २/६

सम्पूर्ण वेद धर्म-मूल है और वेद के जाननेवालों की स्मृति तथा शील भी धर्म-मूल है। इस प्रकार साधुजनों का आचार और आत्मा का सन्तोष भी धर्म-मूल हैं।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥ —मनु० २/९

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥ —मनु० २/१०

वेद और स्मृतियों में कहे धर्म को जो मनुष्य करता है उसकी यहाँ (संसार में) कीर्ति होती है और परलोक में अत्युत्तम सुख की प्राप्ति होती है। श्रुति वेद है और (मन्वादिकों का) धर्मशास्त्र स्मृति है। ये दोनों सम्पूर्ण अर्थों में निर्विवाद हैं। क्योंकि इनसे धर्म का प्रकाश हुआ है।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥
—मनु० १/१०९

श्रुति (वेद) और स्मृति में कहा हुआ आचार परम धर्म है। इसलिए अपना कल्याण चाहनेवाला द्विज सदा आचारयुक्त रहे।

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते॥--मनु० २/२३७

माता-पिता और गुरु की शुश्रूषा से पुरुष के सम्पूर्ण कर्म पूरे होते हैं। अतः यही साक्षात् परम धर्म है और अन्य उपधर्म हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणन्॥
—मनु० ६/९२

धैर्य, क्षमा, मन को रोकना, चोरी न करना, शुद्ध-स्वच्छ होना, इन्द्रियों पर काबू पाना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना —ये धर्म के दश लक्षण हैं; अर्थात् जहाँ और जिस व्यक्ति, समाज व राष्ट्र में ये लक्षण पाये जाएँ वही धर्मी हैं।

विद्वानों ने इन लक्षणों की निम्न प्रकार व्याख्या की है—

(१) धृति—धैर्य से ही मनुष्य में स्थिरता आती है और वह निजपथ पर दृढ़, अडिग तथा अविचल रहता है।

जो सुख-दुःख, हानि-लाभ, यश-अपयश, जीवन-मरण में धीरज (धैर्य) को नहीं छोड़ता उसमें 'धृति' लक्षण वर्तमान जानें।

(२) क्षमा—अपमान तथा कष्ट सहनकर अपने से निर्बल को दण्ड न देना ही क्षमा है। किसी से भी की गई अपनी निन्दा तथा हानि को सहन कर लेना भी क्षमा की परिधि में ही आता है। 'क्षमा' बलवान् का भूषण और निर्बल की ढाल बन जाती है।

(३) **दम**—मन में उठे विचार ही कार्यरूप में परिणत होते हैं, अतः मन पर बुद्धि का अंकुश लगाकर मन को काबू में रखना ही 'दम' कहा गया है।

(४) **अस्तेय**--मनसा, वाचा, कर्मणा सभी प्रकार की चोरी का त्याग 'अस्तेय' कहाता है।

(५) **शौच**—अन्दर-बाहर की शुद्धता, स्वच्छता, अर्थात् मन में किसी प्रकार का मैल न होना तथा शरीर, वस्त्र एवं रहने का स्थान निर्मल, स्वच्छ और शुद्ध रचना शौच कहाता है।

(६) **इन्द्रियनिग्रह**—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और पाँचों कर्मेन्द्रियों को बुद्धिपूर्वक मन द्वारा वश में करना। इन्द्रियों का मुख बाहर की ओर है, अतः ये अपने-अपने विषय की ओर भागती हैं। इन्हें विषयों में से ज्ञानपूर्वक रोकना और इनका मुख अन्दर की ओर मोड़ लेना 'इन्द्रिय-निग्रह' कहा है।

(७) **धी**--अर्थात् 'बुद्धि' शास्त्र-ज्ञान और आत्म-ज्ञान से शुद्ध होती है। अतः सद्-ग्रंथों के स्वाध्याय और आत्मचिन्तन में ही इसे लगाना श्रेयस्कर है। निर्मल और शुद्ध बुद्धि ही यथार्थ को पहचानकर ठीक निर्णय ले सकती है। जो श्रेष्ठ गुणों को शीघ्र धारण करानेवाली वृत्ति है, उसको 'धी' कहा गया है।

(८) **विद्या**—यह शब्द 'विद् ज्ञाने' धातु से बना है—'वेत्ति यथावत् तत्त्वपदार्थ-स्वरूपं यया सा विद्या', जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे, अर्थात् किसी भी पदार्थ की सम्पूर्ण जानकारी जिसके द्वारा की जाती है उसे विद्या कहा है।

ज्ञेय पदार्थ (जानने योग्य पदार्थ) तीन ही हैं-- प्रकृति, आत्मा और परमात्मा। अतः जिससे इनके रहस्यों का साक्षात्कार किया जावे वह विद्या है। भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का अर्जन भी विद्या है।

(९) **सत्य**--सत्य सदा एकरस रहता है। इसमें परिवर्तन नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ, वस्तु तथा विषय को यथार्थरूप से जानना-मानना और कहना 'सत्य' कहाता है।

(१०) **अक्रोध**—क्रोध न करना। साधारणतया क्रोध अपने से कमज़ोर पर ही आता है। बलवान् पर क्रोध आये भी तो प्रकट नहीं होता। क्रोध के आने पर बुद्धि के तन्तु जलने लगते हैं अर्थात् बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि बिगड़ने पर मनुष्य नाश को प्राप्त हो जाता है। कहा है--

क्रोधो नाशयते धैर्यं, क्रोधो नाशयते श्रुतम्।
क्रोधो नाशयते सर्वं, नास्ति क्रोधसमं रिपुः॥

अर्थात् क्रोध से धैर्य नष्ट हो जाता है, स्मृति विभ्रम हो जाती है। क्रोध

सर्वनाश कर देता है। इसके समान कोई शत्रु नहीं है।

मन्यु और क्रोध में अन्तर है। क्रोध स्वार्थ के लिए उपजता है, मन्यु परार्थ के लिए मनुष्य को उभारता है।

इन लक्षणों के धारण करने से किसी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, मत एवं सम्प्रदाय को हानि का भय नहीं हो सकता।

इन लक्षणों को हर कोई धारण कर सकता है। स्वतः सिद्ध है कि धर्म वही है जिसे सब धारण कर सकें और जो लोक-परलोक को सँवारनेवाला हो।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥ —मनु० ४/१३८

सच बोले, प्रिय बोले और जो प्रिय न हो ऐसा न बोले (मौन रहे); असत्य प्रिय भी न बोले, यह सनातन धर्म है।

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह॥ --मनु० ४/१३९

'भद्र ! भद्र !' (अच्छा, बहुत अच्छा) कहे या केवल 'अच्छा' ही कहे। किन्तु निष्प्रयोजन वैर वा झगड़ा किसी से न करे।

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥ --मनु० १२/८८

सुख का अभ्युदय करनेवाला और मोक्ष का देनेवाला एक प्रवृत्त, दूसरा निवृत्त, यह दो प्रकार का क्रम से वैदिक कर्म है। स्पष्ट है कि भौतिक तथा आध्यात्मिक सुख का साधन वेद-ज्ञान ही है।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥—मनु० १२/१०६

ऋषियों के कहे हुए उपदेशरूप धर्म को वेदशास्त्र के अविरोधी तर्क से जो खोज करता है, वही धर्म को जानता है, अन्य नहीं।

वेद ही ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें मनुष्यमात्र के लिए उपदेश और शिक्षाएँ हैं। ये किसी एक व्यक्ति, स्थान, समाज और राष्ट्र के न होकर विश्व में रहनेवाले मनुष्य-मात्र के लिए हैं।

इसके अनुसार संसार में वही धर्म सत्य और मान्य होना चाहिए जो श्रुति-(वेद)- सम्मत और तर्क-सम्मत हो।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मोहतोऽवधीत्॥ —मनु० ८/१५

नष्ट हुआ धर्म ही नाश करता है और रक्षित हुआ धर्म ही रक्षा करता है। इसलिए धर्म को नष्ट न करना चाहिए जिससे नष्ट हुआ धर्म हमारा नाश न करे। इस भय से धर्म का हनन अर्थात् त्याग कभी न करना चाहिए।

ना धर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति।।

—मनु० ४/१७२

लोक में अधर्म किया हुआ उसी समय नहीं फलता, जैसे पृथिवी वा गौ (उसी समय फल नहीं देती), परन्तु धीरे-धीरे फैलता हुआ अधर्म करनेवालों की जड़ें काट देता है।

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु।
न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः।। —मनु० ४/१७३

किया हुआ अधर्म करनेवाले को निष्फल नहीं होता, किन्तु यदि तत्काल देह-धनादि का नाश नहीं भी करे तो उसके पुत्र में सफल होता है। यदि पुत्र में नहीं तो पौत्र में सफल होता है।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति।। —मनु० ४/१७४

व्यक्ति अधर्म से पहले तो बढ़ता है, फिर कल्याणों को देखता है(अर्थात् नौकर-चाकर, गाय-घोड़ा इत्यादि से सुख भी पाता है) और शत्रुओं को भी जीतता है, रन्तु फिर (पाप-परिपाक-समय) मूलसहित नष्ट हो जाता है।

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च।।

—मनु० ४/१७६

धर्मरहित जो अर्थ और काम हैं, उनको त्याग दे (जैसे चोरी से द्रव्योपार्जन और परस्त्री-गमन); उत्तर-काल में दुःख का देनेवाला और जिसमें लोगों को क्लेश हो, ऐसा धर्म भी न करे (जैसे पुत्र-पौत्र के रहते हुए सर्वस्व-दान और पुण्य कर्म की सहायतार्थ भी किसी को अत्यन्त सताना)।

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।। —मनु० ८/१४

जिस सभा में सभ्यों के देखते हुए अधर्म से धर्म और झूठ से सच नष्ट होता है, वहाँ के सभासद् (उस पाप से) नष्ट होते हैं।

माननीय श्री पं० चिरंजीलाल ने अपनी एक पुस्तक में 'षड्दर्शनों में धर्म' के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से बताया है—

१. न्यायदर्शन में धर्म को आत्मा का एक गुणविशेष माना गया है। यह विहित कर्म से अथवा शुभ प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है।
२. वैशेषिक दर्शन में "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः" कहा गया है, अर्थात् जिस कर्म से मनुष्य इस लोक में अभ्युदय प्राप्त कर अन्त में निःश्रेयस् प्राप्त कर लेता है वह धर्म है।

३. सांख्यदर्शन में सत्कर्म-जन्य अन्तःकरण की वृत्ति को धर्म माना गया है।
जिस शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक कर्म के द्वारा अन्तःकरण में विवेक और वैराग्य पर आधारित शक्ति का उदय हो, उसे धर्म कहा है।

४. योगदर्शन में वृत्ति को दुःखानुभूति से बचाकर समाधि के उपयुक्त बनाने और व्यक्ति को विरोधोन्मुख कर अपने स्वरूप में स्थित करने का जो चिन्तन एवं आचरण है, वह धर्म है। इस दर्शन के मत में विरोधानुकूल अनुष्ठेय कर्म ही धर्म है।

५. पूर्वमीमांसा दर्शन में धर्म उसे कहा गया है जिसे वेद ने हमारे कल्याण के साधन के रूप में वर्णन किया है।

६. उत्तरमीमांसा (वेदान्त) दर्शन में अन्तःकरण की शुद्धि के शोधनार्थ ईश्वर-चिन्तन और इसके अनुरूप कार्य को धर्म कहा है। इसके अनुसार महर्षि व्यास लोक-हितकारी कर्म को सबसे बड़ा धार्मिक कार्य मानते हैं।

'महाभारत' में धर्म के सम्बन्ध में धर्मराज युधिष्ठिर और श्री भीष्म पितामह के बीच हुआ निम्नांकित संवाद धर्म को समझने में विशेष रूप से सहायक है—

युधिष्ठिर— **इमे वै मानवा सर्वे धर्मं प्रति विशंकिताः।**
कोऽयं धर्मः कुतो धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

पितामह ! ये सभी मनुष्य प्रायः धर्म के विषय में संशयशील हैं। अतः मैं जानना चाहता हूँ कि धर्म क्या है ? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई, यह मुझे बताएं।

धर्मस्त्वयमिहार्थः किमुतोर्थोऽपि वा भवेत्।
उभयार्थो हि वा धर्मस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥

पितामह ! इस लोक में सुख पाने के लिए जो कर्म किया जाता है, वही धर्म है या परलोक के लिए जो कुछ किया जाता है उसे धर्म कहते हैं ? अथवा, लोक-परलोक दोनों के सुधार के लिए कुछ किया जानेवाला कर्म ही धर्म कहलाता है ? यह मुझे बताएँ।

श्री भीष्मोवाच—**सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधौ धर्मलक्षणम्।**
चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ॥३॥

हे युधिष्ठिर! वे वेद, स्मृति और सदाचार—ये तीन धर्म के स्वरूप को लक्षित करनेवाले हैं। कुछ विद्वान् अर्थ को भी चौथा लक्षण बताते हैं।

अपिहमुक्तानि धर्म्याणि व्यवस्थन्त्युत्तरावहे।
लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमाः कृतः ॥४॥

शास्त्रों में जो धर्मानुकूल कार्य बताये गये हैं उन्हें ही प्रधान एवं अप्रधान रूप से सभी लोग निश्चित धर्म मानते हैं। लोक-यात्रा का निर्वाह करने के लिए ही कवियों ने यहाँ धर्म की मर्यादा स्थापित की है।

उभयत्र सुखोदर्क इह चैव परत्र च।
अलब्ध्वा निपुणांधर्म पापः पापेन युज्यते ।।५।।

धर्म का पालन करने से आगे चलकर इस लोक में, और परलोक में भी सुख मिलता है। पापी मनुष्य विचारपूर्वक धर्म का आश्रय न लेने से पाप में प्रवृत्त होकर उसके दुःखरूप फल का भागी होता है।

'महाभारत' एक महाकाव्य-ग्रन्थ है, उसमें धर्म के सम्बन्ध में जहाँ-तहाँ बहुत-कुछ बताया गया है। कुछ उद्धरण नीचे प्रस्तुत हैं --

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यतः स्याद्धारणासंयुक्तः स धर्म इति निश्चय ।।

धारण करने से इसे लोग धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारणा के साथ रहता है, वह धर्म है, यह निश्चय है।

धर्म का अर्थ निरुक्त ने 'नियम' बताया है। मनु ने तो कह ही दिया कि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनु० २/६) अर्थात् वेद ही धर्म का सम्पूर्ण ज्ञान-कारण है।

धर्म एक अत्यन्त व्यापक अर्थोंवाला शब्द है जिसके अन्दर सभी उच्च गुणों का समावेश हो सकता है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् का कल्याण करनेवाला और उन्हें उन्नति तथा शान्ति-मार्ग पर ले-जानेवाला प्रत्येक कर्म 'धर्म' है।

'महाभारत' में ही एक और स्थान पर कहा है—

'ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः'

लोक का जिसके द्वारा रक्षण हो या धारण किया जावे, उसे धर्म कहते हैं।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।
तस्माद् धर्मप्रधानेन भवितव्यं यतात्मता।
तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मने ।।

—म० भा० शान्ति पर्व

जो अपने को अच्छा न लगे वह दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिये। यह धर्म का सर्वस्व है। इसे सुनो और धारण करो!

अहिंसा परमो धर्मः ।। —म० भा० अनुशासन पर्व

मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न देना परम धर्म है।

नास्ति सत्यात्परो धर्मः, नाऽनृतात्पातकं परम् ।।

—म० भा० वन पर्व

सत्य से बड़ा धर्म और झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है।

न जातु कामान्नभयान्न लोभाद्धर्मंस्त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखेष्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्यत्वनित्यः ।।

—म० भारत

मनुष्यों को योग्य है कि काम से अर्थात् झूठ से कामना सिद्ध होने के कारण से वा निन्दा-स्तुति आदि के भय से भी धर्म का त्याग कभी न करे और न लोभ से; चाहे झूठ-अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता हो, तथापि धर्म को छोड़कर चक्रवर्ती राज्य भी ग्रहण न करे। भोजन-छादन, जलपानादि की जीविका भी अधर्म से हो सके, वा प्राण जाते हों, परन्तु जीविका के लिए भी धर्म को कभी न छोड़े, क्योंकि जीव और धर्म नित्य हैं तथा सुख-दुःख दोनों अनित्य हैं। अनित्य के लिए नित्य का छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म है। इस धर्म का हेतु कि जिस शरीरादि से धर्म होता है, वह भी अनित्य है। धन्य वे मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख-दुःखादि के व्यवहार में वर्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी नहीं करते।

श्रीमद्भगवद्गीता (जो वास्तव में महाभारत-ग्रन्थ का ही एक खण्ड है) में कहा है—**'यतो धर्मस्ततो जयः'** अर्थात् जहाँ धर्म है वहीं जय है।

श्रीमद्भागवत(६-१-४४)में कहा है 'वेदप्रतिपादितो धर्मोऽधर्मस्तद् विपर्य्ययः' अर्थात् जो वेद-प्रतिपादित कर्म है वही धर्म है; उसके विरुद्ध कर्म अधर्म है।

आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष पहले जब समाज और राष्ट्र में धर्म के प्रति अपेक्षावृत्ति हुई थी, तब महाराज व्यास मुनि ने बड़े दुःख के साथ कहा था—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित् शृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्म किन्न सेव्यते॥

—म० भारत

मैं दोनों भुजाएँ उठाकर कह रहा हूँ, पर धर्म को आचरण में लाने के लिए कोई नहीं सुनता।

इतिहास साक्षी है। उस समय कर्म पर न चलने से महाभारत का दुःखद युद्ध हुआ, जिसके कारण भारत आज तक भी त्रस्त है। वैसा ही समय अब वर्तमान है। युद्ध के बादल चारों ओर छाए हुए हैं। विनाशकारी शस्त्रास्त्रों का ढेर एकत्र हो रहा है। पता नहीं कब और कहाँ से अचानक युद्ध भड़क उठे! यूँ दिखावे के लिए दो महाशक्तियों में समझौते भी हुए हैं; ईरान और इराक की युद्ध-समाप्ति की वार्ता भी अधूरी ही रह गई है। भावी युद्ध महाभारत के युद्ध से भी अधिक भयावह और विनाशकारी होगा। जापान पर जो परमाणु बम दूसरे युद्ध में गिराए गए थे, आज उनसे भी अधिक शक्तिशाली बमों के भण्डार तैयार पड़े हैं। न जाने कितने देश तबाह और बर्बाद हो जाएँगे, कितनों का निशान तक मिट सकता है। जीतनेवाले को भी सम्भवतः, कलिंग-युद्ध की समाप्ति पर महाराज अशोक की भाँति पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगेगा।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति जन्तवः।
न पापफलमिच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

—मुनि वेदव्यास

लोग पुण्य का फल तो चाहते हैं, पर पुण्य कर्म (कार्य) नहीं करते। पाप का फल तो नहीं चाहते, परन्तु पाप जान-बूझकर करते हैं।

काश कि आज वर्तमान काल में रहनेवाले महाराज श्री भर्तृहरि के उपदेश को ग्रहण कर उसके अनुसार दृढ़ता से चलें और विश्व का भला कर अमर हो जावें। उन्होंने कहा है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

—भर्तृहरि नीतिशतक, ७९

अर्थात् सब मनुष्यों को यह निश्चय जानना चाहिये कि चाहे सांसारिक अपने प्रयोजन की नीति में वर्तनेहारे चतुर पुरुष निन्दा करें या स्तुति करें, लक्ष्मी प्राप्त होवे अथवा नष्ट हो जावे, आज ही मरण होवे अथवा वर्षान्तर में मृत्यु प्राप्त होवे, तथापि जो मनुष्य धर्मयुक्त मार्ग से एक पग भी विरुद्ध नहीं चलते वे ही धीर पुरुष धन्य हैं।

आज के वर्तमान काल में कौन हैं जो न्याय देते हैं और लेते हैं? कौन वे धीर हैं जो डगमगाते नहीं? अपनी रक्षार्थ सामान तो जुटा लेते हैं, पर जन-साधारण का किसे खयाल (चिन्ता) है? कितने लोग ईमानदार, संयमी और देशभक्त हैं? नेता लोग सत्ता चाहते हैं, उन्हें उसके अतिरिक्त कुछ सूझता नहीं। अधिकारी तथा कर्मचारी केवल वेतन-भोगी होकर रह गये हैं। कितनों को है अपने कर्त्तव्य का बोध? राष्ट्र केवल भूमि का ही तो नाम नहीं है। उस भूमि में बसनेवाले ही तो राष्ट्र बनाते हैं! कौन है जो इन राष्ट्रवासियों को देश-अभिमानी, देशभक्त, सबको सुखी करने और देखनेवाला बनावे? कहाँ से लायें ऐसे उदाहरण, जिनको लेकर देशवासी परस्पर सहयोग से उन्नत हों? कहाँ हैं वे पहले-से आन, मान, मर्य्यादा और स्वाभिमान के पुजारी? समय बीत रहा है, यदि न चेते तो सर्वनाश सामने ही बाट जोह रहा है।

किसी कवि का वचन है—'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा' अर्थात् जगत् की प्रतिष्ठा धर्म है। सद्गुणी और त्यागमय जीवनवाले तपस्वी पुरुष कितने हैं आज देश में? क्या कर रहे हैं महात्मा गांधी के नाम पर जीनेवाले? क्या गांधी जी के मार्ग पर वे चल रहे हैं? क्या उनमें महात्मा गांधी जैसा आत्म-विश्वास और चरित्र है? यदि नहीं, तो उन्हें उस महात्मा के नाम पर जनता से कुछ भी माँगने में शर्म क्यों नहीं आती? स्वराज्य तो हाथ आ गया, पर सुराज्य कब होगा? कौन है प्रतिदिन के कत्लों का ज़िम्मेदार? क्यों हैं लोग गरीब और दुःखी? कहाँ चला गया है न्याय? जो सत्ता में हैं और सत्ता हथियाना चाहते हैं, क्या उनमें प्रजा की रक्षा

करने का साहस है ? क्या ऐसे नेताओं को देश की बागडोर सँभालने का नैतिक अधिकार है ? राजनैतिक दल तो सभी एक-जैसे हैं ; इन्हें तो हम सब आज़मा चुके हैं। मेरी पुकार है बुद्धिजीवियों से, देश के नवयुवकों से कि वे आगे आयें। बुद्धिजीवी देश को रास्ता दिखायें। नवयुवक साहस और उत्साह से आगे बढ़ें। बड़े-बूढ़े, जिनमें बुद्धि-कौशल है, जो झंझावातों से खेल चुके हैं, मार्गदर्शन करायें। देश इस समय विलासता नहीं, त्याग और बलिदान माँगता है।

ऐ भारत की उठती जवानियो ! क्या तुम्हारी रगों में रक्त का प्रवाह थम गया है ? यदि नहीं तो उठो ! जागो ! सबको जगाते चलो और विलासता के ढेरों को रौंदते हुए आगे बढ़ो ! भारत माँ की लाज तुम्हारे हाथ है। याद रक्खो, यदि हम चरित्रवान् न होंगे तो सफलता नहीं मिलेगी।

भारत की संस्कृति और सभ्यता के रखवालो ! वेद-शास्त्र जो उपदेश देते हैं वे किसी विशेष व्यक्ति, समाज, राष्ट्र वा वर्ग के लिए न होकर सार्वजनिक और सार्वभौमिक हैं, सर्वहितकारी हैं। विश्व के मानवमात्र ही नहीं, प्राणिमात्र के लिए हैं. इसीलिये आप्त पुरुषों ने वेद-प्रतिपादित कर्म को धर्म कहा है।

धर्म सदा और समस्त भगवत्-सृष्टि के लिए एक ही होता है। धर्म कोई भेद, कोई विषमता, कोई विभाजन और अलगाव की अनुमति नहीं देता। वह अद्वितीय और सनातन है।

आहारनिद्राभयमैथुनानि,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनः पशुभिः समानाः॥

सुनो ऐ संसार के लोगो ! कान खोलकर सुनो ! खाना-पीना, सोना-जागना, डरना और सन्तति पैदा करना, ये सब बातें तो पशुओं और मनुष्यों में एक-जैसी हैं। कौन-सी वस्तु है जो मनुष्य को पशु से अलग कर उसे ऊँचा उठाती है ?—वह है धर्म। उसे ग्रहण कर मनुष्य-जीवन सफल क्यों नहीं करते ?

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती एक युगद्रष्टा महापुरुष थे। सत्य उनका अस्त्र था। देश को चरित्रवान् बनाने की, सबमें समता लाने की उन्होंने बड़ी कोशिश की। बड़ा यत्न किया। लोगों के भले में पन्द्रह बार उन्हें ज़हर पीना पड़ा, फिर भी वह अपने मार्ग पर अडिग रहे और अलौकिक प्रकाश दिखा गये। यह हमारा काम है कि उस प्रकाश का लाभ उठावें वा नहीं। लाभ उठाकर मार्ग खोजना और निश्चय करके उसपर आरूढ़ होकर गमन करना ही श्रेयस्कर है। महात्मा गांधी कहते रहे कि वे ऋषि दयानन्द के ब्रह्मचर्य पर ईर्ष्या करते थे। चरित्रवान् तो बनेंगे ही ब्रह्मचर्य से। विलासी, प्रमादी, झूठे और बेईमान ही तो चरित्रहीन हैं। खोजिये तो सही, इसका उत्तरदायित्व किसपर है ? क्या खोजने पर

आप इसके लिए कुछ करेंगे भी? शिश्नोदरलोलुप व्यक्तियों ने आज देश को रसातल में पहुँचा दिया है। आओ, स्वामी दयानन्द सरस्वती को आदर्श मानके उनके ग्रन्थों से धर्म के विषय में कुछ चर्चा कर लें तो भला ही होगा।

'संस्कारविधि' के गृहस्थाश्रम प्रकरण में धर्म की विवेचना करते हुए महर्षि लिखते हैं—

"धर्मनाम न्यायाचरण। न्याय नाम पक्षपात छोड़के वर्तना। पक्षपात छोड़ना नाम सर्वदा अहिंसादि निर्वैरता सत्यभाषणादि में स्थिर रहकर, हिंसा-द्वेषादि और मिथ्याभाषणादि से सदा पृथक् रहना। सब मनुष्यों का यही एक धर्म है। किन्तु जो-जो धर्म के लक्षण वर्ण-कर्मों में पृथक्-पृथक् आते हैं, इसी से चार वर्ण पृथक्-पृथक् गिने जाते हैं।

'आर्योद्देश्यरत्नमाला' में महर्षि धर्म की व्याख्या करते हैं कि जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपातरहित न्याय सर्वहित करना है। जोकि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिए यही एक धर्म मानना योग्य है, उसको 'धर्म' कहते हैं।

इसी पुस्तक में अधर्म के विषय में महर्षि लिखते हैं—जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपातसहित अन्यायी होके विना परीक्षा करे अपना ही हित करता है। जिसमें अविद्या, हठ, अभिमान, क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेदविद्या के विरुद्ध है। इसलिए यह अधर्म सब मनुष्यों के छोड़ने योग्य है, इससे यह अधर्म कहाता है।

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वभूत्यान्यपीडयन् ॥— मनु० ४/२३८

परलोक के हित के लिए सम्पूर्ण जीवों को पीड़ा न देता हुआ धीरे-धीरे धर्म को सञ्चित करे, जैसे दीमक बम्बी को बनाती है।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥

—मनु० ४/२३९-४०

परलोक में सहायता के लिए माँ-बाप नहीं रहते, न पुत्र, न स्त्री, केवल एक धर्म रहता है॥ अकेला ही जीव उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है। अकेला ही सुकृत को और अकेला ही दुष्कृत को भोगता है॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥

तस्मद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ।।

—मनु० ४/२४१-२४२

लकड़ी और मिट्टी के ढेले की तरह मृतक शरीर को भूमि पर छोड़कर बान्धव पीछे लौट जाते हैं (उस मरे के पीछे कोई नहीं जाता।)। धर्म उसके पीछे जाता है ।। इस कारण धर्म को सहायता के लिए सर्वदा धीरे-धीरे सञ्चित करे, क्योंकि धर्म ही की सहायता से अति कठिन दुःख से तरता है ।।

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं स्वशरीरिणम् ।।

—मनु० ४/२४३

जो पुरुष धर्म ही को प्रधान समझता है, जिसका धर्म के अनुष्ठान से पाप दूर हो गया है, उसको प्रकाशस्वरूप और आकाश जिसका शरीरवत् है उस परलोक अर्थात् परम दर्शनीय परमात्मा को धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है।

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ।।

—मनु० ४/२४६

सदा दृढ़कारी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय तथा हिंसक, क्रूर, दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहनेहारा, धर्मातमा, मन को जीत विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे।

वाच्यर्थानियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ।।

—मनु० ४/२५६

यह भी ध्यान में रखे कि जिस वाणी में अर्थ अर्थात् व्यवहार निश्चित होते हैं, वह वाणी ही उनका मूल और वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं। उस वाणी को जो चुराता है अर्थात् मिथ्या भाषण करता है, वह सब चोरी आदि पापों के करनेवाला है।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।१।।
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ।।२।।

—मनु० ४/१५६-१५७

आचार से आयु, (इष्ट पुत्र-पौत्रादि) सन्तति तथा अक्षय धन प्राप्त होता है और आचार अशुभ लक्षण को नष्ट करता है ।।१।। दुष्टाचरण करनेवाला पुरुष लोक में निन्दित, दुःख का भागी, निरन्तर रोगी रहता तथा थोड़ी आयु प्राप्त करता है ।।२।।

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥

—म० भा० उद्योग पर्व

यह समझ लिया जावे कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है और महाजन अर्थात् सब कुटुम्ब उसको भोगता है। भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते, किन्तु कर्ता ही अधर्म के दोष का भागी होता है।

योगी अरविन्द घोष का मत है कि अध्यात्म-युक्त धर्म ही भविष्य की आशा है। ऋषियों, मुनियों, महात्माओं और विद्वानों ने धर्म के दो भेद किये हैं—

(क) सामान्य धर्म, सभी मनुष्यों में एक-जैसा, (ख) विशिष्ट धर्म, वर्णाश्रम धर्म।

कुछ सत्पुरुष धर्म के चार चरण मानते हैं—

(क) **सत्य**—जो वस्तु जैसी हो उसको वैसा जानना, मानना तथा कहना। सत्य सदा एकरस है।

(ख) **दया**—दीन, हीन, दुःखी और ज़रूरतमन्दों (दीन-हीनों) की समय और अवस्थानुसार सहायता करना।

(ग) **तप**—भूख-प्यास, मान-अपमान तथा दुःख-सुख में एक-सा निर्विकार रहना।

(घ) **दान**—पात्र को समयानुसार यथोचित धन-धान्यादि देना।

एक अंग्रेज़ विद्वान् का कथन है—'Dharma is the law governing the universal evolution' अर्थात् धर्म वह नियम है जिसके द्वारा संसार का शासन हो रहा है। धर्म सृष्टि-नियम है।

प्लेटो महोदय के विचार से मनुष्य चाहे किसी भी अवस्था में हो, चाहे वह सफल हो अथवा असफल, चाहे उसे विजय मिले चाहे पराजय, उसको अपना कर्त्तव्य (धर्म) पालन करना ही चाहिये और शान्त रहना चाहिये।

एक और विद्वान् तथा चिन्तक ने धर्म के चार अंग निम्न प्रकार से बताये हैं—

(क) **समानता का भाव** (Equility)
(ख) **विश्वव्यापी भ्रातृभाव** (Universal Brotherhood)
(ग) **सर्वांग उन्नति के साधन** (Harmonious Developments)
(घ) **वैज्ञानिक आधार** (Scientific Basis)

नीतिकारों ने धर्म के आठ अंग (कार्य) बताए हैं—

(१) **अग्निहोत्र** (देवयज्ञ)।
(२) **अध्ययन**—(स्वाध्याय)।
(३) **दान**—शुभ कर्मों में, अथवा सुपात्र को सहायता देना।
(४) **तप**—मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, दुःख-सुख में एक-रस रहना।

(५) **सत्य**—प्रत्येक वस्तु को यथार्थ/यथास्वरूप जानना, मानना और कहना।

(६) **धृति**—धैर्य धारण करना।

(७) **क्षमा**—दूसरों द्वारा अपनी बुराई, हानि, अपमान और दुःख को सहना।

(८) **निर्लोभ**—किसी भी प्रकार का लालच न करना।

इनमें से पहले चार का तो दम्भी भी धोखा देने के लिए ढोंग रच लेते हैं, परन्तु पिछले चार का पालन तो केवल महात्मा ही कर सकते हैं।

'धर्म' शब्द मत (मज़हब), सम्प्रदाय (फ़िरक़ा, टोला) का पर्यायवाची नहीं है। मत/सम्प्रदाय किसी (अन्ध) विश्वास पर आधारित होते हैं। उनपर न तो तर्क किया जा सकता है और न उनमें अक्ल का दखल है। जैसा है वैसा ही मानने को बाध्य किया जाता है। वास्तविक धर्म को तर्क से (अक्ल से) परखा जा सकता है। जहाँ धर्मात्मा धर्म की पालना में किसी का अहित नहीं करता, वहाँ मतों और सम्प्रदाय के माननेवालों ने माँ धरती को रक्तरञ्जित किया है और कर रहे हैं। धर्म में जहाँ सारे विश्व का कल्याण निहित है, वहाँ मत और सम्प्रदायों में केवल अपना स्वार्थ सर्वोपरि है। जब मत तथा सम्प्रदाय का गठजोड़ राजनीति से हो जाता है तो ये अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए सभी मर्यादाएँ तोड़ने में भी नहीं हिचकिचाते, एवं बलात् अपनी बात मनवाने पर दबाव देते रहते हैं। बुद्धि और तर्क का ये लोग न सहारा लेते हैं और न लेने देते हैं। हिंसा पर उतर आना इनके लिए एक बहुत ही साधारण-सी बात है। इनका आधार ही मूलतः अन्धविश्वास है। धर्म में अन्धविश्वास नहीं है, सूझबूझ एवं विचारशीलता है। जहाँ मत और सम्प्रदाय सब भिन्न-भिन्न हैं और सबके विश्वास भी लगभग भिन्न-भिन्न हैं, वहाँ धर्म सदा एकरस और शुभकारक है। मतवादी तथा सम्प्रदायवादी में हठ और दुराग्रह पाया जाता है। सहनशीलता का नितान्त अभाव है। इसी कारण नित-नए संकट खड़े किये रहते हैं।

टीका लगाना, माला पहनना व फेरना, जाप करना, व्रत, उपवास एवं मूर्ति-पूजा, कब्र-(मज़ार)परस्ती तथा दिखावे के परमेश्वर की भक्ति के तरीके 'धर्म' नहीं हैं, न ही ये धर्म के चिह्न हैं।

धर्म मानवतावादी है। मत और सम्प्रदाय मानवता से कोसों दूर हैं। यहाँ तक देखा गया है कि अपनी मान्यताओं को भी ये भाव-विह्वल होकर कई बार ही नहीं, प्रतिदिन लाँघते देखे जाते हैं। 'वहदत' (एक परमात्मा को मानना) का नाम लेने-वाले भी जबतक मत/सम्प्रदाय आरम्भ करनेवाले को भी परमात्मा की भाँति न मानें, वे अपने मत या सम्प्रदाय में टिक नहीं सकते। कई बार तो इनको परमात्मा से भी ऊँचा दिखाने का प्रयत्न किया जाता है।

संसार में धर्म का विरोधी अधर्म ही है। धर्म स्थापित न होने पर अधर्म ही तो व्यापता है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ भी धर्म से वञ्चित होना ही है। जहाँ धर्म नहीं, वहाँ विनाश को कौन रोक सकता है ! देश में जो भी अनाचार, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, असत्य व्यवहार, बलात्कार, हिंसा तथा देशद्रोह हो रहे हैं, वे सब धर्म के न होने से ही पनप रहे हैं। आवश्यकता है एक प्रबल आन्दोलन की जिससे कि 'धर्म-निरपेक्षता' के निरर्थक घोष को देशनिकाला दिया जा सके। व्यक्ति हो या राष्ट्र, धर्मनिरपेक्ष हो ही नही सकता। संविधान में भी 'धर्म' शब्द के स्थान पर मत तथा सम्प्रदाय शब्द होने चाहिएँ।

विकसित कहे जानेवाले देशों के नेता तथा बुद्धिजीवी भ्रष्टाचार, बलात्कार, अनाचार एवं भद्दी नग्नता से क्षुब्ध हैं। उन्हें कोई मार्ग नहीं सूझ रहा जिससे देश को गिरावट से बचाया जा सके। खेद तो इस बात पर है कि जिन खुराफ़ातों से विकसित देश परेशान हैं, हमारे नेता गण उन्हीं खुराफ़ातों को सहर्ष बिना कुछ सोचे-समझे न केवल अपनाते जा रहे हैं, वरन् इस भारत देश पर बलात् थोप भी रहे हैं।

धर्म के बिना चरित्र में स्थायित्व नहीं आ पाता। आवश्यकता है विश्व के समझदारों(बुद्धिजीवी लोगों)की, जो विश्व को सुखी, समृद्ध एवं शान्त देखना चाहते हैं। मिलकर बैठें, सोचें-विचारें और मानव को यथार्थ में मानव बनानेवाले धर्म को स्वयं ग्रहण करें तथा उसके प्रचार-प्रसार के लिए एक प्रबल आन्दोलन करें। केवल धर्म ही संसार से पीड़ा, न्यूनता, दरिद्रता, शोषण, अभाव और अशान्ति को मिटा सकता है। भारत आरम्भ से ही विश्व में चरित्र-निर्माण के लिए गुरु रहा है। आओ, धर्म को फैलाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जागृत करें। इस धर्म की पावनी पताका को लेकर संसार को सन्मार्ग दिखावें और मनु के निम्न शब्दों को सार्थक करें—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ — मनु २/२०

इस देश के नागरिक अपने-अपने चरित्र से सारी पृथिवी के लोगों को चरित्र की शिक्षा देते रहें।

अन्धविश्वास के सम्बन्ध में कुछ बातें तो सूर्य की भाँति स्पष्ट ही हैं। हम यह जानते हैं कि धार्मिक पुस्तकें, वेद, शास्त्र, कुरान शरीफ़, इञ्जील (बाइबल), गुरुग्रन्थ आदि हमारे बनाये काग़ज़ों पर हमारी बनाई स्याही से हमारे द्वारा बनाई गई मशीनों द्वारा हमारे ही विचार के आकार और प्रकार में छापे जाते हैं। जिल्दें भी उनपर हमारे हाथों से बाँधी जाती हैं। एक प्रकार से उनका प्रादुर्भाव हमारे हाथों से ही है। छपने और जिल्द बँधने पर यह ग्रन्थ बिक्री के लिए बाज़ारों में दुकानों की अलमारियों में रख दिये जाते हैं। क्या कभी प्रभु की वाणी, ऋषि-

मुनियों के विचार, गुरुओं और पैग़म्बरों पर उतरी भगवान् की शिक्षा बिक्री के लिए हो सकती है ? क्या इस प्रकार से हम परमात्मा, ख़ुदा, पैग़म्बरों और वाहेगुरु को यथार्थ में पूज्य मानते हैं ? क्या इन छपती पुस्तकों अथवा पुस्तकों पर जिल्द बँधते समय एवं अलमारियों में बन्द करने के पश्चात् कभी कहीं इनके समक्ष धूपबत्ती, फूलादि चढ़ते वा चढ़े हुए देखे है ? हाँ, जब पुस्तक घर पर ले आते हैं तो फिर पूरा ढोंग रचाते हैं--दीप जलाते हैं, फूल चढ़ाते हैं, चँवर भी डुलाते हैं। पुस्तक एक निर्जीव वस्तु है और वह भी अनित्य। उसकी पूजा है केवल उसका रख-रखाव, ताकि जो उसमें छपा है उसका अधिक-से-अधिक समय तक लाभ उठाया जावे। शब्द कभी नष्ट नहीं होता। परन्तु जब भी कहीं पर किसी भी धार्मिक पुस्तक का कोई पृष्ठ (पन्ना) कहीं ऊटपटाँग स्थान अथवा गन्दी जगह पर पड़ा मिल जाता है और उस पुस्तक को माननेवाला श्रद्धालु उसको देखता है, तो आग-बबूला हो जाता है, लड़ने-मरने को तैयार हो जाता है। इसी छोटी-सी बात पर आपसी झगड़े खड़े हो जाते हैं। हम सबको परमात्मा ने ही तो बुद्धि दी है। उसका भी तो उपयोग करें और इन व्यर्थ के झगड़ों तथा रक्तपात से बचें तथा बचावें। हम इन धार्मिक पुस्तकों में बताये-अनुसार आचरण तो बहुत कम करते हैं, पर उसकी पूजा में कोई कसर-कोर बाकी नहीं रहने देते। आदर के पात्र हैं वे महान् पुरुष जिन्होंने इनके द्वारा हमारा मार्गप्रदर्शन किया। पुस्तक तो दोबारा मिल सकती है, पर जो इनके प्रणेता संसार से विदा ले चुके हैं वे कभी उसी आकृति में लौट नहीं सकते। स्मरणीय बात यह है कि उनकी वाणी और शिक्षाओं को जो जीवन को सफल बनानेवाली हैं, हम धारण करें। पुस्तकों को उनके प्रणेताओं से अधिक मानना उन महान् आत्माओं (प्रणेताओं) की उपेक्षा और अवमानना ही होगी। धर्म अशान्ति नहीं फैलाता; हिंसा और देशद्रोह को बढ़ावा तो क्या, उनका उठना भी सहन नहीं कर सकता। ऐसी ही दशा हमारी मूर्ति पूजने में भी है। आज तक किसी भी मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा की रस्म होने पर भी उसमें कोई प्राण नहीं जागे, न ही कोई हलचल उसमें हुई है। वैसे भी साकार एकदेशी है, जबकि निराकार सर्वव्यापक। परमात्मा हम सबको सद्बुद्धि दें, ताकि हम धर्म की वास्तविकता तथा आवश्यकता को समझें और उसे धारण कर धरणी के सपूत बनें, आपस में सौहार्द बढ़े, परस्पर सहायता से उन्नति करें तथा समृद्धि को प्राप्त हों। अपने में दूसरों की और दूसरों को अपने में देखने की आदत डालें। हमारी सबकी भावनाएँ एक-जैसी हों। हम मिलकर विश्व में सुख-शान्ति बढ़ावें और अभाव को दूर कर मानवी गुणों से भर जावें।

धर्मनिरपेक्षता पर हमारी दृष्टि में कुछ तथ्य आये हैं जो हम अविकल रूप से सुधी और सुविज्ञ पाठकों की जानकारी एवं ज्ञानवर्धन के लिए यहाँ दे रहे हैं। इसके लिए हम 'सार्वदेशिक' दिल्ली तथा 'वेद सविता' अजमेर के प्रति आभार

प्रकट करते हैं।

(१) श्री सत्यदेव भारद्वाज, उपप्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल काँगड़ी में दीक्षान्त-समारोह के अवसर पर भाषण देते हुए निम्न प्रकार से अपने उद्गार प्रकट किये—

" 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द बार-बार सुना जाता है तो लौकिक दृष्टि से 'धर्म' शब्द तिरस्कृत हो जाता है। जब वैदिक ज्ञानधारा 'आचारः परमो धर्मः', 'धर्म चर' का उपयोग करती है तो 'Secular' शब्द धर्मनिरपेक्षता के अर्थों में 'आचार' की ओर खींच ले जाता है। यही कारण है कि वर्तमान भारतीय समाज में 'भ्रष्टाचार' बुरी तरह से फैलता जा रहा है और नैतिक मूल्य गिर रहे हैं। 'धर्म-संस्थापना' या 'धर्म-चक्र प्रवर्तन' एक हँसी-मात्र दिखाई देते हैं। 'धर्म' शब्द महान् है—यह कर्त्तव्य, पुण्य कार्य, कानून तथा व्यवस्था आदि अर्थ में मुख्यतः प्रयुक्त होता है। 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को सरकारी रूप से तिलाञ्जलि दी जानी चाहिए। भिन्न-भिन्न मतों या सम्प्रदायों के साथ 'धर्म' शब्द का व्यवहार हमारी अशिक्षा का परिचायक है। सब सम्प्रदायों के प्रति उदारता का परिचय देना, विभिन्न मतभेदों में भी पारस्परिक आदरभाव रखना, मानवमात्र से भाईचारे से बर्तना, ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखना 'Secular' शब्द का अर्थ नहीं है। भारत में इस विषय में अर्थ का अनर्थ रोकना चाहिए। 'Secular' विचारधारा वामपक्षीय लौकिक विचारधारा है जो अनीश्वरवादी, नास्तिक विचारों से ओत-प्रोत है।"

(२) डॉ० अभयदेव शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष वेद संस्थान अजमेर 'वेद सविता' के अंक ७, वर्ष ५ के पृष्ठ २४३ पर अपने लेख 'पर'-धर्म से निरपेक्षता और 'स्व'-धर्म की उपेक्षा में लिखते हैं—

"धर्म की ग्लानि को आजकल असावधानी से निरपेक्षता कहा जाने लगा है। वस्तुतः निरपेक्षता तो अधर्म को हेरती है; धर्म की तो सदा ही अपेक्षा रहती है। 'धर्म' तो वस्तु का स्वरूप हेरता है। धर्म के अभाव में वस्तु नहीं रहेगी। अग्नि में गरमाहट(गर्मी)न रहे तो अग्नि अग्नि नहीं रहेगी। मनुष्य में उसका 'मनु' धर्म नहीं रहा तो वह मनुष्य नहीं रहता। मनु आत्मा का मन-पक्ष है। मनन मन से होता है। मन शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की जानकारियों, स्मृतियों का खज़ाना है। मन उत्तेजना देता है। सब प्रकार की स्थूल, सूक्ष्म क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं को करने के लिए, मन पुरानी स्मृतियों की खान है और है उनसे प्रसूत नवीन-नवीन इच्छाओं की लहरियोंवाला अथाह समुद्र। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सारे पुरुषार्थ मन की बदौलत हैं। मन बाह्य जगत् को जीतता है तो बुद्धि, आत्मा की आन्तरिक दुनिया की थाह भी वही लेता है। मन जैसा सतत उद्यमी न है, न होगा। मन अपनी सम्पत्तियों, उपलब्धियों पर इठलाने लगे तो 'राक्षस' है। इनका उपयोग करने में उदार रहे तो 'देव' है। मन अपने से सूक्ष्म बुद्धि से जुड़ा रहे और उससे भी सूक्ष्म,

आत्मा की चैतन्यधारा से आप्लावित रहे तो मन का देवरूप उभरता है। मन बुद्धि की शृंखला को तोड़ दे और आत्मा के अनुशासन को भुला बैठे तो उसका पैशाचरूप उभरेगा। आत्मा के नित्य अनुशासन में रहनेवाली बुद्धि से नियन्त्रित मन का 'मनुत्व' वह धर्म है जिससे मनुष्य 'मनुष्य' हो जाता है। पर मन यदि सर्वेसर्वा बनकर प्राणों और शरीर का अपने संकुचित अहंकार और स्वार्थ के लिए उपयोग करने लगे, विवेक और औदार्य को तिलांजलि दे बैठे, अपने को पृथक् एवं उच्चतर मानकर शेष समुदाय से कट जाय तो निर्मूल वृक्ष के समान वह कब तक मनुष्य बना रह सकेगा ? बस, यही अधर्म है। धर्म की संस्थापना है जीवन में विवेक और औदार्य की संस्थापना। अहंकार और स्वार्थ को पनपने देना है धर्म की ग्लानि, अथवा धर्म का अभ्युत्थान। सोचिये, क्या इस धर्म की निर्-अपेक्षता, मनुष्यता को बिसरा बैठना नहीं होगा ? यह तो 'भयावह परधर्म' हो जाएगा। अहंकार और स्वार्थरूप 'परधर्म' से तो मनुत्व पर भय के आक्रमण होने लगेंगे। मनुष्य का स्वधर्म तो विवेक और औदार्य है। इसपर आरूढ़ रहते हुए मरोगे तो स्वर्ग पाओगे, जीवोगे तो पृथिवी के सुख भोगोगे। इन दो के अतिरिक्त और चाहिए भी क्या ? धर्म से इह और पर दोनों लोक सिद्ध होते हैं। 'परधर्म' रूप अधर्म से मानव-समुदाय एक-दूसरे को मारते-काटते, लूटते-खसोटते आत्मघात कर बैठेगा। चोर, गुण्डे, तस्कर, सूदखोर, मुनाफाखोर, मनुष्य को मात्र मशीन समझकर उसे अपनी जड़ सम्पत्तिवत् समझने-वाले क्रूर निर्दयी पूँजीपति, जीवन को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर अध्ययन करने-वाले वैज्ञानिक और टेक्नॉलॉजिस्ट, इन और ऐसे सब लोगों ने मानव-समुदाय में हाहाकार मचा रखा है। कंठ-काट स्वार्थ में मनुष्य पिशाच और संवेदनहीन होता जा रहा है। जीवन के सौन्दर्य के लघु-लघु-से नमूने—कलकल करती नदी, हवा में झूमते पेड़, मूकद्रष्टा पहाड़, धरती का सौन्दर्य, आकाश की नीलिमा 'विजय' करने की चीज़ें नहीं हैं बावले ! तेरी सम्पत्ति नहीं हैं ये। कौन कैसे समझाये इस मनुष्य को ? अहंकारी और स्वार्थी, परधर्म-परायण मनुष्य ने पहाड़ नंगे कर डाले, धरती का उदर खाली कर डाला, वायुमण्डल विषाक्त कर लिया। अपनी समृद्धि का क्या करेगा वह, यदि जीव की मूलभूत परिस्थितियाँ तक न रहीं इस धरा-धाम पर ? इस 'परधर्म' से, इस शरीर-धर्म, मन-प्राण तक ही सीमित इस संकुचित नज़रिये से निरपेक्षता अभीष्ट है; विवेक और औदार्य-रूप 'स्वधर्म' से नहीं। जानो ! मनुष्य का 'पर-धर्मत्व' क्या है और 'स्वधर्मत्व' क्या है। मनुष्य आत्मानुशासित बुद्धिवाला 'मनु' है। अतः बुद्धिमानी अथवा बुद्धि का विवेक और आत्मा की व्यापकता—उदारता—सर्वमित्रता (प्रेम)—'वसुधैव कुटुम्बकम्'—ये हैं मनुष्य के 'स्व'—निजी धर्म। मात्र मनमानी अथवा कामात्मता और कामनाओं के जाल बुनते रहने में शरीर-प्राण को चुकता कर बैठना, ये है 'पर'-धर्म, क्योंकि मनुष्य शरीररूप-मात्र जड़ मशीन नहीं है। वह तो अजर, अमर, चैतन्य चिंगारी है। स्व-धर्म-सापेक्ष मानव-

समाज की आज जितनी आवश्यकता है, उतनी मानव के इतिहास में शायद ही कभी रही होगी, क्योंकि आज तो वह एक क्षणभर में धरती से सब प्रकार का जीवन सदा के लिए उच्छिन्न करने की विकराल शक्ति पा चुका है। किसी शासनाध्यक्ष की ज़रा-सी चूक सर्वनाश कर देगी। अतः पर-धर्म से निरपेक्ष बनाना है।"

(३) 'राष्ट्रीय एकता और धर्मनिरपेक्षता' शीर्षक से डॉक्टर भवानीलाल 'भारतीय' द्वारा लिखित एवं साप्ताहिक 'आर्य संदेश' नई दिल्ली के दिनांक २३-८-१९८७ में प्रकाशित लेख साभार पाठकों के लिए दिया जा रहा है—

"हमारे देश में ज्यों-ज्यों विघटनकारी शक्तियाँ अधिक बलवती होती जाती हैं, त्यों-त्यों राष्ट्रीय एकता की आवाज़ वातावरण में अधिक शक्ति के साथ गूँजने लगती है। किसी भी साम्प्रदायिक उपद्रव अथवा अन्य प्रकार के हिंसात्मक काण्ड के पश्चात् राष्ट्रीय एकता की बैठक आयोजित की जाती है जिसमें शासक दल, विरोधी दल तथा कुछ पत्रकार किस्म के व्यक्ति मिल-बैठकर लम्बी-चौड़ी तकरीरें करते हैं, साम्प्रदायिकता को तिलांजलि देने की कसमें खाते हैं और सभा की समाप्ति के पश्चात् अपनी उन्हीं पुरानी हरकतों को करने लगते हैं जिनसे राष्ट्रीय एकता को हानि पहुँचती है। समस्या की जड़ तक जाने का कोई प्रयास नहीं किया जाता और वृक्ष की जड़ को सींचने की अपेक्षा उसकी डालों को ही पानी से सींचने की चेष्टा की जाती है।"

"उधर पंजाब की भयंकर समस्या, बंगाल में गोरखालैण्ड की माँग जैसी विध्वंसात्मक कार्यवाहियों को उभरते हुए देखकर राजनीति को धर्म से पृथक् करने की बात की जाती है (अब समझौता हो चुका है एक परिषद् देकर)। देश के नेता इस प्रश्न पर एक राष्ट्रीय बहस कराना चाहते हैं, परन्तु वे स्वयं इस बात को लेकर स्पष्ट नहीं हैं कि क्या वे सचमुच धर्म को राजनीति से पृथक् करना चाहते हैं या केवल इसे एक प्रचार का मुद्दा बनाये रखना चाहते हैं ? वस्तुतः राष्ट्रीय एकता का सवाल किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वोपरि महत्त्व का होता है और इसे लेकर किसी भी सम्प्रदाय, दल या वर्ग से समझौता करना घातक हो सकता है। **जब महर्षि दयानन्द से राष्ट्रीय एकता की व्यावहारिकता या संभाव्यता को लेकर उदयपुर के पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने प्रश्न पूछा था तो दूरदर्शी महर्षि का उत्तर स्पष्ट था—'जबतक इस देश के सभी लोग एक ही प्रकार के भाव और विचार नहीं रखेंगे, जबतक इस देश के निवासियों की भाषा, वेशभूषा और अभिव्यक्ति एक-सी नहीं होगी, अथवा जबतक समस्त देशवासी राष्ट्र की सामान्य जीवनधारा में बहना नहीं सीखेंगे, तबतक भारत की एकता असम्भव ही है।' महर्षि दयानन्द का एक शती से भी अधिक समय पहले का यह कथन आज भी उतना ही सार्थक है जितना उस समय था।"**

"आज हमारे राष्ट्र-नेता इस देश को उस गुलदस्ते की उपमा देते हैं जिसमें

विभिन्न धर्मों, भाषाओं, संस्कृतियों तथा विचारों के फूल सजे हुए हैं। अनेकता में एकता की बात भी कही जाती है तथा यह भी कहा जाता है कि इस देश में सभी प्रकार के धर्म, मत, पंथ, भाषा, संस्कृति तथा जीवन-प्रणालियों के माननेवाले लोग बसते हैं तथा उनकी भिन्न-भिन्न भाषाओं, संस्कृतियों के फलने-फूलने तथा पनपने एवं विकसित होने का पूरा अवसर दिया जाएगा। यह बात कहने में जितनी सरल है और आपाततः रमणीय लगती है, वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। हम यह तो मानते हैं कि इस देश में नाना धर्मों और मत-पंथों के माननेवाले लोग निवास करते हैं और प्रत्येक की आस्था के अनुकूल उपासना-प्रणाली को चुनने का पूर्ण अधिकार है, किन्तु हम उससे एक क़दम आगे बढ़कर यह कहने की हिम्मत (साहस) नहीं जुटा पाते कि धर्म और मत के नाम पर देश को विखण्डित करने की किसी भी चेष्टा को निर्मूल कर दिया जावे। हमारे देश में बोली जानेवाली सभी भाषाओं के विकास पर तो ज़ोर देते हैं, परन्तु हमारे शासकों में यह कहने का साहस नहीं है कि देश की एक सामान्य राष्ट्रभाषा को उसके पद और गौरव से च्युत करने की किसी भी साज़िश को नाकाम कर दिया जावेगा। हम देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित नृत्य, संगीत, कला और साहित्य की विविधता को देखकर देश में व्याप्त अनेकता की बात तो करते हैं तथा इस अनेकता को यथावत् रखने की प्रतिज्ञा भी करते हैं, किन्तु इस देश के सत्तर करोड़ निवासियों में उस एकता के तन्तु को तलाशने का प्रयत्न नहीं करते, जिसके कारण कश्मीर से कन्याकुमारी तथा गुजरात से असम तक विस्तृत इस विशाल भू-भाग का प्रत्येक नागरिक अपने-आपको भारतवासी कहता है। इस विशाल और पुरातन राष्ट्र की एकता की बुनियाद जिन सांस्कृतिक तत्त्वों में निहित है, उन्हें पहचानने और मज़बूत करने की अपेक्षा हम नागालैण्ड, मिज़ो, गोआ, असम, तमिलनाडु आदि भिन्न प्रान्तों की पृथक्-पृथक् संस्कृतियों का गौरव-गान करने लगते हैं और इन प्रान्तों के निवासियों को महान् राष्ट्र का नागरिक समझने के महत्त्व पर ज़ोर डालने का यत्न नहीं करते।"

"हमारे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि क्षेत्रीय भाषाओं, जीवन-पद्धतियों तथा वहाँ की कला एवं संस्कृति के विकास का राष्ट्रीय एकता के साथ कोई नैतिक विरोध है। यदि पंजाब में पंजाबी भाषा और साहित्य का विकास होता है, वहाँ के नर-नारी गिद्दा और भंगड़ा नृत्यों के द्वारा अपना मनोरञ्जन करते हैं तो देश के अन्य निवासियों को इसमें क्या आपत्ति है? किन्तु यदि यहाँ के निवासी एक पृथक् राज्य की माँग करें, यहाँ किसी सम्प्रदायविशेष का ही प्रभुत्व होने का स्वप्न सँजोया गया हो, तो उसे देश के व्यापक हित में कैसे सहन किया जा सकता है? मिज़ो लोग यदि ईसाई धर्म का पालन करें और चर्च में जाकर खुदावन्द ईसा मसीह को याद करें तो देश के बहुमत को कोई आपत्ति नहीं, किन्तु यदि इन चर्चों में विदेशी पादरी भारत राष्ट्र को दुर्बल बनाने का षड्यन्त्र करें और विद्रोही

लोगों को पड़ोसी देशों से सहायता दिलाकर देश को छिन्न-भिन्न करने की बात करें तो उनकी इन कार्यवाहियों को राष्ट्र-विरोधी ही माना जावेगा। तमिलनाडु अपने सरकारी काम-काज तथा शिक्षा में तमिल भाषा का प्रयोग करे तो इसपर आपत्ति करने का कोई प्रश्न ही नहीं है; किन्तु देश के संविधान द्वारा स्वीकृत राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बन्द कराने के लिए यदि कोई भावुक तमिल युवक आत्मदाह करता है तो उसे शहीद का दर्जा कैसे दिया जा सकता है !"

"सच तो यह है कि हमारे संविधान-निर्माताओं ने 'धर्म-निरपेक्षता' को जिन अर्थों में समझा था, उसे उसी अर्थ में समझने में हम आनाकानी कर रहे हैं। संविधान में 'धर्म-निरपेक्षता' का अभिप्राय राज्य के 'सम्प्रदायनिर्लेप' होने से लिया गया था। आज हमारे शासक अधिक-से-अधिक साम्प्रदायिक गतिविधियों में लिप्त होने को ही अपनी लोकप्रियता की कसौटी मानते हैं। तभी तो मुसलमान फ़कीरों की क़ब्रों पर हमारे मंत्रीगण चादर चढ़ाते हैं, गुरुद्वारों में जाकर माथा टेकते हैं, मन्दिरों में पुजारियों और आचार्यों का प्रसाद ग्रहण करते हैं, कैथोलिक सम्प्रदाय के पोप का राष्ट्रीय स्तर पर स्वागत करते हैं, सरकारी दूरदर्शन पर ईद, क्रिसमस, सूफ़ी-संतों के मकबरों पर भरनेवाले उर्स, कृष्ण-जन्माष्टमी पर मथुरा और वृन्दावन की रासलीलादि के दृश्य प्रदर्शित करते हैं, और यह सब-कुछ करके भी वे यह चाहते हैं कि भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र माना जावे। हमारे कथन का यह अर्थ नहीं कि कोई भी मंत्री या शासन व्यक्तिशः किसी धर्मस्थान पर न जाये या किसी प्रकार की पूजा-उपासना में व्यक्तिगत रूप से सम्मिलित न हों। आपत्ति तो तब होती है जब साम्प्रदायिक तुष्टीकरण के लिए मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों और गुरुद्वारों के प्रति सरकारी रूप से श्रद्धा प्रकट की जाती है, केवल इन धर्म-स्थलों पर एकत्र होनेवाली भीड़ को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए।"

"भारत में साम्प्रदायिकता के प्रसार का एक प्रमुख कारण यह भी है कि हमारे राजनीतिज्ञों ने बहुमत और अल्पमत की त्रुटिपूर्ण तथा सिद्धान्तहीन धारणाओं को लोगों में अत्यन्त उग्र रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है। जब संविधान ने प्रत्येक नागरिक को सभी प्रकार के अधिकार समान रूप में प्रदान किये हैं, बहुमत और अल्पमत के आधार पर एक वर्ग के साथ विशेष पक्षपात करने अथवा दूसरे वर्ग की उपेक्षा करने का औचित्य ही नहीं रहेगा। देखा जाय तो 'धार्मिक दृष्टि से अल्पमत' के सिद्धान्त को स्वीकार करना धर्मनिरपेक्षता पर कुठाराघात करना है। यदि भारत के दस करोड़ मुसलमान इस्लाम की रीति-नीति के अनुसार एक अल्लाह की उपासना करते हैं और पैग़म्बर साहिब पर ईमान लाते हैं तो इस बात का क्या औचित्य है कि सरकारी नौकरियों में उनके लिए स्थान सुरक्षित किये जायें? मैडिकल और इंजिनीयरिंग कॉलेजों में उनके प्रवेश को आरक्षित किया जावे अथवा उनकी मस्जिदों और ख़ानक़ाहों की मरम्मत के लिए सरकारी धन उपलब्ध

कराया जाये ? यदि धार्मिक आधार पर ही अल्पमतों को संरक्षण देना है तो कुछ लाख पारसी लोग ही इन अधिकारों के पाने के सच्चे पात्र हैं। दस करोड़ की भारी-भरकम आबादीवाले मुसलमान किस प्रकार 'अल्प' कहला सकते हैं ? सबसे बड़ा आश्चर्य यही है कि निश्चय ही धार्मिक अल्पमत कहलानेवाले अग्निपूजक पारसी वर्ग के लोगों ने कभी सरकार से किसी भी प्रकार के संरक्षण या आरक्षण की माँग नहीं की। इस दृष्टि से वे ही सच्चे भारतीय नागरिक हैं जो साम्प्रदायिकता से कोसों दूर हैं और अपने मत का दृढ़ता से पालन करते हुए भी राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में सर्वात्मना जुटे हुए हैं।"

"तथ्य यह है कि आज की राजनीति वोट जुटाने की राजनीति बन गई है। अल्पमतवालों से वोट प्राप्त करने के लिए उनकी जायज़ और नाजायज़ सभी प्रकार की माँगों को मान लिया जाता है और बहुमत की अवहेलना और उपेक्षा करके भी धार्मिक अल्पमतों को सन्तुष्ट करने की राष्ट्रनीति अपनाई जाती है। पं० जवाहर-लाल नेहरू ने जब केरल में मुस्लिम लीग से गठबन्धन किया तो झूठ-मूठ ही यह कहना पड़ा कि केरल की लीग जिन्नाह की मुस्लिम लीग से भिन्न है, जबकि भारतीय मुस्लिम लीग के नेता जिन्नाह की विचारधारा को कट्टरता से अपनाये हुए हैं।"

"यदि राष्ट्रीय एकता को सचमुच सुदृढ़ बनाना है तो धर्मनिरपेक्षता की नीति को बिना किसी भेदभाव और लाग-लपेट के अपनाना होगा। भारत के नागरिकों को हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई और सिख रूप में न पहचानकर मात्र भारतीय के रूप में स्वीकार करना होगा। धर्म (मत, सम्प्रदाय) व्यक्तिगत आचरण की वस्तु है। अतः साम्प्रदायिक मतवादों को राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा के मार्ग की बाधा नहीं बनने दिया जायेगा। किन्तु धर्म के मूलभूत तत्त्वों तथा नैतिक मूल्यों का तो राजनीति से कोई विरोध ही नहीं है। यदि राजनैतिक आचरण को नैतिकता पर आधारित करना है तो धर्म से उसको पृथक् करने की बात सोची ही नहीं जा सकती, किन्तु यह धर्म मानव-धर्म ही है, हिन्दु, मुसलमान, ईसाई और पारसी मतों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।"

आशा है पाठकगण धर्म, अधर्म तथा धर्मनिरपेक्षता के सम्बन्ध में अपनी भ्रान्त धारणाएँ दूर करके धर्म में प्रवृत्त होंगे और मानवता को बढ़ावा देंगे जिससे कि समूचा विश्व ही एक राष्ट्र दिखाई दे, ताकि कोई दीन, दुःखी और अभावग्रस्त न रहे एवं संसार में शान्ति और सुख का साम्राज्य स्थापित हो।"

ओम् शम् !



हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	२०.००
प्रभु-मिलन की राह	२०.००
घोर घने जंगल में	२०.००
प्रभु-दर्शन	१५.००
दो रास्ते	१५.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
बोध-कथाएँ	१२.००
दुनिया में रहना किस तरह	७.००
मानव-जीवन-गाथा	९.००
प्रभु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	७.५०
एक ही रास्ता	५.००
भक्त और भगवान	८.००
आनन्द गायत्री कथा	६.००
शंकर और दयानन्द	५.००
सुखी गृहस्थ	४.००
सत्यनारायण कथा	४.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू (रणवीर)	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	प्रेस में
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंचमहायज्ञविधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय

श्रीकृष्ण चरित	२५.००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	२४.००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	२५.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा	५०.००
मैं ब्रह्म हूँ	४.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शनम्	१००.००
चाणक्यनीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
विदुर नीति	२०.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	१०.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५.००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

स्वामी श्रद्धानन्द

कल्याण मार्ग का पथिक ६०.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(ग्यारह खंड) ६६०.००

Swami Satya Prakash Sarasvati

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार
३२५.००
Founders of Sciences in Ancient India
Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India
Two Volumes 600.00
Critical Study of Brahmagupta and his works 350.00
Geometry in Ancient India 350.00
God in His Divine Love 5.00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman 700.00

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथ ब्राह्मण (तीन खण्ड) १८००.००
जीवात्मा २५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति ३.००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली ४ खंड
२४०.००
महात्मा हंसराज जीवनी ६०.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा १०.००

सुरेशचन्द वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ६.००

ओमप्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ६.००
आत्म विकास की राहें ५०.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की
साधना व संघर्ष १०.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

प्रो० ओमप्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

प्रा० विष्णुदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप १५.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

घर का वैद्य

लेखक : सुनील शर्मा

घर का वैद्य	प्याज	४.००
,,	लहसुन	४.००
,,	गन्ना	४.००
,,	नीम	४.००
,,	सिरस	४.००
,,	तुलसी	४.००
,,	आँवला	४.००
,,	नींबू	४.००
,,	पीपल	४.००
,,	आक	४.००
,,	गाजर	४.००
,,	मूली	४.००
,,	अदरक	४.००
,,	हल्दी	४.००
,,	बरगद	४.००
,,	दूध-घी	४.००
,,	दही-मट्ठा	४.००
,,	हींग	४.००
,,	नमक	४.००
,,	बेल	४.००
,,	शहद	४.००
,,	फिटकरी	४.००
,,	साग-सब्जी	४.००
,,	अनाज	४.००
,,	फल-फूल	४.००

कर्मकांड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	१.५०
पंचयज्ञ प्रकाशिका	५.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००
सत्संग मंजरी	६.००
Vedic Prayer	3.00

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द	३.००
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

अन्य प्रकाशन

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

शतपथ ब्राह्मण तीन खण्ड	१८००.००
जीवात्मा	२५.००
आस्तिकवाद	१५.००
इस्लाम के दीपक	२२.००
मीमांसा प्रदीप	२५.००
आर्य समाज	८.००
वैदिक धर्म और आर्य समाज	८.००
वैदिक मान्यताएँ	६.००
इस्लाम और आर्य समाज	६.००
हम क्या खायें घास या मांस	६.००
कर्मफल सिद्धांत	४.००
भारतीय पतन और उत्थान	५.००
पूजा	१५.००
मैं और मेरा भगवान	१२.००
उपदेश सप्तक	१.७५
वेद और मानव कल्याण	२.५०
Light of Truth	65.00
I and my God	12.00
Worship	12.00
Christianity in India	12.00
Superstitions	12.00
Vedic Culture	15.00
Reason & Religion	12.00
Philosophy of Dayanand	40.00

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती कृत

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार	३२५.००
योग और उनकी अनुभूमिका	६.००
योग सिद्धान्त और साधना	८.००
योग और प्राण सौष्ठव	११.००
योग प्राणायाम और चेतनाएँ	११.००
प्रभु के मार्ग पर	७.००
प्रार्थना और चिन्तन	६.००
मनुष्य और मानवधर्म	५.००
ईश्वर और ईश्वरीय ज्ञान	३.००
अध्यात्म और आस्तिकता	७.००
महर्षि दयानन्द समस्त क्रान्ति के दूत	३२.००
आर्य समाज : संघर्ष और समस्याएँ	३५.००
Critical Study of Philosophy of Dayanand	50.00
Vincit Veritas.	30.00
Arya Samaj : A Renaissance	30.00
Dayanand : APhilosopher	65.00
Agnihotra : A Chemical Study	20.00
Agnihotra (Ritual)	5.00
Vedic Sandhya (Trans,)	4.00
Man and his Religion	6.00
God and His Divine Love	5.00
The Self Life and Consciousness	12.00
Humanitarian Diet	10.00
Three Hazards of Life	25.00
Dayanand and his Mission	3.00
Architects of Arya Samaj	12.00
सूर्य सिद्धान्त	१२०.००

बाल साहित्य

बाल शिक्षा ले० स्वामी दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	१.५०
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.५०
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	३.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	३.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	३.५०
नैतिक शिक्षा	सप्तम	४.००
नैतिक शिक्षा	अष्टम	४.००
नैतिक शिक्षा	नवम	५.००
नैतिक शिक्षा	दशम	५.००

स्वामी योगेश्वरानन्द कृत

बहिरंग योग	५५.००
आत्मविज्ञान	४०.००
ब्रह्मविज्ञान	१००.००
दिव्यज्योति विज्ञान	४०.००
प्राण विज्ञान	३०.००
दिव्य शब्द ज्ञान	४०.००
निर्गुण ब्रह्म	३०.००
व्याख्यानमाला—५ भाग	१५०.००
हिमालय का योगी—I	४५.००
हिमालय का योगी—II	७५.००
First Step to Higher Yoga	65.00
Science of Soul	60.00
Science of Divinity	60.00
Scienc of Divine Lights	45.00
Science of Vital Force	40.00
Science of Divine Sound	40.00
The Essential Colourlessness of the Absolute	40.00
Beads of Sermons	30.00
Himalaya Ka Yogi—I	45.00
Himalaya Ka Yogi—II	45.00

गजानन्द आर्य

वीरांगना महारानी कैकेयी	१५.००
आर्य समाज की मान्यताएँ	४.००

सत्यानन्द आर्य

जीवन सौरभ	१०.००

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

सुखी जीवन	७.५०
सुखी गृहस्थ	१२.५०
सुखी परिवार	८.००
आचार शिक्षा	१०.००
नीति शिक्षा	१०.००
वेदों में नारी	१५.००
वैदिक मनोविज्ञान	१५.००
यजुर्वेद सुभाषितावली	१५.००
सामवेद सुभाषितावली	१५.००
अथर्ववेद सुभाषितावली	२५.००
ऋग्वेद ,,	३०.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

भूमिका भास्कर—I	१५०.००
वेद मीमांसा	५०.००
अनादि तत्त्वदर्शन	३०.००
अध्यात्म मीमांसा	४५.००
तत्त्वमसि	५०.००

डॉ० विद्यासागर अबरौल

मोक्ष द्वार	२५.००

बाल साहित्य

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	८.००

डॉ० मनोहर लाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००
स्वामी रामतीर्थ की कहानियाँ	६.००
स्वामी विवेकानन्द की कहानियाँ	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली (कविता में)	८.००
राजा-रानी की कहानी (कविता में)	८.००
बन्दर और मगरमच्छ	६.००
चिड़िया के मोती	६.००
अच्छे बनो	६.००

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महाबली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	६.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	१०.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००
जेम्स ऐलन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों की कथाएँ)	६.००
कीर्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणों की कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रन्थों ,,)	६.००

विविध लेखक

पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
भक्त बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्यौहार	६.००
ऋतुगीत	६.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते ?	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें !	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें !	६.००
अवसर को पहचानो !	६.००
अपने आपको पहचाहिये !	६.००
आप सफल कैसे हों !	६.००
उन्नति कैसे करें !	६.००
धन कुबेर कैसे बनें !	६.००

बाल-विज्ञान सीरीज़

हमारा सूर्य	शरण	८.००
हमारा चन्द्रमा	,,	८.००
हमारी पृथ्वी	,,	८.००
मनोरंजक गणित	हरिदत्त शर्मा	१५.००
ज्ञानवर्धक गणित	,,	२०.००
ऊर्जा	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	८.००
कम्प्यूटर	आशुतोष मिश्र	८.००
वैज्ञानिक कृषि	डॉ० अशोक गुप्ता	८.००
जीवों की उत्पत्ति	विजय	८.००
रोहित का सपना	ब्रह्मदेव	८.००
अन्तरिक्ष से आने वाला	सुरजीत	८.००

क्या क्यों कैसे हरिदत्त शर्मा २५.००

पृथ्वी एवं खनिज, समुद्र, हीरे मोती, मुद्रा, पानी, पेड़, पौधे, अन्तरिक्ष, पशु-पक्षी

क्या क्यों कैसे हरिदत्त शर्मा २५.००

सामान्य विज्ञान, कम्प्यूटर
परमाणु, हवाई यान, रेल, मशीन, सामान्य ज्ञान, विविध,

क्या क्यों कैसे हरिदत्त शर्मा २५.००

शरीर रोग, चिकित्सा उपचार पद्धतियाँ, रक्त, भोजन, दुग्ध, इतिहास, राजनीति, कला-संस्कृति, खेल

शेरजंग गर्ग

पक्षी उड़ते फुर-फुर-फुर	शेरजंग गर्ग	८.००
पशु चलते हैं धरती पर	,,	८.००
गुलाबी की बस्ती	,,	८.००
शरारत का मौसम		८.००

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

सतरंगा हाथी	८.००
धरती है असली धन	६.००
राजा और पण्डित	६.००

सुनील शर्मा

अपनी किस्मत अपने हाथ	१०.००

यदुनाथ दाश महापात्र

बकरा	८.००

वैज्ञानिक उपन्यास

अन्तरिक्ष से आने वाला	८.००
रोहित का सपना	८.००

बाल उपन्यास

उड़ने वाला गलीचा	८.००
छोटा भाई	८.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशु पालन	१२.००
हृदय-रोग कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	६.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	१०.००

डॉ० जायसवाल

कैंसर : कारण और निवारण	१०.००

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	१०.००
सौ वर्ष कैसे जियें	१०.००
आहार चिकित्सा	१०.००

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डाक्टर (होम्योपैथी)	१२.००
मानसिक रोग कारण निवारण	१०.००

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग एक वरदान	१०.००

श्यामजी गोकुल वर्मा

योग-साधना और प्राणायाम	१०.००

हास्य-व्यंग्य

माडर्न शादी	३.००
हँसी और हँसाओ	५.००
हास-परिहास	५.००

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक कला	६.००
आधुनिक मिष्ठान्न कला	६.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश	६.००
अचार मुरब्बे चटनी	६.००

तकनीकी

रेडियो-ट्रांजिस्टर मैकेनिक	१२.००
ट्रांजिस्टर गाइड	१२.००
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	१०.००
टेलिविज़न गाइड	१०.००

इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द	१०.००

सन्तराम वत्स्य

स्वामी विवेकानन्द	१०.००
स्वामी रामतीर्थ	१०.००
रामकृष्ण परमहंस	१०.००

विविध

महाभारत	१०.००
रामायण	१०.००
पंचतन्त्र	६.००
हितोपदेश	१०.००
चाणक्य नीति (संस्कृत-हिन्दी)	१०.००
भर्तृहरिशतकम् (संस्कृत-हिन्दी)	१५.००
विदुर नीति	१५.००
विक्रम-वेताल (हिन्दी)	६.००
सिंहासन बत्तीसी	६.००
एशियाई खेल	१२.००
जूडो आत्मरक्षा के लिए	१०.००

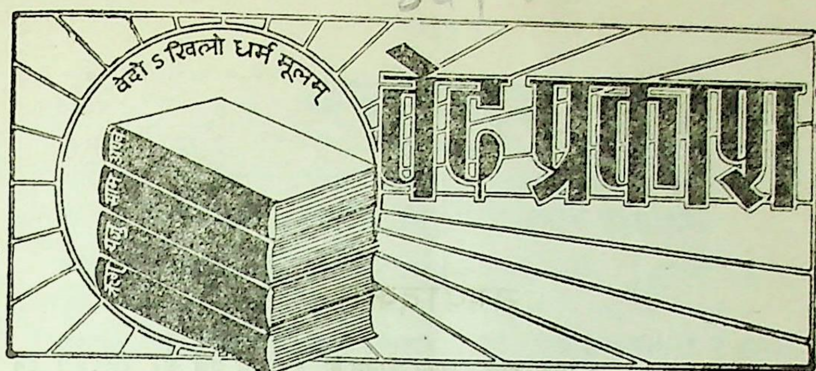
शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

अपने-पराये	४.००
अकेली	४.००
चन्द्रनाथ	४.००
अनुराधा	४.००
परिणीता	४.००
विन्दु का वेटा	४.००
वैकुण्ठ का दान पात्र	४.००
छोटा भाई	८.००
मझली दीदी	८.००
वड़ी दीदी	४.००
बिराज बहू	४.००
ब्राह्मण की वेटी	४.००
पंडित मोशाय	४.००
देवदास	६.००
नया विधान	६.००
देहाती समाज	६.००
शुभदा	४.००
श्रीकान्त (दो भाग)	३०.००
विप्रदास	१०.००
देना पावना	१५.००
गृह-दाह	१५.००

पं० उदयवीर शास्त्री

ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन)	८०.००
योगदर्शन	४५.००
वैशेषिक दर्शन	५०.००
सांख्य दर्शन	४०.००
कौटिल्य अर्थशास्त्र	१२.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।


वेदो ऽखिलो धर्म मूलम्
वेद प्रकाश

सम्पादकीय

इस अंक के साथ 'वेदप्रकाश' अपने जीवन के ३८ वर्ष पूर्ण कर रहा है। इन ३८ वर्षों में वेदप्रकाश ने आर्यजगत् में जो धूम मचाई है, वह सर्वविदित है। इस अवधि में हमने 'दयानन्द ग्रन्थ संग्रह, वाल्मीकि रामायण, वैदिक उदात्त भावनाएँ, वैदिक प्रश्नोत्तरी, पं० रामचन्द्र देहलवी ग्रन्थावली, गुरुदत्त लेखमाला, सृष्टि का इतिहास आदि नेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ समय-समय पर पाठकों को भेंट दिये। अभी पिछले वर्षों में 'पञ्चदेवता' अंक का पाठकों ने जोरदार स्वागत किया।

इन विशेषांकों के अतिरिक्त हमने जो लघु विशेषांक दिये हैं, उनकी तो गिनती है नहीं। सच्ची बात तो यह है कि हमारा प्रत्येक अंक ही एक विषय को लेकर विशेषांक होता है। हमारे सभी अंक संग्रहणीय होते हैं। पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार जैसे मूर्धन्य विद्वान् भी और पत्रों को रद्दी में बेच देते हैं, परन्तु वेदप्रकाश की फाइल बनाकर रखते हैं। अनेक स्थानों पर परिवारों में वेदप्रकाश की दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष की फाइलें मिल जाएँगी।

हम प्रतिवर्ष लगभग ३०० पृष्ठ की ठोस सामग्री अपने पाठकों को देते हैं। बाजार में इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य ७५-०० रुपये से कम नहीं होगा। परन्तु हम इतनी सामग्री १५-०० में देते रहे हैं। इससे पूर्व १० और १२ रुपये में भी देते रहे हैं।

इस वर्ष कागज के दामों में ४० प्रतिशत की वृद्धि हो गई। मुद्रण आदि के व्यय भी बढ़े हैं, अतः विवश होकर हमें 'वेदप्रकाश' का मूल्य बढ़ाकर २०-०० रुपये करना पड़ा है। अपना शुल्क शीघ्र भेजें, जिससे आप 'वेदप्रकाश' के अंकों से वंचित न रह जाएँ। इस वर्ष हम स्वामी वेदानन्द जी (दयानन्द) तीर्थ का वेद विषयक बहुमूल्य ग्रन्थ 'वैदिक धर्म' अपने पाठकों को भेंट कर रहे हैं। पुस्तक रूप में केवल इस ग्रन्थ का मूल्य ही १५-०० है। वेदप्रकाश के सदस्यों को २०-०० भेजने पर यह ग्रन्थ तो मिलेगा ही, इसके साथ ११ अंक भी मिलेंगे। चूकिये मत, अपना वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा आज ही 'गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६ के पते पर भेजिए।

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३८, अंक १२]   वार्षिक मूल्य : पन्द्रह रुपये   [जुलाई १९८९

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

उपदेश

—स्वामी श्रद्धानन्द

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

—मनु० २।९३

आत्मा स्वभाव से दर्पण की तरह स्वच्छ है। जिस दर्पण को जितना अधिक स्वच्छ किया जाय उसी प्रकार अधिक सफाई के साथ उसमें वस्तुओं की शक्लें ठीक-ठीक दिखाई देंगी, या जिस प्रकार मैलापन उन पर आ जावे उसी प्रकार वस्तुओं के रूप दिखाने के वह अयोग्य हो जाता है, इसी तरह आत्मा की अवस्था है। यदि नियम आदि साधनों से आत्मा को साफ किया जावे तो उसकी बुद्धि ऐसी उग्र अर्थात् सूक्ष्म हो जाती है कि वह ब्रह्मधाम तक जाने के योग्य बन जाता है। किन्तु अगर उस पर विषयों का मैल जम जावे तो उसमें वस्तुओं के यथार्थ रूपप्रकाश की शक्ति नहीं रहती। जीवात्मा का जीवन-उद्देश्य क्या है? इसका विचार उसे हर समय चाहिए, तब वह विषयों की दासता से बड़ी सुगमता से स्वतन्त्र हो सकता है। विषयों में फँसने का परिणाम ही सब प्रकार के दोष हैं। यह इसलिए कि विषयों में इन्द्रियों के द्वारा खिंचा हुआ पुरुष, विषयों को ही अपना आदर्श समझता है। यथार्थ में न केवल विषय, बल्कि इन्द्रियाँ भी जीवात्मा को ज्ञान पहुँचाने के लिए साधनमात्र का काम देती हैं। कल्पना करो कि एक बड़े योग्य पदार्थवेत्ता को एक बड़े रसक्रिया-भवन में नियत किया गया है। इसके आधीन न केवल इस भवन के सम्बन्ध में बहुत-से सहायक दिए गए हैं, बल्कि उसकी अपनी सेवा के लिए भी दस-बारह सेवकादि नियत हैं। क्या बिना बताये वह पदार्थज्ञानी यह नहीं समझ सकता कि उसको पदार्थों का तत्त्वज्ञान प्राप्त करके दूसरों पर प्रकाश करने की इच्छा से उस रसक्रिया-

भवन में भेजा गया है? अगर फिर भी वह अपने वास्तविक लक्ष्य को भूलकर दिन-भर सेवकों से आनन्द लेने में ही फँसा रहे तो उसे कौन बुद्धिमान् समझेगा ?

मनुष्य-रचना में परमात्मा ने अपनी अपार दया से बुद्धि का एक विशेष पद रखा है। शरीर पच्चीस वर्ष की आयु तक बढ़ता है और चालीस तक अपनी उन्नति को स्थिर रख सकता है, उसके पश्चात् ह्रास आरम्भ हो जाता है। यह अवस्था उन पुरुषों की है जो साधारणतः अच्छा जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे पुरुष अन्त में सौ बरस में चल बसते हैं। विशेष नेकी में पुरुषार्थ करनेवाला पुरुष तीन सौ साल तक जीवित रह सकता है। इससे बढ़कर जीना मनुष्य की हिम्मत से बाहर है। परन्तु जो असाधारण रूप में पाप का जीवन व्यतीत करते हैं उनका जीवन बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है और उनके लिए युवावस्था और बुढ़ापे की आयु में कोई भेद नहीं रहता। चाहे कोई अवस्था हो, मनुष्य ने अवश्य नाश होना है। यह बनावट अनन्त समय तक स्थिर नहीं रह सकती। न शरीर, न इन्द्रियाँ रहने वाली हैं, हाँ, इन सबके नियम जीवात्मा के अन्दर उपस्थित रहते हैं। ये इन्द्रियाँ किसी नियत सीमा तक उन्नति कर सकती हैं, उसके बाद उन्हें नीचे गिरना पड़ता है। किन्तु बुद्धि ही है जिसकी उन्नति मरणपर्यन्त बन्द नहीं होती और फिर मरने के पश्चात् दूसरे जन्म में भी स्थिर रहकर आगे चलती है, इसलिए बुद्धि को उन्नत करना ही मनुष्य का परम धर्म है। इन्द्रियाँ और विषय आदि इस परम उद्देश्य के अन्दर केवल साधन हैं, परन्तु मनुष्य कैसा मूर्ख है कि इन साधनों का दास बन जाता है! आँखें हमें इसलिए दी गई हैं कि हम सारे संसार के रूप की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को समझ सकें, और उनका ज्ञान प्राप्त करके उसको बुद्धि की उन्नति का साधन बनावें। परन्तु हममें से कितने मनुष्य हैं जो रूप के दास नहीं बन रहे? इसको छिपाने के लिए हजारों पाप-कर्म किये जाते हैं। इसी तरह प्रत्येक इन्द्रिय जीवात्मा की दास बनाई गई है। परन्तु वही दास जीवात्मा को अपने वश में करके नाशवान् विषयों के दास उसे बना रहे हैं। इसी कारण मनुष्य को संसार में क्लेश दिखाई देते हैं।

परमात्मा ने स्वभाव से इस संसार को स्वर्गधाम बनाया था। मनुष्य को कर्म-योनि देकर उस स्वर्गधाम से पूरा लाभ लेने के योग्य बनाया था। हम मनुष्यों ने स्वयं इसे अपने कर्मों से नरकधाम बना रखा है। विषय-संग से ही सारे दोष पैदा होते हैं। जिसके सेवक उसके वश में हैं वही सुखी है। जिसके सेवक उसके मालिक बने हुए हैं उससे बढ़कर कोई दुःखी नहीं है। अतः इन दोषों से छूटने के लिए मनुष्य को विषयों से स्वतन्त्रता प्राप्त करनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इन्द्रियों का विषयों के साथ जो सम्बन्ध हो जाता है उसे मनुष्य छोड़ सकता है और इसलिए वह उसे फौरन छोड़ देवे। अगर यह सम्बन्ध टूट जावे तो प्रत्यक्ष ज्ञान ही पैदा नहीं होता। प्रत्यक्ष ज्ञान के न होने से अनुमान इत्यादि की समाप्ति

हो जाती है। तब जब प्रमाण ही स्थिर न रहे तो प्रमेय वस्तु कैसे जानी जा सकती है? इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध बराबर रहता है और इन्द्रियों के सम्बन्ध से जीवात्मा इस जीवन में जुदा नहीं हो सकता। परन्तु हाँ, वह सम्बन्ध मालिक और सेवक का होना चाहिए। ऐसा न हो कि सेवक स्वामी बन जाएँ और स्वामी सेवक बन जायें।

प्रिय पाठकगण ! हम सब अपने परम उद्देश्य को भूले हुए हैं। विषयों की वास्तविकता को न जानते हुए उनके भोग ही में सुख मान बैठ हैं। इसलिए हमारे पीछे बीसों दोष लगे हुए हैं और हमको पीड़ित कर रहे हैं। विषयों से छुटकारा प्राप्त करने का यत्न आज से ही प्रारम्भ कर दो जिससे जिस समय जीवात्मा शरीर से पृथक् होने लगे उस समय हमारी कोई भी वासना सांसारिक पदार्थों में बाकी न रहे, ताकि हम अपने परम उद्देश्य का ध्यान करते हुए ही प्राण त्यागकर मुक्ति के भागी बन सकें।

शब्दार्थ—(इन्द्रियाणां) इन्द्रियों के (प्रसंगेन) विषयों में फँसने से मनुष्य (असंशयम्) निश्चय से (दोषम् ऋच्छति) दोष का भागी होता है। किन्तु (तानि एव तु) उन्हीं इन्द्रियों को (संनियम्य) संयम करके (ततः सिद्धि) बाद में सफलता को (नियच्छति) प्राप्त कर लेता है। □

आर्यसमाजी को नहीं, आर्यसमाज को समझिये

आजकल के आर्यसमाजियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

निर्गुण आर्यसमाजी :

जिनमें केवल खण्डनात्मक प्रवृत्ति हो (जैसे मूर्तिपूजा, श्राद्ध-तर्पण, काशी आदि तीर्थ, अपशकुन आदि अन्धविश्वासों का विरोध करना) और जिनके जीवन में मण्डनात्मक पक्ष का अभाव हो। स्वयं के जीवन में साधना के अभाव के कारण ऐसे लोग जीवन में श्रद्धापात्र नहीं बन पाते।

सगुण आर्यसमाजी :

जो विधेयात्मक कार्यों में रुचि रखते हों। किसी के खण्डन से मतलब नहीं, पर अपना जीवन यज्ञमय बनाकर रखते हों। जो कर्मकाण्ड व संस्कार आदि श्रद्धापूर्वक वैदिक रीति से करते हों। ऐसे लोग जनजीवन में श्रद्धापात्र हैं, किन्तु सेवा के कारण आर्यसमाज का विस्तार नहीं कर पाते, अतः उनका कार्यक्षेत्र विस्तृत नहीं हो पाने से जन-जन के हित में उपयोगी नहीं हो पाते।

सगुण-निर्गुण आर्यसमाजी :

जो अपने-आप में ठीक हों, फिर दूसरों को ठीक करने की चेष्टा करते हों; जिनका जीवन विधेयात्मक, साधनामय हो, साथ ही निषेधात्मक कार्यों का विरोध प्रीतिपूर्वक और अज्ञान-नाश के रूप में करके महान् समाजसेवा भी करते हों, वे आर्यसमाज के सही प्रचारक हैं।

आर्यसमाज को जानने के लिए स्वाध्याय अथवा उत्तम साहित्य का अध्ययन आवश्यक है, तभी आर्यसमाज की वास्तविक पहचान हो सकती है। केवल किसी आर्यसमाज को चन्दा देनेवाला ही अपने को आर्य घोषित करे तो उससे भ्रान्तियाँ व भ्रम का अकारण सृजन होता है।

यदा-कदा सुनने में आता है कि अमुक आर्यसमाजी ऐसा करता है, अथवा ऐसा कहता है, क्या ऐसा ही आर्यसमाज है ? इस प्रकार के उदाहरणों से लोगों में भ्रान्ति होती है। आर्यसमाज एक कर्मप्रधान, गुणानुशंसी संस्था का नाम है। केवलमात्र आर्यसमाजी कहलाने अथवा आर्यसमाज की कुछ बातों को मान लेने पर आर्यसमाज के आदेशों का प्रवक्ता नहीं बन सकता, अलबत्ता कोई सिद्धान्त आर्यसमाज का माननेवाले को आर्यसमाजी कहलाने से अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। आर्यसमाज का उद्देश्य है कि वैदिक धर्म की शिक्षा सब देश-देशान्तरों और मत-मतान्तरों में फैल जाय, भले ही वे आर्यसमाजी न कहलावें।

वर्तमान काल में आर्यसमाज के लेबल से लोग ठगे भी जाते हैं। बहुत-से सही आर्यसमाजी सम्मान को प्राप्त नहीं हो पाते। यह सब ऐसा ही है जैसा आज का संन्यासी वर्ग। कहीं धूर्त संन्यासी मौज उड़ाते हैं और सच्चे साधु भूखे मरते हैं। अतः आर्यसमाजी की पहचान मन, वचन, कर्म में एकरूपता होने से होती है। □

आग और पानी

—श्री रामचरणजी

यह संसार दो प्रकार के परमाणुओं से बना है : एक जड़ तथा दूसरा चेतन। ये दोनों ही परमाणु अलग-अलग रहने पर अपूर्ण हैं अर्थात् सृष्टि-रचना नहीं कर सकते। जड़ तो चेतन के सान्निध्य से ही क्रियाशील होता है। अलग-अलग रहने पर निष्क्रिय चेतन भी अपने स्वभाव में रहता है जो व्याख्या एवं परिभाषा से परे की स्थिति है। ऐसा आर्ष ग्रंथों का मत है। यथा इस शरीर से चेतन (आत्मा) जो परम तत्त्व है के निकल जाने से देह निष्क्रिय हो जाता है और सारे तत्त्व बिखरने

लगते हैं। जड़ तत्त्व पाँच हैं : १. पृथिवी, २. जल, ३. अग्नि, ४. वायु, ५. आकाश। हमारे शरीर में भी इन तत्त्वों के केन्द्र मौजूद हैं जिन पर योग-क्रियाओं द्वारा नियंत्रण कर लेने पर अनेक कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं, इससे पूर्व नहीं। कहा भी है :

हर जगह मौजूद है, पर नजर में आता नहीं।
योग साधन के बिना उसको कोई पाता नहीं।।

देखने में पाँचों तत्त्व एक-दूसरे के विरोधी हैं। अग्नि और जल एक-दूसरे के अस्तित्व को मिटाने के लिए तत्पर रहते हैं। यह स्थिति तबतक रहती है जबतक इनका संतुलन बिगड़ा रहता है। दोनों के मिलन से एक प्रचंड ऊर्जा का सृजन होता है।

सारा संसार सूर्य की उष्णता एवं चन्द्रमा की शीतल ऊर्जा से चल रहा है। यदि हम अपने अन्दर झाँककर देखें तो दोनों ऊर्जा ही हमारे जीवन की आधार हैं।

हमारा शरीर इसी ऊर्जा के कारण स्थिर है। इसके न्यून या अधिक होने पर हम रोगग्रस्त हो जाते हैं और किसी एक के न होने पर हम जीवित नहीं रह सकते। तभी तो हमारी नासिका के दो छिद्र हैं जिनमें से एक दाहिना स्वर सूर्य-स्वर तथा दूसरा चंद्र स्वर कहा जाता है। सूर्य-स्वर से गर्म तथा चंद्र-स्वर से शीतल वायु अन्दर प्रविष्ट होती है। शरीर की स्थिति, भोजन के प्रकार एवं कार्य की दशा के अनुसार ये स्वर स्वाभाविक रूप से बदलते रहते हैं और जब इनकी स्वाभाविकता में रुकावट आ जाती है तो एक ही प्रकार का स्वर चलने के कारण हम बीमार हो जाते हैं। गर्म स्वर के चलने से गर्मी के रोगों के तथा शीतल स्वर चलने से ठण्डक के रोगों के शिकार हो जाते हैं। इनको योगक्रियाओं के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है तथा प्राणायाम के द्वारा इसकी चिकित्सा की जाती है। इसे प्राण-चिकित्सा कहा जाता है, जो विश्व को पहली बार भारत के ही ऋषि-मुनियों ने दी जिसे हम भूलने लगे हैं।

आज के औद्योगिक युग में वायु के प्रदूषण के कारण सबसे बड़ा दुष्प्रभाव हमारे नासिका-तंत्र पर पड़ा है। आज अधिकांश बच्चे, स्त्री एवं पुरुष नाक के स्थान पर मुँह से श्वास लेते देखे जाते हैं जो आगे चलकर भयावह बीमारी, जैसे रक्तचाप के असंतुलन, प्रमेह, कैंसर आदि से पीड़ित हो जाएँगे और हो रहे हैं। यदि इस विनाश के प्रतीक औद्योगिकीकरण को नहीं रोका गया तो मानव-जाति ही नहीं, समस्त प्राणियों का जीवन खतरे में पड़ जाएगा।

तो आइये इस उपयोगी तंत्र को ठीक रखने के लिए कुछ सरल उपायों की चर्चा करें।

१. प्रतिदिन सर्दी के दिनों में सोते समय अपनी नासिका के दोनों स्वरों में सरसों का शुद्ध तेल लगाकर सोयें।

२. गर्मियों में ठण्डे-ताजे जल से नेति करें।

३. नेति के उपरान्त कपाल-भाँति अवश्य करें।

४. सप्ताह में एक बार सारे शरीर में तेल की मालिश अवश्य करें।

सरसों के तेल में एक बड़ी विशेषता है कि यह शरीर को वातानुकूलित बनाने में सहायता करता है।

ये स्वर आग और पानी के प्रतिनिधि हैं। इनमें आग ऊर्ध्वगामी एवं पानी अधोगामी है। अग्नि का सान्निध्य कल्याण की ओर ले चलता है तथा जल की अधिकता निम्नता की ओर, परन्तु ये जब सम अवस्था में रहते हैं तब हमारा सुष्मना स्वर चलता है। तब सात्त्विक ,चिंतन की ओर अग्रसर होते हैं। इस अवस्था में संसार की कोई शक्ति हानि नहीं पहुँचा सकती।

आज हम देख रहे हैं कि चारों ओर सूखा पड़ा है, ब्रह्माण्ड में अग्नि प्रबल हो रही है। उसी कारण इस पिण्ड में भी अग्नि अर्थात् क्रोध पनप रहा है। इसी कारण चारों ओर आतंकवाद तथा भ्रष्टाचार का बोलबाला है। हर व्यक्ति तीक्ष्ण वचन बोलता है। आज आवश्यकता जल तत्त्व के बढ़ाने की है। प्रेम में जल-तत्त्व प्रधान हो जाता है। तभी तो डॉ० कमल जी ने खून के स्थान पर प्रेम को स्थान दिया है और कहते हैं—तुम मुझे प्रेम दो, मैं तुम्हें पूर्ण स्वतंत्रता दूँगा। आज हमें अपने पिंड में प्रेम अर्थात् जल-तत्त्व की वृद्धि करनी है और इसके तीन उपाय हैं— १. ईश्वर-भजन, २. तीक्ष्ण भोजन का त्याग और सात्त्विक भोजन का ग्रहण, ३. योग-साधना। □

भोजन

शाकाहार क्यों ?

—डॉ० डी० सी० जैन

अध्यक्ष न्यूरोलॉजी विभाग, सफदरजंग हस्पताल, नई दिल्ली

दुनिया के उत्कृष्ट कोटि के चिकित्सकों और वैज्ञानिकों का कहना है कि शाकाहार भोजन-पद्धति सर्वश्रेष्ठ है। वैज्ञानिकों ने शाकाहार में भोज्य तन्तु अधिक पाये हैं। भोज्य तन्तुओं की प्रचुरता से आँतों में भोजन का हलन-चलन व्यवस्थित रहता है; आँतों का कार्य ठीक प्रकार से चलता है; आँतों में कैंसर की सम्भावना कम हो जाती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि आँतों के कैंसर का एक प्रमुख कारण मांसाहार है। यदि शाकाहार किया जाता है तो कब्ज, कोलाइटिस, हरनिया की बीमारी नहीं होती है।

शाकाहार से हृदय-रोगों की रोकथाम की जा सकती है। अधिकांश व्यक्ति जो हृदय-रोग से पीड़ित हैं, वे भोजन में वसायुक्त (चर्बी) पदार्थ अधिक खाते हैं जिससे उनके रक्त में कोलिस्ट्राल की मात्रा अधिक हो जाती है। कोलिस्ट्राल की अधिकता के कारण उनकी रुधिर-नलिकाएँ तंग हो जाती हैं और धीरे-धीरे बन्द हो जाती हैं जिससे रक्त का प्रवाह बन्द हो जाता है। हार्ट-अटैक की बीमारी का यह प्रमुख कारण है। अमेरिका के उच्चकोटि के डॉक्टर ब्राउन और गोल्ड स्टोन का कहना है कि उनके देश में हार्टअटैक की बीमारी का प्रमुख कारण भोजन में वसा अधिक होना है।

विश्व स्वास्थ्य संघ ने १६० बीमारियों के नाम अपने समाचारपत्र में घोषित किए हैं जो मांसाहार से फैलती हैं। इन बीमारियों में मिर्गी की बीमारी प्रमुख है। यह बीमारी मस्तिष्क में टीनिया सोलिइम नाम के कीड़े से हो जाती है। यह कीड़ा सूअर का मांस खाने से हो जाता है। इसी प्रकार जो जानवर गंदा पानी-भोजन लेते हैं उनके शरीर में अनेक कीटाणु होते हैं। इन जानवरों को खाने से मनुष्य के शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं।

पशु-पक्षी, पेड़-पौधे पर्यावरण के सन्तुलन में अद्‌भुत भूमिका निभाते हैं। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि भूमि की उर्वरा शक्ति पेड़ों और जानवरों पर निर्भर करती है। मेंढक जैसा प्राणी कृषि को उपजाऊ बनाता है। इसलिए हरेक प्राणी का योगदान पर्यावरण के संतुलन में महत्त्वपूर्ण है। यदि जानवरों को मनुष्य खाकर नष्ट कर दे तो यह संसार उसके रहने योग्य नहीं रहेगा और न ही यह धरती उपजाऊ रहेगी।

सारांश यह है कि शाकाहार भोजन-पद्धति पशु और मानव के लिए तथा विश्व से हिंसा को दूर करने की दिशा में ठोस कदम है। हरेक व्यक्ति को इस कार्य में अपना व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामुदायिक सहयोग प्रदान करना चाहिए। □

लघु कथा

समझदार बहू

—सोहनलाल गांधी
५६७/६, खैल बाजार, पानीपत (हरियाणा)

हमारे पड़ोस में एक परिवार रहता है। अभी कुछ महीने पूर्व उनके लड़के का विवाह हुआ। आए दिन सास-बहू का झगड़ा होने लगा। पत्नी सुशिक्षित होने के साथ-साथ समझदार भी है। बहुत चाहकर भी वह अपनी सास से समझौता न कर सकी।

एक बार लड़के की बुआ उनके घर आई। उन्होंने जब घर में झगड़ा देखा तो उन्हें अच्छा न लगा और उन्होंने बहू से कहा, "ऐसा करो, जो शादी के पहले का सामान है, वह सास को दे दो और अलग-अलग रहकर खाना बनाओ, घर में शांति हो जाएगी।" सास को यह बात जँच गई, उसने अपना सारा सामान समेट लिया तो बहू ने कहा, "माँजी, अब तो आप खुश हैं?" सास ने जब 'हाँ' कही तो बहू ने हँसकर कहा, "आप 'इन्हें' भी साथ ले जाएँ, यह भी शादी के पहले के हैं।"

सास का मुँह देखने लायक था और बुआजी ने बहू को गले से लगा लिया।

□

आर्यसमाज क्या मानता है ?

१. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, जो ईश्वर ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों के पथ-प्रदर्शन और ज्ञानार्थ प्रदान किया। वेदों को पढ़ने का अधिकार बिना भेदभाव के संसार-भर में सब स्त्री-पुरुषों को है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द, न्यायकारी, अजन्मा, सर्वव्यापक, अनादि, सृष्टिकर्त्ता, कर्मफलदाता आदि गुणयुक्त तथा मनुष्यमात्र का उपास्य देव है। एकमात्र उसी की उपासना करनी चाहिए।

३. वेदों में ईश्वर का नाम ओम् (परम रक्षक), भूः (सबका प्राणाधार), भुवः (सर्व दुःखनाशक), स्वः (सर्व सुखदाता) एवं माता, पिता, बन्धु, इन्द्र आदि कई प्रकार से आया है।

(क) जड़ पदार्थों—अग्नि, सूर्य, जल, वायु, पृथिवी आदि के गुणानुसार भी ईश्वर की सत्ता-महत्ता समझाने को वेद में ईश्वर का नाम अग्नि, सूर्य आदि आया है। इससे भ्रम पैदा होकर जड़ पदार्थों की पूजा भी कोई-कोई करने लगे। यह मान्य नहीं।

(ख) रोगों में 'ज्वर' प्रमुख है। तुलसी और पीपल को शास्त्र में ज्वर की प्रमुख ओषधि माना है। परन्तु उनसे लाभ उठाना तो रहा दूर, हम उनकी परिक्रमा करते हैं, सूत लपेटते हैं और उन्हें तुलसी भगवती तथा पीपल महादेव कहते हुए नमस्कार करते हैं। कितनी अज्ञानता आ गई है!

४. ईश्वर निराकार और सर्वव्यापक है। उसकी मूर्ति नहीं हो सकती। ईश्वर के स्थान में देवी-देवताओं की कल्पित मूर्तियों की पूजा वेदानुकूल नहीं; मूर्तिपूजा में भावना की युक्ति ठीक नहीं। भावना सीधे ही सत्-चित्-आनन्द ईश्वर में होना ईश्वर-भक्त को शीघ्रातिशीघ्र सफलता प्राप्त कराता है। 'मन्दिर' वही कहलाने

योग्य है, जहाँ नित्यप्रति ईश्वरोपासना-धर्म, धार्मिक जीवन और सुकर्म का उपदेश मिले। मन्दिर जाकर घंटा बजा दिया, पैसा चढ़ा दिया, चरणामृत ले लिया, इससे कुछ नहीं बनता, यदि वहाँ जाकर बैठे नहीं, उपदेश नहीं सुना, जीवन और कमाई में पवित्रता नहीं लाई।

५. जीव ब्रह्म से भिन्न है। अद्वैतवादियों का 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) कहना युक्तियुक्त नहीं। यदि हम ही ब्रह्म हैं, तो पूजन किसका? प्रार्थना किसके आगे? दुःख में फिर आश्रय किसका?

'जगत् मिथ्या' कहना भ्रमजनक वाक्य है। जगत् स्पष्टतः इन्द्रिय-गम्य है, सत्य है। हाँ, इन्द्रियों के रसों में और धनोपार्जन में सुख मानना एवं उस प्रकार के जीवन तक ही जगत् को सीमित समझना मिथ्या है। जगत् के प्रलोभनों, विषय-विकारों में फँसना मिथ्याचरण है।

६. हरिद्वार आदि को सत्संग के लिए जाना तो ठीक है, परन्तु 'गंगा, यमुना आदि में स्नानमात्र, हमें पापों के फल भोगने से छुड़ा सकते हैं', ऐसा मानना तो विवेकी श्रीमानों को योग्य नहीं। अच्छे कर्मों से सुख और बुरे कर्मों से दुःख भोगना अवश्यम्भावी है।

तीर्थों पर जा मरने से सीधे स्वर्गलोक जा पहुँचने की भावना रखनेवाले वृद्ध स्त्री-पुरुषों की मति विकृत हो चुकने का चिह्न है। सत्संग के लिए तीर्थ भले ही जाओ।

७. स्वार्थियों ने हिन्दुओं के दान की प्रथा को बिगाड़कर रख दिया है।

चेले-चेली बनकर 'सम्पत्तियों के मालिक गुरुओं' को धनमाल अर्पण कर देना शास्त्र-विरुद्ध है। महाभारत का प्रमाण स्पष्ट है—**'धनिने धनं मा प्रयच्छ, दरिद्रान् भर कौन्तेय''**, अर्थात् धनियों को धन मत दो, गरीबों, अनाथों, दुःखी-दरिद्रों की पालना करो। इसी प्रकार विद्यालयों, गुरुकुलों, अस्पतालों, परोपकार की परीक्षित संस्थाओं, धनहीन सच्चे त्यागी तपस्वी धर्मप्रचारकों आदि को ही दान देना पुण्य है। मुफ्तखोरों को दान देने से पाप लगता है।

८. सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण छाया मात्र हैं, यह सभी पढ़े-लिखे जानते हैं। उन्हें राहु-केतु से ग्रसा जाना मानना ठीक नहीं। ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों पर जाकर स्नान करने में पुण्य मानना अन्धविश्वास है। श्रीमानों को अब अन्ध-परम्परा से ऊँचा उठना योग्य है।

९. ईश्वर कभी किसी सुअर, कच्छ, मच्छ आदि की देह धारण करके अवतार नहीं लेता। बड़े-बड़े सनातनधर्मी अब पुराणों में ऐसे वर्णन को आलंकारिक मानने लगे हैं।

१०. ईश्वर कर्मों का फलदाता है, और उसके न्याय-नियम से कर्मों का फल अवश्य मिलता है। कोई ईश्वर का अवतार, 'खुदा का पैगम्बर' या 'खुदा का बेटा'

दुष्कर्म के फल-भोग से किसी को बचा नहीं सकता। ऐसा मानना कि दुष्कर्मी के पाप क्षमा हो सकते हैं, पाप को बढ़ावा देना है।

११. स्वर्ग-नरक कोई विशेष स्थान नहीं हैं। सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है, और वे भी इसी संसार में तथा इसी शरीर में भोगे जाते हैं। दरिद्रता, ऋण, रोग, क्रोध, विषय-विलासिता, परिवार आदि में कलह, मुकद्दमा, बेरोजगारी, सन्तान आदि की मृत्यु अथवा विमुखता ये नरक हैं। धर्मपरायणता, सुख, स्वास्थ्य, सम्पत्ति, सम्मान, ऐश्वर्य, अच्छे पति-पत्नी, माता-पिता, सन्तान आदि सम्बन्धियों का होना तथा शुभ कर्म में रुचि होना आदि, यही स्वर्ग है।

१२. पुण्य, दान, ईश्वरोपासना, स्वाध्याय, सत्संग, सदाचार, माता-पिता-गुरुजनों तथा दीन-दुःखी की सेवा, मांस-मदिरा और विषय-विलासिता का त्याग देवकर्म है।

१३. माता, पिता और आचार्य तीन गुरु होते हैं। जीवित माता, पिता और गुरुजनों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना ही श्राद्ध है। मृत पितरों के नाम पर श्राद्ध करना वेद-विरुद्ध और निष्फल है। 'सुमति और सत्संग' का लाभ प्रदान करने वाले सदाचारी निःस्वार्थ विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा करना आर्यसमाज पुण्य मानता है। श्राद्ध के 'विशेष दिन' ब्राह्मण को खिलाया हुआ पदार्थ मृत माता-पिता आदि को जा पहुँचेगा, ऐसा मानना अज्ञानता और अन्धविश्वास मात्र है—इस कटु सत्य के लिए क्षमा करना। वेद में 'श्राद्ध' का प्रतिपादन कोई नहीं दिखा सका, वेद में 'श्राद्ध' शब्द ही नहीं।

१४. वर्ण-व्यवस्था 'गुण, कर्म, स्वभाव' से है। ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य यदि आचार और विद्या से विहीन हो, तो उसका शूद्र वर्ण हो जाता है। जन्म से न कोई शूद्र है न ब्राह्मण। कर्म से ही वर्ण-व्यवस्था मानने योग्य है।

१५. ईसाइयों-मुसलमानों के धर्म में इस प्रश्न का कोई युक्तियुक्त उत्तर नहीं कि क्यों कोई अंगहीन, अस्वस्थ या दरिद्री के घर पैदा होता है, कोई सुन्दर, स्वस्थ धनी घराने में। केवल वैदिक (हिन्दू आर्य) धर्म में इसका उत्तर मिलता है कि पूर्व-जन्म के पुण्य-पाप के आधार पर यह भेद निर्भर है। ईसाई, मुसलमान 'खुदा की मर्जी' कहकर अपने खुदा को ही अन्यायी और निष्ठुर सिद्ध कर देते हैं।

१६. पशुओं के बलिदान से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता, धर्म या यज्ञ के नाम पर मन्दिर आदि में पशु-हिंसा करना घोर पाप है। अपने बच्चों की कामना के लिए दूसरों (गूँगे पशुओं) के गले काटना, अपनी और देवी-देवताओं की बुद्धि का अपमान करना है। इन्द्रियों का दमन, परोपकार, अग्निहोत्रादि अनुष्ठान, भले कार्यों में दान, विद्वानों का सत्संग, स्वाध्याय आदि 'यज्ञ' कहलाते हैं। अश्वमेध में घोड़ों की आहुति नहीं, अलंकार से अश्व (इन्द्रियों) के विषय-विकारों की आहुति देना ही अभिप्रेत है।

१७. भूत, प्रेत, जादू, टोना, तागा, तावीज, यन्त्र-तन्त्र, झाड़फूँक सब मूर्खों को बहकाने, ठगने को है। ज्योतिषियों के परामर्श से, रुपये देकर, कष्ट-निवारण के लिए किसी दूसरे से जाप कराना अपने-आपको धोखा देना है। स्वयं ही अर्थ विचारकर महामृत्युंजय, गायत्री मन्त्र का जाप करें और प्रभु की कृपा का साक्षात् प्रादुर्भाव देखें।

१८. बिना किसी स्वार्थ के संसार का उपकार करना, अज्ञान, नास्तिकता और कुप्रथाओं का नाश करना, पीस डालने वाले रीति-रिवाज की फ़िजूलखर्चियों से गरीबों को बचाना, सदाचरण और प्रभुभक्ति करना-कराना आर्यसमाज के मूल मन्त्र हैं।

१९. आप्त धर्म के रूप में युवा विधवाओं का पुनर्विवाह होना चाहिए। कुकर्म, अधर्म, अपवाद, अपयश, पश्चात्ताप से बचना चाहें तो 'युवा विधवा' का पुनर्विवाह कर दें।

२०. शूद्रों या अपने से भिन्न जाति के साफ-सुथरे स्त्री-पुरुष द्वारा पकाये हुए भोजन से धर्म भ्रष्ट नहीं होता। परन्तु अधर्म, अन्याय, घूस, ब्लैक मार्किट, मिलावट आदि पाप-कर्मों से प्राप्त होने वाले धन से खरीदे हुए अन्न के खाने से अवश्य धर्म भ्रष्ट होता है। (जात्यभिमानी जन हृदय पर हाथ धरकर अपनी-अपनी कमाई और जीवनी को इस कसौटी पर परखें।)

२१. आर्यसमाज कोई अलग सम्प्रदाय नहीं। आर्य का मतलब श्रेष्ठ है, आर्यसमाज श्रेष्ठ, सदाचारी, आस्तिक, ईश्वर-विश्वासी और वैदिक धर्मी जनों का संगठन है। उपरिलिखित गुण धारण करनेवाले सभी व्यक्ति श्रेष्ठ हैं और आर्य हैं, चाहे वे किसी सम्प्रदाय के हों। आर्यसमाज सम्प्रदायवाद को स्वीकार नहीं करता।

२२. 'विद्या धर्मेण शोभते।' अधर्मी, कर्त्तव्यहीन, चरित्रहीन, स्वार्थरत तथा 'खाने-पीने और मन की मौज' (Eat, Drink and be Merry) तक जिसका जीवन सीमित हो, ऐसे किसी भी दुर्गुणयुक्त ग्रेजुएट एवं डबल ग्रेजुएट को विद्वान् कहना अशोभनीय है। विद्या की शोभा पवित्र जीवन से ही है।

२३. आर्यसमाज ऐसा मानता है कि 'सन्ध्या, प्रार्थना, अग्निहोत्र, यज्ञ, स्वाध्याय, पूजा-पाठ, नित्य कर्म' करते हुए, यदि किसी व्यक्ति में 'सदाचार, दान, पुण्य, पवित्र कमाई, शुद्ध आहार, सत्य व्यवहार नहीं', तो वे नित्यकर्म सभी निरर्थक हैं। इसलिए सभी लोग आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनें। यही आर्यसमाज की मान्यता है, यही आर्यसमाज का संदेश है। □

—संकलित

कौन अस्पृश्य, कौन तत्त्वज्ञानी ?

आद्य शंकराचार्य गंगा-स्नान के लिए जाने वाले थे। उनसे बहुत आगे उनका शिष्य-वर्ग चल रहा था। वे सभी शिष्य ब्राह्मण वाचक थे। चलते हुए मार्ग में शिष्यों को एक भंगी दिखाई दिया तो उन्होंने उससे मार्ग से हट जाने के लिए कहा। उसने पूछा, क्यों? तो उसको बताया गया कि इस मार्ग से शंकराचार्य महाराज स्नान के लिए जा रहे हैं। उसने कहा, यह तो मेरे सौभाग्य की बात है, मैं भी उनसे कुछ पूछना चाह रहा था, आज यह अवसर मिल गया है। ब्राह्मणों ने उससे कहा कि क्योंकि वह शूद्र है, अतः उसको उनसे कुछ भी पूछने का अधिकार नहीं है।

ब्राह्मणों ने अनेक भाँति शूद्र को पथ से विचलित करने का यत्न किया। कहा कि वे जगद्गुरु हैं, सारा संसार उनकी विद्वत्ता का लोहा मानता है, आदि-आदि। किन्तु उस भंगी का कहना था कि जब तक वे मेरे प्रश्नों का समाधान नहीं कर देते तब तक उनको जगद्गुरु कहलाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि मैं भी उसी जगत् में सम्मिलित हूँ।

इसी विवाद में भंगी तो हटा नहीं किन्तु शंकराचार्य का रथ वहाँ तक पहुँच गया। उनके रथ को देखकर वह भंगी आगे बढ़ने लगा। लोगों ने रोकना चाहा किन्तु वह रुका नहीं और जोर से बोला, "मुझे जगद्गुरु के दर्शन करने का अधिकार है। मुझे इससे कोई वंचित नहीं रख सकता।"

यह ध्वनि शंकराचार्य के कानों में पड़ी तो उन्होंने शिष्यों से पूछा कि क्या बात है? उन्हें बताया गया कि कोई शूद्र उनके दर्शन करना चाहता है और उसकी कुछ जिज्ञासा भी है। आचार्य ने कहा, "उसे आने दो, वह शूद्र नहीं है, उसका उच्चारण शुद्ध है।"

भंगी जब आचार्य के सम्मुख गया तो उसने नतमस्तक उनको प्रणाम किया। फिर उसने कहा, "मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।"

आचार्य ने अनुमति दे दी। उसने कहा, "मुझे मार्ग से हटाने का आदेश क्यों दिया गया?"

आचार्य ने प्रश्न की गम्भीरता को शान्ति से सोचा और फिर मुस्कराए। किन्तु उनके उत्तर के पहले ही एक ब्राह्मण ने चीखकर कहा—"इसलिए कि तू

चाण्डाल है।"

"इसका अर्थ तो यह है कि आप मुझसे घृणा करते हैं।"

आचार्य गम्भीर ही थे। मेहतर ने फिर पूछा, "आर्य, मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप किससे घृणा करते हैं? शरीर से, आत्मा से या कर्म से?"

आचार्य ने प्रश्नों को ध्यान से सुना। मेहतर फिर बोला—"क्या आत्मा से? आत्मा तो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व है। वह तो निर्विकारी है।"

आचार्य ने कहा, "मैं आत्मा से घृणा नहीं करता।"

"तो क्या शरीर से? हाँ, यह अवश्य घृणित पंचतत्त्वों से बना हुआ है। पृथिवी अनन्त मलिनताओं की केन्द्र है। जल में अनन्त जीव और जीवाणु वास करते हैं और उसमें मल-मूत्र करते हैं। अग्नि सर्व-भक्षी है। वायु में पृथिवी पर सड़नेवाले दूषित द्रव्यों की दुर्गन्ध मिली हुई है, और आकाश भी इनसे खाली नहीं है। इन्हीं तत्त्वों से हमारी देह बनी हुई है। ऐसी अवस्था में इससे घृणा होना अनिवार्य है। किन्तु इन द्रव्यों से तो आपका भी शरीर बना हुआ है। और जब आप ऐसे घृणा करते हैं तब उसे स्वयं क्यों धारण किए हुए हैं?"

"नहीं, मैं शरीर से भी घृणा नहीं करता।" आचार्य ने उत्तर दिया।

"तब आप कर्म से घृणा करते होंगे। किन्तु सुना है कि बिना कर्म के तो निस्तार नहीं होता, कर्म करने में ही जीवन की सार्थकता है। कर्म-त्याग तो महान् खेदजनक कार्य होगा। मेरे इस कर्म को त्याग देने से गन्दगी फैलेगी और उससे असंख्य रोगाणु उत्पन्न होंगे, जिनसे जीवमात्र का अकल्याण हो सकता है। इसलिए मेरे लिए ऐसा करना संभव नहीं। मैं जान-बूझकर ऐसी भूल नहीं कर सकता। क्या आप यह चाहते हैं कि मैं भी कर्म को घृणित समझूँ और लोगों को रुग्ण होने का अवसर दूँ?"

आचार्य ने उसके शब्दों को सुना और उनमें भरे हुए तत्त्व-ज्ञान को समझा। वे विचार में इतने गहरे लीन थे कि उन्हें पता ही न रहा कि वे गंगा-स्नान के लिए आए हैं। उनका सिर मन-ही-मन मेहतर के चरणों पर गिर पड़ा। उनके मुख से निकल पड़ा—"भगवन्, निःसन्देह मैं भूलता हूँ। कर्म से घृणा करना भी अज्ञान है। आपने आज मेरा अज्ञान दूर कर दिया—सचमुच, जगद्गुरु मैं नहीं, आप ही हैं।"

लोगों ने इस दृश्य को आश्चर्य से देखा—मेहतर के चरणों में इतना बड़ा विद्वान् गिर पड़ा है!

शंकराचार्य लौट पड़े। शिष्यों ने पूछा—"आचार्य, गंगा-स्नान तो किया ही नहीं?"

"नहीं, मैं स्नान कर चुका। आज तो ऐसा स्नान हुआ है, जो कभी बड़े भाग्य से ही प्राप्त होता है।" □

दिन व रात

—पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥

—ऋ० १।६५।१

ऋषिः— कुत्स आङ्गिरसः। **देवता**— सत्यगुणविशिष्टोऽग्निः शुद्धोऽग्निर्वा।
छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्। **स्वरः**—धैवतः।

१. **द्वे**=ये दिन और रात दो **विरूपे**=परस्पर विरुद्ध रूपवाले (दिन चमकवाला तो रात्रि अन्धकारवाली, इस कारण दिन को 'अहरर्जुञ्च' श्वेत कहा है और 'अहश्च कृष्णम्' रात्रि को काला) **चरतः**=गति करते हैं। एक के पश्चात् दूसरे का आना क्रमशः होता ही रहता है। ये दोनों **स्वर्थे**=उत्तम प्रयोजनवाले हैं। दिन क्रियाशीलता के द्वारा मनुष्य में शक्ति उत्पन्न करता है और रात्रि गाढ निद्रा में ले-जाकर—क्रिया को रोककर शरीर का शोधन करनेवाली होती है। इस शोधन से यह जीवन को दीर्घ बनाती है। २. रात्रि से सूर्य उत्पन्न होता-सा प्रतीत होता है और दिन की समाप्ति पर चमकवाली होने से यह अग्नि दिन से उत्पन्न होती है। (रात्रेर्वत्सा श्वेत आदित्यः, अह्नोऽग्निस्ताम्रोऽरुणः, इति—तै०)। ये दिन और रात एक-दूसरे के **वत्सम्**=पुत्र को **उपधापयेते**=दूध पिलाती हैं। दिन 'रात्रि के पुत्र सूर्य को' तथा रात्रि 'दिन के पुत्र अग्नि को'। प्रातः सूर्य के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं और रात्रि (सायं) में अग्नि के लिए। ३. **हरिः**=रसों का हरण करनेवाला अथवा रोगों का हरण करनेवाला सूर्य **अन्यस्याम्**=अपनी रात्रिरूप माता से भिन्न दिन में **स्वधावान्**=अन्नवाला होता है—सूर्य के लिए आहुतियाँ दिन में दी जाती हैं और **शुक्रः**=मलों के दहन से शुचिता को उत्पन्न करनेवाला अग्नि **अन्यस्याम्**=अपनी दिनरूप माता से भिन्न रात्रि में **सुवर्चाः**=उत्तम वर्चस्‌वाला—उत्तम तेज व चमक-वाला **ददृशे**=दीखता है। इसके लिए इसे सायं के समय ही आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रातः सूर्य का महत्त्व था, अब सायं अग्नि का महत्त्व है। ४. दिन में सूर्य 'हरि' है, हमारे रोगों का हरण करनेवाला है—हम सूर्य के समान ही श्रमशील होते हैं तो यह हमारे दारिद्र्य को दूर करता है। रात्रि में अग्नि 'शुक्र' है। हम अपनी जाठ-राग्नि को ठीक रखते हैं तो यह शरीर का ठीक शोधन कर देती है। कमरे में अग्नि

जलाते हैं तो यह वहाँ के दुर्गन्धित वायु को छिन्न-भिन्न करके वहाँ के वायु को पवित्र करनेवाली होती है।

भावार्थ—हमारे जीवनों में दिन-रात व सूर्य और अग्नि का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हमें इनके सम्पर्क से नीरोग व पवित्र बनना है। □

कैंसर का इलाज

लेखक—**वाई० जगदेव**

विश्व में, हर क्षेत्र में तकनीकी विकास दिन दूना, रात चौगुना हो रहा है। जो देश अभी पूर्ण विकसित नहीं हुए हैं, वहाँ भी तकनीकी विकास की रोशनी खूब चमचमा रही है। जीवन में कदम-कदम पर आम आदमी भी इस विकास को महसूस कर रहा है। यह विकास हर क्षेत्र में होने पर भी, एक क्षेत्र अवश्य ऐसा है, जिस पर ध्यान तुरन्त जाता है--चिकित्सा। यहाँ भी कैंसर के इलाज में तो विशेष ही प्रगति हुई है। आधुनिक उपकरणों और रोग-निदान की नई-नई तकनीकों ने कैंसर के मरीजों के मन में आशा की नई किरण जगा दी है।

आज कैंसर का पता लगाना और इलाज करना तो, कल की तुलना में आसान हो ही गया है, कैंसर-ग्रस्त अंगों के पुर्नानिर्माण एवं कैंसर-मरीजों की समाज में पुनस्स्थापना भी, पर्याप्त आसान हो चली है। अब तक कैंसर के इलाज की मुख्य तीन पद्धतियाँ थीं—सर्जरी, केमो-थेरापी और रेडिएशन-थेरापी। आज परमाणु-शक्ति के क्षेत्र में जो नया शोधकार्य हुआ है, उससे कैंसर के इलाज की एक और पद्धति सामने आई है—न्यूक्लियर मेडिसिन या परमाणु ओषधि।

भारत में कैंसर के इलाज की जो सुविधाएँ आज उपलब्ध हैं, उन्हें किसी प्रकार भी पर्याप्त नहीं माना जा सकता। देश में आज कैंसर के मरीजों की संख्या तीन लाख तक पहुँच रही है, याने प्रत्येक एक लाख की आबादी में १४० जने ऐसे हैं, जो कैंसर से पीड़ित हैं। केन्द्र सरकार ने अभी हाल ही में, एक महत्त्वाकांक्षी योजना तैयार की है—नेशनल कैंसर-कंट्रोल प्रोग्राम। इस योजना के तहत न केवल प्रत्येक जिले में, बल्कि प्रत्येक तहसील में, ऐसी सुविधाएँ मुहैया की जायेंगी, जिनसे कैंसर का निदान तो हो ही जाए, इलाज भी हो जाए।

जैसाकि सर्वविदित है, कैंसर का पता यदि प्रारंभिक स्थिति में चल जाए, तो मरीज के पूर्णतया स्वस्थ हो जाने की अधिकतम संभावना रहती है। यदि कैंसर का निदान तहसील-स्तर पर होने लगा, तो निश्चित है कि कैंसर के कारण मरनेवालों की संख्या बहुत नीचे उतारी जा सकेगी। विडम्बना यही है कि कैंसर का निदान

जब तक हो पाता है तबतक अधिकांश मरीज ४० वर्ष या इससे अधिक उम्र के हो चुके होते हैं। न केवल उनकी रोगों का प्रतिकार करने की शक्ति घट चुकी होती है, बल्कि स्वयं कैंसर भी अपनी प्रारम्भिक स्थिति से बहुत आगे तक जा चुका होता है। दोनों वजहों से; कैंसर-मरीज की सहायता केवल एक सीमा में हो पाती है। फिर भी, एक बार कैंसर का पता चल जाने के बाद, मानव-निर्मित विभिन्न उपकरण, मानव की सहायता के लिए तत्काल प्रस्तुत हो जाते हैं।

कैंसर का पता लगाने के पुराने तरीके ऐसे थे, जिनमें उन अंगों पर या तो सर्जरी करनी पड़ जाती या बायप्सी, जिनमें कैंसर हो चुका होने की सम्भावना डॉक्टर को नजर आ जाती। आज कैंसर-निदान के लिए न तो सर्जरी जरूरी रह गई है, न बायप्सी, क्योंकि कम्प्यूटर-टोमोग्राफीऔर अल्ट्रासाउण्ड तकनीकें विकसित हो चुकी हैं। ये तकनीकें कैंसरग्रस्त कोषों को सुई की नोक जैसी सटीकता के साथ पहचान सकती हैं। न केवल इतना, बल्कि कैंसरग्रस्त अंगों के विशिष्ट फोटोग्राफ भी खींच सकती है, जिससे इलाज एवं रोग-ग्रस्त अंगों की पुनर्रचना आसान हो जाती है।

अल्ट्रा-साउण्ड लहरें पूरे शरीर पर फैंकने से पता लगाया जा सकता है कि कैंसरग्रस्त कोष अगर कहीं हैं, तो कहाँ हैं। ऐसी स्कैनिंग के लिए तीन प्रकार के प्रोब उपलब्ध हैं—ट्रांस-प्रोब, इण्ट्रा-ऑपरेटिव प्रोब और पंक्चर-प्रोब। ये प्रोब कैंसर-ग्रस्त (कोषों के हाई-रिजॉल्यूशन बिम्ब खड़े कर सकते हैं। सरल शब्दों में, इन उपकरणों से, कैंसरग्रस्त) अंगों की भीतरी तस्वीर बहुत ही साफ-साफ देख सकते हैं। फलस्वरूप डॉक्टर के लिए यह फैसला करना आसान हो जाता है कि किस मरीज के लिए कौन-सा उपचार सर्वश्रेष्ठ रहेगा।

किन्तु ये आधुनिक तकनीकें जिन केन्द्रों में उपलब्ध हैं, भारत में उनकी संख्या बहुत कम है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ा नाम जिसका है, वह है परेल बम्बई का टाटा मेमोरियल हास्पिटल, जिसकी ख्याति अब विदेशों तक भी पहुँच चुकी है। इसकी इमारत में अब दो नए संस्थान और खुले हैं, जो कैंसर के निदान और उपचार में क्रांति ही ला देने पर आमादा हैं। केन्द्र सरकार द्वारा संचालित भाभा एटॉमिक रिसर्च सेण्टर उर्फ बार्स के ही सुन्दर सहयोग के कारण इन दो नए संस्थानों को अस्तित्व में लाया जा सका है। एक संस्थान है बार्स कैंसर रिसर्च सेण्टर और दूसरा है बार्स न्युक्लियर मेडिसिन सेण्टर। दोनों संस्थानों को बार्स ने न केवल आधुनिकतम तकनीकी उपकरण दिए हैं, बल्कि उनके सुचारु संचालन के लिए सुयोग्य वैज्ञानिकों, तकनीशियनों एवं सहायकों की टीम भी मुहैया कर दी है। न्युक्लियर मेडिसिन सेण्टर तो १९६२ में ही खुल गया था, बार्स रेडियो-एक्टिविटी सेण्टर की एक शाखा के रूप में।

टाटा मेमोरियल हास्पिटल में आज कैंसर के मरीजों के लिए ३०० पलँग हैं। रोज जिस बड़ी तादाद में कैंसर के मरीज इस हास्पिटल में आते हैं, उसे देखते हुए

३०० पलँगों की यह संख्या बहुत ही छोटी कही जाएगी। ज्यादातर मरीज महाराष्ट्र के देहात से आते हैं, जिनमें से अधिकांश का कैंसर असाध्य के स्तर तक बढ़ चुका होता है। हास्पिटल में दाखिला पाने के लिए ये मरीज फुटपाथों पर कतार लगाए बैठे रोज ही देखे जा सकते हैं। □

अभी साँस है गला मत घोटो

(लेखक—आचार्य विश्वश्रवा व्यास, वेद मन्दिर, बरेली)

आर्यसमाज में शास्त्रार्थ-युग पूर्णतया समाप्त हो गया। यह सभी अनुभव कर रहे हैं। स्वामी दयानन्द ने सब धर्मावलम्बियों से शास्त्रार्थ करके वैदिक धर्म का प्रचार किया। जगद्गुरु शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ करके बौद्धों को परास्त किया। आर्यसमाज के प्रारम्भिक युग से लेकर सब विद्वान् शास्त्रार्थ कर लेते थे। आर्य-समाज के जलसों पर जो विद्वान् जाते थे वे व्याख्यान भी देते थे और शास्त्रार्थ भी करते थे। पं० लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० रामचन्द्र देहलवी, पं० बुद्धदेव मीरपुरी, पं० चमूपति जी, पं० भगवद्दत्त जी लाहौर, पं० भीमसेन शर्मा, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, पं० कालीचरन जी, पं० आर्यभिक्षु, पं० विद्याभिक्षु, श्री अमरस्वामी, पं० बिहारीलाल शास्त्री, श्री बल्देवप्रसाद सोजन बरेली, पं० शिव शर्मा (शिव स्वामी), पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री, पं० विश्वबन्धु शास्त्री आदि अनेक विद्वान् शास्त्रार्थ-महारथी हुए जिन्होंने शास्त्रार्थों में सदैव विजय प्राप्त की। उन्हें शास्त्रार्थों के कारण बहुत स्वाध्याय करना पड़ता था और उन दिनों खण्डन-मण्डन की पुस्तकें भी बहुत प्रकाशित होती थीं। उन दिनों एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं था जो आर्यसमाज के जलसों में न जाता हो और शास्त्रार्थ न कर लेता हो। शास्त्रार्थों में बड़ी भीड़ होती थी और उसका प्रभाव जनता पर पड़ता था और सैकड़ों व्यक्ति शास्त्रार्थ सुनकर आर्यसमाजी हो जाते थे।

इस समय आर्यसमाज के जलसों में जो उपदेशक आते हैं उनमें किसी में शास्त्रार्थ करने की योग्यता नहीं; वे केवल रटे हुए व्याख्यान देकर चले जाते हैं। अब स्कूल-कालिजों के मास्टर भी उपदेशक बन गये हैं जो अपने रटे हुए भाषण देने जलसों में शनिवार-इतवार की छुट्टी में आ जाते हैं और कुछ लोगों ने अपनी पत्नियों को कुछ व्याख्यान रटा दिये हैं और वे जलसों में जाकर दक्षिणा लेकर परिवार का पालन-पोषण करती हैं। सम्भव है आगे चलकर बच्चे भी आर्यसमाज के उपदेशक बन जायँ। इस समय आर्यसमाज के जलसों पर आर्यसमाज के

सिद्धान्तों पर व्याख्यान नहीं होते हैं। आजकल वे ही व्याख्यान हो रहे हैं जो सनातन धर्म और हिन्दू सभा के जलसों पर बोले जा सकते हैं।

कुछ लोग झूठा प्रोपेगण्डा करते हैं कि अब कोई शास्त्रार्थ करने नहीं आता; यह बात सर्वथा झूठ है। तुम शास्त्रार्थ नहीं करते हो। तुम्हारे जलसों में तो कहा जाता है कि बहनो, पतिव्रता बनो! बच्चो, माँ-बाप की आज्ञा मानो, दान करो, पुण्य करो, धर्म करो। इस पर क्या शास्त्रार्थ हो? यह तो सभी जगह बोला जा सकता है। मूर्तिपूजा बढ़ रही है, नए अवतार बन रहे हैं, कब्रपरस्ती बढ़ रही है, पाकिस्तान बन गया फिर भी भारत में मुसलमानों और ईसाइयों की संख्या बढ़ रही है, तुम इनके विरुद्ध कुछ नहीं बोलते हो तो शास्त्रार्थ करने कौन आवे?

पहले श्री बस्तीराम जी, श्री तेजसिंह जी, श्री नाथूराम शंकर आदि अनेक भजनोपदेशक व कवि हुए जो कुरीतियों और अवैदिक सिद्धान्तों का निर्भीक खण्डन करते थे; तब शास्त्रार्थ होते थे।

ऋग्वेद का एक मन्त्र है जिसका अर्थ है इन्द्र ने दधीचि की हड्डियों से सब वृत्रों का संहार किया। जब मनुष्य मर जाता है, उसकी हड्डियाँ शेष रह जाती हैं। जो हमारे शास्त्रार्थ-महारथी हुए हैं उनकी लिखी पुस्तकें अभी विद्यमान हैं, उनकी सहायता से शास्त्रार्थ-युग को पुनः जन्म देकर पाखण्डों का संहार किया जा सकता है। मेरे पास ये सारे ग्रंथ मौजूद हैं और लाखों का पुस्तकालय है तथा प्रेस भी है। मुझे शास्त्रार्थ का अनुभव भी है। लाहौर में जब मैं था तो वेद के रिसर्च में काम करता था, फिर शास्त्रार्थों में जाना पड़ता था। करनाल में मध्वाचार्य के साथ मेरा शास्त्रार्थ हुआ तथा चूनिया पंजाब में श्रीकृष्ण शास्त्री से, दिल्ली में रामाचार्य से, पीलीभीत में राजनरायन षट्शास्त्री ने शास्त्रार्थ हुए। इस प्रकार अनेक शास्त्रार्थ मैंने जीवन में किये हैं। काशी में मनायी जाने वाली शास्त्रार्थ-शताब्दी का संयोजक मैं ही था। मैंने शास्त्रार्थ की योजना बनायी कि एक शास्त्रार्थ-मण्डली बम्बई से, एक दिल्ली से, एक टंकारा से और एक कलकत्ता से चलेगी, परन्तु कोई विद्वान् इसमें सम्मिलित नहीं हुआ। जब काशी में शास्त्रार्थ-शताब्दी मनायी गयी तब हजारों आदमी 'हर हर महादेव' करते हुए हमारे पण्डाल में घुस आये थे। उसमें पाँचों शंकराचार्य और करपात्री आदि सभी हमारे सामने इकट्ठे होकर आये थे। उस समय क्या-क्या हुआ मैं नहीं लिखना चाहता।

मैं आर्यजगत् से प्रार्थना करता हूँ इस शास्त्रार्थ-युग को पुनः जन्म दो और जिन उपदेशकों को शास्त्रार्थ को रुचि है उन्हें आर्थिक सहयोग देकर हमारे पास भेजो। मेरी ८५ वर्ष की आयु है, न जाने कब शरीर छूट जाय, फिर इसे करनेवाला कोई नहीं है। दो व्यक्तियों को छोड़कर सभी विद्वान् आयु में मुझसे छोटे हैं। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक भी मुझसे छोटे हैं।

आर्यजगत् में १५ प्रतिनिधि सभायें हैं, प्रत्येक प्रतिनिधि सभा अपना एक

उपदेशक कुछ मास को मेरे पास भेजे, हम उन्हें तैयार कर देंगे। आर्यसमाजों का कर्तव्य है कि वे अपने यहाँ अन्तरंग सभा द्वारा एक विभाग आर्थिक सहायता देने को स्थापित करे, ताकि शास्त्रार्थ को जन्म देने के लिए मैं बाहर से आये हुए विद्वानों के निवास और भोजन की व्यवस्था कर सकूँ।

महर्षि दयानन्द ने हरिद्वार में पाखण्ड खण्डिनी पताका फहराई थी; उसका चित्र किसी ग्रन्थ में छपा था, वह मेरे पास नहीं है। जिस किसी के पास हो मेरे पास भेजने का कष्ट करें। उसके आधार पर सुन्दर चित्र बनवाकर शास्त्रार्थ-विद्यालय के द्वार पर लगा सकूँ। मेरे पास डाक केवल इस पते अर्थात् —आचार्य विश्वश्रवा व्यास, बरेली— से भी आ जाती है।



हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी

मानव और मानवता	२५.००
तत्वज्ञान	२०.००
प्रभु-मिलन की राह	२०.००
घोर घने जंगल में	२०.००
प्रभु-दर्शन	१५.००
दो रास्ते	१५.००
यह धन किसका है	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१२.००
ोध-कथाएँ	१२.००
निया में रहना किस तरह	७.००
ानव-जीवन-गाथा	६.००
भु-भक्ति	५.००
महामन्त्र	७.५०
एक ही रास्ता	८.००
भक्त और भगवान	८.००
आनन्द गायत्री कथा	६.००
शंकर और दयानन्द	५.००
सुखी गृहस्थ	४.००
सत्यनारायण कथा	४.००
Anand Gayatri Discourses	10.00
The Only Way	12.00
महात्मा आनन्द स्वामी जीवनी उर्दू (रणवीर)	१०.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	प्रेस में
सत्य की खोज	५०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

पंचमहायज्ञविधि	३.००
व्यवहार भानु	२.५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	०.७५
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	०.७५

डॉ० भवानीलाल भारतीय

श्रीकृष्ण चरित	२५.००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	२४.००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	२५.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वेद-मीमांसा	५०.००
मैं ब्रह्म हूँ	४.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१००.००
षड्दर्शनम्	१००.००
चाणक्यनीति दर्पण	५०.००
भर्तृहरिशतकम्	१५.००
विदुर नीति	२०.००
प्रार्थना लोक	२५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	८.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
दिव्य दयानन्द	८.००
कुछ करो कुछ बनो	१०.००
आदर्श परिवार	१०.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१०.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५.००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२.००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५.००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	६.००
यजुर्वेद शतकम्	६.००
सामवेद शतकम्	६.००
अथर्ववेद शतकम्	६.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००

स्वामी श्रद्धानन्द

कल्याण मार्ग का पथिक ६०.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खंड) ६६०.००

Swami Satya Prakash Sarasvati

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार ३२५.००
Founders of Sciences in Ancient India Two Volumes 500.00
Coinage in Ancient India Two Volumes 600.00
Critical Study of Brahmagupta and his works 350.00
Geometry in Ancient India 350.00
God in His Divine Love 5.00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman 700.00

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथ ब्राह्मण (तीन खण्ड) १८००.००
जीवात्मा २५.००
मुक्ति से पुनरावृत्ति ३.००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु सम्पादित

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (४ खंड) २४०.००
महात्मा हंसराज जीवनी ६०.००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

महाभारत सूक्तिसुधा ४०.००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ३५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा १०.००

सुरेशचन्द वेदालंकार

महकते फूल १०.००
ईश्वर का स्वरूप १५.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश ३५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

सत्यार्थ सरस्वती २५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष ८.००

ओम्प्रकाश त्यागी

वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय ६.००

प्रो० नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम ३५.००
संध्या विनय ६.००
आत्म विकास की राहें ५०.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष १०.००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ४.००

प्रो० ओम्प्रकाश वेदालंकार

वैदिक पंचायतन पूजा ३५.००

प्रा० विष्णुदयाल (मॉरीशस)

महर्षि का सच्चा स्वरूप ४.००

म० नारायण स्वामी

विद्यार्थी जीवन रहस्य २.५०
प्राणायाम विधि २.००

पं० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

हनुमान का वास्तविक स्वरूप १५.००

पं० राजनाथ पांडेय

वेद का राष्ट्रगान	१.००
त्रिकालजयी	१०.००

मनोहर विद्यालंकार

सरस्वती वन्दना	५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार एवं गायत्री शतकम्	३.००

घर का वैद्य

लेखक : सुनील शर्मा

घर का वैद्य	प्याज	४.००
,,	लहसुन	४.००
,,	गन्ना	४.००
,,	नीम	४.००
,,	सिरस	४.००
,,	तुलसी	४.००
,,	आँवला	४.००
,,	नींबू	४.००
,,	पीपल]	४.००
,,	आक	४.००
,,	गाजर	४.००
,,	मूली	४.००
,,	अदरक	४.००
,,	हल्दी	४.००
,,	वरगद	४.००
,,	दूध-घी	४.००
,,	दही-मट्ठा	४.००
,,	हींग	४.००
,,	नमक	४.००
,,	बेल	४.००
,,	शहद	४.००
,,	फिटकरी	४.००
,,	साग-सब्जी	४.००
,,	अनाज	४.००
,,	फल-फूल	४.००

कर्मकांड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	२.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	५.००
वैदिक संध्या	०.७५
सत्संग गुटका (छोटा साइज)	१.००
सत्संग मंजरी	६.००
Vedic Prayer	3.00

त्रिलोकचन्द विशारद कृत

महर्षि दयानन्द	३.००
स्वामी श्रद्धानन्द	३.००
गुरु विरजानन्द	२.५०
पंडित लेखराम	२.५०
स्वामी दर्शनानन्द	१.५०
पंडित गुरुदत्त	१.५०

अन्य प्रकाशन

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

शतपथ ब्राह्मण (तीन खण्ड)	१८००.००
जीवात्मा	२५.००
आस्तिकवाद	१५.००
इस्लाम के दीपक	२२.००
मीमांसा प्रदीप	२५.००
आर्य समाज	८.००
वैदिक धर्म और आर्य समाज	८.००
वैदिक मान्यताएँ	६.००
इस्लाम और आर्य समाज	६.००
हम क्या खायें घास या मांस	६.००
कर्मफल सिद्धांत	४.००
भारतीय पतन और उत्थान	५.००
पूजा	१५.००
मैं और मेरा भगवान	१२.००
उपदेश सप्तक	१.७५
वेद और मानव कल्याण	२.५०
Light of Truth	65.00
I and my God	12.00
Worship	12.00
Christianity in India	12.00
Superstitions	12.00
Vedic Culture	15.00
Reason & Religion	12.00
Philosophy of Dayanand	40.00

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती कृत

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार	३२५.००
योग और उनकी अनुभूमिका	६.००
योग सिद्धान्त और साधना	८.००
योग और प्राण सौष्ठव	११.००
योग प्राणायाम और चेतनाएँ	११.००
प्रभु के मार्ग पर	७.००
प्रार्थना और चिन्तन	६.००
मनुष्य और मानवधर्म	५.००
ईश्वर और ईश्वरीय ज्ञान	३.००
अध्यात्म और आस्तिकता	७.००
महर्षि दयानन्द समस्त क्रान्ति के दूत	३२.००
आर्य समाज : संघर्ष और समस्याएँ	३५.००
Critical Study of Philosophy of Dayanand	50.00
Vincit Veritas	30.00
Arya Samaj : A Renaissance	30.00
Dayanand : APhilosopher	65.00
Agnihotra : A Chemical Study	20.00
Agnihotra (Ritual)	5.00
Vedic Sandhya (Trans.)	4.00
Man and his Religion	6.00
God and His Divine Love	5.00
The Self Life and Consciousness	12.00
Humanitarian Diet	10.00
Three Hazards of Life	25.00
Dayanand and his Mission	3.00
Architects of Arya Samaj	12.00

महावीर प्रसाद

सूर्य सिद्धान्त	१२०.००

बाल साहित्य

बाल शिक्षा ले० स्वामी दर्शनानन्द	१.००
वैदिक शिष्टाचार	२.००

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम	०.७५
नैतिक शिक्षा	द्वितीय	१.५०
नैतिक शिक्षा	तृतीय	२.५०
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ	३.००
नैतिक शिक्षा	पंचम	३.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ	३.५०
नैतिक शिक्षा	सप्तम	४.००
नैतिक शिक्षा	अष्टम	४.००
नैतिक शिक्षा	नवम	५.००
नैतिक शिक्षा	दशम	५.००

स्वामी योगेश्वरानन्द कृत

बहिरंग योग	५५.००
आत्मविज्ञान	४०.००
ब्रह्मविज्ञान	१००.००
दिव्यज्योति विज्ञान	४०.००
प्राण विज्ञान	३०.००
दिव्य शब्द ज्ञान	४०.००
निर्गुण ब्रह्म	३०.००
व्याख्यानमाला—५ भाग	१५०.००
हिमालय का योगी—I	४५.००
हिमालय का योगी—II	७५.००
First Step to Higher Yoga	65.00
Science of Soul	60.00
Science of Divinity	60.00
Science of Divine Lights	45.00
Science of Vital Force	40.00
Science of Divine Sound	40.00
The Essential Colourlessness of the Absolute	40.00
Beads of Sermons	30.00
Himalaya Ka Yogi—I	45.00
Himalaya Ka Yogi—II	45.00

गजानन्द आर्य

वीरांगना महारानी कैकेयी	१५.००
आर्य समाज की मान्यताएँ	४.००

सत्यानन्द आर्य

जीवन सौरभ	१०.००

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

सुखी जीवन	७.५०
सुखी गृहस्थ	१२.५०
सुखी परिवार	८.००
आचार शिक्षा	१०.००
नीति शिक्षा	१०.००
वेदों में नारी	१५.००
वैदिक मनोविज्ञान	१५.००
यजुर्वेद सुभाषितावली	१५.००
सामवेद सुभाषितावली	१५.००
अथर्ववेद सुभाषितावली	२५.००
ऋग्वेद ,,	३०.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

...मका भास्कर—I	१५०.००
...द मीमांसा	५०.००
अनादि तत्त्वदर्शन	३०.००
अध्यात्म मीमांसा	४५.००
तत्त्वमसि	५०.००

डॉ० विद्यासागर अबरौल

मोक्ष द्वार	२५.००

बाल साहित्य

शिवकुमार गोयल

क्रान्तिकारी सावरकर (पुरस्कृत)	६.००
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	६.००
बाल गंगाधर तिलक	८.००

डॉ० मनोहर लाल

राजा भोज की कहानियाँ	६.००
खलील जिब्रान की कहानियाँ	६.००
शेखसादी की कहानियाँ	६.००
महात्मा गांधी की कहानियाँ	६.००
स्वामी दयानन्द की कहानियाँ	६.००
स्वामी रामतीर्थ की कहानियाँ	६.००
स्वामी विवेकानन्द की कहानियाँ	६.००

राजेन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर आजाद	६.००
भगतसिंह	६.००

चिरंजीत

छोटे बच्चों के नाटक	८.००
बड़े बच्चों के नाटक	८.००
मुनिया भेड़ों वाली (कविता में)	८.००
राजा-रानी की कहानी (कविता में)	८.००
बन्दर और मगरमच्छ	६.००
चिड़िया के मोती	६.००
अच्छे बनो	६.००

सन्तराम वत्स्य

भीष्म पितामह	६.००
वीर अर्जुन	६.००
महाबली भीम	६.००
विज्ञान के खेल	६.००
विज्ञान के पहिए	५.००
लोक-व्यवहार	१०.००
अच्छा नागरिक	८.००
मेरा देश है यह (पुरस्कृत)	६.००
ज्ञान की कहानियाँ (पुरस्कृत)	६.००
रामकृष्ण परमहंस की कहानियाँ	६.००
स्वेट मार्डन की कहानियाँ	६.००
जेम्स ऐलन की कहानियाँ	६.००

श्यामचन्द्र कपूर

नन्दिनी का वरदान (रामायण की कथाएँ)	६.००
शरणागत की रक्षा (वेदों की कथाएँ)	६.००
कीर्ति का मार्ग (महाभारत ,,)	६.००
सबसे बड़ा ज्ञानी (उपनिषदों ,,)	६.००
सच्चा सपूत (जातक कथाएँ)	६.००
फूलों की वर्षा (पुराणों की कथाएँ)	६.००
विश्वास का फल (कुरान ,,)	६.००
जनता का प्यारा (भागवत ,,)	६.००
सपने देखने वाला (बाइबल ,,)	६.००
आशा की ज्योति (जैन ग्रन्थों ,,)	६.००

विविध लेखक

पितृभक्त बालक	६.००
तपस्वी बालक	६.००
ईमानदार बालक	६.००
ज्ञानी बालक	६.००
भक्त बालक	६.००
बलिदान की कहानियाँ	६.००
हमारी एकता के प्रतीक त्योहार	६.००
ऋतुगीत	६.००

आचार्य चतुरसेन

आदर्श बालक-I	६.००
आदर्श बालक-II	६.००

स्वेट मार्डन लिखित

आप क्या नहीं कर सकते ?	६.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?	६.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?	६.००
जो चाहें सो कैसे पायें !	६.००
अपना खर्च कैसे घटायें !	६.००
अवसर को पहचानो !	६.००
अपने आपको पहचानिये !	६.००
आप सफल कैसे हों !	६.००
उन्नति कैसे करें !	६.००
धनकुवेर कैसे वनें !	६.००

बाल-विज्ञान सीरीज़

हमारा सूर्य	शरण	८.००
हमारा चन्द्रमा	,,	८.००
हमारी पृथ्वी	,,	८.००
मनोरंजक गणित	हरिदत्त शर्मा	१५.००
ज्ञानवर्धक गणित	,,	२०.००
ऊर्जा	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	८.००
कम्प्यूटर	आशुतोष मिश्र	८.००
वैज्ञानिक कृषि	डॉ० अशोक गुप्ता	८.००
जीवों की उत्पत्ति	विजय	८.००
रोहित का सपना	ब्रह्मदेव	८.००
अन्तरिक्ष से आने वाला	सुरजीत	८.००

क्या क्यों कैसे हरिदत्त शर्मा २५.००

पृथ्वी एवं खनिज, समुद्र, हीरे मोती, मुद्रा, पानी, पेड़, पौधे, अन्तरिक्ष, पशु-पक्षी

क्या क्यों कैसे हरिदत्त शर्मा २५.००

सामान्य विज्ञान, कम्प्यूटर
परमाणु, हवाई यान, रेल, मशीन, सामान्य ज्ञान, विविध,

क्या क्यों कैसे हरिदत्त शर्मा २५.००

शरीर रोग, चिकित्सा उपचार पद्धतियाँ, रक्त, भोजन, दुग्ध, इतिहास, राजनीति, कला-संस्कृति, खेल

शेरजंग गर्ग

पक्षी उड़ते फुर-फुर-फुर	८.००
पशु चलते हैं धरती पर	८.००
गुलाबी की बस्ती	८.००
शरारत का मौसम	८.००

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

सतरंगा हाथी	८.००
धरती है असली धन	६.००
राजा और पण्डित	६.००

सुनील शर्मा

अपनी किस्मत अपने हाथ	१०.००

यदुनाथ दाश महापात्र

बकरा	८.००

वैज्ञानिक उपन्यास

अन्तरिक्ष से आने वाला	८.००
रोहित का सपना	८.००

बाल उपन्यास

उड़ने वाला गलीचा	८.००
छोटा भाई	८.००

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

गर्भस्थिति प्रसव शिशुपालन	१२.००
हृदय-रोग : कारण निवारण	१०.००
पत्नी : समस्याएँ समाधान	६.००

डॉ० समरसेन

घरेलू इलाज	६.००
मोटापा कैसे घटायें	९.००
योगासनों से इलाज	१०.००
प्राकृतिक चिकित्सा	१०.००

योगाचार्य भगवानदेव

स्वास्थ्य और योगासन	१०.००

डॉ० जायसवाल

कैंसर : कारण और निवारण	१०.००

जयदेव वेदालंकार कृत देव भाष्य

ऋग्वेद भाषा भाष्य ७ भाग	२१०.००
अथर्ववेद भाषा भाष्य ४ भाग	१२०.००
यजुर्वेद भाषा भाष्य २ भाग	६०.००
सामवेद भाषा भाष्य १ भाग	३०.००

नारायणदास कपूर

Light of Yoga	15.00

स्वामी वेदानन्द कृत

वाध्याय सन्दोह	५०.००
ाध्याय-सन्दीप	४०.००
गोपनिषत्	२.५०

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, (तीन भाग)	२४०.००

मैक्समूलर

भारत की विश्व को देन	६५.००

आचार्य अभयदेव

वैदिक विनय	६०.००
ब्राह्मण की गौ	४०.००
तरंगित हृदय	४०.००
यज्ञ योग	४०.००

सार्वदे० सभा द्वारा प्रकाशित

ऋग्वेद भाष्य हिन्दी ५ भाग	२४०.००
अथर्ववेद भाष्य हिन्दी २ भाग	१४०.००
यजुर्वेद भाष्य हिन्दी १ भाग	७०.००
सामवेद भाष्य हिन्दी १ भाग	४०.००

विमलचन्द्र विमलेश

ऋषि गाथा महाकाव्य	२०.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

याज्ञिक आचार संहिता	२०.००

वीर सावरकर कृत

१८५७ स्वातन्त्र्य संग्राम	६०.००
काला पानी	२०.००
क्रान्ति के नक्षत्र	२०.००
गोमांतक	१७.५०
मोपला	१७.५०
उःशाप	१७.००
हिन्दू पद पादशाही	३०.००
हिन्दुत्व	१५.००
मेरा आजीवन कारावास	६०.००
क्रान्तिकारी चिट्ठियाँ	१७.५०

सय्याह सुनामी

काफिर	२५.००
आखिर जीत हमारी	१६.००
उस शिला को प्रणाम	२२.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	प्रेस में
सत्य की खोज	५०.००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०.००
श्रीमद्भगवद्गीता	६५.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००
एकादशोपनिषद्	६५.००
उपनिषद् प्रकाश	८५.००
संस्कार-चन्द्रिका	६५.००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	६०.००
Old age to youth	७८.००
होमियोपैथिक के मूल सिद्धान्त	५०.००
होमियोपैथिक औषधियाँ सजीव चित्रण	८५.००
रोग उनकी होमियोपैथिक चिकित्सा	८५.००
होमियोपैथी का क. ख. ग.	५४.००

पं० सत्यकेतु विद्यालंकार कृत

आर्यसमाज का इतिहास (प्रथम भाग)	१२५.००
आर्यसमाज का इतिहास (दूसरा भाग)	१२५.००
आर्यसमाज का इतिहास (तृतीय भाग)	१२५.००
आर्यसमाज का इतिहास (चतुर्थ भाग)	१२५.००
आर्यसमाज का इतिहास (पाँचवाँ भाग)	१२५.००
आर्यसमाज का इतिहास (छठा भाग)	१२५.००
आर्यसमाज का इतिहास (सातवाँ भाग)	१२५.००
प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग	६२.००
दक्षिण पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति	५८.००
पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया का आधुनिक इतिहास	५८.००
मध्य एशिया व चीन में भारतीय संस्कृति	२२.००
प्राचीन भारत	७७.००
भारतीय संस्कृति का विकास	३५.००
प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन	४४.००
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ और राजनीतिक विचार	६२.००
एशिया का आधुनिक इतिहास	१००.००
यूरोप का इतिहास	७४.००
प्रमुख राज्यों के संविधान	३३.००
समाजशास्त्र	३५.००
चाणक्य	३५.००
पतन और उत्थान	३५.००
मौर्य साम्राज्य का इतिहास	८०.००
राजनीति शास्त्र	८०.००
नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त	१६.००
भारत का इतिहास	४२.००

पं० भगवद्दत्त

सविता देवता	३५.००
बृहस्पति देवता	४०.००

वैद्य सुरेश चतुर्वेदी

स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग १०.००
सौ वर्ष कैसे जियें १०.००
आहार चिकित्सा १०.००

डॉ० प्रकाश भारती

घर का डाक्टर (होम्योपैथी) १२.००
मानसिक रोग : कारण निवारण १०.००

डॉ० द्वारकाप्रसाद

योग एक वरदान १०.००

श्यामजी गोकुल वर्मा

ग-साधना और प्राणायाम १०.००

हास्य-व्यंग्य

माडर्न शादी ३.००
हँसी,और हँसाओ ५.००
हास-परिहास ५.००

मीनाक्षी धींगड़ा

आधुनिक पाक कला ६.००
आधुनिक मिष्ठान्न कला ६.००
शर्बत आइसक्रीम स्क्वैश ६.००
अचार मुरब्बे चटनी ६.००

तकनीकी

रेडियो-ट्रांजिस्टर मैकेनिक १२.००
ट्रांजिस्टर गाइड १२.००
ट्रांजिस्टर सर्विसिंग १०.००
टेलिविज़न गाइड १०.००

इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द १०.००

सन्तराम वत्स्य

स्वामी विवेकानन्द ८.००
स्वामी रामतीर्थ ८.००
रामकृष्ण परमहंस १०.००

विविध

महाभारत १०.००
रामायण १०.००
पंचतन्त्र ६.००
हितोपदेश १०.००
चाणक्य नीति (संस्कृत-हिन्दी) १०.००
भर्तृहरिशतकम् (संस्कृत-हिन्दी) १५.००
विदुर नीति १५.००
विक्रम-वेताल (हिन्दी) ६.००
सिंहासन बत्तीसी ६.००
एशियाई खेल १२.००
जूडो आत्मरक्षा के लिए १०.००

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास

अपने-पराये ४.००
अकेली ४.००
चन्द्रनाथ ४.००
अनुराधा ४.००
परिणीता ४.००
बिन्दु का बेटा ४.००
वैकुण्ठ का दानपात्र ४.००
छोटा भाई ८.००
मझली दीदी ८.००
बड़ी दीदी ४.००
बिराज बहू ४.००
ब्राह्मण की बेटी ४.००
पंडित मोशाय ४.००
देवदास ६.००
नया विधान ६.००
देहाती समाज ६.००
शुभदा ४.००
श्रीकान्त (दो भाग) ३०.००
विप्रदास १०.००
देना पावना १५.००
गृह-दाह १५.००

पं० उदयवीर शास्त्री

ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन) ८०.००
योगदर्शन ४५.००
वैशेषिक दर्शन ५०.००
सांख्य दर्शन ४०.००
कौटिल्य अर्थशास्त्र १२.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।